प्रकाशक
रामनारायणलाल बेनीप्रसाद
इलाहाबाद-२

मुद्रक
रामबाबू अग्रवाल
ज्ञानोदय प्रेस
इलाहाबाद-२

प्राक्कथन

इस ग्रन्थ मे प्रयत्न किया गया है कि सक्षेप मे सस्कृत साहित्य का पूरा विवरण दिया जाए। यह सस्करण मुख्यरूप से कालेज के छात्रो की एतद्-विषयक आवश्यकता की पूर्ति के लिए प्रस्तुत किया गया है। इस विषय पर आजकल जो पुस्तकें उपलब्ध हैं, उनमे से अधिकाश पुस्तकें १३वी या १४वी शताब्दी तक के साहित्य का ही परिचय देती हैं। वैदिककाल, श्रेण्यकाल, नाटक और दर्शनो आदि का पृथक्-पृथक् पुस्तको मे वर्णन दिया गया है। अभी तक ऐसी कोई पुस्तक नही लिखी गई है, जिसमे उपर्युक्त सभी विषयो का एक ही ग्रन्थ मे विवेचन हुआ हो। यह ग्रन्थ इस न्यूनता की पूर्ति करता है। इसमे वैदिककाल से लेकर गत शताब्दी तक लिखे गये सम्पूर्ण सस्कृत साहित्य का मक्षेप मे विवेचन है। इस छोटे से ग्रन्थ मे यह सभव नही है कि इस ग्रन्थ मे वर्णित सभी विषयो का विस्तृत विवेचन और वर्णन हो सके। तथापि कतिपय महत्त्वपूर्ण प्रश्नो पर यथासभव विस्तृत प्रकाश डाला गया है, जैसे—वाल्मीकीय रामायण का लेखक कौन है, कालिदास का समय, दण्डी का समय, त्रिवेन्द्रम् नाटको का लेखक भास इत्यादि। सगीत, ज्योतिप, धर्मशास्त्र, दर्शन आदि विपयो पर केवल लेखको और उनके मुख्य ग्रन्थो के नाम का ही उल्लेख किया गया है।

विषय-विवेचन मे कुछ परिवर्तन भी किए गए हैं। रामायण का विवेचन भारत से पूर्व हुआ है। तेरहवें अध्याय में काव्य की पद्धतियो पर रचे गए ऐतिहासिक काव्य का भी विवेचन हुआ है। गीतिकाव्य का १४वें अध्याय मे हुआ है। १६वें अध्याय मे सुभाषित-ग्रन्थो का किया गया है। उनमे सगृहीत श्लोक काव्य-ग्रन्थो से उद्धृत किए अत उनका पृथक्-वर्णन ही उचित था। अध्याय १७ और १८

मे गद्यकाव्य तथा चम्पू-ग्रन्थो का वर्णन हुआ है । ये साहित्य के दो स्वतन्त्र विभिन्न रूप हैं । अध्याय १६ और २० मे कथा-साहित्य और नीति-कथाओ का वर्णन है। ये ग्रन्थ-गद्य और पद्य दोनो रूप में हैं । ऐतिहासिक महत्त्व के ग्रन्थ काव्य, गद्य और नाटक इन तीनो रूपो मे लिखे गए हैं, अत उनका वर्णन नाटको के बाद २४वें अध्याय मे किया गया है। आस्तिक दर्शनो और धार्मिक दर्शनो का वर्णन अध्याय ३५ मे आ है, क्योकि ये सभी दर्शन आस्तिक-दृष्टिकोण के हैं ।

इस विषय को लेकर लिखे गये ग्रन्थो मे कतिपय त्रुटियो का दृष्टिगोचर होना स्वाभाविक ही है । समय-निर्धारण-सम्बन्धी कठिनाइयो को पार करना प्राय कठिन ही है । इसके अतिरिक्त पाश्चात्य विद्वानो ने कुछ असगपुष्ट सिद्धान्तो का समर्थन किया है और बहुत से भारतीय विद्वान् भी उन मतो का समर्थन करते हैं । इस ग्रन्थ मे जिन विषयो का विवेचन किया गया है, आशा है समालोचकवर्ग उदारतापूर्वक उन पर विचार करेंगे । प्रस्तुत नव-सस्करण का सशोधन और परिवर्धन श्री देवेन्द्र मिश्र ने किया है । मूल लेखक के अग्रेजी सस्करण मे अनेक नवीन ऐतिहासिक वस्तुएँ जोड दी गई हैं अत हिन्दी सस्करण मे भी उनको सशोधित और परिवर्धित करना आवश्यक जान पडा । अब तक की खोजपूर्ण नयी ऐतिहासिक सामग्रियो को प्रस्तुत करने के कारण ग्रन्थ की उपादेयता और भी बढ गई है । आशा है प्रस्तुत ऐतिहासिक रचना सुधी पाठकजनो की आवश्यकता की पूर्ति कर उनकी ज्ञानवृद्धि करेगी और उन्हें सतोष होगा ।

विषय-सूची

संस्कृत साहित्य का इतिहास

अध्याय १

भूमिका

भारतवर्ष मे प्राचीनकाल से धार्मिक और लौकिक कार्यों के लिए जिस भाषा का उपयोग किया जाता रहा है, उसे सस्कृत कहते हैं। इस भाषा का यह नाम लगभग ७०० ई० पू० मे पडा है, जव प्रमुख वैयाकरण पाणिनि ने इस भाषा के नियमो का निर्माण किया । इस समय से पूर्व इसको दैवी वाक् (देववाणी) कहते थे । यह सस्कृत नाम इस वात को स्पष्ट करता है कि यह भाषा परिष्कृत और सशोधित है । इस भाषा का उपयोग वोलचाल के कामो मे भी होता था । इसी भाषा मे भारतीयो का समस्त प्राचीन वाङ्मय लिखित है । वहुत वाद मे सस्कृत और प्राकृत से निकली हुई भाषाओ का उपयोग साहित्यिक कार्यों के लिए हुआ । इस काल में भी सस्कृत का स्थान प्रमुख रहा ।

इस भाषा के विकास मे दो अवस्थाएं दृष्टिगोचर होती हैं। (१) वैदिक काल (२) श्रेण्य काल । इनमे से पहली अवस्था मे भाषा सरल, स्वाभाविक और ओजयुक्त थी । वैदिक काल का अधिक साहित्य इसी मे लिखा गया है । द्वितीय काल की वहुत सी विशेषताएं इस भाषा मे दिखाई देती हैं । इसमे व्याकरण के रूपो की विभिन्नता विशेष रूप से दिखाई देती है । जैसे, क्रिया सम्वन्धी रूपो मे परस्मैपद और आत्मनेपद दोनो का ही अवाध प्रयोग और दोनो का परस्पर परिवर्तन । तुमन् (को, के लिए) के अर्थ मे कृदन्त रूपो मे से, तवे, तवै आदि प्रत्यय, जिनसे वक्षे, सूतवे, मादयितवै आदि रूप वनते हैं। इसी प्रकार त्वा (करके) के स्थान पर त्वाय प्रत्यय, जैसे-गत्वा के स्थान पर गत्वाय । देवास , विप्रास , कर्णेभि , पूर्वेभि , देवेभि तथा अन्य इस प्रकार के प्रयोग शब्दो के रूपो की विचित्रता प्रकट करते हैं । इसी प्रकार

तुमुन् (को, के लिए) और क्त्वा (करके) प्रत्यय के विभिन्न विचित्र रूप प्राप्त होते है, जैसे—परादै, भूवे, समिधम्, सदृशि तथा कर्त्वा और वक्त्वा। ये सभी रूप श्रेव्य काल में सर्वथा लुप्त हो गये हैं।

वैदिक काल मे यह भाषा धार्मिक और बोलचाल दोनो कार्यों के प्रयोग मे आती थी। पुरोहित आदि यज्ञ के समय इसका शुद्ध प्रयोग करते थे, किन्तु बोलचाल मे इसमे वे अशुद्धियाँ भी कर देते थे। भाषा की इस अव्यवस्था को नियमो के द्वारा रोकने के लिये कई वैयाकरणो ने विभिन्न समयो मे प्रयत्न किए, किन्तु यह उद्देश्य सातवी शताब्दी ई० पू० मे ही पूर्ण हुआ, जब **पाणिनि** ने **अष्टाध्यायी** की रचना द्वारा इस भाषा के निश्चित नियमो का निर्माण किया। तत्पश्चात् पांचवी शताब्दी ई० पू० मे **कात्यायन** हुए जिनका दूसरा नाम **वररुचि** भी है। इन्होने अष्टाव्यायी पर 'वार्तिक' लिखे। इन वार्तिको मे पाणिनि के नियमो की समीक्षा है। द्वितीय शताब्दी ई० पू० मे पतजलि हुए। इन्होने अष्टाव्यायी पर महाभाष्य नामक ग्रन्थ लिखा। इन दोनो वैयाकरणो ने पाणिनि के नियमो की विस्तृत व्याख्या की तथा आवश्यक सशोधन और परिवर्तन भी किए। इन वैयाकरणो ने जो नियम बनाए, उनसे यह भाषा पूर्ण हुई। यही अवसर है जब इस भाषा ने सस्कृत नाम प्राप्त किया। किन्तु इसका यह भाव नही है कि वैदिक काल की समाप्ति के बाद ही **श्रेण्य भाषा** का प्रादुर्भाव हुआ। श्रेण्य भाषा के रूपो की सत्ता वैदिक काल की समाप्ति से पूर्व भी दृष्टिगोचर होती है, जैसा कि पाणिनि के सूत्रो से स्पष्ट है। क्योंकि उन्होने जो सूत्र बनाये हैं, उनमे से कुछ वैदिक भाषा पर लागू होते हैं और कुछ श्रेण्य भाषा पर। बाद की भाषा को पाणिनि ने भाषा नाम दिया है। यह भाषा वैदिक भाषा मे कुछ अन्तर रखती थी और वैदिक काल मे ही श्रेण्य भाषा के प्रादुर्भाव को सूचित करती है।

श्रेण्य काल मे सस्कृत भाषा की बहुत उन्नति हुई। धार्मिक और लौकिक सभी प्रकार के विषयो का इस भाषा मे विवेचन हुआ। काव्यकला और दार्श-

निकं विचारो का इस भाषा मे सुन्दर समन्वय दीखता है । वस्तुत. ऐसा कोई भी विषय नही है, जिसका इस भाषा मे विवेचन न हुआ हो ।

इस काल के विकास-क्रम में पाणिनि के कठोर नियमो के होते हुए भी इस भाषा मे कुछ नवीन विशेषताएँ आई । पाणिनि के प्रभाव के कारण भाषा, जो कि विकास की ओर उन्मुख थी, इस काल मे विकसित न हो सकी । जिसका परिणाम यह हुआ कि विभाषा-सम्बन्धी विभिन्नताएँ, जो कि वैदिक काल से चली आ रही थी, न रही । पाणिनि के नियमों के विरुद्ध धातु-रूपो के स्थान पर कृदन्त रूपो का व्यवहार होने लगा । ऐसे वाक्यो की रचना हुई, जिसमे क्रिया का अभाव था और उसका केवल अध्याहार किया जाता था । सक्षेप के लिए गौण वाक्यो के स्थान पर लम्बे समासो को स्थान दिया गया । पाणिनि ने भूतकाल के लकारो के विषय मे जो विशेष नियम बनाए थे, उनकी उपेक्षा की गई । उदात्त आदि स्वर जो कि पाणिनि के मतानुसार सगीतात्मक थे, उनके स्थान पर बलाघात वाले स्वरो को स्थान मिला । १५ वी शताब्दी के बाद लिखे गए विज्ञान-सम्बन्धी ग्रन्थो मे क्रियाओ के गणो वाले रूपो का प्राय अभाव मिलता है ।

सस्कृत भाषा के विकास और उन्नति के साथ-साथ एक भाषा और चालू थी, जिसको प्राकृत कहते हैं । यह जनसाधारण की भाषा थी । प्राकृत शब्द प्रकृति शब्द से निकला है जिसका अर्थ है जनता । (प्रकृतौ भव प्राकृतम्) । इस प्राकृत भाषा का प्रयोग वे व्यक्ति करते थे, जो बोलचाल की सस्कृत को ठीक समझ लेते थे, परन्तु अपने भावो को प्रकट करने के लिए इसे ठीक बोल नहीं सकते थे । यद्यपि इसका स्वतत्र अस्तित्व था, परन्तु सस्कृत से बहुत मिलती हुई थी और इस पर सस्कृत का प्रभाव भी बहुत अधिक था ।[1] इस प्राकृत की मुख्य विशेषता यह है कि इसमे आत्मनेपद का सर्वथा अभाव है ।

---

१ काव्यादर्श १-३३

यह सस्कृत, जिसको पाणिनि ने भाषा नाम से सम्बोधित किया है, बोलचाल की भाषा थी । इसके कतिपय प्रमाण मिलते हैं । पाणिनि ने वैदिक और लौकिक भापा के लिए अपने नियम वनाए हैं । पतजलि का कथन है कि व्याकरण का उद्देश्य यह नही है कि नए शब्दो का निर्माण किया जाय, अपितु शब्दो के शुद्ध प्रयोग की शिक्षा देना व्याकरण का उद्देश्य है । इस वक्तव्य से यह स्पप्ट होता है कि व्याकरण से पहले बोलचाल की भाषा विद्यमान रहती है और उसी के लिए वैयाकरण व्याकरण के ग्रन्थो का निर्माण करते हैं । पतजलि ने लिखा है कि वडे-वडे विद्वान् ऋषि भी 'यद् वा न, तद् वा न' इस शुद्ध प्रयोग के स्थान पर बोलचाल मे यर्वाण, तर्वाण इस प्रकार के अशुद्ध प्रयोग करते थे, किन्तु यज्ञ आदि कार्यों मे वे किसी प्रकार का अशुद्ध प्रयोग नही करते थे । पतजलि का कथन है कि—

एव हि श्रूयते—यर्वाणस्तर्वाणो नाम ऋषयो वभूवु प्रत्यक्षधर्माण परावरज्ञा विदितवेदितव्या अधिगतयाथातथ्या । ते तत्र भवन्तो यद्वा नस्तद्वा न इति प्रयोक्तव्ये यर्वाणस्तर्वाण इति प्रयुञ्जते । याज्ञे पुन कर्मणि नापभाषन्ते । (महाभाष्य १–१–१) इसके अतिरिक्त पतजलि ने एक सवाद का भी उल्लेख किया है, जो कि सूत शब्द की व्युत्पत्ति पर एक वैयाकरण का एक सारथि से

सस्कृत की विभाषाओ का भी उल्लेख करते हैं, जिसका उन्होने अपने ग्रन्थो मे वर्णन किया है। देश के विभिन्न भागो मे बोले जाने वाले प्रयोगो का भी उल्लेख किया है।

शवतिर्गतिकर्मा कम्बोजेष्वेव भाषितो भवति, विकार एनमार्या भापन्ते शव इति। हम्मतिः सुराष्ट्रेषु, रहृति प्राच्यमध्यमेषु, गमिमेव त्वार्या प्रयुञ्जते। दातिर्लवनार्थे प्राच्येषु, दात्रमुदीच्येषु। महाभाष्य १-१-१। शब्दो के अन्त मे लगने वाले प्रत्ययो मे से कुछ पूर्वीय लोगो को रुचिकर थे, कुछ उत्तर वालो को और कुछ कम्बोज (हिन्दुकुश पर्वत के पास रहने वाले) लोगो को।[१] दक्षिण के व्यक्तियो को तद्धित प्रत्यय वाले प्रयोग अधिक रुचिकर थे।

प्रियतद्धिता दाक्षिणात्या। महाभाष्य १-१-१। पाणिनि ने पुत्रादिनी और पुत्रादिनी के अर्थों मे अन्तर का उल्लेख किया है कि इस प्रकार इनका प्रयोग करें।[२] इसमे से प्रथम शब्द घृणा-सूचक है और दूसरे का अर्थ है वस्तुत पुत्र को खाने वाली, जैसे सर्पिणी। दूर से सम्बोधन मे व्यक्ति के नाम का अन्तिम स्वर प्लुत उच्चारण किया जाता है।[३] इसी प्रकार पाणिनि ने द्यूत के पारिभाषिक शब्दो[४], ग्वालो की बोली[५] और स्वरो के प्रयोग के विषय मे विस्तृत विवरण दिया है। यदि सस्कृत बोलचाल की भाषा न होती तो ये सभी नियम निरर्थक होते। निम्नलिखित कारणो से भी ज्ञात होता है कि सस्कृत बोलचाल की भाषा थी। युष्मद् शब्द के स्थान पर भवत् शब्द का प्रयोग,[६] दास्या पुत्र आदि निन्दार्थक शब्द जिनमे षष्ठी का अलुक है,[७] अनुकरणात्मक

---

१ अष्टाव्यायी ४-१-१७, ७-३-४६, ४-१-४३

२ अष्टाव्यायी ८-४-४८

३ " ८-२-८४

४ " ३-३-७०

५ " ४-२-३९, ७-१-१, ४-२-४७

६ " १-४-१०८

७ " ६-३-२२, ६-३-२१

शब्दो की रचना[1] एनम्, एनेन आदि अन्वादेश वाले प्रयोग,[2] नमः स्वस्ति आदि के साथ होने वाली विशेष विभक्तियाँ[3]। इसके अतिरिक्त नाटको मे उच्च श्रेणी के पुरुष पात्रो के द्वारा सस्कृत भाषा का प्रयोग और निम्न श्रेणी के पुरुष पात्रो तथा स्त्रियो के द्वारा प्राकृत का प्रयोग, इस बात के मानने पर ही उचित प्रतीत होता है कि नाटको के अन्दर भाषाओ के प्रयोग मे अन्तर दैनिक व्यावहारिक जीवन से ही लिया गया है। **रामायण, महाभारत और पुराणों** की भाषा भी इसी निर्णय की सूचक है।

श्रेण्यकाल में सस्कृत बोलचाल और साहित्यिक भाषा के रूप मे बहुत लोकप्रिय हुई। सस्कृत मे सभी विषयो पर ग्रन्थ लिखे गए। यह राजभाषा के रूप मे प्रतिष्ठित हुई। प्राचीन समय से लेकर १६ वी शताब्दी ई० तक शिला-लेख, स्तम्भ-लेख, दानपत्र, राजकीय शासन-पत्र और प्रशस्तियाँ आदि प्राय सस्कृत में ही लिखी गई। बौद्ध और जैन, जो कि प्राकृत का प्रयोग अधिक उचित मानते थे, उन्होने भी ईसवीय शताब्दी के प्रारम्भ के बाद साहित्यिक कार्यो के लिए सस्कृत को अपनाया। बौद्ध दार्शनिक **अश्वघोष** (प्रथम शताब्दी ईसवीय) ने बौद्ध विचारो के प्रचारार्थ सस्कृत का ही आश्रय लिया। प्रसिद्ध **वैद्यराज चरक** (प्रथम शताब्दी) ने वैद्यो के वार्तालाप मे सस्कृत भाषा के प्रयोग का उल्लेख किया है। सातवी शताब्दी मे चीनी यात्री **ह्वेनसांग** ने भा भ्रमण के समय तत्कालीन बौद्धो के द्वारा सस्कृत भाषा के प्रयोग का उ किया है। ६०६ ई० मे जैन लेखक **सिद्धर्षि** ने जैन भावो को लेकर 'उ **भावप्रपचकथा**' नामक ग्रन्थ सस्कृत मे लिखा। इस ग्रन्थ मे उसने अपेक्षा सस्कृत भाषा के प्रयोग के लाभो का स्पष्ट रूप से उल्लेख

---

१ " १–३–६०

२ " २–४–३२, २–४–३४

३ " २–३–१६, २–३–१७

उसका कथन है कि—

सस्कृता प्राकृता चेति भाषे प्राधान्यमर्हत ,
तत्रापि सस्कृता तावद दुर्विदग्धहृदि स्थिता ॥
वालानामपि सद्बोधकारिणी कर्णपेशला,
तथापि प्राकृता भाषा न तेषामपि भासते ॥

उपमितिभावप्रपचकथा १-५१, ५२,

कश्मीरी कवि बिल्हण (११ वी शताब्दी ई०) का कथन है कि कश्मीरी स्त्रियां सस्कृत, प्राकृत और कश्मीर की भाषा को ठीक समझती थी ।[1]

सस्कृत वैयाकरणो के ग्रन्थो ने इस भाषा के दुरुपयोग को अवश्य रोका, परन्तु इसके द्वारा भाषा को निश्चल वना दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि **पाणिनि** के समय मे **संस्कृत और प्राकृत** मे जो अन्तर था, वह दिन प्रतिदिन वढता गया। कुछ काल पश्चात् जव व्याकरण के नियमो से वद्ध कवियो ने इसको कृतिम रूप देना प्रारम्भ किया और अप्रचलित प्रयोगो को स्थान देना प्रारम्भ किया, तवसे यह अन्तर और वढ गया। ज्यो-ज्यो प्राकृत वढ़ती गई, वोलचाल के रूप मे सस्कृत भाषा का प्रयोग कम होता गया और धीरे-धीरे समाज पर उसका प्रभाव कम हो गया। साहित्यिको ने सस्कृत भाषा की इस अवनति की ओर ध्यान दिया और प्रयत्न किया कि यह पुन उसी स्थिति को प्राप्त हो। **हितोपदेश** और **पंचतंत्र** इसी प्रकार के प्रयत्नो के परिणाम हैं। धार्मिक कृत्यो के लिए छोटे **'प्रयोग'** नामक ग्रन्थ भी इसी उद्देश्य से लिखे गए थे। इन प्रयत्नो के द्वारा यद्यपि पूर्ण सफलता नही मिली, तथापि इनके द्वारा अवनति की गति कम अवश्य हो गई।

आजकल सस्कृत को मातृभाषा कहा जाता है। इस विषय मे यह स्मरण रखना चाहिए कि यह सपूर्ण भारतवर्ष या किसी एक प्रदेश की दैनिक वोलचाल की भाषा नही थी और इस अर्थ मे कभी भी जीवित भाषा नही थी, अपितु यह उच्च श्रेणी के व्यक्तियो की ही वोलचाच की भाषा थी। किसी भी

१. विक्रमाकदेवचरित १८-६

शब्दो की रचना[1] एनम्, एनेन आदि अन्वादेश वाले प्रयोग,[2] नमः स्वस्ति आदि के साथ होने वाली विशेष विभक्तियाँ[3]। इसके अतिरिक्त नाटको मे उच्च श्रेणी के पुरुष पात्रो के द्वारा सस्कृत भाषा का प्रयोग और निम्न श्रेणी के पुरुष पात्रो तथा स्त्रियो के द्वारा प्राकृत का प्रयोग, इस बात के मानने पर ही उचित प्रतीत होता है कि नाटको के अन्दर भाषाओं के प्रयोग मे अन्तर दैनिक व्यावहारिक जीवन से ही लिया गया है। **रामायण, महाभारत** और **पुराणो** की भाषा भी इसी निर्णय की सूचक है।

श्रेण्यकाल मे सस्कृत बोलचाल और साहित्यिक भाषा के रूप मे बहुत लोकप्रिय हुई। सस्कृत मे सभी विषयो पर ग्रन्थ लिखे गए। यह राजभाषा के रूप मे प्रतिष्ठित हुई। प्राचीन समय से लेकर १९ वी शताब्दी ई० तक शिलालेख, स्तम्भ-लेख, दानपत्र, राजकीय शासन-पत्र और प्रशस्तियाँ आदि प्राय सस्कृत मे ही लिखी गई। बौद्ध और जैन, जो कि प्राकृत का प्रयोग अधिक उचित मानते थे, उन्होने भी ईसवीय शताब्दी के प्रारम्भ के बाद साहित्यिक कार्यों के लिए सस्कृत को अपनाया। बौद्ध दार्शनिक **अश्वघोष** (प्रथम शताब्दी ईसवीय) ने बौद्ध विचारो के प्रचारार्थ सस्कृत का ही आश्रय लिया। प्रसिद्ध वैद्यराज **चरक** (प्रथम शताब्दी) ने वैद्यो के वार्तालाप मे सस्कृत भाषा के प्रयोग का उल्लेख किया है। सातवी शताब्दी मे चीनी यात्री **ह्वेनसांग** ने भारत भ्रमण के समय तत्कालीन बौद्धो के द्वारा सस्कृत भाषा के प्रयोग का उल्लेख किया है। ९०६ ई० मे जैन लेखक **सिद्धर्षि** ने जैन भावो को लेकर '**उपमिति-भावप्रपचकथा**' नामक ग्रन्थ सस्कृत मे लिखा। इस ग्रन्थ मे उसने प्राकृत की अपेक्षा सस्कृत भाषा के प्रयोग के लाभो का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है।

---

[1] " १–३–९०

[2] " २–४–३२, २–४–३४

[3] " २–३–१६, २–३–१७

उसका कथन है कि—

सस्कृता प्राकृता चेति भाषे प्राधान्यमर्हत ,
तत्रापि सस्कृता तावद् दुर्विदग्धहृदि स्थिता ॥
वालानामपि सद्बोधकारिणी कर्णपेशला,
तथापि प्राकृता भाषा न तेषामपि भासते ॥

उपमितिभावप्रपचकथा १-५१, ५२,

कश्मीरी कवि **बिल्हण** (११ वी शताव्दी ई०) का कथन है कि कश्मीरी स्त्रियाँ सस्कृत, प्राकृत और कश्मीर की भाषा को ठीक समझती थी।[1]

सस्कृत वैयाकरणो के ग्रन्थो ने इस भाषा के दुरुपयोग को अवश्य रोका, परन्तु इसके द्वारा भाषा को निश्चल बना दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि **पाणिनि** के समय मे **संस्कृत और प्राकृत** मे जो अन्तर था, वह दिन प्रति-दिन वढता गया। कुछ काल पश्चात् जव व्याकरण के नियमो से वद्ध कवियो ने इसको कृतिम रूप देना प्रारम्भ किया और अप्रचलित प्रयोगो को स्थान देना प्रारम्भ किया, तवसे यह अन्तर और वढ गया। ज्यो-ज्यो प्राकृत वढती गई, वोलचाल के रूप मे सस्कृत भाषा का प्रयोग कम होता गया और धीरे-धीरे समाज पर उसका प्रभाव कम हो गया। साहित्यिको ने सस्कृत भाषा की इस अवनति की ओर ध्यान दिया और प्रयत्न किया कि यह पुन उसी स्थिति को प्राप्त हो। **हितोपदेश और पंचतंत्र** इसी प्रकार के प्रयत्नो के परिणाम हैं। धार्मिक कृत्यो के लिए छोटे **'प्रयोग'** नामक ग्रन्थ भी इसी उद्देश्य से लिखे गए थे। इन प्रयत्नो के द्वारा यद्यपि पूर्ण सफलता नही मिली, तथापि इनके द्वारा अवनति की गति कम अवश्य हो गई।

आजकल सस्कृत को मातृभाषा कहा जाता है। इस विपय मे यह स्मरण रखना चाहिए कि यह सपूर्ण भारतवर्ष या किसी एक प्रदेश की दैनिक वोल-चाल की भाषा नही थी और इस अर्थ मे कभी भी जीवित भाषा नहीं थी, अपितु यह उच्च श्रेणी के व्यक्तियो की ही वोलचाच की भाषा थी। किसी भी

---

१. विक्रमाकदेवचरित १८-६

भाषा को मृत तभी कहा जाता है, जब वह जनता पर तथा अन्य भाषाओ पर अपना प्रभाव सर्वथा छोड दे। जब इस अर्थ को दृष्टि से हम विचार करते हैं तो ज्ञात होता है कि सस्कृत मातृ-भाषा नही है। यह अब भी भारतवर्ष की विभिन्न भाषाओ को अनुप्राणित और सपुष्ट करती है तथा भारतीय जनता को एक सूत्र मे बाँधने के लिए एकमात्र साधन है। इस दृष्टि से यह अब भी जीवित भाषा है। इसके अतिरिक्त सस्कृत विद्वानो के द्वारा पहले की तरह आज भी लौकिक और धार्मिक कार्यों के लिए प्रयोग मे लाई जाती है।

प्राकृत भाषा, जो कि जनसाधारण की भाषा थी, साहित्यिक भाषा हो गई और ईसवीय शताब्दी के पहले से ही बोलचाल की भाषा रही। छठी शताब्दी ई० पू० मे **गौतम बुद्ध** और **महावीर** ने प्राकृत मे ही अपने सिद्धान्तो का उपदेश दिया। महाराज अशोक के समय मे प्राकृत राजभाषा हुई। प्राकृत मे ही शिलालेख आदि लिखे गए। ईसवीय शताब्दी के आरम्भ के समय प्राकृत साहित्यिक-भाषा के रूप मे प्रतिष्ठित न रह सकी और प्राकृत के समर्थको ने भी हिन्दुओ के साथ विवादो और शास्त्रार्थों मे सस्कृत भाषा का ही प्रयोग प्रारम्भ किया। इस समय के पश्चात् बौद्धो और जैनो के लिए भी सस्कृत ही साहित्यिक भाषा के रूप मे रही। प्राकृत के प्रयोग का सर्वथा अभाव नही हुआ। विशेष-रूप मे जैन लेखक इसका प्रयोग करते थे।

बोलचाल की भाषा के रूप मे प्राकृत की कई विभाषाएँ थी। उनमे से मुख्य हैं—(१) **मागधी**, जिसमे गौतम बुद्ध ने अपने सिद्धान्तो का उपदेश दिया है। (२) **अर्धमागधी**, इसके प्राचीन रूप मे महावीर ने अपने सिद्धान्तो का उपदेश दिया है। (३) **शौरसेनी**। जिन प्रदेशो मे ये भाषाएँ विकसित हुई हैं, वे क्रम से ये हैं—(१) बिहार, (२) बनारस और उसके समीप का प्रदेश, (३) मथुरा का प्रदेश। मराठी और बगला मागधी मे निकली हैं। **पूर्वी पजाबी हिन्दी और गुजराती** शौरसेनी से निकली हैं।

४००ई० के लगभग प्राकृत की एक विभाषा हुई, जिसका नाम अपभ्रश पडा। साहित्य प्राकृत और आधुनिक प्रचलित भाषाओ के बीच मे इसकी

स्थिति है। इसका शब्दकोष सीमित था। यह वर्तमान भाषाओं की उत्पत्ति में मुख्य कारण है। इसने पूर्वप्रचलित विभाषाओ को प्रभावित किया तथा कुछ नई भाषाओ को जन्म दिया। अपभ्रंश के प्रभाव के कारण ही विहारी, उडिया और अन्य भाषाओ का जन्म हुआ।

भारतवर्ष मे अति प्रचीन समय में लेखन-कला का अभाव था। मौखिक ही शिक्षण आदि कार्य होता था। वेदो के लिए श्रुति शब्द, धार्मिक पुस्तको के लिये स्मृति तथा सूक्त, अनुवाद इत्यादि जो कि ग्रन्थ के विभागो का निर्देश करते हैं, इसी का समर्थन करते हैं। अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वा-मूलीय, उपध्मानीय इत्यादि शब्द इसी का समर्थन करते हैं। व्याकरण के ग्रन्थो तथा रामायण और महाभारत मे लेखन-कला का निर्देश मिलता है। लिपि शब्द का प्रयोग लिखित **वर्णमाला** के अर्थ मे हुआ है। लिख् धातु का प्रयोग वर्णों के विन्यास या पत्थर और पत्र आदि पर लिखाई के अर्थ मे हुआ है।[1] इन उल्लेखो के साथ ही अशोक के शिलालेखो आदि से सिद्ध होता है कि भारतवर्ष मे लेखन-कला प्रचलित थी और सम्भवत इसका प्रचलन २००० ई० पू० से है।

अशोक के शिलालेखो से यह वात सिद्ध होती है कि भारतवर्ष मे द्वितीय शताब्दी ई० पू० मे लेखनकला वहुत उन्नत अवस्था मे थी। लिखने की पद्धति वाई ओर से दाहिनी ओर की थी। यद्यपि एक मुद्रा ऐसी भी प्राप्त हुई है, जिसमे दाई ओर से वाई ओर लेख है। लेखन कार्य के लिए वृक्षो की छाल और ताडपत्रो का उपयोग होता था। छाल आदि पर अक्षरों के लिखने के लिए नोकीले लोहे का उपयोग किया जाता था। स्याही के लिए मसी शब्द का प्रयोग द्वितीय शताब्दी ई० पू० मे हुआ। लेखन कार्य के उपयोग मे आने वाले ताडपत्रो को क्रमवद्ध करके एक धागे से वाँध दिया जाता था। इस कार्य के लिए पत्तो मे निश्चित स्थान पर छेद किया जाता

---

१ कालिदास के ग्रन्थो मे इस अर्थ मे लिख् धातु का प्रयोग मिलता है। अभिज्ञानशाकुन्तल अक ३, रघुवंश ३-२८, कुमारसभव १-७।

था। इसीलिए पुस्तको आदि को ग्रन्थ कहा जाता था । पत्तो के स्थान पर कागज का प्रयोग ११ वी शताब्दी ई० मे मुसलमानो के भारत मे आगमन के पश्चात् प्रारम्भ हुआ। सबसे प्रचीन हस्तलेख वाला ताडपत्र जो प्राप्त होता है, वह ८वी शताब्दी ई० का है और सब से प्रचीन कागज पर लिखित हस्तलेख १२२३ ई० का है। कागज का व्यवहार प्रारम्भ होने के पश्चात् भी दक्षिण भारत में ताडपत्रो का प्रयोग प्रचलित रहा। उत्तरी भारत मे **देवनागरी** लिपि का प्रयोग प्रचलित है, परन्तु दक्षिण भारत मे **आन्ध्र, कन्नड, मलयालम** और **ग्रन्थ** लिपियो का प्रयोग होता है।

सस्कृत मे और प्राकृत मे प्राप्त साहित्य मे कुछ विशेषताऍ दृष्टिगोचर होती हैं—(१) कलात्मक रचनाओ और नैतिक रचनाओ मे कोई भेद नही किया गया है। कुछ ग्रन्थ जो कि सर्वथा कलात्मक है, उनमे नैतिक विचार वाले वक्तव्य भी पाए जाते हैं और जो नैतिक दृष्टि से महत्त्व वाले ग्रन्थ हैं, उनमे कलात्मक रूप भी पाया जाता है। (२) रचना-सम्बन्धी कोई नियन्त्रण नही पाया जाता है। कोई भी रचना गद्य या पद्य मे हो सकती है, जैसे व्याकरण, कोश, वैद्यक, ज्योतिष, दर्शन इत्यादि गद्य और पद्य दोनो रूपो मे पाए जाते है। (३) भारतीय लेखको की प्रवृत्ति थी कि वे विषय का विवेचन और उसकी मीमासा वडी सावधानी से करते थे। यह प्रवृत्ति वैज्ञानिक विपयो पर लिखने वाले लेखको से प्रारम्भ हुई। क्रमश यह प्रवृत्ति सभी विषय के लेखको मे फैल गई और इसका परिणाम यह हुआ कि व्याकरण, काव्य, राजनीति, सगीत, नाट्य-कला आदि विपयो की इसी प्रकार विस्तृत विवेचना और मोमासा हुई। (४) अपने पूर्ववर्ती लेखको के ग्रन्थो की व्याख्या और टीका की प्रवृति विद्वानो मे हुई। इसी कारण प्रामाणिक ग्रन्थो पर टीकाऍ लिखी गई। भारतवर्प के प्रत्येक ग्रन्थ पर धर्म का प्रभाव है।

भारतीय साहित्य के गभीर और आलोचनात्मक अध्ययन से ज्ञात होता है कि उसमे कतिपय न्यूनताऍ भी हैं। लेखको और उनके ग्रन्थो के विषय मे कोई निश्चित सूचना नही मिलती है। कवि और लेखक अपना परिचय

देते के विषय मे सर्वथा उदासीन हैं । इस विषय मे अन्य किसी स्थान से भी कोई सूचना नही मिलती अतएव किसी भी कवि का पूर्ण परिचय, उसकी जन्मतिथि, उसकी रचनाए, उसके समकालीन लेखको के विषय मे कुछ परिचय नही मिलता । निश्चित सूचना के अभाव मे कतिपय विषयो पर सदेह होना सभव ही है । वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति, दण्डी इत्यादि नाम व्यक्ति-विशेष की अपेक्षा उपाधि-सूचक शब्द के तुल्य प्रतीत होते हैं । कुछ कवियो जैसे भट्टार-हरिचन्द्र, मेण्ठ इत्यादि का केवल नाममात्र मिलता है और उनकी रचनाएँ नष्ट हो चुकी हैं । एक नाम वाले कुछ कवियो के नाम से कुछ ग्रन्थो का नामोल्लेख किया जाता है, परन्तु वे वस्तुत उनके लिखे हुए नही है । किन्तु यह भी नही कह सकते कि उनके लिखे हुए नही हैं, क्योकि इस प्रकार के निषेध का कोई आधार नही है ।

ऊपर जो कुछ कहा गया है वह कालिदास तथा अन्य बहुत से कवियो के विषय मे लागू होता है । भवभूति तथा अन्य कुछ कवियो ने अपने विषय मे कुछ उपयोगी सूचनाएँ दी हैं । जो जितने प्राचीन कवि हैं, उनके विषय मे परिचय पाने मे उतनी ही कठिनाई पडती है । वेद, रामायण, महाभारत, पुराण तथा अन्य कुछ ग्रन्थ ऐसे हैं, जिनमे ऐतिहासिक महत्त्व की सामग्री वस्तुत उपलब्ध होती है । इनमे से कुछ मे राजद्वार का विशद चित्रण तथा समसामयिक घटनाओ का उल्लेख है ।

इन न्यूनताओ के साथ महत्त्वपूर्ण ग्रन्थो का नाश भी हुआ है। यूनानी और मुसलमान बहुत से ऐसे अप्राप्य ग्रन्थ अपने साथ ले गए, जो कि अब न उनके पास हैं और न भारतवासियो के पास । हिन्दू समालोचको से अपनी रक्षा के लिए बौद्ध अपने बहुमूल्य ग्रन्थो को तिब्बत और चीन ले गए और वहाँ पर तिब्बतीय और चीनी भाषा में उनका अनुवाद किया। अग्रेज और जर्मन विद्वान् भी बहुत से दुर्लभ ग्रन्थो को यहाँ से ले गए हैं। इनमे से कुछ ग्रन्थो के प्राप्त होने से भी प्राचीन भारत के साहित्यिक इतिहास पर कुछ प्रकाश पड सकता है ।

सौभाग्य से कुछ चीजे प्राप्त हैं, जिनकी सहायता से भारतीय साहित्य को समझ सकते हैं। ४८५ ई० पू० मे **गौतम बुद्ध** का स्वर्गवास हुआ। सिकन्दर नें ३२६ ई० पू० मे भारतवर्ष पर आक्रमण किया। मौर्य राजा **चन्द्रगुप्त** ने ३२०-२९८ ई० पू० तक राज्य किया। यह समय विशेष महत्त्व का है, क्योकि यूनानी दूत **मेगस्थनीज** चन्द्रगुप्त के समय मे था और उसने चन्द्रगुप्त के राज्य का विवरण अपने भारत-यात्रा के वृत्तान्त मे दिया है। **अशोक** ने २६६-२३२ ई० पू० तक राज्य किया। उमके शिलालेख भाषा-विज्ञान की दृष्टि से तथा धार्मिक और राजनैलिक दृष्टिकोण से विशेष महत्वपूर्ण हैं। चीनी यात्री **फाह्यान, ह्वनसाग** और **इत्सिग** ने भारतयात्रा क्रमश ३९९-४१४, ६२९-६४५ तथा ६७२-६७५ ई० मे की। इन्होने अपने भारतयात्रा के महत्त्वपूर्ण वृत्तात लिखे हैं। **अलबेरुनी** १०३० ई० के लगभग भारत म आया था। उसका भ्रमणवृत्तान्त भी विशेष महत्व का है' इसके अतिरिक्त सिक्के, शिलालेख, स्तभलेख और ताम्रपत्र वाले दान, ऐतिहासिक घटनाओ पर प्रकाश डालने मे पर्याप्त सहायता करते हैं। रचनाओ की शैली भी उसके समय-निर्धारण मे सहायक होनी है। सुभाषित-सग्रह तथा साहित्यशास्त्रीय ग्रन्थो से भारतीय साहित्य के समयक्रम के निर्धारण के लिए उपयोगी सामग्री प्राप्त होती है।

सस्कृत भाषा और साहित्य का ऐतिहासिक अध्ययन १६ वी शताब्दी से प्रारम्भ होता है, जबकि यूरोपीय यात्री और मिशनरी यूरोप से भारत मे आए। यूरोप मे सस्कृत के सर्व-प्रथम पहुँचने तथा यूरोपीय भाषाओ ग्रीक, लेटिन आदि के साथ इसकी विशेप समता को देखकर यूरोपीय विद्वानो की सस्कृत भापा के अव्ययन मे विशेष अभिरुचि हुई। तुलनात्मक भाषाविज्ञान का जन्म जर्मन विद्वान् श्लेगल के प्रयत्नो के परिणाम-स्वरूप हुआ। उसने १८०८ ई० मे भाषा तथा भारतीयो की बुद्धिमत्ता पर एक ग्रन्थ लिखा। इन विद्वानो ने वेदो और वैज्ञानिक ग्रन्थो के अव्ययन मे विशेप अभिरुचि दिखाई। अग्रेजी विद्वानो में **सर विलियम जोन्स** और **एच० टी० कोलब्रुक**, जर्मन

विद्वानो मे ब्यूलर, कीलहार्न, फ्रासिस बॉप, ग्रिम, ग्रासमान, येस्पर्सन, वाकर नागल, रॉठ, मेक्समूलर, वेबर तथा अन्य विद्वान् हैं। इन्होने भारतीय साहित्य की समृद्धि मे बहुमूल्य देन दी हैं। इन्होने भारतीय ग्रन्थो के उत्तम सस्करण निकाले हैं और साथ ही यूरोपीय भाषाओ मे उनका अनुवाद भी किया है। १६५१ ई० मे अब्राहम रोगर ने डच भाषा मे भर्तृहरि की कविताओ (भर्तृहरिशतक) का अनुवाद किया। १७८९ ई० मे सर विलियम जोन्स ने इग्लिश् मे अभिज्ञानशाकुन्तल का अनुवाद किया, जिसकी प्रशसा हेर्डर और गेटे ने की। चार्ल्स विल्किन्स ने १७८५ ई० मे भगवद्गीता और १७९४ मे मनुस्मृति प्रकाशित की। मैक्समूलर ने चारो वेदो की मूलप्रति प्रकाशित की और ऋग्वेद का अनुवाद भी किया। यूरोपीय विद्वानो ने एतिहासिक अध्ययन के लिए जिन ग्रंथो का आश्रय लिया है, उनमे से कुछ उपर्युक्त हैं।

पाश्चात्य विद्वानो ने भारतीय साहित्य के आलोचनात्मक अध्ययन का प्रारम्भ किया और उसी मार्ग पर चलते हुए भारतीय विद्वानो ने भी भारतीय साहित्य के वास्तविक रूप को समझने के लिए जो जीवनोत्सर्ग किया है, उसका फल विभिन्न रूपो मे हुआ है। पाश्चात्य विद्वानो ने ही वैज्ञानिक अनुसधान का द्वार खोला है और भारतीयो का इस विषय मे पथ-प्रदर्शन किया है। यूरोपीय विद्वानो ने जो निष्कर्ष निकाले हैं, वे कुछ सीमा तक ही स्वीकार करने योग्य हैं। ऐतिहासिक तथ्यो के अनुसधान में प्रवृत्त इन विद्वानो ने उन परिस्थितियो पर ध्यान नही दिया है, जिन परिस्थितियो मे भारतीय विद्वानो ने अपने ग्रन्थ लिखे हैं। इस तथ्य पर विचार किए विना किसी भी साहित्यक ग्रन्थ का निष्पक्ष मूल्याकन नही किया जा सकता है। पाश्चात्य विद्वानो ने भारतीय साहित्य मे प्राप्य धार्मिक-भावना और सहिष्णुता की भावना को वास्तविक त्रुटि मानी है और इसके द्वारा कलात्मक प्रभाव और साहित्य की वास्तविकता का अभाव मानते हैं। उन्होने कुछ सिद्धान्त प्रस्तुत किए हैं और वे अपने ढग से इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं। उनके ये सिद्धान्त अधिकतर वास्त-

विकता से सर्वथा विपरीत हैं, विशेषरूप से कतिपय ग्रन्थो के लेखक का निर्णय, मूल-ग्रथ का वास्तविक स्वरूप, कवियो की जन्मतिथि आदि पर उनके निष्कर्ष एकागी हैं, अन्तिम निष्कर्ष नही हैं।

अतएव सस्कृत-साहित्य का अध्ययन पाश्चात्य आलोचको की पद्धति पर होना चाहिये। साथ ही उनकी पद्धति मे जो त्रुटियाँ हैं, उनका परित्याग करना चाहिये। भारतीय-साहित्य के विद्यार्थी के सन्मुख ऐतिहासिक तथ्यो के अभाव के कारण जो अपूर्णता रह जाती है, उसका भी ध्यान रखना चाहिये और उन्ही के प्रकाश मे अपने निष्कर्ष निकालने चाहिए, तभी सस्कृत साहित्य के वास्तविक रूप को समझ सकते हैं।

अध्याय २

वेद

वैदिक साहित्य मे वेद और उनसे सबद्ध साहित्य की गणना होती है। वेद शब्द 'विद्' धातु से बना है, जिसका अर्थ है 'जानना'। अत वेद का अर्थ है जिसके द्वारा ज्ञान प्राप्त किया जाय। भारतीय वेदो को ज्ञान का पवित्र स्रोत मानते हैं।

वेद चार हैं—**ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद**। ऋग्वेद मे मन्त्र हैं, जिनको ऋचा कहते हैं। ये पद्य में हैं। ये मन्त्र प्राय चार पक्ति के हैं। कही-कही पर तीन या दो पक्ति वाले भी हैं। गायत्री, अनुष्टुप्, बृहती, पक्ति, त्रिष्टुप्, जगती आदि प्रसिद्ध छन्द हैं, जिनमे मन्त्रो की रचना हुई है। ये मन्त्र देवताओं की प्रार्थना के रूप मे हैं। इनमे से कुछ यज्ञ-सम्बन्धी तथा कुछ दार्शनिक भाव वाले हैं। यजुर्वेद का अधिकाश भाग गद्य मे लिखा गया है। यजुष् शब्द का अर्थ है, प्रार्थना। इसमे कुछ ऋग्वेद के भी मन्त्र हैं। इस वेद का उद्देश्य है विभिन्न यज्ञो के महत्व को स्पष्ट करना तथा उसका वर्णन करना और उन यज्ञो के समय ऋग्वेद के मन्त्रो का यथास्थान पाठ करना। इस वेद की दो शाखाएँ हैं, **शुक्ल यजुर्वेद और कृष्ण यजुर्वेद**। सामवेद गान-युक्त वेद है। सामन् शब्द का अर्थ है, प्रसन्न करना। इसमे अधिक मन्त्र ऋग्वेद के ही हैं। इस वेद मे जो मन्त्र आए हैं वे गान के लिए है। इनके गान के दो प्रकार है, ऊह-गान और उह्यगान जिनको क्रमश **ग्राम-गान और आरण्य-गान** कहते है। अथर्ववेद मे सहारात्मक और रक्षात्मक मन्त्र हैं, जिनको इन अवसरो पर पढना चाहिए। इसमे ऐसे मन्त्र हैं, जो आयुवृद्धि के लिए, प्रायश्चित्त के लिए तथा पारिवारिक एकता के लिए हैं। दुष्ट प्रेतात्माओ के निवारण के लिए तथा राक्षसो के शाप के लिए भी इसमें मन्त्र दिए गए हैं। इसमे आख्या-

त्मिक भाव वाले मन्त्र भी हैं । इसमे भी ऋग्वेद के मन्त्र हैं । यह वेद यज्ञों के सम्वन्ध मे विशेष उपयोगी नही है । उक्त तीनो वेदो मे यज्ञो का वर्णन मुख्यरूप से है, परन्तु इसमे उसका अभाव है । अतएव अन्य तीनो वेदो के साथ इसकी गणना वहुत समय तक नही की गई । पुरुप सूक्त मे अन्य तीनो वेदो का उल्लेख है, परन्तु इसका उल्लेख नही है ।[1] त्रयी शब्द अन्य तीनो वेदो के लिए ही प्रयोग मे आता है । बाद के समय मे अन्य तीन वेदो के साथ उसकी भी गणना समान रूप से की गई और इसको चौथा वेद माना गया ।[2]

प्रत्येक वेद चार भागो मे विभक्त है, अर्थात् सहिता, **ब्राह्मण, आरण्यक** और **उपनिषद्** । सहिता भाग मे मन्त्रो का वह भाग है, जिसमे देवस्तुति है तथा जिसको विभिन्न यज्ञो के समय पढा जाता था । ब्राह्मण ग्रन्थो मे वह अश है, जो मन्त्रो के विधिभाग की व्याख्या करता है । आरण्यक ग्रन्थो मे वह अश है, जिन विधियो को वानप्रस्थ की अवस्था मे मनुष्य को वन मे करना चाहिए । उपनिषदो मे दार्शनिक सिद्धान्त हैं, जो कि योग्य शिष्यो को ही वताने योग्य हैं ।

चारो वेदो के सहिता भाग, शुक्ल यजुर्वेद का ब्राह्मण ग्रन्थ और कृष्ण यजुर्वेद के ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् स्वर-चिह्नो से युक्त हैं । इन मूलग्रन्थो मे सगीतात्मक स्वर हैं । **स्वर** तीन हैं—**उदात्त, अनुदात्त** और **स्वरित** । उदात्त का अर्थ है उठी हुई ध्वनि, , अनुदात्त का अर्थ है नीची ध्वनि और स्वरित का अर्थ है दोनो की मिश्रित ध्वनि । **ऋग्वेद** मे उदात्त वर्ण पर कोई चिह्न नही है । अनुदात्त का चिह्न वर्ण के नीचे सीधी लकीर है और स्वरित का चिह्न वर्ण के ऊपर सीधी खडी लकीर है । इन वेदो मे इन स्वरो के चिह्न विभिन्न रूप से लगाये गए हैं ।

---

१ ऋग्वेद १०–९०–९ (देखो ऐतरेय ब्राह्मण ५–३२) ।

२ मुण्डकोपनिपद् १–१–५, गोपथ ब्राह्मण २–१६ ।

इन मूलग्रन्थो का साधारणतया पाठ होता था और गुरु-शिष्य परपरा द्वारा शिष्यो को पढाया जाता था। इस बात पर विशेष ध्यान दिया जाता था कि विद्यार्थी मूलग्रन्थो को कठस्थ करें और उसमे उच्चारण और स्वर-सम्बन्धी एक भी त्रुटि न होने पावे। इस परपरा के कारण ही वेदो को श्रुति नाम दिया गया है।

वेदो मे किसी प्रकार की त्रुटि न रहे, इसके लिए कई उपाय किए गए थे। इन उपायो मे से पाँच मुख्य थे। सहिता पाठ, पदपाठ, क्रमपाठ, जटापाठ और घनपाठ। सहितापाठ मे वेद का मन्त्र जैसा है, उसका वैसा ही पाठ किया जाता है। पदपाठ मे मन्त्र को विभिन्न पदो मे विभक्त करके उसका पाठ किया जाता है। यदि सहितापाठ को प्रतीक-रूप मे कखग कहें तो इसका पदपाठ होगा क, ख, ग। जो पद पृथक् किए गए हैं, उनमे प्रारम्भ और अन्त मे स्वर-सम्बन्धी परिवर्तनो के लिए विभिन्न नियम बनाए गए और उनका पालन किया गया। इन नियमो की सहायता से पदपाठ से सहितापाठ पूर्णतया शुद्ध रूप मे बनता था, जैसा कि मन्त्र को पदपाठ मे विभक्त करने से पहले था। क्रमपाठ मे पदपाठ के शब्दो को एक-एक बार लिया जाता था और प्रत्येक बार पहले पद के शब्द को भी लिया जाता था और अगले पद के शब्द को भी। जैसे क्रमपाठ का रूप ऐसा होगा —कख, खग, गघ। जटापाठ क्रमपाठ के तीनो मेल को मिलाने से होता है। जैसे जटापाठ का ऐसा रूप होगा —कख, खक, कख, खग, गख, खग,। घनपाठ उपर्युक्त मेलो के मिलाने से पाँच रूप मे बनता है। जैसे घनपाठ का रूप इस प्रकार होगा — कख, खक, कखग, गखक और कखग। इन उपायो के द्वारा सहिता पाठ चार प्रकार के विभागो मे बाँटा गया था और चार पाठो के द्वारा पुन सहिता पाठ बनाया जा सकता था। इस प्रकार से वेदो को इतने वर्षों तक पूर्णतया शुद्ध रूप मे रखा जा सका है। यद्यपि ये वेद मौखिक रूप से शिष्य-परपरा के द्वारा शिष्यो को दिए गए, तथापि इनमे एक स्वर या एक वर्ण का भी अन्तर नही होने पाया है।

अध्याय ३

वेद और पाश्चात्य विद्वान्

पाश्चात्त्य विद्वानो ने वेदो के आलोचनात्मक अध्ययन के समय पारसियो की धर्मपुस्तक **जेन्दअवेस्ता** से इनका तुलनात्मक अध्ययन किया और उनको वेद तथा **जेन्दअवेस्ता** मे बहुत-सी समताएँ दृष्टिगोचर हुई । कुछ स्थानो पर दोनो ग्रन्थो मे प्राप्त होने वाले शब्दो के अर्थ और रूप मे समानता थी। जैसे, वेद मे 'मित्र' जेन्दअवेस्ता मे 'मिहिर' शब्द सूर्य अर्थ मे है। वेद मे 'वृत्रहन्' और जेन्दावेस्ता मे 'वेरेथघ्न' युद्ध के देवता के लिए हैं और ध्वनि विचार की दृष्टि से समान हैं। वेद का 'असुर' शब्द जेन्दावेस्ता के 'अहुर' शब्द से ध्वनि-विचार की दृष्टि से समान हैं। किन्तु दोनो के अर्थ मे अन्तर है। असुर शब्द का अर्थ है 'राक्षस' और अहुर का अर्थ है देवता। वेद मे 'सोम' और जेन्दावेस्ता मे 'हओम' दोनो पेय पदार्थ के अर्थ मे हैं । दोनो धर्मग्रन्थो मे उपनयन सस्कार का वर्णन है। इन समानताओ के आधार पर विद्वानो ने यह निष्कर्प निकाला है कि फारस और उसके समीपवर्ती क्षेत्र मे जो लोग रहते थे, उसका एक भाग पूर्व की ओर चला और वह तीन हजार ई० पू० के लगभग भारत मे प्रविष्ट हुआ। ये आर्य लोग थे। सर्वप्रथम वे पजाव मे वसे और वहाँ शान्तिपूर्वक जीवन व्यतीत किया। इस प्रसन्नता के कृतज्ञता स्वरूप उन्होने प्रकृति की उपासना प्रारम्भ की और उसको देवता की श्रेणी मे लाए। इन अवसरो पर उन्होने जो प्रार्थनाएँ वनाईं, उसमे फारस और उनकी समीपवर्ती क्षेत्र के निवास के समय के अनुभवो को स्थान दिया। समय के प्रभाव के कारण उनकी भापा मे ध्वनि-सम्वन्धी कुछ परिवर्तन हो गए। इन प्रार्थनाओ के सग्रह को ऋग्वेद नाम दिया गया। पजाव मे निवास के समय ऋग्वेद का कुछ भाग ही वना था, शेप भाग जव वे पूर्व की ओर पहुँचे तव वना। इसमे गगा

नदी, शेर और चावल के उल्लेख का अभाव है, अत उपर्युक्त निर्णय किया गया है। वाद वाले अश मे इन चीजो का उल्लेख मिलता है। इन प्रदेशो मे मडल २ से ७ वने थे। शेष मडल १,८,९,१० वाद मे विभिन्न स्थानो पर वने थे। यजुर्वेद और सामवेद यमुना नदी के किनारे के प्रदेशो मे वने हैं। अथर्ववेद आर्यों के वगाल मे स्थिर होने के वाद वना है। ऋग्वेद अन्य वेदो की अपेक्षा वहुत समय पूर्व वना था, यह इस वात से सिद्ध होता है कि ऋग्वेद के वहुत से मन्त्र अन्य वेदो मे प्राप्त होते हैं।

न केवल ये वेद विभिन्न स्थानो पर वने हैं, अपितु प्रत्येक के विभिन्न अश भिन्न-भिन्न स्थानो पर वने हैं। सर्वप्रथम आने वाले आर्यों ने ऋग्वेद के मत्रो के रूप मे जो देवताओ की स्तुति की है, उसके द्वारा वे कठिनाइयो के समय मे इन मत्रो के पाठ के द्वारा देवताओ की सहायता चाहते थे। कुछ समय पश्चात् उन्होने अनुभव किया कि केवल प्रार्थना के द्वारा कार्य पूर्णतया सिद्ध नही होगा और देवताओ की प्रसन्नता के लिए प्रार्थना के अतिरिक्त कुछ और करना आवश्यक है। इसके लिए उन्होने यज्ञ करना आवश्यक समझा। "एक समय था जव मनुष्य के हृदय की स्वतत्र इच्छा के आवार पर यज्ञो का प्रारम्भ हुआ। इसके द्वारा वे अज्ञात देवता को धन्यवाद देना चाहते थे और जीवन के प्रारम्भ से एकत्र हुए ऋण को कृतज्ञता के भाव से शव्दो और कार्यों के द्वारा उतारना चाहते थे।"[1] अग्नि की पूजा, सोमरस का पान तथा अन्य विवियाँ इन यज्ञो के विशेष उल्लेखनीय कार्य थे। यज्ञो के समय ऋग्वेद के मत्रो का पाठ होता था। वैदिक यज्ञो की विवि को शुद्ध रखने के लिए वेद के कुछ अश एकत्र किए गए, जिनमे उस विधि के करने का कुछ सकेत प्राप्त होता था और उनकी इस प्रकार व्याख्या की गई जिससे उन्हे सरलतापूर्वक विवियो में स्थान मिल सके। इनको उसी प्रकार के मत्रो के साथ एक स्थान पर सग्रह किया गया, उसी को यजुर्वेद कहा गया। इन सभी अवसरो पर ऋग्वेद के मत्रो का

---

1 History of Ancient Sanskrit Literature *by Max Muller*. Page 525.

पाठ होता था और इन मत्रो मे विशेष प्रभाव और सगीत-सबधी सफलता के लिए **सामवेद** का निर्माण हुआ। इसमे **ऋग्वेद** के मत्र हैं, साथ ही सगीत मे उपयोग के लिए आवश्यक निर्देश दिये गए हैं। जब इस प्रकार कर्मकाण्ड वाला अश उन्नति पर था, यजमान की शत्रुओ से सुरक्षा के लिए कुछ कार्यवाही की आवश्यकता थी। ये शत्रु वे थे जो कि इन विधियो के लिए सहयोग न देते थे या जो यजमान को दबा देना चाहते थे। ये शत्रु वस्तुत जगली जाति के व्यक्ति थे, जो भारतभूमि मे विदेशियो के निवास को रोकने का प्रयत्न करने वाले भारत के आदिवासी थे। ऐसे शत्रुओ पर आक्रमण और उनको वश मे करने के लिए उपाय किए गए। इन प्रयत्नो ने मत्र का रूप धारण किया और विभिन्न देवताओ से सबद्ध विभिन्न विधियो का रूप धारण किया। इन सबका सग्रह **अथर्ववेद** मे हुआ है।

जितने देवता थे और जितने उद्देश्य थे, उतनी ही विधियाँ हुईं। इन विधियो का जो भाग व्याख्यात्मक था, उसने **ब्राह्मण ग्रन्थो** का रूप धारण किया। प्रत्येक वेद से मत्रो और विधियो का सम्बन्ध आवश्यक समझा गया, अतएव प्रत्येक वेद के साथ मे ब्राह्मण ग्रन्थो का भी प्रादुर्भाव हुआ।

इन विधियो मे से अधिकाश विधि एक व्यक्ति अपने परिवार के लोगो या अपनी जाति के व्यक्तियो के साथ सपन्न करता था। एक व्यक्ति जिसने अपने जीवन का अधिकाश भाग अपने परिवार के व्यक्तियो के साथ व्यतीत किया है, जब वह वानप्रस्थ का जीवन व्यतीत करना चाहता था, तब यह उचित समझा गया कि वह सहसा इन विधियो का परित्याग न कर दे। वानप्रस्थ के जीवन मे उसके लिए कुछ विधियो का करना आवश्यक समझा गया। इस प्रकार वानप्रस्थियो के लिए मत्र तथा विधियाँ **आरण्यक ग्रन्थों** मे दी गई। ब्राह्मण ग्रन्थो के तुल्य **आरण्यक ग्रन्थ** भी बहुत से है और उनका सम्बन्ध प्रत्येक वेद से है।

जो व्यक्ति इस प्रकार वानप्रस्थ का जीवन व्यतीत करने लगे थे, उनकी इच्छा हुई कि इन वैदिक विधियो के क्रियाकलाप का आधार जानना चाहिए।

कौन इन विधियो को करे, इसका स्वरूप जानना चाहिये तथा जिस देवता को प्रसन्न करते हैं उसका स्वरूप तथा अन्य विवरण भी जानना चाहिए। व्यक्तियो मे से कुछ वैदिक विधियो के कार्य से ऊब भी गए होगे, उन्होने प्रयत्न किया होगा कि आत्मा के स्वरूप को जानें। इन विषयो पर इस काल मे प्रश्नोत्तर भी हुए होगे। इन सब बातो का सग्रह किया गया और इनको उपनिषद् नाम दिया गया। इन उपनिषदो की भी गणना वैदिक साहित्य मे की जाती है और ये आरण्यक ग्रन्थो के अन्तिम भाग हैं। इनमे जो विचार रखे गए हैं उससे प्रकट होता है कि उनमे से कुछ बहुत प्राचीन हैं।

यद्यपि वेदो का विभाजन उपर्युक्त रूप से है, तथापि यह प्रगट होता है कि इनमें से विभिन्न भाग विभिन्न समयो मे बने हैं। कृष्ण यजुर्वेद से बहुत समय पूर्व सामवेद की रचना हो चुकी थी।

ऋग्वेद के मत्र पृथक्-पृथक् तथा सामूहिक रूप मे विभिन्न ऋषियो के नाम के साथ सबद्ध हैं। इन ऋषियो को इन मत्रो का रचयिता कह सकते हैं। कुछ स्थलो पर लेखक का नाम भूल गया है। इस प्रकार ऋग्वेद का सम्पूर्ण मूल-ग्रन्थ विभिन्न समय मे विभिन्न व्यक्तियो के द्वारा लिखा गया है। यही अन्य वेदो के मूलग्रन्थ के विषय मे कहा जा सकता है। ऋग्वेद का सबसे पुराना अश लगभग ३००० (तीन सहस्र) ई० पू० मे लिखा गया था। सपूर्ण वेद ६०० ई० पू० से पूर्व प्राप्त थे, जब कि गौतम बुद्ध ने वेदो की सत्ता मानकर उनमे प्राप्त कतिपय सिद्धान्तो का विरोध किया और अपने सिद्धान्त का प्रचार किया।

पाश्चात्य विद्वानो ने जब वेदो का अध्ययन प्रारम्भ किया तो उन्होने भारतीय विद्वानो द्वारा लिखी गई वेदो की टीकाओ की सहायता ली। इन टीकाओ मे जो व्याख्या दी गई है, उनमे से कुछ स्थलो की व्याख्या भ्रमात्मक तथा असतोषजनक है। अतएव पाश्चात्य विद्वानो ने यह उचित समझा कि मूल ग्रन्थ की व्याख्या प्रकरण के आधार पर की जाय। वेद, विशेषरूप से ऋग्वेद, उनको साधारण भाषा मे लिखे हुए प्रतीत हुए। उनमे उन्हे कठिन

या अप्रचलित शब्द दिखाई नही पडे, जिसके लिए टीकाओ की सहायता आवश्यक हो । यद्यपि उन्होने इन टीकाओ की सहायता ली है, परन्तु वेदो की व्याख्या के लिए उन्होने इन टीकाओ को पूर्णरूप से आधार नही माना । जहाँ पर कठिन या विशेष प्रकार के अश मिले, उसके लिए उन्होने ग्रन्थ के ही द्वारा उसकी व्याख्या करना उचित समझा। उन्होने वेदों को ठीक समझने के लिए तुलनात्मक पद्धति की सहायता ली ।

उनके मतानुसार वेदो के अध्ययन से ज्ञात होता है कि प्राचीन भारत के आदिनिवासी चरागाह पर आजीविका-निर्वाह करने वाले थे । उनके घर लकडी के वने हुए थे । उनके भोजन मे घी, दूध, अनाज, साग और फल सम्मिलित थे । वर्तन धातु या मिट्टी के वने हुए होते थे ~~ने के वर्तन लकडी के वने

पारिवारिक पद्धति मे पिता की प्रधानता होती थी । पुरोहित उनके परिवार का पथप्रदर्शक होता था । विवाह की प्रथा प्राय ऐसी ही थी, जैसी कि आज कल प्रचलित है। परिवार मे स्त्रियो का स्थान उच्च था। उनको गृह-स्वामिनी कहा जाता था । पुत्र की उत्पत्ति शुभ घटना मानी जाती थी । जो सन्तान-हीन होते थे, वे दूसरे के पुत्र को गोद ले लेते थे ।

वर्ण-व्यवस्था ने इस समय एक स्थिर रूप धारण किया । ब्राह्मण पुरोहित का कार्य करते थे । क्षत्रिय राज्य करते थे । वैश्य व्यापार करते थे । शूद्र उपर्युक्त तीनो वर्णो की सेवा का कार्य करते थे। समाज के उच्च स्तर को स्थित रखने के लिए यह व्यवस्था वनाई गई थी । यह मनुष्यो के आजीविका के कार्यो के आधार पर स्थित थी । लोहार वढई, जुलाहे, रस्सी वनाने वाले, सुनार, अभिनेता तथा अन्य कितने ही प्रकार की विभिन्न आजीविका वाले व्यक्ति थे ।

आर्य कई भागो मे वँटे । प्रत्येक शाखा ने एक राजनीतिक रूप धारण किया। राजा शासनकर्ता होता था । राजत्व वश-परम्परागत होता था । जनता की इच्छा के अनुसार राजा की शक्तियाँ नियन्त्रित होती थी । युद्ध मे रथो का उपयोग होता था । यद्यपि वेद के प्राचीन अशो मे घोडे और हाथियो का उल्लेख है, तथापि युद्ध मे उनका उपयोग प्राय नही होता था ।

इस समय नैतिक स्तर वहुत ऊँचा था । परपुरुष-गमन तथा परस्त्री-गमन और वलात्कार महापाप समझे जाते थ । एक विवाह और इसका महत्त्व पूर्णरूप से माना जाता था । तथापि वहुविवाह भी कहीं-कहीं प्रचलित था ।

शव को जलाना और गाडना, ये दोनो प्रथाएँ थी । शव को जलाना अधिक प्रचलित था । शव को गाडना, विशेषत वाद के काल मे, कुछ विशेष वर्गो के लिए ही नियन्त्रि त था ।

ऋग्वेद, यजुर्वेद, और सामवेद ये तीनो वेद आदिनिवासियो के धार्मिक और लौकिक कार्यो पर प्रकाश डालते है, किन्तु अथर्ववेद अकेला ही लौकिक पक्ष पर वहुत अधिक प्रकाश डालता है । शत्रुओ और रोगो को दूर करने के

या अप्रचलित शब्द दिखाई नही पडे, जिसके लिए टीकाओ की सहायता आवश्यक हो । यद्यपि उन्होने इन टीकाओ की सहायता ली है, परन्तु वेदो की व्याख्या के लिए उन्होने इन टीकाओ को पूर्णरूप से आधार नही माना । जहाँ पर कठिन या विशेष प्रकार के अश मिले, उसके लिए उन्होने ग्रन्थ के ही द्वारा उसकी व्याख्या करना उचित समझा। उन्होने वेदो को ठीक समझने के लिए तुलनात्मक पद्धति की सहायता ली ।

उनके मतानुसार वेदो के अध्ययन से ज्ञात होता है कि प्राचीन भारत के आदिनिवासी चरागाह पर आजीविका-निर्वाह करने वाले थे। उनके घर लकडी के वने हुए थे । उनके भोजन मे घी, दूध, अनाज, साग और फल सम्मिलित थे । वर्तन धातु या मिट्टी के वने हुए होते थे। पीने के वर्तन लकडी के वने होते थे। मदिरापान नियन्त्रित था । प्रारम्भिक समय मे पशुपालन उनकी मुख्य आजीविका थी । वाद मे कृपि और मृगया का भी उन्होने अभ्यास किया। शत्रुओ के आक्रमण से अपने वचाव के लिए उन्होने युद्धकला का अभ्यास किया । इस कार्य के लिए धनुप और वाण हथियार के रूप मे प्रयोग मे आए । कवच धातु का वना हुआ होता था। नदियो को पार करने के लिए नावो का उपयोग होता था। एक वस्तु के वदले मे दूसरी वस्तु का देना यही आदान-प्रदान की विधि थी । द्यूत प्रचलित था । नृत्य और सगीत वहुत उच्च अवस्था मे थे । ढोल, वाँसुरी और सितार ये सगीत के लिए वाद्य थे। घरेलू पशुओ मे गाय का स्थान मुख्य था । 'गाय की पवित्रता भारतवर्ष मे अव तक केवल अवशिष्ट ही नही रही है, अपितु धीरे-धीरे उसका महत्त्व वढता ही गया है ।' 'अन्य किसी पशु का मनुष्यमात्र ने इतना ऋण नही माना है । यह ऋण भारतवर्प मे गोपूजा के द्वारा अच्छे प्रकार से उतारा गया है। यह गोपूजा अन्य देशो मे प्रचलित नही है ।' *

---

* A History of Sanskrit Literature *by A A Macdonell* पृष्ठ ११०

पारिवारिक पद्धति मे पिता की प्रधानता होती थी । पुरोहित उनके परिवार का पथप्रदर्शक होता था । विवाह की प्रथा प्राय ऐसी ही थी, जैसी कि आज कल प्रचलित है। परिवार मे स्त्रियो का स्थान उच्च था। उनको गृह-स्वामिनी कहा जाता था । पुत्र की उत्पत्ति शुभ घटना मानी जाती थी । जो सन्तान-हीन होते थे, वे दूसरे के पुत्र को गोद ले लेते थे ।

वर्ण-व्यवस्था ने इस समय एक स्थिर रूप धारण किया । ब्राह्मण पुरोहित का कार्य करते थे । क्षत्रिय राज्य करते थे। वैश्य व्यापार करते थे। शूद्र उपर्युक्त तीनो वर्णो की सेवा का कार्य करते थे। समाज के उच्च स्तर को स्थित रखने के लिए यह व्यवस्था बनाई गई थी । यह मनुष्यो के आजीविका के कार्यो के आधार पर स्थित थी । लोहार बढई, जुलाहे, रस्सी बनाने वाले, सुनार, अभिनेता तथा अन्य कितने ही प्रकार की विभिन्न आजीविका वाले व्यक्ति थे ।

आर्य कई भागो मे बँटे । प्रत्येक शाखा ने एक राजनीतिक रूप धारण किया। राजा शासनकर्ता होता था । राजत्व वंश-परम्परागत होता था । जनता की इच्छा के अनुसार राजा की शक्तियां नियन्त्रित होती थी । युद्ध मे रथो का उपयोग होता था । यद्यपि वेद के प्राचीन अशो मे घोडे और हाथियो का उल्लेख है, तथापि युद्ध मे उनका उपयोग प्राय नही होता था ।

इस समय नैतिक स्तर बहुत ऊँचा था । परपुरुष-गमन तथा परस्त्री-गमन और बलात्कार महापाप समझे जाते थे । एक विवाह और इसका महत्त्व पूर्णरूप से माना जाता था । तथापि बहुविवाह भी कही-कही प्रचलित था ।

शव को जलाना और गाडना, ये दोनो प्रथाएँ थी । शव को जलाना अधिक प्रचलित था । शव को गाडना, विशेषत बाद के काल मे, कुछ विशेष वर्गो के लिए ही नियन्त्रित था ।

ऋग्वेद, यजुर्वेद, और सामवेद ये तीनो वेद आदिनिवासियो के धार्मिक और लौकिक कार्यो पर प्रकाश डालते है, किन्तु अथर्ववेद अकेला ही लौकिक पक्ष पर बहुत अधिक प्रकाश डालता है । शत्रुओ और रोगो को दूर करने के

लिए विभिन्न प्रकार के मन्त्र-तन्त्र आदि प्रचलित थे। यह वेद वैद्यक, गणित ज्योतिष और फलित ज्योतिष के विषय मे भी पर्याप्त सूचना देता है। इसमे पारिवारिक और व्यापारिक समृद्धि के लिए मन्त्रादि दिए गए हैं।

वेदो मे प्रार्थना और वैदिक कर्म-काण्ड के निर्देशो के अतिरिक्त विवाह, अन्त्येष्टि तथा अन्य सस्कारो के लिए भी मन्त्र दिए गए हैं। सृष्टि-उत्पत्ति तथा नीति-सम्बन्धी मन्त्र भी बहुत बडी सख्या मे हैं। शुन शेप, पुरुरवा और उर्वशी, यम-यमी आदि के जीवन से सबद्ध घटनाओ का भी इसमे उल्लेख मिलता है।

प्रारम्भिक समय मे आर्य लोग प्राकृतिक शक्तियो की पूजा करते थे और उनकी शक्तियो को शारीकि रूप देते थे। वेद मे मूर्तियो का वर्णन नही है। देवताओ मे अग्नि, वरुण और इन्द्र मुख्य थे। वरुण न्याय का रक्षक था। ज्यो-ज्यो समय बीतता गया, वह गौण होता गया और अन्त मे समुद्र का देवता रह गया। इन्द्र ने भी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान छोड दिया और वर्षा के अधिष्ठातृ-देवता के रूप मे विद्यमान न रहा। वह देवताओ के राजा के रूप मे रह गया। इन्द्र के पश्चात् महत्व की दृष्टि से अग्नि का स्थान है। उसका स्थान उसी प्रकार बना रहा, क्योकि वैदिक कर्मकाण्ड से उसका विशेष सम्बन्ध था। सविता, सूर्य, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि वेद के प्रारभिक अशो मे मुख्य रूप से हैं। ये वैदिक काल के अन्त मे और अधिक प्रचलित हुए। मित्रावरुण, अश्विनी, वसु, आदित्य आदि सामूहिक देवता हैं। रात्रि, पृथिवी, सरस्वती आदि स्त्री देवता हैं। देवताओ के समूह को विश्वेदेव कहा जाता था। ये वैदिक काल के मध्य भाग मे अधिक प्रचलित हुए। श्रद्धा, मन्यु, काम, आदि गुणो को देवता का रूप दिया गया। एक विशेपता यह भी है कि विशेप प्रकरणो मे प्रत्येक को ही सर्वोच्च देवता माना गया है। मैक्समूलर ने इस विशेपता की ओर सकेत करते हुए लिखा है कि "जब यज्ञ के देवता अग्नि को कवि सम्बोधन करना है तो वह उसको सर्वोच्च देवता कहता है। वह इन्द्रसे भी न्यून नही है। जब अग्नि को सम्बोधन किया जाता है तो

इन्द्र को भुला दिया जाता है। दोनो मे किसी प्रकार की स्पर्धा नही है और न उनमे प्रतियोगित्ता ही होनी है। वेदोक्त धर्म में यह वहुत वडी विशेषता है।" †

वैदिक साहित्य के दार्शनिक दृष्टिकोण के दो रूप थे। एकदेवतावाद और वहुदेवतावाद। वाद के काल मे ईश्वर को व्यक्ति और सृष्टिकर्ता के रूप मे स्वीकार किया गया। यह् कहा जा सकता है कि पूर्वकाल के वहुदेवतावाद ने वाद मे एकदेवतावाद को स्थान दिया। ईश्वर की सर्वव्यापकता को स्वीकार किया गया है।

वेदो मे आत्मा के अस्तित्व के विषय मे कोई विचार-विनिमय नही मिलता है। जीवात्मा वहुत समय तक परीक्षाओ के वाद शाश्वत मुक्ति के लिए प्रयत्न करता रहा। अतएव वर्तमान की उपेक्षा करके भविष्य को विशेष महत्त्व दिया गया। अतएव आदि निवासियो ने मृतात्माओ के लिए दो मार्ग स्वीकार किए, अर्थात् देवयान और पितृयाण। पुनर्जन्म मे दृढ़ विश्वास होने के कारण उन्होने जीवात्मा की सत्ता पर कोई सन्देह नही किया अतएव वेद के प्राचीन अश आशावाद से पूर्ण है। इस प्रकार वे सिद्ध करते है कि आदि-निवासी मृत्यु के वाद उज्ज्वल भविष्य मे विश्वास रखते थे।

---

† History of Ancient Sanskrit Literature *by Max Muller* पृष्ठ ५४६

अध्याय ४

पाश्चात्य विद्वानो के विचारों की समीक्षा

पाश्चात्य विद्वानो ने वेदो के अध्ययन के आधार पर जो निष्कर्ष निकाले हैं, उनका सक्षिप्त विवरण पिछले अध्याय मे दिया गया है। उन्होंने वेदो के सम्वन्ध मे जो कुछ विचार किया है, उसको वहुत स्पष्ट रूप से प्रकट कर दिया गया है। इस विपय में भारतीय विद्वानो की भी सम्मति का उल्लेख करना उचित प्रतीत होता है। पाश्चात्य विद्वानो ने जो निष्कर्ष निकाले हैं, उनका परीक्षण भी यहाँ पर करना उचित है।

वैदिक साहित्य के विषय मे हिन्दुओ की विचार-धारा पाश्चात्यो से भिन्न है। जो ग्रन्थ इष्ट-प्राप्ति और अनिष्ट-निवारण का अलौकिक उपाय बताता है, उसे वेद कहते है।* दूसरे शब्दो मे कह सकते हैं कि अच्छा क्या है और वुरा क्या है, यह वेद ही वताता है। ये उद्देश्य प्रत्यक्ष और अनुमान के द्वारा प्राप्त नही किए जा सकते थे। अत शब्द प्रमाण वेद की आवश्यकता हुई।

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
एन विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता॥

इस विपय मे वेद स्वत प्रमाण हैं। वे हिन्दुओ के धर्मग्रन्थ हैं।

वेदों के दो भाग हैं—**कर्मकाण्ड** और **ज्ञानकाण्ड**। कर्मकाण्ड मे सहिता भाग, ब्राह्मण और आरण्यक आते हैं और ज्ञानकाण्ड मे उपनिपद्। कर्मकाण्ड वैदिक यज्ञो के करने से विशेप सम्वन्ध रखता है। ये यज्ञ चार प्रकार के हैं—नित्य (प्रतिदिन किए जाने वाले), नैमित्तिक (विशेप निमित्त से

---

* इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपाय यो ग्रन्थो वेदयति स वेद॥
तैत्तिरीय सहिताभाष्य की भूमिका मे सायण का कथन।

किए जाने वाले), काम्य (किसी विशेष कामना से किए जाने वाले) और निषिद्ध (वर्जित कार्य)। उपनिषदो मे प्रकृति, जीव और परमात्मा के स्वरूप तथा उनके पारस्परिक सम्बन्ध का वर्णन है। ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदो के लक्ष्य और उद्देश्य के विषय मे पाश्चात्य विद्वानो की जो सम्मति है, वही भारतीयो की भी है।

प्राचीन आर्यों ने धर्म के विषय मे जो उच्च कार्य किए हैं, उनका सकलन वेदो मे है। भारतवर्ष मे जीवन के धार्मिक और लौकिक अशो को पृथक् नही किया गया था। वेद पूर्णतया धार्मिक भावना से लिखे गये हैं, अत उनमे भी कुछ लौकिक विषय आ गए हैं। अतएव भारतीय विचारो के अनुसार वेदो को आदिनिवासियो के लौकिक जीवन-वृत्त का आधार नहीं माना जा सकता है।

वेदो के कर्तृत्व के विषय मे हिन्दुओ मे तीन विचार प्रचलित हैं। प्रथम विचार है कि वेदो का कर्ता कोई व्यक्ति नही है। सृष्टि के आदि मे मनुष्य-मात्र के हित के लिए परमात्मा ने उनका प्रकाश किया।[1] वे किसी व्यक्ति की रचना नही हैं, अत वे स्वत प्रमाण हैं। यह विचार उपनिषदो के मत को मानने वाले वेदान्तियो का है। दूसरा विचार यह है कि यह ससार न कभी बना है और न कभी नष्ट हुआ है। वेद अनादिकाल से इसी रूप मे विद्यमान हैं। वे नित्य और स्वत प्रमाण ज्ञान के ग्रन्थ हैं। उनकी प्रामाणिकता सर्वोच्च है। यह विचार वेद के कर्मकाण्ड भाग को मानने वाले मीमांसको का है। तीसरा विचार है कि वेदो का कर्ता परमात्मा है। वे ईश्वरकर्तृक होने के कारण प्रमाण-स्वरूप हैं। यह विचार न्यायशास्त्र को मानने वाले नैयायिको का है। वेदो मे जो विश्वामित्र, गृत्समद, वसिष्ठ आदि नाम कुछ सूक्तो के साथ आए हैं, उनका अभिप्राय यह समझना चाहिए कि ये नाम उन ऋषियो के हैं, जिन्होने इन सूक्तो का विशेष रूप से प्रतिपादन किया और वेदोक्त धर्म का प्रचार किया। इससे यह स्पष्ट है कि हिन्दू वेदो को किसी व्यक्ति की रचना

---

१ ऋग्वेद १०-९-९

की ओर पूर्ण ध्यान नही दिया है और स्वतन्त्र रूप से मन्त्रो का अर्थ किया है। भारतीय भाष्यकारो की सहायता के विना वेदो के शब्दो का वास्तविक अर्थ नही जाना जा सकता है। सस्कृत मे एक ही शब्द विभिन्न स्थानो पर एक से अधिक अर्थों मे प्रयोग मे आता है। अत वैदिक साहित्य के विद्यार्थी को परम्परागत वैदिक व्याख्या पर निर्भर होना पडता है। वेदो के अध्ययन की जो ऐतिहासिक पद्धति है, वह भी पूर्ण सतोषजनक नही है, क्योकि वह भारतीय भाष्य की व्याख्याओ पर पूर्ण ध्यान नही देती है। अत वेद के मन्त्रो का जो वास्तविक अर्थ लेना चाहिए, वह नही लिया जाता है और जो अभीष्ट अर्थ नही है वह मान लिया जाता है। इसके अतिरिक्त पाश्चात्य विद्वानो ने **रामायण, महाभारत और पुराणों** की ओर भी पूरा ध्यान नही दिया है और इनको काल्पनिक कहकर छोड दिया है। वस्तुत इनके विषय वेदो पर आधारित है। ये ग्रन्थ वेदो के सहायक ग्रन्थ के रूप मे है।* अतएव इन सहायक ग्रन्थो की सहायता के बिना वेदो की व्याख्या से वास्तविक अर्थ ज्ञात नही हो सकता है। वेदो के अध्ययन की वही ऐतिहासिक पद्धति वेदार्थ को स्पष्ट कर सकती है, जिसका आधार सायण के भाष्य, रामायण, महाभारत, पुराण, ६ वेदाग तथा मीमासा के सिद्धान्त हैं। इस पद्धति पर कई भारतीय विद्वानो ने वेदो का अध्ययन प्रारम्भ किया है।

पाश्चात्य विद्वानो ने वेदो की उत्पत्ति तथा वैदिक काल के व्यक्तियो के मूल निवास-स्थान के विषय मे जो निष्कर्ष निकाले है, वे भी पूर्णतया ठीक नही हैं। उनका यह कथन है कि ३००० (तीन सहस्र) ई० पू० मे फारस तथा उसके समीपवर्ती प्रदेशो से कुछ जातियाँ भारतवर्ष मे आई और इसका आधार उन्होने ज़ेन्दअवेस्ता और वेद मे प्राप्य कुछ समान वाक्य और शब्द माने है, जो दोनो स्थानो पर प्राय एक अर्थ मे हैं। साधारणतया कहा जा सकता है कि दो भिन्न भाषाओ मे पाए जाने वाले एक प्रकार के वाक्य आदि इस बात को पुष्ट करते है कि इन दोनो भाषाओ को बोलने वाले या तो एक ही

*—इतिहासपुराणाभ्या वेद समुपबृहयेत। महाभारत, आदिपर्व १-२६३।

प्रदेश मे साथ रहते थे या वे विभिन्न प्रदेशो मे रहते थे और उनका परस्पर सास्कृतिक सम्बन्ध विद्यमान था, जिसके आधार पर इस प्रकार के समान अर्थ वाले वाक्य प्राप्त होते हैं। इस बात का कोई प्रमाण नही है, जो यह सिद्ध करे कि जेन्दअवेस्ता और वेद को मानने वाले एक ही जाति के व्यक्ति थे और वे फारस तथा उसके समीपवर्ती प्रदेशो मे रहते थे। पाश्चात्य विद्वानो का यह मत केवल काल्पनिक ही है। यदि इस युक्ति के आधार पर यह सिद्ध किया जाता है कि आर्य लोग बाहर से भारतवर्ष मे आए तो इसके विपरीत इसी युक्ति द्वारा यह सिद्ध करना सभव है कि आर्य लोग भारतवर्ष से बाहर गए और फारस आदि में बस गए। आर्यों के भारतवर्ष मे आने के समर्थन मे जो युक्तियाँ दी गई है, वे इस बात का समर्थन करने के लिए पर्याप्त हैं कि आर्य लोग भारतवर्ष से ही बाहर गए। आर्यों के भारतवर्ष मे आगमन के समर्थन में कोई पुष्ट प्रमाण नही है। अत यह अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है कि आर्य लोग भारतवर्ष के ही निवासी हैं। उनका सम्बन्ध फारस के लोगो से भी था। इस सम्बन्ध के कारण दोनो स्थानो के निवासियो मे बहुत से एक प्रकार के वाक्य और एक प्रकार के व्यवहार पाए जाते हैं। प्रत्येक राष्ट्र की उन्नति मे इस प्रकार के सम्बन्ध दृष्टिगोचर होते है। यूरोप के देशो के सपर्क का प्रभाव भारतवासियो के वेश, भूषा, भाषा व्यवहार तथा रीति आदि मे दिखाई देता है। यदि इस विचार को निराधार माना जाय तो मिस्र की सभ्यता के विषय मे कोई स्पष्ट उत्तर नही हो सकता है, क्योंकि उनकी फारसी सभ्यता आर्य और तामिल सभ्यता से बहुत मिलती हुई है। अत यह मानना अधिक उचित है कि आर्यो का मूलदेश भारतवर्ष ही है। वेदो के रचना-स्थान के विषय मे कुछ भी निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता है। परन्तु वेद, रामायण, महाभारत और पुराणो के भौगोलिक वर्णन मे ज्ञात होता है कि जो वैदिक परम्परा के अनुयायी थे, वे भारतवर्ष के पश्चिमी भाग के मूल निवासी थे, जिसके पश्चिम मे सिन्ध और उत्तर मे कश्मीर का प्रदेश था।

यहाँ पर यह कथन असगत नही होगा कि पाश्चात्य विद्वानो ने आर्य शब्द का प्रयोग भारतवर्ष मे सर्वप्रथम आकर बसने वालो के लिए किया है।

यजुर्वेद मे ऋग्वेद के बहुत से मन्त्र हैं। साथ ही उनकी वैदिक यज्ञो से सबद्ध व्याख्या गद्य मे है। अत यह वेद कुछ पद्यात्मक है और कुछ गद्य रूप मे है। पतजलि ने इसकी १०१ शाखाओ का उल्लेख किया है। इनमे से अधिकाश अब अप्राप्य हैं।

यजुर्वेद की दो शाखाएँ हैं—**शुक्ल यजुर्वेद** और **कृष्ण यजुर्वेद**। प्रथम शाखा को शुक्ल यजुर्वेद इसलिए कहा गया, क्योकि इसमे मन्त्र ठीक क्रम से रखे गए हैं। इसको शुक्ल यजुर्वेद इसलिए भी कहा जाता है, क्योकि परम्परा के अनुसार इसको सूर्य ने प्रकट किया है। दूसरी शाखा को कृष्ण यजुर्वेद इसलिए कहते हैं, क्योकि इसके मन्त्रादि ठीक क्रमवद्ध नही हैं। शुक्ल यजुर्वेद मे वैदिक यज्ञो के समय बोले जाने वाले मन्त्र ही हैं, किन्तु कृष्ण यजुर्वेद मे मन्त्रो के साथ ही यज्ञ-विषयक विचार-विनिमय भी हैं।

शुक्ल यजुर्वेद-सहिता को **वाजसनेयी-संहिता** भी कहते हैं। इसकी दो शाखाएँ प्राप्त होती हैं—**काण्व** और **माध्यन्दिन**। दोनो मे बहुत थोडा अन्तर है। इसमे ४० अध्याय हैं। इनमे से १५ वाद मे सम्मिलित किए गए माने जाते हैं। भारतीय परम्परा के अनुसार २६ से ३५ तक के अध्याय खिल अध्याय (वाद में मिलाए गए) माने जाते हैं। इस वेद मे वाजपेय, राजसूय, अश्वमेघ, सर्वमेध आदि प्रमुख यज्ञो का वर्णन है। अन्तिम अध्याय मे **ईशोपनिषद्** है।

कृष्ण यजुर्वेद की चार शाखाएँ हैं। १ **काठकसंहिता**, २ **कापिण्ठल कठसहिता**, यह अपूर्ण प्राप्त होती है, ३ **मैत्रायणी सहिता**, इसका दूसरा नाम **कालाप सहिता** है, ४ **तैत्तिरीय संहिता**, दक्षिण भारत मे इसके अनुयायी अधिक हैं। तैत्तिरीय सहिता की दो शाखाएँ हैं—**आपस्तम्ब** और **हिरण्य-केशी**। इन दोनो मे अन्तर केवल यज्ञिय-विधि सम्बन्धी है। प्रारम्भिक तीन शाखाओ का एक सामूहिक नाम **'चरक'** है। पतञ्जलि ने प्रथम और तृतीय शाखा को प्रचलित वताया है। वाल्मीकि का कथन है कि अयोध्या मे इनका वहुत आदर था। तृतीय शाखा मे चार काण्ड और चतुर्थ मे सात

सामवेद सहिता मे अधिकाश मन्त्र ऋग्वेद के हैं। इस वेद मे केवल ७५ मन्त्र अपने है, शेप सब मन्त्र ऋग्वेद के हैं। इस वेद मे १,८१० मन्त्र हैं। इनमे से बहुत से कई बार आए है। ये दो भागो मे विभक्त है, (१) आर्चिक अर्थात् ऋचाओ का सग्रह, (२) उत्तरार्चिक अर्थात् उत्तरार्ध की ऋचाओ का सग्रह। पुनरावृत्ति वाले मन्त्रो को छोडने पर पूर्वार्ध मे ५८५ मन्त्र है और उत्तरार्ध मे ४०० मन्त्र। उत्तरार्ध मे मन्त्रो के सग्रह मे इस बात का ध्यान रखा गया है कि एक छन्द वाले मन्त्र एक स्यान पर रहें, एक देवता वाले मन्त्र एकत्र हो, जिस यज्ञ मे जिन मन्त्रो का गान होता है, वे एक स्थान पर हो। इस सहिता मे गान-सम्बन्धी बहुत-सी पुस्तकें हैं, इनको गण कहते हैं। इनमे मन्त्रो के गान के समय मात्राओ को दीर्घ या प्लुत करना, पुनरावृत्ति या अन्य परिवर्तनो के लिए नियम दिए गए हैं। यह कहा जाता है कि प्रारम्भ मे इसकी एक सहस्र शाखाएँ थी। इस समय केवल तीन शाखाएँ उपलब्ध हैं। उनके नाम हैं—**राणायनीय**, **कौथुम** और **जैमिनीय**, इसका दूसरा नाम **तलवकार** भी है। प्रथम और तृतीय सहिताएँ प्राप्त होती हैं परन्तु द्वितीय का केवल सप्तम अध्याय प्राप्त होता है, शेष अश नष्ट हो गया है।

अथर्ववेद को **अथर्वाङ्गिरा**, **भृग्वङ्गिरा** और **ब्रह्मवेद** भी कहते हैं। पाश्चात्य आलोचको का कथन है कि अथर्वा शब्द का अभिप्राय है—मन्त्र-प्रयोग जिसके द्वारा रोगो को दूर किया जा सकता है और इस प्रकार यह शब्द रचनात्मक उद्देश्य के लिए है। अगिरा शब्द हानिकारक और विनाशात्मक कार्यों के लिए है। अथर्वा शब्द का अर्थ है पुरोहित और मन्त्रादि के प्रयोग मे सिद्ध व्यक्ति। अथर्ववेद की दो शाखाएँ प्राप्त होती हैं—**शौनक** और **पैप्पलाद**। इनमे से प्रथम अधिक प्रचलित है और दूसरे की केवल एक हस्त-लिखित प्रति प्राप्त होती है। प्रथम मे ७३१ सूक्त हैं और २० काण्ड हैं। पूरे ग्रन्थ का $\frac{1}{6}$ भाग गद्य मे है।

ब्राह्मण-ग्रन्थ

ब्राह्मण ग्रन्थो में कर्मकाण्ड के विभिन्न मुख्य प्रश्नो पर वैदिक विद्वानो ने जो अपने विचार प्रकट किए हैं, उनका सकलन है। कर्मकाण्डो की विभिन्नता के अनुसार उन पर प्रगट किए गए विचारो मे विभिन्नता है और तदनुसार ही विभिन्न ब्राह्मण-ग्रन्थ हैं। ये विवरण ही बताते हैं कि किस यज्ञ मे किस मन्त्र का विनियोग है तथा मन्त्रो और यज्ञो मे परस्पर क्या सम्बन्ध है। इनमे यज्ञ की विधि के सम्बन्ध मे बहुत विस्तार और सूक्ष्मता के साथ निर्देश दिए गए हैं, जैसे—यज्ञवेदी के किस ओर कौन पुरोहित बैठे, कुशा किस स्थान पर रक्खी जाए, इत्यादि। इन विवरणो और निर्देशो के समर्थन मे वे कतिपय कथाओ का उल्लेख करते हैं। प्रत्येक यज्ञ के लिए चार पुरोहितो की आवश्यकता होती है—होता, उद्गाता, अध्वर्यु और ब्रह्मा। इन पुरोहितो का क्रमश ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद से सबध है। इनमे से अध्वर्यु वस्तुत यज्ञ करता है। होता उच्च और स्पष्ट स्वर मे बहुत शुद्धता के साथ ऋग्वेद के मन्त्रो का पाठ करता है। उद्गाता गान के नियमो के अनुसार सामवेद के मन्त्रो का गान करता है। ब्रह्मा का कार्य यह है कि वह अन्य पुरोहितो के कार्यों का निरीक्षण करे और जहाँ पर कोई त्रुटि हो, उसे ठीक करे। ब्रह्मा के लिए आवश्यक है कि वह चारो वेदो का पूर्ण ज्ञाता हो और वैदिक यज्ञो का पूर्ण विवरण विस्तार के साथ जानता हो।

जिस प्रकार वेदो की विभिन्न शाखाएँ हैं, उस प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थो की विभिन्न शाखाएँ नही हैं। वेदो की शाखाओ और यज्ञो की विभिन्नता के अनुमार ब्राह्मण ग्रन्थ कई हैं।

ऋग्वेद के दो ब्राह्मण ग्रन्थ हैं—१ ऐतरेय ब्राह्मण, इसमे ४० अध्याय हैं, २ कौषीतकि ब्राह्मण, इसका दूसरा नाम शाख्यायन ब्राह्मण है। इसमे ३० अध्याय हैं। शुक्ल यजुर्वेद का शतपथ ब्राह्मण है। इसकी दो शाखाएँ हैं—काण्व और माध्यन्दिन। इसमे १४ काण्ड और १०० अध्याय हैं। शतपथ ब्राह्मण के प्रारम्भिक ६ काण्डो मे शुक्ल यजुर्वेद के प्रारम्भिक १८

अध्यायो की व्याख्या है। इसके रचयिता याज्ञवल्क्य ऋषि हैं। इसका अन्तिम भाग **बृहदारण्यक उपनिषद्** है। इसमे मत्स्य, शकुन्तला, पुरूरवा और उर्वशी आदि की कथाएँ हैं। इसकी काण्व शाखा मे १८ काण्ड हैं। **तैत्तिरीय ब्राह्मण** कृष्ण-यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा का ब्राह्मण है और यह तैत्तिरीय-सहिता का ही आगे चालू रूप है। इस वेद की अन्य शाखाओ का कोई ब्राह्मण ग्रन्थ नही है। **सामवेद** की ताण्ड्य और तलवकार शाखा के ब्राह्मण ग्रन्थ प्राप्य हैं। **कौथुम** शाखा का कोई ब्राह्मण ग्रन्थ नही है। **ताण्ड्य शाखा** के दो ब्राह्मण ग्रन्थ हैं---**पचविश ब्राह्मण** और **षड्विश ब्राह्मण**। पचविश ब्राह्मण को **ताण्ड्य ब्राह्मण** और **प्रौढब्राह्मण** भी कहते हैं। पचविश ब्राह्मण मे २५ अध्याय हैं, अत उसका यह नाम पडा है। पड्विश ब्राह्मण मे पचविश ब्राह्मण से एक अध्याय अधिक है, अत उसका यह नाम पडा है। पड्विश ब्राह्मण के अन्तिम ६ अध्यायो को **अद्भुत ब्राह्मण** कहा जाता है। इसमे असाधारण अवसरो पर विघ्न रूप में उपस्थित होने वाले दुष्परिणामो को दूर करने के लिए विधियाँ दी गई हैं। **तलवकार शाखा** का **तलवकार ब्राह्मण** है। इसमे ५ अध्याय हैं। इनके चतुर्थ अध्याय को **उपनिषद् ब्राह्मण** कहते हैं। इसमे सामवेद की परम्परा के गुरुओ की दो सूचियाँ हैं। इसमे **केनोपनिषद्** भी है। अन्तिम अध्याय को **आर्षेय ब्राह्मण** कहते हैं। इसमे सामवेद के विशेष प्रकार के मन्त्रो के रचयिताओ की सूची दी हुई है। सामवेद की ताण्ड्य शाखा का एक ब्राह्मण **छान्दोग्य ब्राह्मण** है, परन्तु इसमे ब्राह्मण ग्रन्थो के तुल्य बातें बहुत कम हैं। प्रारम्भिक अग को छोडकर यह **छान्दोग्य उपनिषद्** ही है। इसके अतिरिक्त सामवेद के तीन और ब्राह्मण हैं। ये तीनो केवल नाममात्र से ब्राह्मण हैं, इनमे ब्राह्मण ग्रन्थो की बात कोई नहीं है। इनमे और ही बातें हैं। इन ग्रन्थो के नाम हैं---१ **वश ब्राह्मण**, इसमे सामवेद के गुरुओ की सूची दी हुई है, २ **सामविधान ब्राह्मण**, इसमे गान की विधि है, ३ **देवताध्याय ब्राह्मण**, इसमे सामवेद के देवताओ का वर्णन है। **अथर्ववेद** का **गोपथ ब्राह्मण** है। यह दो भागो में है। इन ब्राह्मण ग्रन्थो मे तैत्तिरीय ब्राह्मण ही केवल तैत्तिरीय सहिता का सलग्न भाग है। अन्य ब्राह्मण

ग्रन्थ स्वतन्त्र ग्रन्थ हैं। तैत्तिरीय और शतपथ ब्राह्मणो मे स्वर-चिह्न हैं, अन्यों मे स्वर-चिह्न नही हैं।

आरण्यक ग्रन्थ

ऋग्वेद के दो आरण्यक-ग्रन्थ हैं—१ **ऐतरेयारण्यक**, इसमें १८ अध्याय हैं। इसके लेखक **आश्वलायन** हैं। २ **कौषीतक्यारण्यक**, इसमे १५ अध्याय हैं। शतपथ ब्राह्मण के १४ वें काण्ड का $\frac{1}{3}$ प्रारम्भिक भाग शुक्ल यजुर्वेद का आरण्यक है। **तैत्तिरीयारण्यक** तैत्तिरीय ब्राह्मण का ही सलग्न भाग है। इसमे स्वर-चिह्न हैं। यह कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा का आरण्यक है। **छान्दोग्य उपनिषद्** का प्रथम अध्याय सामवेद की ताण्ड्य शाखा का आरण्यक समझना चाहिये। तलवकार शाखा का **उपनिषद्-ब्राह्मण** इस शाखा का आरण्यक ही समझना चाहिए। अथर्ववेद का कोई आरण्यक नही है।

वेदो के ये तीनो भाग अर्थात् वेद, ब्राह्मण और आरण्यक कर्मकाण्ड का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन तीनो भागो मे जो साहित्य है, वह कर्मकाण्ड की दृष्टि से तीन भागो मे बांटा गया है, अर्थात् मन्त्र, विधि और अर्थवाद। मन्त्र भाग मे यह वर्णन किया जाता है कि किस यज्ञ मे कौन से मन्त्रो का पाठ होगा। विधि भाग मे यह वर्णन किया जाता है कि किस प्रकार कौन सा यज्ञ करना चाहिये, उसमे कौन से कार्य करने चाहिएँ और कौन से नही करने चाहिएँ। अर्थवाद भाग मे वेदो के उन स्थलो का उल्लेख होता है जो विधिभाग के निर्देशो का स्पष्टीकरण करते हैं और साथ ही इस भाग मे उन कार्यों के करने का उद्देश्य और लाभ आदि का वर्णन किया जाता है। उपर्युक्त विभाजन से यह ज्ञात है कि वेदो का सहिता भाग मन्त्र भाग है। ब्राह्मण ग्रन्थ विधि भाग हैं और आरण्यक-ग्रन्थ अर्थवाद भाग हैं।

पाश्चात्य विद्वान् वेदो के सपूर्ण कर्मकाण्ड-साहित्य को रचना-कालक्रम की दृष्टि मे निम्नलिखित रूप से स्थान देते हैं—ऋग्वेद सहिता, यजुर्वेद सहिता, पचविंश ब्राह्मण, तैत्तिरीय ब्राह्मण, जैमिनीय ब्राह्मण, कौपीतकि ब्राह्मण, ऐतरेय ब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण और गोपथ ब्राह्मण।

अध्याय ६

उपनिषद्

जो व्यक्ति कर्मकाण्ड मे वर्णित विधियो को करते हैं, वे स्वर्ग को जाते हैं और निश्चित समय के पश्चात् पृथिवी पर लौट आते है। स्वर्ग स्थायी आनन्द का स्थान नही है। अत जो शाश्वत आनन्द चाहते हैं उन्हें सासारिक विषयो से अपने मन को क्रमश हटाना होता है। आरण्यक-ग्रन्थ शाश्वत आनन्द के इच्छुक व्यक्तियो के लिए प्रारम्भिक शिक्षाएँ देते हैं। इसके बाद अगली स्थिति तब आती है, जब विवेकात्मक ज्ञान की आवश्यकता होती है, जिसके द्वारा ज्ञान मार्ग के प्रारम्भिक सिद्धान्तो का महत्त्व ज्ञात हो सके। ज्ञान-मार्ग के सिद्धान्त अन्य गौण सिद्धान्तो से सर्वथा भिन्न हैं। मनुष्य-जीवन मे ज्ञान-मार्ग पर प्रवृत्ति का महत्त्व उपनिषदो मे वर्णन किया गया है। वे ज्ञानकाण्ड का प्रतिनिधित्व करते हैं। मृत्यु के पश्चात् जीवात्मा अपने कर्मों के अनुसार अन्य जीवन को प्राप्त होता है। इस प्रकार के जीवन की परम्परा जीवात्मा को बन्धन मे डाले रखती है और वह अगले जीवन मे भी भौतिक सुख के लिए निरन्तर कर्मरत रहता है। उपनिषदो मे इन बातो का वर्णन है और वे भौतिक वाद की ओर से अपनी आत्मा को रोकने मे सहायक होते हैं। अत उपनिषदो मे जीवात्मा के पुनर्जन्म के सिद्धान्त की उत्पत्ति और विकास प्राप्त होता है। "उपनिषदो मे दो विभिन्न सिद्धान्तो का वर्णन मूर्त उदाहरणो और सैद्धान्तिक निर्देशो के साथ दिया हुआ है। जीवन का एक मार्ग अज्ञान, सकीर्ण भावना और स्वार्थ मे पूर्ण है, जिसके द्वारा मनुष्य अस्थायी, अपूर्ण और अवास्तविक आनन्द को चाहता है। दूसरा मार्ग वह है, जिसके द्वारा वह परमात्मा से सम्बन्ध स्थापित करता है और सामान्य जीवन के दुखो से मुक्त होकर अनन्त

आनन्द को प्राप्त करता है।"[१] इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उपनिषदो मे ईश्वर, जीव और प्रकृति के स्वरूप का वर्णन किया गया है और उनके पारस्परिक सम्बन्ध का रूप बताया गया है। व्यक्तिगत आत्मा को जीव और आत्मा कहा गया है। ईश्वर को ब्रह्म और परमात्मा नाम से सम्बोधित किया गया है। **उपनिषदों** मे कर्मकाण्ड का खण्डन या निषेध नही किया गया है। उनका मत है कि आवश्यक यज्ञ आदि ज्ञान-प्राप्ति के केवल साधन हैं। मोक्ष की प्राप्ति केवल ज्ञान से ही होती है।

ऐतरेय उपनिषद् का सम्बन्ध **ऋग्वेद** से है। इसमे सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन है और बताया गया है कि तात्त्विक ज्ञान से ही जीवात्मा आवागमन के बन्धन से मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त कर सकता है। **कौषीतक्युपनिषद्** का भी सम्बन्ध ऋग्वेद से है। इसमे आत्मज्ञान का वर्णन है। **बृहदारण्यकोपनिषद्** का सम्बन्ध शुक्ल यजुर्वेद से है। इसमे जीवात्मा के जीवन के प्रारम्भ के विषय मे विवेचन है और जीव के भय और आनन्द का विस्तृत वर्णन है। इसमे ईश्वर-चिन्तन की आवश्यकता पर बहुत अधिक बल दिया गया है। इसमे आत्मा के स्वभाव और आत्म-प्राप्ति के साधन विषय पर ऋषि याज्ञवल्क्य और राजा जनक आदि का सवाद भी दिया हुआ है। **तैत्तिरीयोपनिषद्** का सम्बन्ध तैत्तिरीय सहिता से है। इसमे वरुण और उसके पुत्र भृगु के सवाद के रूप मे ब्रह्म के स्वभाव का वर्णन किया गया है। **महानारायणीयोपनिषद्** का दूसरा नाम **याज्ञिकोपनिषद्** है। इसका सम्बन्ध कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा से है। **कठोपनिषद्** और **श्वेताश्वतरोपनिषद्** का भी सम्बन्ध तैत्तिरीय शाखा से है। इनमे से प्रथम मे दो अध्याय हैं और प्रत्येक मे तीन वल्ली (अध्याय) हैं। इसमे यम और नचिकेता का सवाद है। यम ने नचिकेता को ब्रह्म का उपदेश दिया है। इसमे जीवात्मा से वास्तविक स्वरूप, ब्रह्म-ज्ञान के साधन और दोनो के सम्बन्ध का वर्णन किया गया है। जीवात्मा अज्ञान के कारण शरीर से

---

१ Preface VII Translation of the Thirteen Principal Upanisads by Robert Ernest Hume

पृथक् अपना अस्तित्व नही समझता है। मृत्यु के स्वरूप को जानकर मनुष्य जीवात्मा पर अधिकार कर सकता है। आत्मचिन्तन ब्रह्म और जीव के वास्तविक स्वभाव के अनुभव में सहायक होता है। **श्वेताश्वतरोपनिषद्** मे ऋषि श्वेताश्वतर ने अपने आश्रम के व्यक्तियो को जो उपदेश दिया है, उसका वर्णन है। इस उपनिषद् का उद्देश्य यह है कि साख्य-योग और वेदान्त के सिद्धान्तो मे समन्वय स्थापित किया जाय। इसमे माया, जीवात्मा और ब्रह्म के पारस्परिक सम्बन्ध का भी वर्णन किया गया है। **मैत्रायणीयोपनिषद्** का सम्बन्ध कृष्ण यजुर्वेद की मैत्रायणीय शाखा से है। **ईशोपनिषद्** वाजसनेयीसहिता का ४०वां अध्याय ही है। इसका कथन है कि तत्त्वज्ञानी व्यक्ति आत्मा को सर्वत्र देखता है और आत्मा में सब कुछ देखता है। **छान्दोग्योपनिषद्** का सम्बन्ध सामवेद की ताण्ड्य शाखा से है। यह उपदेश रूप मे है। इसमे ऋषि उद्दालक और उनके पुत्र श्वेतकेतु के कई सवाद हैं। इसमे सर्वव्यापी परमात्मा का विवेचन किया गया है। **केनोपनिषद्** का सम्बन्ध सामवेद की तलवकार शाखा से है। इसका कथन है ब्रह्म ही पूर्ण है। ब्रह्म ही ससार की समस्त शक्तियो का आदि स्रोत है। ब्रह्म का स्वभाव ज्ञात और अज्ञात सभी वस्तुओ से सर्वथा पृथक् है। **मुण्डक, प्रश्न और माण्डूक्य उपनिषदो** का सम्बन्ध अथर्ववेद से है। वास्तविक रूप से ये तीनो उपनिषदे वेद की किसी शाखा से सम्बद्ध नही हैं। मुण्डक का कथन है कि ईश्वर सारे जीवो के हृदय मे विराजमान रहता है। ज्ञान दो प्रकार का है, परा और अपरा। परा का सम्बन्ध ब्रह्मज्ञान से है और अपरा का सम्बन्ध वेदो के ज्ञान से है। **प्रश्नोपनिषद्** मे प्रश्न और उत्तर हैं। छ विद्यार्थी पिप्पलाद ऋषि से प्रश्न करते हैं और वह उनका उत्तर देते है। इस उपनिषद् मे प्रकृति की उत्पत्ति, प्राण की उत्पत्ति, जीवन की तीन अवस्थाएँ—जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति, ओम् का ध्यान आदि का वर्णन किया गया है। माण्डूक्य मे ब्रह्म की अनिर्वचनीयता का वर्णन किया गया है।

प्राय सभी उपनिषद् ब्राह्मण और आरण्यक ग्रन्थो के सलग्न रूप मे हैं। **तैत्तिरीय और महानारायणीय उपनिषद्** में स्वर-चिह्न हैं। **बृहदारण्यक,**

छान्दोग्य, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, मैत्रायणीय और कौषीतकि उपनिषदें ब्राह्मण ग्रन्थो के तुल्य गद्य मे हैं। ईश, कठ, श्वेताश्वतर, मुण्डक और महा-नारायणीय उपनिषदे पद्य मे हैं। केन और प्रश्न उपनिषदो का कुछ भाग गद्य मे है और कुछ पद्य मे है।

भाषा और भावो की दृष्टि से यह माना जाता है कि प्रश्न मैत्रायणीय और माण्डूक्य उपनिषदें वाद की रचना हैं और ऐतरेय, बृहदारण्यक, छान्दोग्य, तैत्तिरीय, कौषीतकि और केन उपनिषदे सबसे प्राचीन काल की उपनिषदें हैं।

इन १४ उपनिषदो के अतिरिक्त और भी उपनिषदें हैं। उनमे से कुछ वहुत प्राचीन और कुछ बहुत नवीन हैं। वेदान्त के प्रमुख आचार्यों ने इनमे से कुछ की टीका की है तथा कुछ के उद्धरण अपने ग्रन्थो मे दिए हैं। इन उपनिषदों मे से वहुत से धार्मिक भावना से युक्त हैं। उनमे दार्शनिक भाव बहुत कम हैं। सव मिलाकर कुल १०८ उपनिषदें हैं। इस १०८ मे उपर्युक्त १४ उपनिषदें भी हैं। विषय की दृष्टि से इन उपनिषदो को ६ भागो मे बाँट सकते हैं—(१) वेदान्त के सिद्धान्तो पर निर्भर—२४, (२) योग के सिद्धान्तों पर निर्भर—२०, (३) साख्य के सिद्धान्तो पर निर्भर—१७, (४) वैष्णव-सिद्धातो पर निर्भर—१४, (५) शैव-सिद्धान्तो पर निर्भर—१५ और (६) शाक्त तथा अन्य सिद्धान्तो पर निर्भर—१८। विभिन्न विषयो पर इतनी छोटी उप-निषदो के उद्भव का कारण यह है कि सभी धर्मों और मतो के अनुयायियो का यह प्रयत्न रहा है कि उनके विचारो का प्रतिनिधित्व करने वाली स्वतन्त्र उपनिषद् होनी चाहिए।

उपनिषदो की प्रमुख विशेषता यह है कि उनमे से अधिकाश का सम्वन्ध किसी वेद से है। उनमे से कुछ का सम्वन्ध किसी एक ही वेद से है। उनमे से वहुत-सी उपनिषदें ऐसी भी हैं, जिनका वेदो के मन्त्रो से कोई साक्षात् सम्वन्ध नही है। प्रत्येक उपनिषद् का किसी वेद से सम्वन्ध स्थापित करने का परिणाम यह हुआ कि सभी वेदो के साथ कुछ उपनिषदें सम्वद्ध की गई है।

जैसे—ऋग्वेद के साथ १०, शुक्ल यजुर्वेद के साथ १९, कृष्ण यजुर्वेद के साथ ३२, सामवेद के साथ १६ और अथर्ववेद के साथ ३१ उपनिषदें सम्बद्ध हैं ।

उपनिषदो के विषय के अध्ययन से प्रकट होता है कि कुछ बातो मे किसी एक वेद से सम्बद्ध होने के अतिरिक्त उनमे ऐसी कोई विशेष बात प्रकट नही होती कि उनका सम्बन्ध किसी एक वेद से ही माना जाए । उनके विषय और वर्णन की पद्धति मे ऐसी बात नही है कि किसी एक वेद के अनुयायी ही उनमे वर्णित शिक्षाओ को मानें, अन्य नही । उनके वर्णन सभी वेदानुयायियो के लिए समानरूप से मान्य हैं । वेदान्त के विभिन्न सम्प्रदायो के मानने वाले इन उपनिषदो को अपने मत के समर्थन के लिए प्रामाणिक ग्रन्थ मानते हैं । वेदो का यह ज्ञानकाण्ड वेदो के कर्मकाण्ड भाग से सर्वथा पृथक् है । इनसे सभी मतो के अनुयायी अपने मत के समर्थन के लिए केवल सूचनाएँ ही नही प्राप्त करते हैं, अपितु सभी मतो के अनुयायी इनको समान रूप से प्रमाण मानते हैं । उपनिषदो के किसी भी उद्धरण को इस आधार पर कोई अमान्य नही कह सकता है कि यह किसी विशेष मत की उपनिषद् का उद्धरण है । इन उपनिषदो की आधारशिला पर ही भारतवर्ष के विभिन्न दार्शनिक मत स्थिर हैं ।

के लिए लिखा है। इन वैयाकरणो ने जो कार्य किया है, वह बहुत उच्च कोटि का है। मैकडानल का कथन है—"भारतीय वैयाकरणो ने ही विश्व मे सर्वप्रथम शब्दो का विवेचन किया है, प्रकृति और प्रत्यय का अन्तर पहचाना है, प्रत्ययो के कार्य का निर्धारण किया है, सब प्रकार से परिपूर्ण और अति विशुद्ध व्याकरण-पद्धति को जन्म दिया है, जिसकी तुलना विश्व के किसी देश मे प्राप्य नही है।"[१]

छन्द का सम्बन्ध वृत्त से है। वैदिक मन्त्रो मे प्रयुक्त छन्दो के विषय मे इसमे नियम दिये हुए हैं। निदानसूत्रो मे वैदिक छन्दो के नाम और उनके लक्षण दिए हुए हैं। इसमे १० अध्याय है। इसमें अन्त में वैदिक मन्त्रो मे प्रयुक्त छन्दो की अनुक्रमणिका दी हुई है। पिंगल का छन्द सूत्र यद्यपि प्राचीन है, परन्तु उसमे वैदिक छन्दो का वर्णन नही है।

निरुक्त मे वेदो की व्याख्या के प्रथम प्रयास का उल्लेख है। सबसे प्राचीन निरुक्त यास्क (८०० ई० पू० से पूर्व) का ही प्राप्य है। उसने अपने पूर्ववर्ती १७ निरुक्तकारो का उल्लेख किया है, परन्तु उनके ग्रन्थ उसको भी उपलब्ध नही हुए थे। इसमे वेदो से व्याख्या के लिए जिन शब्दो का सग्रह किया गया है, वे तीन भागो मे विभक्त होते हैं—१ नैघण्टुककाण्ड, इसमे पर्यायवाची शब्दो की सूची दी गई है। २ नैगमकाण्ड या ऐकपदिक, इसमे वेद के कठिन और अस्पष्टार्थक शब्दो का सग्रह है। दैवतकाण्ड इसमे पृथ्वी, आकाश और द्युलोक के देवताओ के नाम की सूची दी गई है। यास्क को अपने पूर्व विद्यमान वैदिक शब्दो की एक सूची उपलब्ध हुई थी, जिसे निघण्टु कहते हैं। यास्क ने उस पर निरुक्त नाम की टीका की है।

यज्ञो की विशेष आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए ज्योतिष् का जन्म हुआ। सूर्य, चन्द्रमा तथा अन्य ग्रहो और नक्षत्रो की गति का निरीक्षण करना पडता था। उनकी गति के आधार पर शुभ मुहूर्त पर यज्ञो का समय निर्धारित किया जाता था। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए उनकी गति की गणना आवश्यक

---

१ India's Past by A A, Macdonell पृष्ठ १३६

हुई । ऐसा ज्ञात होता है कि चान्द्र गणना को विशेष महत्त्व दिया गया था । ज्योतिष् के प्रमुख ग्रन्थो मे सौर और चान्द्र दोनो प्रकार की गणना प्राप्त होती है और मलमास की भी गणना प्राप्त होती है । एक अज्ञात लेखक का ज्योतिषवेदाग नामक ग्रथ प्राप्त हुआ है । इसमे ४३ श्लोक यजुर्वेद से सबद्ध हैं और ३६ श्लोक ऋग्वेद से सबद्ध है ।

कल्पसूत्रों की उत्पत्ति वेदो के ब्राह्मण ग्रन्थो से हुई है । कल्प का अर्थ है कि इसके द्वारा यज्ञ के प्रयोगो का समर्थन किया जाता है । कल्प्यते समर्थते याग-प्रयोगोऽत्र इति व्युत्पत्ते । (सायण के ऋग्वेदभाष्य की भूमिका) इस विषय से सम्बद्ध ग्रन्थ सूत्ररूप मे हैं । इन सूत्रो का अर्थ व्याख्याओ के द्वारा ही समझा जा सकता है । ब्राह्मण ग्रन्थो मे जो लम्बे और क्लिष्ट विवरण दिए गए है, वे यज्ञो के समय पूर्णरूप से स्मरण नही रह सकते थे । अत इसके लिए सूत्ररूप को अपनाया गया ।

इस विषय को स्थूल रूप से चार भागो मे बांटा जाता है—श्रौत, गृह्य, धर्म और शुल्व । श्रौत सूत्रो मे दक्षिण, आहवनीय और गार्हपत्य इन तीन अग्नियो की पूजा और दर्शपूर्णमास सोम, आदि यज्ञो के करने का वर्णन किया गया है । गृह्य सूत्रों मे गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि तक समस्त सस्कारो का वर्णन किया गया है । साथ ही समाज मे प्रचलित प्रथाओ आदि का भी वर्णन है । मुख्य सस्कारो मे ये हैं—जातकर्म (पुत्रोत्पत्ति के समय के कार्य), उपनयन और वेदारम्भ सस्कार, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनो वर्णो के ब्रह्मचर्य और गृहस्थ समय के कर्त्तव्य आदि, गुरु और शिष्य के कर्त्तव्य, विवाह-सस्कार, दैनिक किये जाने वाले पचयज्ञ,[1] गृह-निर्माण, पशुपालन, रोगनाशक विधियाँ,

---

१. पच यज्ञ ये हैं—१—ब्रह्मयज्ञ, वेदो का अध्ययन और अध्यापन २—पितृयज्ञ, पितरो की पूजा ३—देवयज्ञ, देवो की पूजा, यज्ञ आदि ४—भूतयज्ञ, सभी प्राणियो को अन्नादि देना ५—नृयज्ञ, अतिथियो की पूजा ।

अध्यापन ब्रह्मयज्ञ पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।
होमो दैवो, वलिर्भौतो, नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ।। मनुस्मृति ३–७०

अन्त्येष्टि सस्कार आदि । दूसरे शब्दो मे यह कह सकते है कि इन सूत्रो मे गृहस्थ-जीवन से सबद्ध सभी सस्कारो का वर्णन है, जो कि एक गृहस्थ को करने चाहिएँ । **धर्मसूत्रों** मे नीति, धर्म, रीति और प्रथाएँ, चारो वर्णों और आश्रमो के कर्त्तव्यो आदि का वर्णन है । **शुल्वसूत्रों** मे यज्ञवेदी के निर्माण से सबद्ध नाप आदि का तथा वेदी के बनाने आदि के नियमो का वर्णन है। ये **श्रौतसूत्रो** से सम्बद्ध विषय का वर्णन करते हैं। ये भारतीय ज्यामिति का प्रारम्भिक रूप प्रदर्शित करते हैं ।

श्रौत और गृह्य सूत्रों मे यज्ञो की विधि के नियम हैं । इनमे यज्ञो के समय प्रयुक्त होने वाले मन्त्रो का विनियोग भी वर्णित है । प्रत्येक **कल्पसूत्र** का किसी एक वेद से सम्बन्ध है । कल्पसूत्रो के सहायक ग्रथ के रूप मे **मन्त्रब्राह्मण** और **मन्त्रपाठ** नामक दो ग्रथ है । इनमे मन्त्रो का सग्रह है । ये दोनो क्रमश. **गोभिलगृह्यसूत्र** और **आपस्तम्बगृह्यसूत्र** के अनुयायियो के द्वारा विशेष उद्देश्य के लिए उपयोग मे लाए जाते है ।

बौघायन और **आपस्तम्ब** ५०० ई० पू० से पूर्व हुए थे । दोनो अपनी परम्परा के अनुसार कल्पसूत्रो अर्थात् श्रौत, गृह्य, धर्म और शुल्व सूत्रो के रचयिता हैं । ये सूत्र कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा से सम्बद्ध हैं । **सत्याषाढ हिरण्यकेशी** के गृह्य और श्रोत सूत्रो का सबन्ध तैत्तिरीय शाखा की एक शाखा से है । **हिरण्यकेशी** के **धर्मसूत्र** **आपस्तम्ब** के धर्मसूत्रो से वहुत अधिक मिलते हैं । उनमे अन्तर नही के वरावर है । **अग्निवेशगृह्यसूत्र** और **वादूल** तथा **वैखानसो** के कल्पसूत्रो का सम्वन्ध तैत्तिरीय शाखा से है । कृष्ण यजुर्वेद की **मैत्रायणी** शाखा के **मानवश्रौतसूत्र, मानवगृह्यसूत्र** और **मानवशुल्वसूत्र** हैं । **काठकगृह्यसूत्रों** का भी सम्वन्ध मानव शाखा से ही है । **भरद्वाज** के **कल्पसूत्रों** का भी सम्वन्ध कृष्ण यजुर्वेद से ही है ।

अन्य वेदो के श्रौत, गृह्य, धर्म और शुल्व सूत्र वहुत कम है । ऋग्वेद के साथ सवद्ध **आश्वलायन** और **शाख्यायन** के श्रौत और गृह्यसूत्र हैं तथा **शाम्भव्य** और **शौनक** के **गृह्यसूत्र** है । शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन शाखा के साथ सवद्ध

कात्यायन के श्रौत और शुल्व सूत्र तथा पारस्कर के गृह्यसूत्र हैं। सामवेद की कौथुम शाखा के साथ सबद्ध कात्यायन के श्रौतसूत्र है। सामवेद की राणायनीय शाखा के साथ सबद्ध द्राह्यायण के श्रौत्रसूत्र हैं। ये दोनो श्रौतसूत्र ताण्ड्यब्राह्मण पर निर्भर हैं। जैमिनि के गृह्य और श्रौतसूत्र, गोभिल के गृह्यसूत्र और खादिर के गृह्यसूत्रो का सम्बन्ध द्राह्यायण शाखा से है और ये राणायनीय शाखा मे भी उपयोग मे आते हैं। इसके अतिरिक्त इस वेद से सबद्ध ये ग्रन्थ हैं —१ आर्षेय कल्प, इसका दूसरा नाम मशककल्पसूत्र है। इसमे ताण्डय शाखा वालो के द्वारा सोम यज्ञ के समय गाए जाने वाले मन्त्रो की सूची भी है। २ अनूपसूत्र, ये ताण्डयब्राह्मण की व्याख्या करते है, ३ निदानसूत्र, इनमे छन्दो का वर्णन है, ४ उपग्रन्थसूत्र, सामवेद से सबद्ध यज्ञो की विधि का वर्णन करते है, ५ क्षुत्रसूत्र, सामवेद की विधियो का वर्णन करता है, ६ ताण्डलक्षणसूत्र, ७ कल्पानुपदसूत्र, ८ अनुस्तोत्रसूत्र, ९ द्राह्यायण के गृह्यसूत्र। अथर्ववेद से सबद्ध वैतानश्रौतसूत्र और कौशिकसूत्र हैं। इनमे गृह्यसूत्रो का विषय वर्णित है। अथर्ववेद का वैदिक यज्ञो से साक्षात् सम्बन्ध नही है, अत इसके अन्य सूत्र नही हैं।

गृह्यसूत्रो के पश्चात् श्राद्धकल्प और पितृमेधसूत्र आते हैं। इनमे पितरो से सबद्ध श्राद्ध और तर्पण का वर्णन है। मानवश्राद्धकल्प, कात्यायानश्राद्धकल्प बोधायनपितृमेधसूत्र आदि इसी विषय से सबद्ध है। कल्पसूत्र मे जिन विधियो का वर्णन सक्षेप मे है, उनका विस्तृत वर्णन 'परिशिष्ट' ग्रन्थो मे है। कात्यायन के छान्दोग्य और अथर्व परिशिष्ट, ऋतुसग्रह, विनियोगसग्रह और शौनक का चरणव्यूह इसी विषय के ग्रन्थ हैं। चरणव्यूह मे वैदिक शाखाओ का वर्णन है। गोभिलपुत्र के गृह्यसग्रहपरिशिष्ट और कर्मप्रदीप का सम्बन्ध गोभिलगृह्यसूत्र से है। प्रायश्चित्तसूत्रो का सम्बन्ध अथर्ववेद के वितानसूत्रो से है। प्रयोग ग्रन्थ, पद्धतियाँ और कारिकाओ का सम्बन्ध कल्पसूत्रो से है।

वेदागो का महत्त्व निम्नलिखित श्लोक मे अच्छे प्रकार से प्रकट किया गया है—

छन्द पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते ।
ज्योतिषामयन चक्षुर्निरुक्त श्रोत्रमुच्यते ॥
शिक्षा घ्राण तु वेदस्य मुख व्याकरण स्मृतम् ।
तस्मात् सागमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते ॥

पाणिनीय शिक्षा ४१-

इन वेदागो के अतिरिक्त **अनुक्रमणिकाएँ** हैं । इनमे ऋषियो के नाम
साथ वेदो की पूरी विषयसूची दी हुई है । वेदो के मन्त्रो के देवताओ
नाम तथा मन्त्रो के छन्दो के नाम भी इनमे दिये हुए हैं । **शौनक** ने ऋ
से सबद्ध ये ग्रन्थ लिखे हैं—१. **आर्षानुक्रमणी**, ऋषियो की सूची, २ **छन्दो
क्रमणी** छन्दो की सूची, ३ **देवतानुक्रमणी**, देवताओ की सूची, ४ **सूक्तानुक्रम**
सूक्तो की सूची, ५ **पदानुक्रमणी**, पदो की सूची, ६ **अनुवाकानुक्रम**
अनुवाको की सूची, ७ **बृहद्देवता**, देवताओ की सूची तथा उनसे स
कथाएँ, ८ **ऋग्विधान**, कुछ विशेष सूक्तो का उल्लेख, जिनके पाठ से आश्
जनक लाभ होते हैं । इन अनुक्रमणिकाओ के द्वारा ज्ञात होता है कि ऋ
मे १०१७ सूक्त, १०५८०½ मन्त्र, १५३८२६ शब्द और ४३२०००
है । पाश्चात्य विद्वानो का मत है कि इनमे से कुछ शौनक के बनाए
नही हैं । शौनक के शिष्य **कात्यायन** ने **सर्वानुक्रमणी** बनाई है । इसमे इन स
अनुक्रमणिका सूत्र रूप मे दी गई है । यह **सर्वानुक्रमणी ऋग्वेद** की
शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन शाखा की **यजुर्वेदानुक्रमणी** कात्यायन ने
बनाई है । **आत्रेयशिक्षा** और **चारायणीय** का सम्बन्ध **कृष्ण यजुर्वेद** की तै
रीय शाखा से है । चारायणीय का दूसरा नाम **मन्त्ररहस्याध्याय** है । **आ**
शिक्षा तैत्तिरीय सहिता, **ब्राह्मण** और **आरण्यक** की अनुक्रमणिका
आर्षेय ब्राह्मण वस्तुत सामवेद की अनुक्रमणिका ही है । **बृहत्सर्वानुक्र**
अथर्ववेद की अनुक्रमणिका है । इसके अतिरिक्त **परिशिष्ट** नामक ग्रन्थ
ये २१ हैं । इन सबका सम्बन्ध **सामवेद** से है ।

६ वेदांगो के तुल्य ही पुराण, न्याय, मीमासा और धर्मशास्त्र भी वेदार्थज्ञान मे सहायक माने गए हैं।

पुराणन्यायमीमासाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रिता ।
वेदा स्थानन्नि विद्याना धर्मस्य च चतुर्दश ।।

याज्ञवल्क्यस्मृति १-३

अध्याय ८

ऐतिहासिक महाकाव्य

रामायण

ऐतिहासिक महाकाव्य—ऐतिहासिक महाकाव्यो का समय वैदिक और श्रेण्यकाल के मध्य मे पड़ता है। यह बात इस समय के साहित्य मे प्राप्त कतिपय विशेषताओ से स्पष्ट है। इन महाकाव्यो मे शब्दो के प्राचीन रूप, सरल भाषा, आत्मनेपद और परस्मैपद की विभक्तियो से युक्त धातुरूपो का स्वतन्त्र प्रयोग तथा अन्य कतिपय विशेषताएँ प्राप्त होती है, जो श्रेण्यकाल की भाषा की अपेक्षा वैदिक काल की भाषा से अधिक समानता रखती हैं।

ऐतिहासिक महाकाव्य प्राचीन हिन्दुओ के लौकिक जीवन को प्रकट करते हैं। इस साहित्य का प्रारम्भ वैदिक काल मे ही हो चुका था। आख्यान, पुराण, इतिहास शब्द वैदिक साहित्य मे उपलब्ध होते है। पुररवा और उर्वशी, शुन शेप तथा अन्य कथाएँ, जो वैदिक साहित्य मे प्राप्त होती हैं, ऐतिहासिक महाकाव्यो के प्रारम्भ को सूचित करती हैं। इतिहास शब्द इति + ह + आस से बना है और इसका अर्थ है कि ऐसा वस्तुत हुआ था। अत यह शब्द इस बात को सूचित करता है कि ऐसी घटना बहुत समय पूर्व घटित हुई थी।

इति हेत्यव्यय पारम्पर्योपदेशाभिधायि। तस्यासनम् आस अवस्थान-मेतेष्विति इतिहासा पुरावृत्तानि।

इतिहास का लक्षण किया गया है कि जिसमे प्राचीन समय की कथाएँ हो और जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के विषय मे आवश्यक उपदेश दे।

धर्मार्थकाममोक्षाणामुपदेशसमन्वितम्।
पूर्ववृत्तकथायुक्तमितिहास प्रचक्षते॥

अत इतिहास को प्राचीन घटनाओ का सकलन समझना चाहिए। अतएव इनकी कथाएँ काल्पनिक गाथाएँ नही मानी जा सकती है, जैसा कि पाश्चात्य विद्वान् मानते हैं।

भारतीय परम्परा के अनुसार वेद शाश्वत माने जाते हैं या वे सृष्टि के प्रारम्भ मे परमात्मा के द्वारा उपदिष्ट माने जाते है। वैदिक ऋषियों ने वेदार्थ की पुष्टि के लिए कुछ उपाख्यान रचे होगे। ये उपाख्यान ही इतिहास, आख्यान और उपाख्यान कहे गए। ऐसे उपाख्यानो आदि की सख्या बहुत रही होगी। इनमे से अधिकाश रामायण, महाभारत और पुराणो मे सम्मिलित किए गए। तत्पश्चात् रामायण और महाभारत इतिहास कहे गए। इनमे बहुत सा इतिहास भरा हुआ है।[1] अतएव ऐतिहासिक महाकाव्यो का समय बहुत प्राचीन समय से मानना चाहिए।

ये महाकाव्य लौकिक भावो से युक्त होने पर भी ऐतिहासिक वातावरण में उत्पन्न हुए है। ये वैदिक यज्ञादि के अवसर पर गाए जाते थे। वैदिक देवता सविता, अग्नि, इन्द्र इत्यादि का, जिनका वैदिक साहित्य मे मुख्य स्थान था, इन महाकाव्यो मे गौण स्थान हो गया है। इनमे भी इन्द्र देवो का राजा है। ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र इन महाकाव्यो मे मुख्य हैं। कुबेर, गणेश, कार्त्तिकेय, लक्ष्मी, पार्वती, नाग देवता तथा अन्य देवता का, जिनका वैदिक काल मे गौण स्थान था, इन महाकाव्यो मे मुख्य है। साहित्य का स्वरूप बदल गया है। वैदिक काल मे ऋग्वेद सहिता छन्दो मे है तथा अन्य गद्य मे है। ऐतिहासिक महाकाव्य पद्य मे ही है। आशावाद का भाव, जो

१ देखो रामायण ६-१२०-३२।
महाभारत—उद्योग० ३६-१३३।
द्रोण० ५२।
शान्ति० १०३, १०४, १११।
अनुशासन० ५०।

पूरे वैदिक साहित्य मे प्राप्त होता है, इन महाकाव्यो मे हीन रूप मे प्राप्त होता है । आशावाद के भाव को दबा कर चिन्ता और विषाद के भाव वृद्धि पर हैं । इन महाकाव्यो मे ऋषियो की जीवनियो तथा सफलताओ का भी वर्णन है ।

रामायण और **महाभारत** ये दोनो राष्ट्रीय ऐतिहासिक महाकाव्य हैं । इनमे बहुत-सी कहानियाँ हैं, इससे यह सिद्ध होता है कि इससे पूर्व आख्यान पुराण और इतिहास थे । इन दोनो महाकाव्यो की अत्युत्कृष्टता ने इस प्रकार के सपूर्ण प्राचीन साहित्य को सर्वथा समाप्त कर दिया ।

रामायण

रामायण भारतवर्ष का ऐतिहासिक महाकाव्य है । इसमे २४ सहस्र श्लोक हैं । यह सात काडो मे विभक्त है । इसके रचयिता **वाल्मीकि ऋषि** हैं । इसमे राम और सीता का जीवनचरित वर्णित है । वाल्मीकि ने इसको काव्य[१] आख्यान,[२] गीता[३] और सहिता[४] नाम से सम्बोधित किया है ।

वाल्मीकि को सप्तर्षियो ने धार्मिक जीवन की दीक्षा दी थी । उन्होने बहुत समय तक निरन्तर समाधि लगाई । जब वे अपनी समाधि से उठे तो उनके चारो ओर दीमको ने वमी बना ली थी और वे उससे बाहर निकले । अतएव उनका नाम वाल्मीकि पडा, क्योंकि वे वाल्मीकि (वमी) से बाहर निकले थे । वे अयोध्या के समीप ही गगा नदी के किनारे रहते थे । राम अपने वनवास के समय सर्वप्रथम उनके ही आश्रम पर पहुँचे थे ।[५] उन्हें राम के जीवन की विशेष घटनाओ का ज्ञान था । वे उनके उदात्त गुणो से बहुत

---

१ रामायण, बालकाण्ड, २-४१, युद्धकाण्ड १२८-१०५ ।

२ रामायण, बालकाण्ड, ४-३२, युद्धकाण्ड १२८-११८ ।

३ रामायण, बालकाण्ड, ४-२७ ।

४ रामायण, युद्धकाण्ड, १२८-१२० ।

५ रामायण, अयोध्याकाण्ड, सर्ग ५६ ।

प्रभावित थे। एक दिन वे अपने आश्रम पर आए हुए नारद ऋषि से मिले और उनसे एक आदर्श पुरुष का जीवनचरित पूछा। उत्तर मे नारद ने राम के जीवन का वर्णन किया। यह ज्ञात होता है कि इसके द्वारा वाल्मीकि राम के जीवन के विषय मे प्रामाणिक और निश्चित विवरण ज्ञात करना चाहते थे। नारद से मिलने के बाद उनका ध्यान राम की ओर ही केन्द्रित हो गया था और वे इसी अवस्था मे अपने आश्रम के समीप बहने वाली तमसा नदी पर पूजा के लिए गए। मार्ग मे उन्होने देखा कि एक व्याध ने क्रौंच पक्षी को मार दिया है। क्रौंची अपने पति एव प्रिय के वियोग मे बहुत दु खित होकर रो रही थी। यह देखकर वाल्मीकि ऋषि का हृदय द्रवित हो गया और उन्होंने व्याध को शाप दिया कि वह बहुत काल तक दुखी रहे। उनका यह शाप पद्य रूप मे परिणत होकर प्रकट हुआ, जो कि निम्न रूप में है —

मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगम शाश्वती समा।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधी काममोहितम्॥

रामायण, बालकाण्ड २-१५

वे पूजा करके अपने आश्रम को लौटे। तत्पश्चात् ब्रह्मा उनके सामने आए। उन्होंने आशीर्वाद दिया और आदेश भी दिया कि वे राम का चरित शाप वाले पद्य के अनुसार पद्यो में लिखें। उन्होंने वाल्मीकि को शक्ति प्रदान की कि राम के वर्तमान, भूत और भविष्यत् जीवन को साक्षात् देख सकेंगे। ब्रह्मा के जाने के पश्चात् वाल्मीकि ने काव्य की रचना प्रारभ की, जिसको रामायण नाम से पुकारा गया। यह रामायण सात काण्डो मे विभक्त है — बाल, अयोध्या, अरण्य, किष्किन्धा, सुन्दर, युद्ध और उत्तरकाड। उन्होंने अपने आश्रम में निवास करने वाली सीता के पुत्र कुश और लव को रामायण पढाई, जो उस समय उनके आश्रम मे अपनी माता सीता के साथ रहते थे। अश्वमेध यज्ञ के समय राम की उपस्थिति में कुश और लव ने रामायण का गान किया था।

पाश्चात्य आलोचको तथा उनके अनुगामी कतिपय भारतीयो का विचार है कि वाल्मीकि ने बालकाण्ड के उत्तरार्ध या केवल अन्तिम भाग से लेकर युद्धकाण्ड के अन्त तक रामायण की रचना की है । रामायण का शेष भाग बाद के किसी अन्य लेखक ने लिखा है और उसको वाल्मीकि के मूल ग्रथ से मिला दिया है । इस निर्णय के निम्नलिखित आधार हैं —

१—वर्तमान रामायण मे ऋष्यश्रृङ्ग, विश्वामित्र, अहल्या, रावण, हनुमान गगावतरण आदि की कथाएँ प्राप्त होती है । इन कथाओ का मुख्य कथा से साक्षात् कोई सम्बन्ध नही है । ये कथाएँ बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड के पूर्वार्ध मे प्राप्त होती हैं । इस प्रकार की कहानियाँ इन काण्डो के अतिरिक्त अन्य काण्डो मे नही प्राप्त होती हैं । इन कथाओ का लेखक वाल्मीकि के अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति होना चाहिए, क्योकि वाल्मीकि राम की कथा लिखते हुए ग्रन्थ के मुख्य भाग मे इनको स्थान न देते । अतएव रामायण के वे भाग जिनमे ये कथाएँ है, अन्य किसी लेखक की रचना है ।

२—बालकाण्ड मे दो विषय-सूचियाँ है, एक नारद द्वारा वर्णित राम का जीवन और दूसरी विषय सूची किसी अन्य के द्वारा लिखित सर्ग ३ अन्त मे है । नारद वाली विषय-सूची **सक्षेप-रामायण** नाम से प्रसिद्ध है । इसमे उत्तरकाण्ड की विषय-सूची सम्मिलित नही है । दूसरी सूची मे उत्तरकाण्ड का उल्लेख है । नारद की विषय-सूची के आधार पर वाल्मीकि ने युद्धकाण्ड के अन्त तक रचना की होगी । दूसरी विषयसूची किसी अन्य लेखक ने जोडी है । उसने सक्षेप-रामायण मे उत्तरकाण्ड का उल्लेख न पाकर पूरे रामायण की विषय-सूची तैयार की है । इन दोनो विषय-सूचियो से ज्ञात होता है कि वाल्मीकि ने कितना अश लिखा है । युद्धकाण्ड के स्तुति-श्लोक भी इसी बात की पुष्टि करते हैं ।

इस प्रकार यह सिद्ध करके कि वाल्मीकि ने पूरी रामायण नही लिखी है, आलोचको ने इन प्रक्षेपो का उद्देश्य भी बताया है । (१) उनका लक्ष्य था कि जिस प्रकार महाभारत मे कथाएँ हैं, उसी प्रकार रामायण मे भी ऋष्यश्रृङ्ग आदि की कथाएँ होनी चाहिए । उत्तरकाण्ड मे रामायण के पात्रो के जीवन-

चरित दिए गए हैं। (२) वाल्मीकि राम को मनुष्य के रूप मे मानते हैं। जब कृष्ण अवतार के रूप मे माने जाने लगे तो राम को भी अवतार के रूप में स्थापित करने का प्रयत्न किया गया। इसके लिए राम को अवतार बताने वाले श्लोक भी इसमे सम्मिलित किए गए। ऐसे श्लोक बालकाण्ड के पूर्वार्ध और उत्तरकाण्ड मे ही मिलते हैं, जो कि बाद मे सम्मिलित किए गए हैं। (३) वाल्मीकि ने प्रथम श्लोक असह्य दु.ख के आवेग मे बनाया था। ब्रह्मा ने आदेश दिया था कि उसी आदर्श पर रामायण की रचना करो। प्रथम श्लोक अनुष्टुप छन्द मे है। अत वाल्मीकि ने सपूर्ण रामायण अनुष्टुप छन्द मे ही लिखा होगा। बाद मे जब महाकाव्य के लक्षणो मे यह भी निर्धारित किया गया कि उसके प्रत्येक सर्ग का अन्तिम श्लोक सर्ग मे प्रयुक्त छन्द की अपेक्षा अन्य छन्द मे हो, तब उस समय के विद्वानों ने रामायण को भी महाकाव्य नाम देने की इच्छा की होगी। इसके लिए कतिपय सर्ग और श्लोक विभिन्न छन्दो मे बनाए गए होंगे। बाद मे ये ही श्लोक रामायण मे यथास्थान जोड दिए गए होगे। तब इसका नाम महाकाव्य पडा। वाल्मीकि ने अनुष्टुप छन्द वाले ही श्लोक बनाये हैं, अत जो अश ऊपर उल्लेख किए गए हैं, वे वाल्मीकि के बनाए हुए नही हैं।

आलोचको का यह विचार विचारणीय है। बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड मे जो कथाएँ हैं वे अधिकतर अपने उचित स्थान पर हैं। बालकाण्ड मे जो कथाएँ है वे घटनाओ का वास्तविक रूप चित्रित करती है। इनमे से अधिक कथाएँ राम और लक्ष्मण को सुनाई गई हैं। ये कथाएँ इस प्रकरण मे विशेष लक्ष्य की पूर्ति करती हैं। कोई भी कथा केवल जोडने की दृष्टि मे नही रखी गई है। विश्वामित्र, रावण, हनुमान आदि की कथाएँ अपने उचित स्थान पर हैं। ये कथाएँ जिन व्यक्तियो से सबद्ध है, उनका इस महाकाव्य मे महत्त्वपूर्ण स्थान है। वाल्मीकि ने मुख्य भाग मे इनका जीवनचरित नही लिखा है। इन कथाओ के बिना यह महाकाव्य पूर्ण नहीं माना जा सकता था। रामायण के मुख्य अश तथा इन कथाओ की निष्पक्ष विवेचना से ज्ञात

होता है कि ये उचित प्रसग मे ही रखी गई है और इनके समावेश से कोई अस्वाभाविकता प्रतीत नही होती है। मुख्य अश मे ये कथाएँ इसलिए नही रखी गई है, क्योकि वहाँ पर इनकी आवश्यकता नही थी। इस विषय मे यह स्वीकार करना उचित है कि रामायण मे प्रक्षेप है और विशष रूप से उत्तर-काण्ड मे। इस कथन की पुष्टि भारतीय टीकाकारो द्वारा होती है। उन्होने स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है कि कुछ सर्ग प्रक्षिप्त है। अतएव उन्होने उनकी टीका नही की है।

दूसरी बात के विषय मे यह वक्तव्य है कि **सक्षेप-रामायण** मे उतना ही अश है, जितना वाल्मीकि ने नारद से सुना है। तृतीय सर्ग मे जो विषयसूची है, वह वाल्मीकि के द्वारा बनाए हुए पूरे ग्रन्थ की विषयसूची है। इस बात का कोई प्रमाण नही है कि वाल्मीकि ने रामायण का उतना ही अश बनाया है, जितना कि उन्होने नारद से सुना है, और उसमे अधिक कुछ नही। सक्षेप-रामायण मे राम के जीवन की भावी घटनाओ का भी उल्लेख है। इसमे राम के द्वारा किए गए अश्वमेध का भी उल्लेख है।[1] अत बालकाण्ड मे दो विषयसूची होने मे कोई असगति नही है। सक्षेप-रामायण मे उत्तरकाण्ड के विषयो का निर्देश मात्र है और दूसरी विषयसूची मे उत्तरकाण्ड की घटनाओ का विस्तृत वर्णन है। युद्धकाण्ड के अन्त मे जो आशीर्वादात्मक श्लोक है, वे वहाँ पर इसलिए है कि जो व्यक्ति रामायण का दैनिक पारायण लौकिक सुख-समृद्धि के लिए करते है, वे युद्धाण्ड के अन्त मे इस प्रकार के श्लोक चाहते है, क्योकि उसकी समाप्ति सुखान्त है। उत्तरकाण्ड का अन्त दु खान्त है, अत कोई भी उसके अन्त तक पारायण करना नही चाहता है।

रामायण के अध्ययन से ज्ञात होता है कि बालकाण्ड के प्रथम चार सर्ग भूमिका के रूप मे है। इनका कौन लेखक है, यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता है। इनके लेखक सभवत एक से अधिक व्यक्ति है। वाल्मीकि के शिष्य, जो उनके साथ रहते थे, इन सर्गो के लेखक ज्ञात होते है। उन्होने

---

१ रामायण, बालकाण्ड, १—९४, ९५।

ही इन सर्गो को रामायण के प्रारम्भ मे जोड दिया है । रामायण के भूमिका-भाग से ज्ञात होता है कि वाल्मीकि ने रामायण वनाने के पश्चात् इसके गान के लिए कुश और लवको चुना । और उन्हें इसकी शिक्षा दी । कुश और लव उस समय कुछ वडी आयु के रहे होगे । अतएव सीता वाल्मीकि के आश्रम मे वहुत वर्षो से रहती रही होगी । भूमिका-भाग से ऐसा प्रतीत होता है कि नारद के जाने के पश्चात् वाल्मीकि ने रामायण की रचना एक वर्ष से कम समय मे ही की है । ऐसा ज्ञात होता है कि राम के द्वारा सीता का निर्वासन और उनके आश्रम मे आने के पश्चात् वाल्मीकि ने राम का जीवनग्रन्थ-रूप मे निवद्ध करने का विचार किया होगा । उन्होने इस कार्य के आरम्भ करने से पूर्व नारद की स्वीकृति लेनी आवश्यक समझी होगी। अतएव उन्होने नारद की स्वीकृति ली ।

यदि वाल्मीकि ने उत्तरकाण्ड की रचना नही की है तो इसके अन्य लेखक को राम के अभिषेक के वाद का वृत्तान्त किस प्रकार प्राप्त हुआ ? वाल्मीकि की रचना शोक से प्रारम्भ हुई है, अत उन्होने उसे दु खान्त रूप मे समाप्त किया होगा । कई कारणो से वाल्मीकि को ही उत्तरकाण्ड का भी रचयिता मानना उचित है । इस काण्ड के अभाव मे भरत और शत्रुघ्न केवल आज्ञाकारी भाई के रूप मे ही प्रसिद्ध होते । वे युद्धो मे विजयी के रूप मे प्रसिद्ध न होते । उत्तरकाण्ड मे उल्लेख है कि भरत ने युद्ध मे गन्धर्वो को जीता और शत्रुघ्न ने लवण राक्षस को मारा और इस प्रकार अपना नाम सार्थक किया । यदि वाल्मीकि ने यह काण्ड न लिखा होता तो उन पर चरित्र-चित्रण मे अकुशलता का दोष आता ।

वाल्मीकि ने उत्तरकाड को भी वनाया है, इस वात के सार्थक तीन प्रमाण हैं। महाभारत (३००० ई० पू०) मे उत्तरकाण्ड की अनेक घटनाओ का उल्लेख मिलता है । दिङ्नाग कुन्दमाला नाटक के रचयिता हैं । उन्होने अपने नाटक मे इस वात का उल्लेख किया है कि वाल्मीकि ने राम के [द्वा]रा सीता के निर्वासन तक रामायण की रचना की है ।[1] आनन्दवर्धन

---

१ कुन्दमाला, अक ६ १४ ।

(८५० ई०) ने, स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है कि वाल्मीकि ने राम और सीता के वियोग-पर्यन्त रामायण की रचना की है। वे लिखते हैं कि—

रामायणे हि करुणो रस स्वयमादिकविना सूत्रित । 'शोक श्लोकत्वमागत इत्येववादिना । निर्व्यूढश्च स रामसीतात्यन्तवियोगपर्यन्तमेव स्वप्रबन्धमुपरचयता

ध्वन्यालोक, अध्याय १

आनन्दवर्धनाचार्य के कथन को विशेष रूप से युक्तियुक्त मानना उचित है, क्योंकि वे उच्च कोटि के आलोचक थे। वे निराधार परम्परा को प्रमाण रूप मे न मानते। अतएव वाल्मीकि को सपूर्ण रामायण का रचयिता मानना उचित है।

पाश्चात्य आलोचको का रामायण मे प्रक्षिप्त अश का जो विचार है उसके विषय मे यह कथन है कि जिस प्रकार महाभारत में कथाएँ बाद में मिश्रित की गई है, उस प्रकार रामायण मे कथाएँ बाद मे मिश्रित नहीं की गई है, क्योकि रामायण में कथाएँ अपने उचित स्थान पर है और महाभारत मे इस प्रकार उचित स्थान पर नही है।

वाल्मीकि राम को अवतार के रूप मे नही मानते थे, यह सिद्ध नहीं किया जा सकता है, क्योकि भारतवर्ष मे काव्य का जन्म धार्मिक वातावरण मे हुआ है। आदिकाल मे धार्मिक भावना और दैवी परिस्थितियो ने भारतीय काव्य को एक विशिष्ट स्वरूप दिया है। रामायण के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वाल्मीकि राम के अवतार होने मे विश्वास रखते थे। यह स्वीकार करने पर भी कि रामायण के मुख्य भाग में राम को अवतार सिद्ध करने वाले श्लोक उपलब्ध नही होते है, यह स्वीकार करना असगत प्रतीत होता है कि रामायण का एक वृहत भाग प्रक्षिप्त है, क्योंकि उसमे कुछ श्लोक राम को अवतार रूप मे मानने वाले है। ऐसे श्लोक बहुत थोडे है। यह सभव है कि सपूर्ण रामायण को राम के दैवी स्वरूप का समर्थक सिद्ध किया जाय। इसका निर्णय बहुत कुछ पाठक के भावो पर निर्भर है।

यह कथन कि रामायण को महाकाव्य सिद्ध करने के लिए बहुत कुछ अंश बाद मे जोडा गया है उचित प्रतीत नही होता है। पाश्चात्त्य विद्वानो ने श्लोक शब्द से जो अर्थ निकालने का प्रयत्न किया है, वह सभव नहीं है। वाल्मीकि का शोक श्लोक रूप मे प्रकट हुआ।[1] पाश्चात्त्य विद्वानो ने श्लोक शब्द का अर्थ अनुष्टुप् छन्द मात्र लिया है। यहाँ पर श्लोक शब्द का अर्थ पद्यमात्र लेना उचित है।[2] श्लोक शब्द सस्कृत मे पद्यमात्र के अर्थ मे आता है।[3] भारतीय टीकाकारो ने श्लोक शब्द का यह अर्थ नही लिया है जो पाश्चात्त्य विद्वान् लेना चाहते हैं। यह मानना उचित है कि वाल्मीकि ने श्लोक अनुष्टुप् तथा अन्य छन्दो मे भी बनाए हैं। यदि यह नही मानेंगे तो वाल्मीकि को उन सभी सुन्दर पद्यो का रचयिता नही मान सकते जो विभिन्न छन्दो मे रामायण मे प्राप्त होते हैं। यह सिद्ध करना किसी भी आलोचक के लिए प्रशसा की बात नही है कि वह वाल्मीकि जैसे महान् कवि को केवल एक छन्द की रचना करने मे समर्थ साधारण कवि सिद्ध करे। यह सभव है कि वाल्मीकि के समय मे महाकाव्य के विषय मे यह नियम प्रचलित नही रहा होगा कि प्रत्येक सर्ग का अन्तिम श्लोक अन्य छन्द मे हो। यह भी सभव है कि प्रत्येक सर्ग के अन्तिम श्लोक विभिन्न छन्दो मे बाद मे बनाए गए हो और प्रत्येक सर्ग के अन्त मे जोड दिए गए हो। केवल इस आधार पर वाल्मीकि को सभी अन्य छन्दो वाले श्लोको का रचयिता न मानना सर्वथा अनुचित है।

इस प्रसग मे यह उल्लेख कर देना उपयुक्त है कि बालकाण्ड मे एक श्लोक[4] आता है कि वाल्मीकि ने अपना यह महाकाव्य ५०० सर्गो मे बनाया है और इसमे २४ सहस्र श्लोक हैं।

---

१ रामायण, बालकाण्ड २-४०, शोक श्लोकत्वमागत।

२ श्लोकृ सघाते धातु मे श्लोक शब्द बना है अर्थात् पद्यात्मक बन्धन।

३ पद्ये यशसि च श्लोक। अमरकोश, ३, नानार्थवर्ग २।

४ रामायण, बालकाड, ४-२।

चतुर्विंशत्सहस्राणि श्लोकानामुक्तावानृषि ।
तथा सर्गशतान् पञ्च षट् काण्डानि तथोत्तरम् ।।

रामायण १-४-२ ।

जो ग्रन्थ आजकल प्राप्त होता है, उसमे लगभग ६४५ सर्ग और २४ सहस्र से कुछ ही अधिक श्लोक उपलब्ध होते हैं । वाल्मीकि ने मूलरूप मे जो सर्ग लिखे थे, उनमें कुछ परिवर्तन भी हुआ है । कुछ सर्ग लुप्त हो गए हैं तथा कुछ नए सर्ग बाद मे जोडे गए है । यही बात श्लोको के विषय मे भी घटित हुई है । कुछ श्लोक स्थानान्तरित हुए हैं । रामायण मे कुछ स्थल प्रक्षिप्त है, यह रामायण के उत्तरीय, उत्तर-पश्चिमीय तथा बम्बई के सस्करणो मे सर्गों और श्लोको के क्रम तथा सख्या मे विभिन्नता से स्पष्ट है । कुछ प्रक्षिप्त स्थल अत्यन्त स्पष्ट हैं । विन्ध्य पर्वत के दक्षिणी प्रदेश मे राम को कोई सभ्य व्यक्ति नही मिले, किन्तु रामायण में पाड्य, चोल, आन्ध्र और कोल आदि का उल्लेख मिलता है । ऐसे श्लोक समय के प्रभाव से नष्ट हुए रामायण के श्लोको के स्थान की पूर्ति करने के लिए जोड दिए गए है । बुद्ध के विद्याध्ययन और हनुमान के व्याकरण शास्त्र के अध्ययन के प्रकरण मे उन ग्रन्थो का भी उल्लेख है, जो कि रामायण के बाद बने है । अत इन्हें प्रक्षिप्त ही समझना चाहिए । रामायण सहस्रो वर्ष पूर्व बनी है और मौखिक परम्परा के अनुसार जब तक आई है । उसमे सर्गो और श्लोको का प्रक्षेप होना अवश्यभावी है । कुछ प्रक्षिप्त श्लोको को छोडकर सपूर्ण रामायण वाल्मीकि की ही कृति है, यह मानना सर्वथा उचित है ।

रामायण की कथा की सार्थकता के विषय में कतिपय विचारधाराएँ

पाश्चात्य विद्वानो का विचार है कि रामायण कल्पित कथाओ पर आधारित है । मनुष्यो और राक्षसो का युद्ध, हनुमान द्वारा समुद्र का पार करना आदि घटनाएँ वास्तविक नही हैं । ये घटनाएँ किसी भी देश मे किसी भी

समय घटित नही हुई हैं । इस प्रकार की विचारधारा के कारण पाश्चात्य विद्वानो ने रामायण के विषय में अनेक मन्तव्य प्रस्तुत किए है ।

प्रो० वेबर ने अपना मन्तव्य प्रस्तुत किया है कि रामायण बौद्ध ग्रन्थ **दशरथजातक** और **होमर के इलियड** पर आधारित है । उन्होंने जो तथ्य इसके समर्थन के लिए प्रस्तुत किए हैं वे इस मन्तव्य का समर्थन करने मे असमर्थ हैं । दशरथजातक रामायण की कथा का ही बौद्ध रूप है । इसमे रावण के विनाश के कारणो का निर्देश नही है । इस जातक का उद्देश्य अपने पिता की मृत्यु से दु खित एक व्यक्ति को धैर्य धारण कराना है । इस जातक के लेखक ने वर्णन किया है कि राम अपने पिता की मृत्यु को सुनकर दु खित नही हुए । जातक के लेखक ने यह कथा यही समाप्त कर दी, क्योंकि उसकी दृष्टि मे इसको आगे बढाने का कोई लाभ नही था । अत यह मानना पडता है कि यह जातक रामायण पर निर्भर है, न कि रामायण इस जातक पर । रामायण को इलियड पर आधारित मानना निराधार ही है । होमर का इलियड सिकन्दर के ३२६ ई० पू० के आक्रमण के बाद ही भारत मे प्रचलित हो सकता था, किन्तु रामायण इसके बहुत पूर्व ही प्रचलित हो चुका था । अत. यह मन्तव्य सर्वथा निराधार ही है ।

प्रो० याकोबी ने इस विषय मे एक विचित्र मन्तव्य उपस्थित किया है । उन्होने ऋग्वेद मे प्राप्त इन्द्र और वृत्र की कथा तथा रामायण की कथा मे समानता उपस्थित की है और यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि वृत्र की कथा काल्पनिक है, अत रामायण की कथा भी काल्पनिक है । वृत्र एक राक्षस था । वह इन्द्र का शत्रु था । उसने इन्द्र की गौएँ चुराई और उन्हें समुद्र के पार छिपा दिया । इन्द्र ने सरमा नाम की एक कुतिया गायो का पता लगाने के लिए भेजी । उसने गायो का पता लगाया और इसकी सूचना इन्द्र को दी । इन्द्र ने मरुत् देवताओं की सहायता से वृत्र पर आक्रमण किया और उसका वध किया । याकोबी का कथन है कि रामायण की कथा मे राम इन्द्र के लिए है । सीता जुती हुई भूमि के लिए है । इन्द्र वृष्टि का देवता

है । वह जुती हुई भूमि (सीता) पर विशेष कृपाशील है। अतएव इन्द्र को राम वनाया गया है और वह सीता का पति है । इस प्रसग मे रावण के पुत्र का नाम इन्द्रजित् सार्थक है, क्योकि वह इन्द्र के विजयी वृत्र का सकेत करता है । सरमा के स्थान पर हनुमान् हैं, वे सीता को ढूंढने के लिए जाते हैं, हनुमान् वायु के पुत्र है, इसका सकेत मरुत् देवताओ से प्राप्त होता है, उन्होने इन्द्र की सहायता की थी ।

दो कथाओ मे कुछ समानताएँ इस वात का निर्णय नही कर सकती है कि उनमे से एक दूसरी कथा पर निर्भर है और न इसमे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वे कथाएँ काल्पनिक है। उपर्युक्त दोनो कथाओ मे समानता विशेष रोचक है । वृत्र का नाम इन्द्रजित् था, किन्तु यहाँ पर रावण का पुत्र इन्द्रजित् है। उसकी तुलना वृत्र से नही की जा सकती है, क्योकि वृत्र वाली कथा मे इन्द्र की गायो का हर्ता वृत्र है, यहाँ पर सीता का हर्ता रावण है, न कि उसका पुत्र इन्द्रजित् । सीता की समता कृष्ट भूमि से मान्य हो सकती है, परन्तु उसके हरण की समता गायो के हरण के साथ स्थापित नही की जा सकती है और गायो की समता कृष्ट भमि से नही हो सकतो है । सरमा और मरुत् देवता एक दूसरे से पृथक् है। हनुमान् और अन्य वानर एक ही समूह के प्राणो हैं । मरुत् देवताओ के लिए प्रयुक्त मरुन् शव्द का सम्वन्ध केवल हनुमान् के साथ हो सकता है, अन्य वानरो के साथ नही, क्योकि वे वायु के पुत्र नही है । राम के सहायक अन्य सभी वानर हैं। जैसी समानता ऊपर दिखाई गई है, वैसी समानता किसी भी साहित्य मे दिखाई जा सकती है । ऐसी समानताएँ आकस्मिक हो सकती हैं। इससे यह सिद्ध नही किया जा सकता है कि ऐसी समानता रखने वाली कथाओ मे से दोनो या एक काल्पनिक है ।

वैज्ञानिक अनुसधानो के परिणामस्वरूप यह ज्ञात होता है कि मनुष्यो और प्रकृति मे कुछ असाधारण रूप दृष्टिगोचर होते हैं। उनका कारण उन वस्तुओ के कुछ असाधारण तत्त्व हैं। पुरातत्त्व के अनुसधानो से सिद्ध

होता है कि भारतवर्ष का अतीत केवल गौरवयुक्त ही नही था, अपितु इसका इतिहास असत्य शताब्दी पुराना है । रामायण मे जिन राक्षसो का उल्लेख है, सभवत उनके शरीर मे कुछ असाधारण वृद्धि थी या माया के द्वारा उन्होने भयकर शरीर बना लिया था । यह उचित नही है कि उनके स्वरूप की असाधारणता के आधार पर उनको सर्वथा काल्पनिक मान लिया जाय ।

रामायण की कथा को दो भागो मे पृथक् नही किया जा सकता है अर्थात् दशरथ के राजगृह अयोध्या मे घटित घटनाएँ और उनके परिणाम । अयोध्या मे घटित घटनाएँ स्वाभाविक है । जहाँ पर बहुविवाह-प्रथाएँ है, वहाँ पर इस प्रकार की घटनाएँ होनी स्वाभाविक है । यदि हम पूर्व भाग को वास्तविक मानते है तो उत्तरार्ध भी वास्तविक सिद्ध होता है । रामायण महाकाव्य है, अत उसके वर्णन प्राय काव्यात्मक है । अत रामायण को वास्तविक घटनाओ पर आधारित महाकाव्य मानना उचित है ।

रामायण के विषय मे कुछ मन्तव्य और है, जिनका उल्लेख यहाँ किया जा सकता है । टाल्बवायज ह्वीलर का कथन है कि दक्षिण मे ब्राह्मणो और बौद्धो मे जो सघर्ष हुआ है, उसी का पद्यात्मक रूप रामायण है । इस मत की अयुक्तिसगति इस बात से सिद्ध होती है कि बौद्ध धर्म का प्रचार रामायण के बहुत बाद हुआ है । ह्वीलर का ही कथन है कि १३ वी शताब्दी मे विजयनगर साम्राज्य के सस्थापको द्वारा दक्षिण भारत के विजय पर रामायण आधारित है । यह मन्तव्य सर्वथा अनर्गल प्रलाप है, क्योकि रामायण का समय इससे बहुत प्राचीन है । लैसेन का कथन है कि रामायण आर्यो के द्वारा दक्षिण भारत के विजय के प्रथम प्रयत्न का पद्यात्मक रूप है । यह मन्तव्य रामायण के अपूर्ण अध्ययन का परिणाम है, क्योकि रामायण मे कही भी राम के द्वारा दक्षिण मे राज्य स्थापित करने का उल्लेख नही है । एक मन्तव्य और है कि रामायण आर्यो के कृषिकर्म का मध्य भारत तथा दक्षिण भारत के वनो और पर्वतो मे प्रचार का उल्लेख करता है तथा

कृषिजीवियो को जो अकृषिजीवियो के द्वारा विघ्न होते थे, उनका भी निर्देश करता है। रामायण मे कही भी इस बात का उल्लेख नही है कि राम और लक्ष्मण कृषिजीवी के रूप मे दक्षिण भारत मे गए थे। प्रो० वेबर ने यह मन्तव्य उपस्थित किया है कि रामायण रूपक के रूप मे आर्य-संस्कृति का दक्षिण भारत मे तथा विशेष रूप से लका मे प्रसार का वर्णन करता है। रामायण[1] मे कही भी ऐसा वर्णन नही है कि राम के दक्षिण मे जाने से वहाँ की संस्कृति मे कोई परिवर्तन हुआ है, अत यह मत भी अयुक्त है।

रामायण का रचनाकाल

भारतीय परम्परा के अनुसार राम त्रेतायुग मे हुए थे। त्रेतायुग ईसा के जन्म से ८६७१०० वर्ष पूर्व समाप्त हुआ था। वाल्मीकि राम के सम-कालीन थे। राम जब अयोध्या मे राज्य करते थे, उस समय वाल्मीकि ने रामायण बनाई थी। अत रामायण का समय द्वापर युग के प्रारम्भ से पूर्व अर्थात् ईसा से ८६७१०० वर्ष पूर्व मानना उचित है। पाश्चात्य आलोचको और उनके अनुयायी भारतीय विद्वानो के मतानुसार रामायण का इतना प्राचीन समय मानना उचित नही है।

आलोचको का कथन है कि **रामायण** का मुख्य भाग ५०० ई० पू० से निश्चित रूप मे प्राप्त होता है। इस विषय मे निम्नलिखित युक्तियाँ दी गई हैं —(१) महाभारत ईसवीय शताब्दी के प्रारम्भ से कुछ पूर्व निश्चित रूप मे आया था। इसमे रामायण और इसके लेखक का उल्लेख है। (२) **रामायण** मे अयोध्या से पूर्ववर्ती कौशाम्बी, कान्यकुब्ज और काम्पिल्य आदि नगरो का उल्लेख है, परन्तु पटना का उल्लेख नही है। इसकी स्थापना कालाशोक ने की थी, जो कि ३८० ई० पू० मे हुई द्वितीय बौद्ध महासमिति का सभापति था। (३) रामायण मे मिथिला और विशाला दोनो स्वतन्त्र राज्य के रूप मे निर्दिष्ट हैं। बुद्ध के समय मे ये दोनो राज्य वैशाली नाम

---

१ Weber, History of Indian Literature पृष्ठ १९२।

से प्रचलित हो गए थे और इस पर कुछ विशिष्ट लोगो का राज्य था। (४) बौद्ध धर्म के प्रसार के समय साकेत शब्द अयोध्या के लिए प्रचलित हुआ। वह शब्द रामायण के मुख्य भाग मे प्राप्त नही होता है। इसी प्रकार राम के पुत्र लव की राजधानी श्रावस्ती का नाम रामायण के मुख्य भाग मे नही है। यही बौद्ध धर्म के प्रसार के बाद राजधानी हुई। (५) रामायण के समय मे राजाओ का अधिकार बहुत थोडे प्रदेश पर था, परतु महाभारत के समय में उनका अधिकार बहुत बडे प्रदेश पर था। अतएव रामायण का मौलिक अश उस समय बना था, जब कि महाभारत अभी निर्माण की अवस्था मे था।[1]

इस प्रकार की युक्तियाँ सर्वथा अविश्वसनीय हैं। महाभारत ३१०० ई० पू० मे बना है। इसमे रामायण का उल्लेख है और इसके रचयिता वाल्मीकि को बहुत प्राचीन कवि बताया गया है। रामायण के विषय मे जो उल्लेख हैं, उनमे कतिपय ऋषियो का नाम भी लिखा है और उनमे मे कुछ को रामायण की कथा कहने वाला भी कहा गया है। इन कथावाचको को कथा जिस रूप मे ज्ञात होगी, उसी रूप मे उन्होंने यह कथा अपने शिष्यादि को बताई होगी। इससे ज्ञात होता है कि रामायण ३१०० ई० पू० मे पूर्ण महाकाव्य के रूप मे प्रचलित था। तथापि रामायण का निश्चित रचनाकाल ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता है।

महाकाव्य के रूप में रामायण तथा इसकी लोकप्रियता

रामायण हिन्दुओ का लोकप्रिय ग्रन्थ है। छोटे, बडे, राजा, रक, धनी, कुलीन, व्यापारी, शिल्पी, रानियाँ और अशिक्षित स्त्रियाँ, सभी रामायण की कथा और उसके पात्रो से परिचित हैं।[2] यह लोकप्रिय साहित्यिक ग्रन्थ है।

---

१ A A Macdonell History of Sanskrit Literature पृष्ठ ३०२।

२ M, Winternitz A History of Indian Literature भाग १ पृष्ठ ४७६-४७७।

हिन्दू इसको पूजनीय ग्रन्थ मानते हैं। धार्मिक विचार वाले व्यक्ति प्रतिदिन इसका पारायण करते हैं। रचनाकाल से ही इसको असाधारण यश प्राप्त हुआ है। **वाल्मीकि** ने इसके विषय मे भविष्यवाणी की थी कि जब तक पर्वत और नदियाँ भूतल पर हैं, तब तक रामायण की कथा ससार मे व्याप्त रहेगी।

यावत् स्थास्यन्ति गिरय सरितश्च महीतले।
तावद् रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति ॥

रामायण, बालकाण्ड २-३६-७

वाल्मीकि की यह भविष्यवाणी प्राय पूर्ण हुई है।

रामायण को आदिकाव्य तथा वाल्मीकि को आदिकवि कहा जाता है। रामायण की यह लोकप्रियता उसकी शैली, कवि का चरित्र-चित्रण और वर्णन की असाधारण शक्ति तथा असख्य स्मरणीय सुभाषितो के कारण है। वाल्मीकि की शैली सरल, उत्कृष्ट, अलकृत और सुसस्कृत है। इसमें अप्रचलित शब्दो का सर्वथा अभाव है। शैली की यह सरलता अतिप्रचलित शब्दो के प्रयोग के कारण और बढ गई है। सरलता के साथ ही इसमे काव्यगौरव भी परिपूर्ण है। यह अलकारो से भी अलकृत है। वाल्मीकि ने उपमा, स्वभावोक्ति और रूपक का अत्युत्तम रीति से प्रयोग किया है। यही एक ऐसा महाकाव्य है, जिसमे सभी रसो का समुचित परिपाक हुआ है। इसमे कुछ ऐसे रूपो का भी प्रयोग मिलता है, जो पाणिनीय व्याकरण की दृष्टि से असिद्ध हैं। इससे ज्ञात होता है कि पाणिनि से पूर्व प्रचलित साहित्यिक भाषा का वाल्मीकि ने प्रयोग किया है। इसकी भाषा का श्रोताओ पर जो असाधारण प्रभाव होता है, वह अवर्णनीय है। अतएव रामायण आज तक प्रचलित है।

वाल्मीकि ने अपने पात्रो का विभिन्न परिस्थितियो मे जो सजीव चरित्र-चित्रण किया है। उससे उनकी मानवहृदय के क्रियाकलाप के प्रति असाधारण अन्तर्दृष्टि परिलक्षित होती है। वाल्मीकि को इस विषय मे जो

सफलता प्राप्त हुई है, उसका बहुत कुछ अंश राम को अपना कथानायक चुनने के कारण है। राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न और सीता के उदात्त गुणों का यहां पर उल्लेख अनावश्यक है। इसी प्रकार लङ्का और किष्किन्धा के प्रमुख पात्रों का उल्लेख भी अनावश्यक ही है। वाल्मीकि ने दशरथ की तीनों रानियों के मनोभावों का अच्छी प्रकार अध्ययन किया है। उसने तीनों के स्वभाव में वैषम्य प्रदर्शित किया है। राम के वनवास के समय तथा दशरथ की मृत्यु के समय कौशल्या के विचार, स्वभाव और व्यवहार का बहुत सुन्दर वर्णन किया है। राम और सीता के साथ लक्ष्मण को भेजते समय सुमित्रा का चरित्र-चित्रण तथा दशरथ से वरदान मांगते समय और उसके बाद तथा भरत के द्वारा राज्य को अस्वीकार करने पर कैकेयी के दुःखित होने पर उसके विचार और व्यवहार का सुन्दर चित्रण किया है।

वाल्मीकि में वर्णन की अपूर्व शक्ति है। उसने राजप्रासादों[1], नागरिक-जीवन[2], उपवनों[3], पर्वतों[4], चन्द्रोदय[5], नदियों[6], ऋतुओं—शरद्[7], वर्षा[8], पतझड़[9], वनप्रदेशों[10], आश्रमों[11], सेनाओं और युद्धों[12] तथा अन्य वस्तुओं का असाधारण वर्णन किया है। प्रकृति के वर्णन पाठकों और श्रोताओं पर असाधारण प्रभाव डालते हैं। ऐसा गंभीर और वास्तविकता से युक्त प्रभावकारी वर्णन अन्यत्र उपलब्ध नहीं होता है।

रामायण में अनल्प सुभाषित हैं। कुछ सुभाषित निम्नलिखित हैं—

१ भयं भीताद् हि जायते। रामायण २-८-५

२ समृद्धियुक्ता हि पुरुषा न सहन्ते परस्तवम्। रा० २-२६-२५

---

१ रामायण ५-६, [illegible]। २ रामायण [illegible]।
३ रामायण ५-१४। ४ रामायण २-६४।
५ रामायण ५-५। ६ रामायण २-६५, ३-७५।
७ रामायण ३-१६। ८ रामायण [illegible]।
९ रामायण ४-३०। १० रामायण १-७४।
११ रामायण ३-७, ११। १२ रामायण ३-२०-३०।

३ अनिर्वेद श्रियो मूलम् अनिर्वेद पर सुखम्।
   अनिर्वेदो हि सतत सर्वार्थेषु प्रवर्तक ।। रा० ५-१२-१०

४ सुलभा पुरुषा राजन् सतत प्रियवादिन ।
   अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभ ।। रा० ३-३७-२

५ उत्साहवन्त पुरुषा नावसीदन्ति कर्मसु। रा० ४-१-१२२

वे मनुष्य को भौतिक और आध्यात्मिक उन्नति के मार्ग की शिक्षा देते है। अत्यधिक धन-लिप्सा मनुष्य के जीवन को नष्ट कर देती है, यह कैकेयी और वालि के जीवन से स्पष्ट है। इसी प्रकार अत्यधिक कामुकता भी मनुष्य को नष्ट कर देती है, यह दशरथ और रावण के जीवन से स्पष्ट है। वाल्मीकि ने जीवन की पवित्रता पर वहुत बल दिया है । आचार ही मनुष्य जीवन का सर्वोत्तम गुण है।

कुलीनमकुलीन वा वीर पुरुषमानिनम्।
चारित्रमेव व्याख्याति शुचि वा यदि वाऽशुचिम्।।

रामायण १-१०६-४

विवाह एक पवित्र वन्धन है, इसकी पवित्रता सिद्ध की गई है। सबसे मुख्य रूप से यह सिद्ध किया गया है कि कर्तव्य-निष्ठा सर्वोत्तम गुण है और यही मनुष्य को गौरव से युक्त करता है।

रामायण प्राचीन भारत की सामाजिक अवस्था का विशद वर्णन करता है । अयोध्या और लका दोनो स्थानो पर प्रजातन्त्र राज्य की व्यवस्था थी। राजा उसका अध्यक्ष होता था। राज्य की नीति का निर्धारण अधिकतर प्रजा की इच्छा के अनुसार होता था। व्यापार मे अनुचित प्रतिस्पर्धा तथा सवलो द्वारा निर्वलो के उत्पीडन को रोकने के लिए प्रयत्न किया जाता था । वास्तुविद्या सम्बन्धी कौशल का उल्लेख मिलता है। निर्माण-कार्य के लिए जिन वृक्षो को काटा जाता था, उन्हे यन्त्रो की सहायता से हटाया जाता था । अयोध्या के मनुष्य धार्मिक विधियो का अनुष्ठान करते थे। राक्षस उनकी इन विधियो मे विघ्न डालते थे । आवश्यकता पडने पर वे हो

स्वार्थसिद्धि के लिए यज्ञादि करते थे।[1] नैतिक नियमों का पालन अयोध्या मे कठोरता के साथ होता था और किष्किन्धा मे कुछ शिथिलता के साथ। रामायण मे मृत व्यक्ति के शव को सुरक्षित रखने का भी उल्लेख मिलता है।[2] मृत व्यक्ति का शव तेल से परिपूर्ण हौज मे रक्खा जाता था। इसमे शल्य-चिकित्सा और कतिपय अन्य चिकित्साओ का भी उल्लेख मिलता है।[3]

रामायण ने भारतीय जनता को बहुत अधिक प्रभावित किया है। श्रेण्यकाल के कवियो पर भी रामायण का बहुत प्रभाव पड़ा है। जीवन के कर्तव्यो की शिक्षा के लिए उदाहरणस्वरूप घटनाएँ रामायण से ली गई हैं। भारतवर्ष के राष्ट्रीय जीवन के निर्माण मे रामायण का बहुत बड़ा हाथ रहा है। रामराज्य शब्द पवित्र एव आदर्श राज्य के अर्थ मे प्रयुक्त होने लगा है। अनूदित ग्रन्थो के रूप मे भी रामायण की कथा जनप्रिय रही है। इसकी जनप्रियता रामकथाओ मे उपस्थित होने वाली बहुसख्यक जनता के द्वारा ज्ञात होती है। ईसवीय सन् के प्रारम्भ मे रामायण स्याम, जावा, सुमात्रा, बाली आदि विदेशो मे भी प्रचलित हुई। इन स्थानो मे उपलब्ध शिलालेखो से ज्ञात होता है कि वहां पर रामायण के दैनिक पारायण की भी व्यवस्था की गई थी। भारतवर्ष के सस्कृत साहित्य पर इसका स्थायी प्रभाव पड़ा है। श्रेण्यकाल के सस्कृत कवियो को इससे प्रेरणा प्राप्त हुई है और उन्होने अपने ग्रन्थो के लिए इससे भाव लिए हैं। इसका भारतीय भाषाओ मे अनुवाद भी हुआ है। हिन्दी मे तुलसीदास-विरचित रामचरितमानस (१५७४ ई०) इसके आधार पर ही बना है। तामिल मे कम्बन कृत (१३ वी शताब्दी ई०) 'कम्ब रामायण' का भी आधार यही है।

---

१ रामायण, युद्धकाण्ड सर्ग ८५।
२ ,, अयोध्याकाण्ड सर्ग ६६।
३ ,, सुन्दरकाण्ड सर्ग २८-६।
युद्धकाण्ड सर्ग १०१-४३।

रामायण की बहुत-सी टीकाएँ प्राप्त होती है। इनमे से अधिक नवीन टीकाएँ है। अधिक महत्त्वपूर्ण टीकाएँ ये है--**महेश्वरतीर्थकृत रामायण-तत्वदीपिका, श्रीरामकृत अमृतकटक, गोविन्दराज** (१६वी शताब्दी ई०) कृत **भूषण** और **अहोवल** (१६वी शताब्दी ई०) कृत **वाल्मीकि हृदय**। **अप्पयदीक्षित** (१६०० ई०) ने अपने **रामायणतात्पर्यसग्रह** मे तथा **त्र्यम्बक मखिन** (१७००-ई०) ने अपने **धर्माकूत** मे रामायण की व्याख्या की है।

अध्याय ६

महाभारत

महाभारत दूसरा भारतीय ऐतिहासिक महाकाव्य है। इसके रचयिता व्यास है। विश्व-साहित्य के इतिहास मे यह सबसे बडा महाकाव्य है। यह ईलियड और ओडिसी के सयुक्त परिमाण से आठ गुना है। यह १८ पर्वो मे विभक्त है। १८ पर्व ये है—आदि, सभा, वन, विराट्, उद्योग, भीष्म, द्रोण, कर्ण, शल्य, सौप्तिक, स्त्री, शान्ति, अनुशासन, आश्वमेधिक, आश्रमवासिक, मौसल, महाप्रस्थानिक और स्वर्गारोहण। इनमे से १२वाँ शान्तिपर्व सबसे बडा है। इसमे लगभग १४७०० श्लोक है। १७वाँ महाप्रस्थानिकपर्व सबसे छोटा है। इसमे केवल ३१२ श्लोक है। इसका एक परिशिष्टपर्व हरिवश भी है। हरिवश को सम्मिलित करने पर महाभारत मे एक लाख श्लोक है।

महाभारत मे पाडवो और कौरवो की कथा है। यह कथा अति प्रचलित है, अत इसके वर्णन की आवश्यकता नही है। इस कथा के अतिरिक्त इसमे देवताओ, राजाओ और ऋषियो की कथाएँ है, जिनका मुख्य कथा से साक्षात् कोई सम्बन्ध नही है। इसमे सृष्टि की उत्पत्ति, देवो की वशावली, दार्शनिक विवेचन, नीति, धर्म, वर्णो और आश्रमो के कर्त्तव्यो का वर्णन भी है। यह मनुष्य जीवन के उद्देश्य-स्वरूप धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इस चतुर्वर्ग की प्राप्ति की शिक्षा देता है। इसी आधार पर इसको पचम वेद कहा गया है।

भारत पचमो वेद ।

व्यास हरिवश सहित महाभारत के रचयिता है। इनका प्रथम नाम कृष्णद्वैपायन था, क्योकि ये एक द्वीप मे उत्पन्न हुए थे और इनका रग कृष्ण था। ये पराशर ऋषि के पुत्र थे। इन्होने ही वेदो को ऋक्, यजु, साम और अथर्व इन चार भागो मे विभक्त किया था। अतएव इनका नाम व्यास पडा।

विव्यास वेदान् यस्मात् स तस्मात् व्यास इति स्मृत ।

महाभारत, आदिपर्व ६४-१३०

वे कौरवो और पाडवो के समकालीन थे । दोनो के जीवन से सबद्ध घटनाओ मे वे साक्षात् परिचित थे । उन्होने पाडवो और कौरवो का वास्तविक और सजीव वर्णन किया है । ऐसा वर्णन साक्षात् द्रष्टा व्यक्ति ही कर सकता है । सजय आदि पात्रो को विना किसी भूमिका के ही वर्णन मे स्थान दिया गया है, क्योकि वे सभी सुपरिचित व्यक्ति थे । इस प्रकार महाभारत स्वप्रत्यक्ष पर आधारित है । इसकी भाषा गभीर, सरल और प्रभावोत्पादक है । इससे ज्ञात होता है कि महाभारत के समय मे सस्कृत बोलचाल की भाषा थी ।

इस समय जो महाभारत प्राप्त है, उसमे कतिपय अश आर्ष गद्य मे लिखे हुए हैं । उनकी सख्या २० है । इनमे से ३ आदिपर्व मे, ७ वनपर्व मे, ७ शान्तिपर्व मे और ३ अनुशासनपर्व मे हैं । इनमे से अधिकाश उपाख्यान हैं और महर्षियो के द्वारा वर्णित है । पाश्चात्य विद्वानो ने इन अशो की आर्ष पद्धति के कारण महाभारत को रामायण से प्राचीन माना है । महाभारत मे रामायण की घटनाओ का अनेक स्थानो पर उल्लेख है । इससे यह मानना पडेगा कि पूर्वोक्त आर्ष गद्य के अश वहुत प्राचीन समय मे लिखे गये थे और उनको वैशम्पायन आदि ने इसमे सम्मिलित कर लिया था ।

महाभारत के आदिपर्व मे निम्नलिखित श्लोक प्राप्त होते हैं । इनका ठीक अर्थ वहुत से विद्वानो ने नही समझा है ।

ग्रन्थग्रन्थि तदा चक्रे मुनिर्गूढ कुतूहलात् ।
यस्मिन प्रतिज्ञया प्राह मुनिर्द्वैपायनस्त्विदम् ।।
अष्टौ श्लोकसहस्राणि अष्टौ श्लोकशतानि च ।
अह वेद्मि शुको वेत्ति सजयो वेत्ति वा न वा ।।
तच्छ्लोककूटमद्यापि ग्रथित सुदृढ मुने ।
भेत्तु न शक्यतेऽर्थस्य गूढत्वात् प्रश्रितस्य च ।।

महाभारत आदि० १ ११६-११८

यहाँ पर वर्णन है कि व्यास ने ८८०० कूट (पहेली रूपी) श्लोक बनाए हैं। पाश्चात्य विद्वानो ने यह मान लिया है कि इतने श्लोक व्यास ने बनाए हैं[1]।

महाभारत के अध्ययन से ज्ञात होता है कि कम से कम दो व्यक्तियों के द्वारा इसमे परिवर्तन किए गए हैं। यह बात अन्त साक्ष्य से सिद्ध है। महाभारत मे ही इसके प्रारम्भ के विषय मे कई मतो का उल्लेख मिलता है।

मन्वादि भारत केचिदास्तिकादि तथापरे।
तथोपरिचरादन्ये विप्रा सम्यगधीयिरे॥

महाभारत, आदिपर्व, १-६६।

व्यास ने पाडवो और कौरवो की कथा के रूप मे जो महाकाव्य बनाया, उसका नाम 'जय' महाकाव्य रक्खा। वे इसे इतिहास कहते हैं।

जयो नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो विजिगीषुणा।

महाभारत, आदिपर्व, ६२-२२

उन्हें इस ग्रन्थ की रचना मे तीन वर्ष लगे। उन्होने महाभारत सभवत. आदिपर्व के ६५वे अध्याय से प्रारम्भ किया है, जिसमे क्षत्रियो की उत्पत्ति का वर्णन है अथवा ६४वें अध्याय से, जिसमे उनका ही जीवन-वृत्त है। बाद के लेखको ने व्यास की रचना मे इतना अधिक परिवर्तन कर दिया है कि वर्तमान ग्रन्थ मे व्यास की कितनी और कौन-सी रचना है, यह बताना सभव नही है। ग्रन्थ को लिखने का काम शिव के पुत्र गणेश ने किया है। पाडवो और कौरवो की मृत्यु के पश्चात् व्यास ने यह ग्रन्थ प्रकाशित किया था। यह पुस्तक का प्रथम सस्करण था।

अर्जुन के प्रपौत्र जनमेजय ने सांपो को नष्ट करने के लिए नागयज्ञ किया था, क्योंकि उनके पिता सांप के काटने से मरे थे। व्यास इस यज्ञ मे आए थे। जनमेजय ने व्यास से प्रार्थना की कि वे पाडवो और कौरवो के युद्ध

---

१ A History of sanskrit Literature, by A A Macdonell. पृ० २८४।

का वर्णन सुनावें । इस पर व्यास ने अपने शिष्य वैशम्पायन को आदेश दिया कि वह 'जय' महाकाव्य सुनावे । उसने यह महाकाव्य सुनाया । जनमेजय ने विभिन्न स्थलो पर कतिपय प्रश्न किए । इनका उत्तर वैशम्पायन ने दिया । ये उत्तर वाले स्थल व्यास-रचित ग्रन्थ मे सम्मिलित नही थे । समवत ये उत्तर वैशम्पायन के थे या उसको ये उत्तर अन्य स्थान से प्राप्त हुए थे । व्यास के मूल भाग को वैशम्पायन वाले भाग के साथ मिलाने पर महाभारत की द्वितीय स्थिति आती है । द्वितीय स्थिति मे महाभारत सभवत आदिपर्व के ६१वें अध्याय से प्रारम्भ होता है । इस अध्याय मे महाभारत की कथा का सक्षिप्त विवरण है, जो वैशम्पायन ने जनमेजय को सुनाई थी । वैशम्पायन वाले महाभारत के स्वरूप का नाम **भारतसहिता** पडा । इसमें उपाख्यानो को छोडने पर २४ सहस्र श्लोक थे । इससे यह निष्कर्ष निकालना सभव है कि व्यास ने जो 'जय' नामक महाकाव्य बनाया था, उसमे २४ सहस्र श्लोको से कुछ कम श्लोक रहे होगें, क्योकि वैशम्पायन ने सभवत मूल ग्रन्थ मे अधिक श्लोक नही मिलाए होगे ।

चतुर्विशतिसाहस्री चक्रे भारतसहिताम् ।
उपाख्यानैर्विना तावद् भारत प्रोच्यते बुधै ॥

महाभारत, आदि० १-७८

व्यास के चार और शिष्य थे, जैमिनि, पैल, सुमन्तु और शुक । इन चारो ने 'जय' महाकाव्य के पृथक् सस्करण प्रकाशित किए । जैमिनि के अश्वमेवपर्व को छोडकर शेप सभी सस्करण नष्ट हो गए है । जैमिनि का अश्वमेधपर्व युधिष्ठिर द्वारा किए गए अश्वमेध का वर्णन करता है ।

जनमेजय के नागयज्ञ के कुछ ही समय पश्चात् शौनक ऋषि ने नैमिषारण्य में १२ वर्ष चलने वाला यज्ञ किया । इसमे बहुत से ऋषि उपस्थित हुए थे । उनमे रोमहर्षण ऋषि के पुत्र सौति ऋषि भी थे । सौति जनमेजय के नागयज्ञ के समय उपस्थित थे और उस समय वैशम्पायन ने महाभारत का जो पाठ किया था, वह भी उसने सुना था । शौनक की प्रार्थना पर सौति ने वैशम्पायन

से जैसा पाठ सुना था, वह महाभारत का पाठ उपाख्यानो के सहित सुनाया। कथा के वर्णन के समय सौति ने विभिन्न स्थलो पर अपने विचार और भाव अभिव्यक्त किए। सौति का यह वर्णन महाभारत की वृद्धि की तृतीय स्थिति उपस्थित करता है। सौति के इस वर्णन मे हरिवंश भी सम्मिलित है। सौति के द्वारा महाभारत एक लाख श्लोको का पूर्ण हुआ।[1] आदिपर्व के प्रारम्भिक ६० अध्याय सौति ने सम्मिलित किए हैं। जिस प्रकार वर्तमान पुस्तकों मे विषयसूची आदि होती है, इसी प्रकार सौति ने महाभारत के प्रारम्भ मे प्राक्कथन, भूमिका और विषयसूची दी है। महाभारत का प्रथम सस्करण १०० पर्वो मे विभक्त था। सौति ने इसका विशेष ध्यानपूर्वक विभाजन किया और इसको १८ बड़े पर्वो मे विभक्त किया। इस सस्करण मे प्रत्येक पर्व मे छोटे विभाग अध्याय नाम से किए गए।[2] यह सस्करण बहुत विशाल और भारी था, अत इसका नाम 'महाभारत' पडा।

महत्त्वाद् भारवत्त्वाच्च महाभारतमुच्यते।

महाभारत, आदिपर्व, १-३००

महाभारत का वैशम्पायन वाला सस्करण, उपाख्यानो को छोडकर, २४ सहस्र श्लोको मे युक्त था। सौति ने वैशम्पायन वाले सस्करण के अनुसार ही महाभारत का पारायण किया और उसमे उपाख्यानो को भी सम्मिलित कर दिया। उसने अपने श्लोको को भी इसमे स्थान दिया। इस सस्करण मे एक लाख श्लोक हैं। वैशम्पायन का सस्करण, उपाख्यानो के सहित, सौति वाले सस्करण के लगभग ही रहा होगा।

महाभारत के इतने विशालकाय होने के कई कारण हैं। (१) यह आवश्यक समझा गया कि इसमे विश्व के सभी विषयो का समावेश हो।

यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्।

महाभारत, आदिपर्व, ६२-२६

---

१ महाभारत, आदिपर्व, १-१२७।

२ महाभारत, आदिपर्व, २-८४-८५।

अतएव विभिन्न विषयो पर प्राप्त होने वाली सभी कथाएँ तथा श्लोक इसमे सम्मिलित किए गए। (२) इसे नीतिशास्त्र और आचारशास्त्र का ग्रन्थ बनाने की इच्छा की गई। अतएव इस विषय से सबद्ध सभी बातें इसमे सग्रह की गई। (३) कई कथाओ की पुनरुक्ति हुई है। सभवत समय के प्रभाव से कतिपय अध्याय और श्लोक नष्ट हो गए थे। अत प्रयत्न किया गया कि उस क्षति की पूर्ति नए अध्यायो और श्लोको के द्वारा की जाए। इनमे वे ही कथाएँ रक्खी गईं जो पहले से इसमे विद्यमान थी। ययाति और वृत्र आदि की कथाओ का इस विषय मे उल्लेख किया जा सकता है। (४) प्रकृति के काव्योचित वर्णन और स्त्रियो के विलाप मे वाल्मीकि का कुछ प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। सभवत इनमे से कुछ वर्णन बाद मे सम्मिलित किए गये है।

महाभारत का रचनाकाल

पाण्डवो और कौरवो का युद्ध कलियुग के प्रारम्भ से कुछ ही पूर्व हुआ था। कलियुग का प्रारम्भ ३१०१ ई० पू० मे हुआ था। महाभारत इस युद्ध के कुछ वर्ष बाद लिखा गया होगा। अत जय महाकाव्य का समय ३१०० ई० पू० के लगभग मानना चाहिये। जय महाकाव्य अर्जुन के प्रपौत्र जनमेजय के नागयज्ञ मे पढा गया था। जनमेजय का समय ३००० ई० पू० के लगभग मानना चाहिए। अत महाभारत के द्वितीय सस्करण का समय लगभग इसी समय मानना चाहिए। शौनक ने जनमेजय के नागयज्ञ के कुछ ही समय पश्चात् यज्ञ किया था। अत सौति का महाभारत का सस्करण लगभग उसी समय तैयार हुआ होगा।

अन्त साक्ष्य के आधार पर ज्ञात होता है कि यही समय महाभारत के रचनाकाल का है। युद्ध के प्रारम्भ होने के समय सभी ग्रह अश्विनी नक्षत्र के समीप आ गए थे। गणनानुसार ऐसी स्थिति होने का समय ३१०१ ई० पू० मे था। भारतीय परम्परा के अनुसार महाभारत के युद्ध के पश्चात् कलियुग प्रारम्भ हुआ। इसका समर्थन भारतीय ज्योतिर्विद् आर्यभट्ट भी करते हैं, जिनका जन्म छठी शताब्दी के प्रारम्भ मे हुआ था

इन साक्ष्यों के अतिरिक्त मेगस्थनीज ने अपने लेखों में हैराक्लिस अर्थात् कृष्ण को सन्ड्रकोट्टस अर्थात् मौर्यवंशी चन्द्रगुप्त से १३८ पीढ़ी पूर्ववर्ती माना है। चन्द्रगुप्त मौर्य का समय ३२० ई० पू० है। एक पीढ़ी का समय साधारणतया २० वर्ष मानने पर कृष्ण का समय ३०८० ई० पू० के लगभग होता है। भारतीय परम्परा के अनुसार महाभारत का यही समय है।

पाश्चात्य विद्वान् किसी भी साहित्यिक ग्रन्थ को इतना प्राचीन मानने के लिए उद्यत नहीं है। वे यह सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं कि महाभारत ईसवीय सन् के प्रारम्भ में इस रूप में आया। उनका कथन है कि महाभारत का प्रथम संस्करण २००० ई० पू० के बाद ही लिखा गया होगा, क्योंकि उसी समय आर्य लोग भारत में आए। ईसवीय सन् के प्रारम्भ तक इनमें कतिपय अंश सम्मिलित होते रहे। अन्यथा महाभारत में प्राप्त कतिपय स्थलों के लिए कोई उत्तर नहीं हो सकता है। उदाहरणार्थ—महाभारत में यवनों और म्लेच्छों अर्थात् यूनानियों का उल्लेख है। यह उल्लेख ३२६ ई० पू० के बाद ही हो सकता था। महाभारत में यवनों द्वारा साकेत पर आक्रमण का उल्लेख है। यह १४५ ई० पू० में मेनान्दर के निरीक्षण में हुए साकेत पर यूनानी आक्रमण का निर्देश है। यूनानी लेखक रेटर डियन क्रिसोस्टम (प्रथम शताब्दी ई० का पूर्वार्ध) का कथन है कि उनके समय में महाभारत एक लाख श्लोकों से युक्त दक्षिण भारत में सुप्रचलित था।[1]

पाश्चात्य विद्वानों का यह मत विश्वास योग्य नहीं है, क्योंकि यवन और म्लेच्छ कौन थे यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है। यूनानियों के आगमन से बहुत पूर्व भारतवर्ष का कितने ही विदेशी देशों से सम्बन्ध विद्यमान था। यवन और म्लेच्छ शब्द साधारणतया विदेशियों के लिए प्रयुक्त होता था। महाभारत के ये निर्देश यूनानियों के अतिरिक्त अन्य विदेशियों के लिए होंगे, जो ३२६ ई० पू० से बहुत पूर्व भारत में आए थे। अन्य निर्देशों को

१. Weber—History of Indian Literature. पृष्ठ १८६।

मगलाचरण श्लोक मे विष्णु के अवतार कृष्ण की स्तुति की गई है ।[1] (३) शान्तिपर्व मे भीष्म का उपदेश वैष्णवो के धार्मिक विचारों का समर्थन करता है । (४) पाण्डवो के सहायक कृष्ण हैं, अत वे युद्ध मे विजयी हुए । अद्वैतवाद के मुख्य सस्थापक शंकराचार्य ने इसको धर्मशास्त्र माना है । भारत-वर्ष तथा इसके बाहर भी ५वी शताब्दी ई० के बाद मे लिखे गए शिलालेखो मे महाभारत को दाताओ की समृद्धि तथा पापियों को दण्ड देने के विषय मे प्रामाणिक ग्रन्थ माना गया है ।

श्रेण्यकाल का भारतीय साहित्य महाभारत के द्वारा बहुत प्रभावित हुआ है । मीमासा शास्त्र के व्याख्याताओ मे प्रमुख **कुमारिल भट्ट** (६००-६६० ई०) ने महाभारत का उल्लेख किया है और इसके कई पर्वो से श्लोक भी उद्धृत किए हैं । सस्कृत गद्य के प्रमुख लेखक **बाण भट्ट** (७वी शताब्दी ई०) तथा **सुबन्धु** (८वी शताब्दी ई०) ने महाभारत के पात्रो और उपाख्यानो की तुलना तथा अन्य अलकारो के प्रयोग के लिए उपयोग किया है । बाण ने कादम्बरी मे महाभारत के पारायण का भी उल्लेख किया है । **कम्बोज** (कम्बोडिया) के ६०० ई० के शिलालेखो से ज्ञात होता है कि मन्दिरो को महाभारत की दो प्रतियाँ दी गई थी और यह प्रबन्ध किया गया था कि वहाँ पर इसका दैनिक पाठ हो । इसका ९९६ ई० मे जावा की भाषा मे अनुवाद हुआ ।

महाभारत अपने समय के सामाजिक जीवन पर बहुत प्रकाश डालता है । पैतृक परम्परा का आदर होता था । ब्राह्मणो को आदरणीय माना जाता था । उस समय तक गुणो को ही गौरव का चिह्न माना जाता था । व्यावहारिक दृष्टि से कर्ण सारथी का पुत्र था, किन्तु जातिगत विचार के आधार पर उसकी धनुर्विद्या की विशेषज्ञता को न्यून नही किया गया । जन्म से जाति प्रथा को पूर्णतया नही माना जाता था । दासी के पुत्र विदुर उस समय सम्मानित राजनीतिज्ञ थे । द्रोण

---

१ नारायण नमस्कृत्य नर चैव नरोत्तमम् ।
देवी सरस्वती चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

जन्म से ब्राह्मण थे, किन्तु कर्म से क्षत्रिय थे। धर्मव्याध और तुलाधर ब्राह्मण नहीं थे, परन्तु धर्मशास्त्र के प्रामाणिक आचार्य थे। यद्यपि वैराग्य भाव और परमात्मभक्ति को मुख्यता दी जा रही थी तथा वैदिक यज्ञों का महत्त्व कम हो रहा था, तथापि वैदिक यज्ञ और तपस्या का प्रचार था। जनमेजय, द्रुपद और युधिष्ठिर आदि के द्वारा किए गए वैदिक यज्ञ तथा अर्जुन की तपस्या से यह सिद्ध होता है। राजकुमारों को धनुर्विद्या की शिक्षा दी जाती थी। राजतन्त्र राजकीय प्रथा थी। द्यूत यद्यपि दुर्गुणों में माना जाता था, परन्तु वह प्रचलित था। स्वयम्वर की प्रथा थी। धनुर्विद्या में विशेषज्ञता से व्यक्ति योग्य पति होता था। राज-परिवारों में बहुविवाह की प्रथा थी। स्त्रियां पर्दा करती थीं। कुछ स्त्रियां पति के साथ सती भी होती थीं। महाभारत में मूर्तियों और मन्दिरों का उल्लेख नहीं है। विन्ध्यपर्वत के दक्षिण में चोल, पाण्ड्य, चेर, आन्ध्र आदि शिक्षित जातियां रहती थीं। दक्षिण भारत की यात्रा के समय अर्जुन कावेरी नदी के किनारे मनलूर नामक ग्राम में पहुंचे और वहां पर पाण्ड्य राजा की पुत्री से विवाह किया। महाभारत युद्ध के समय एक पाण्ड्य राजा पाण्डवों की ओर से लड़ा था। युधिष्ठिर ने जो राजसूय यज्ञ किया था, उसमें दक्षिण भारत, चीन, फारस तथा अन्य विदेशों के भी राजा आए थे। महाभारत के युद्ध में भी यवनों ने भाग लिया था। दुर्योधन के आदेश पर पुरोचन नामक म्लेच्छ ने लाक्षागृह बनाया था। इस प्रकार महाभारत प्राचीन भारतवासियों के धार्मिक और लौकिक जीवन के विषय में बहुमूल्य सूचनाओं से परिपूर्ण है। यह एक महाकाव्य है, धर्मशास्त्र है और मोक्षशास्त्र है।

हरिवंश महाभारत का ही परिशिष्ट है। इसके भी रचयिता व्यास हैं। इसमें १६४०० श्लोक हैं। इसके तीन भाग हैं। उनके नाम हैं--(१) हरिवंश-पर्व, इसमें कृष्ण के पूर्वजों का वर्णन है। (२) विष्णुपर्व, इसमें कृष्ण और उनके जीवनचरित का वर्णन है। (३) भविष्यपर्व, इसमें भविष्य के विषय में भविष्य-वाणियां हैं।

हरिवंशस्तत पर्वं पुराण खिलसंज्ञितम् ।
एतत्पर्वशत पूर्णं व्यासेनोक्त महात्मना ।।

महाभारत आदि० २, ८३–८४

महाभारत मे उपाख्यान बहुत हैं । पूरे महाभारत के लगभग ⅕ में उपाख्यान हैं । इनमे से कुछ गद्यमें हैं । उनकी भाषा से ज्ञात होता है कि उनमे से अधिकाश अधिक प्राचीन है । उनमें से प्रमुख उपाख्यान ये हैं —गगावतरण, ऋष्यशृग परशुराम, च्यवन, शिबि, दशरथ के पुत्र राम, सावित्री, नहुष, त्रिपुर-सहार, शकुन्तला, नल, ययाति और मत्स्य की कथाएँ । मत्स्य वाली कथा मे मत्स्य अपने आप को सृष्टि का कर्त्ता ब्रह्मा बताता है, न कि विष्णु ।

इसकी निम्नलिखित टीकाएँ है—(१) सबसे प्राचीन टीका **सर्वज्ञ नारायण** की है । वह १४वी शताब्दी मे हुए थे । यह टीका अपूर्ण है । (२) **अर्जुनमिश्र** की टीका । इसने सर्वज्ञ नारायण का उल्लेख किया है । १८७५ ई० मे कलकत्ता सस्करण के साथ यह प्रकाशित हुई है । (३) **नीलकंठ की टीका** । यह १६वी शताब्दी मे हुए हैं । यह महाराष्ट्र मे कूर्पर स्थान के रहने वाले थे । इनकी टीका मुद्रित रूप मे उपलब्ध है । महाभारत की अन्य बहुत-सी टीकाएँ हैं । बहुत से भारतीय विद्वानो ने इसकी आलोचना भी लिखी है । इनमे से **आनन्दतीर्थ** का **महाभारततात्पर्यनिर्णय** और **अप्पयदीक्षित** का **महाभारततात्पर्यसग्रह** विशेष प्रसिद्ध है ।

रामायण और महाभारत की तुलना

रामायण और **महाभारत** के अध्ययन से ज्ञात होता है कि किस प्रकार ये दोनो कुछ अशो मे बहुत समान हैं और कुछ अशो मे बहुत विषम हैं । भाषा की दृष्टि से महाभारत प्राचीन प्रतीत होता है, क्योकि इसके आख्यानक कुछ कम सस्कृत रूप मे हैं । ये आख्यानक व्यास के रचित नही हैं । इनके रचयिता कोई प्राचीन लेखक हैं । व्यास को ये जिस रूप मे प्राप्त हुए, उसी रूप मे उन्होंने उनको रख दिया है । महाभारत के पर्व अध्यायो मे विभक्त हैं

और रामायण के काण्ड सर्गों मे विभक्त हैं। अपने पूर्ण रूप में महाभारत विभिन्न विषयो का संग्रहमात्र प्रतीत होता है और रामायण एक सुसम्बद्ध एवं पूर्ण कथानक ज्ञात होता है। शैली की दृष्टि से महाभारत मे समानता नही है, किन्तु सरलता, ओज और प्रभावोत्पादकता है। रामायण की शैली सुन्दर, स्पष्ट और सुसंस्कृत है। इसमे काव्यगौरव विद्यमान है।

रामायण मे महाभारत की कथा का कही भी उल्लेख नही है, परन्तु महाभारत मे रामायण को कथा और वाल्मीकि का कई स्थानों पर उल्लेख है। इस पर रामायण का प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है।

रामायण और महाभारत दोनो के वर्णन मे समानता है। दोनों का प्रारम्भ राज-सभा मे होता है और उसके बाद प्राय समान काल के लिए वनवास का वर्णन आता है। वनवास के समय दोनों को ही एक ग्रामीण मुखिया से मित्रता होती है। तत्पश्चात् दोनो मे ही युद्ध के दृश्य आते हैं। ये दोनो ही महाकाव्य दु खान्त हैं। दोनो का उद्देश्य एक ही है—"अधर्म कुछ समय के लिए ही सफल हो सकता है, किन्तु अन्तिम विजय धर्म की ही होगी।" इन दोनों महाकाव्यो के रचयिता दोनों काव्यों के नायकों के समकालीन हैं और उनका उनसे सम्बन्ध भी है। ये दोनो ही महाकाव्य दोनों लेखकों के शिष्यों द्वारा अश्वमेध और राजसूय यज्ञ के समय सुनाए गए हैं।

रामायण मे केवल एक नायक है और महाभारत मे कई नायक है, जो कि मुख्यता की दृष्टि से समान हैं। रामायण के पात्र उच्च आदर्शों के पालक हैं। महाभारत के पात्र प्रतिक्रियावादी हैं। उन्हें उपदेश दिया जाता है कि वे उच्च आदर्शों का पालन करें, परन्तु वे पालन नही करते। नैतिकता का जो उच्च आदर्श सीता की अग्निपरीक्षा मे दृष्टिगोचर होता है, वह महाभारत मे केवल उल्लेख के रूप में आता है। उसका प्रयोग नही दीखता है। वाल्मीकि के समय मे जाति-प्रथा के कठोर नियमों का पालन होता था, परन्तु व्यास के समय मे यह प्रथा बहुत शिथिल हो गई थी। रामायण मे जीवन के दार्शनिक और धार्मिक स्वरूप पर ब्राह्मणत्व की छाप है और राम की दिव्यता पर बल

दिया गया है । महाभारत मे हिन्दुत्व के विभिन्न रूपो का दर्शन होता है, जैसे—एकेश्वरवाद, वहुदेवतावाद, अध्यात्मवाद और भौतिकवाद ।

रामायण मे स्वयवर के अवसर पर धनुर्विद्या सम्बन्धी परीक्षण सरल है, किन्तु महाभारत मे उसमे विशेष सुधार किया गया है और उसमे नवीनता लाई गई है। रामायण मे वानर और राक्षस अपनी माया-शक्ति का प्रयोग करते हुए युद्ध करते हैं, किन्तु महाभारत मे घटोत्कच को छोडकर अन्य सभी मनुष्य ही भाग लेते हैं। महाभारत मे प्राप्त होने वाले युद्ध के विभिन्न प्रकार एव क्रौंचव्यूह, मकरव्यूह, श्येनव्यूह, पद्मव्यूह आदि सेना-सचालन के ढग रामायण मे प्राप्त नही होते । रामायण मे सती-प्रथा का वर्णन नही है, किन्तु महाभारत मे है। रामायण के काल मे विदेशियो का प्रभाव नही था, किन्तु महाभारत के काल मे उनका प्रभाव दिखाई देता है । रामायण मे लका के अतिरिक्त अन्य किसी विदेश का उल्लेख नही है, किन्तु महाभारत मे कई अन्य देशो का उल्लेख है । रामायण के अनुसार दक्षिण भारत मे वन्य पशु ही अधिक रहते थे तथा कतिपय ऋषियो के आश्रम थे, परन्तु महाभारत के अनुसार वहाँ पर सभ्य मनुष्य रहते थे ।

रामायण और महाभारत दोनो इसी देश की रचना हैं। दोनो ग्रन्थो ने भारतीयो को युगो तक प्रभावित किया है । श्रेण्यकाल के सस्कृत कवियो ने इनको चेतना प्राप्ति का आधार-स्रोत माना है ।

अध्याय १०

पुराण

पुराण शब्द प्राचीन कथाओ के लिए आता है । ऐसी कथाओ के लिए पुराण शब्द के प्रयोग से ज्ञात होता है कि ये कथाएँ बहुत प्राचीन हैं । पुराण शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार दी गई है—

यस्मात् पुरा हि अनति इद पुराणम् ।

वायुपुराण १–२०३

वैदिक साहित्य मे पुराण शब्द इतिहास और आख्यान शब्द के साथ आता है। वैदिक काल मे भी सृष्टि की उत्पत्ति, वीरो, योद्धाओ और मुनियो के जीवन-चरित्र आदि लिखे गए थे । ये ही पुराण नाम से प्रचलित हुए । अधिक ग्रन्थो मे लेखक का नाम-निर्देश नही है । महाभारत मे पुराणो का उल्लेख है । महाभारत के अन्तिम पर्व मे पुराणो की सख्या भी दी हुई है । हरिवश मे भी पुराणो की सख्या का उल्लेख है । ऐसा कहा जाता है कि व्यास ने पुराणो का अध्ययन किया था और बाद मे जय महाकाव्य बनाया । कुछ पुराण, जिनमे ऐसे उपाख्यान हैं, महाभारत का उल्लेख करते हैं । ऐसे उपाख्यान महाभारत की रचना के बाद बने होगे । महाभारत के अतिरिक्त गौतम और आपस्तम्ब के धर्मसूत्र भी, जिनका समय ५०० ई० पू० के लगभग है, पुराणो का उल्लेख करते हैं ।

पुराणो का समय निश्चयपूर्वक कुछ नही कहा जा सकता है । इन पुराणो के कुछ स्थल बहुत प्राचीन है और कुछ बहुत नवीन हैं । कुछ पुराणो में राजवशावलियाँ दी गई हैं, उनमे हर्ष और ६०० ई० के बाद के राजाओ का उल्लेख नही है । अत यह कहा जा सकता है कि ५वी शताब्दी से पूर्व ये पुराण निश्चित रूप धारण कर चुके थे ।

भारतीय परम्परा के अनुसार पुराण मे पाँच बातें होनी चाहिए, अर्थात सृष्टि की उत्पत्ति, सृष्टि का सहार, देवो की वशावली, मन्वन्तरो का वर्णन तथा सूर्यवशी और चन्द्रवशी राजाओ का वर्णन ।

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वशो मन्वन्तराणि च ।
सर्वेष्वेतेषु कथ्यन्ते वशानुचरित च यत् ।।

विष्णुपुराण ३–६–२४

यह लक्षण उस समय बनाया गया होगा, जब उस समय विद्यमान पुराणो मे ये लक्षण प्राप्त होते होगे । इस काल के पश्चात् कुछ ऐसे भी विषय प्राय सभी पुराणो मे मिला दिए गए हैं, जिनका उपर्युक्त विषयो से कोई सम्बन्ध नही है । केवल विष्णुपुराण मे ही उपर्युक्त सब लक्षण घटते हैं । अन्य पुराणो मे पृथिवी, प्रार्थना, उपवास, पर्व और तीर्थयात्राओ का भी वर्णन मिलता है । कुछ पुराणो मे ज्योतिष, शरीरविज्ञान, औषधियाँ, व्याकरण और शस्त्रो के प्रयोग आदि विषयो का भी वर्णन है ।

पुराणो की मुख्य देन आस्तिकवाद का प्रबल समर्थन है । उनमे वहुत से देवताओ का वर्णन है । वे घोषित करते हैं कि सभी देवता समान हैं, परन्तु वे किसी एक देवता का महत्त्व स्थापित करते हैं । उनमे किसी एक विशेष देवता की उपासना वताई गई है, परन्तु अन्य देवता की उपासना का निषेध नही किया गया है । इस प्रकार वे एक देवता की उपासना पर वल देते हैं, परन्तु अन्य की अपेक्षा उसे मुख्य मानकर उपासना का निषेध करते हैं । पुराणो का धर्म वहुदेवतावादी कहा जा सकता है, परन्तु वह सर्वदेवता-वादी है ।

पुराण ऐतिहासिक दृष्टि से वहुत महत्त्वपूर्ण हैं, क्योकि उनमे जो सामग्री उपलब्ध होती है, उसके द्वारा प्राचीन भारत का इतिहास तैयार किया जा सकता है । उनमे शिशुनाग, नन्द, मौर्य, शुग, आन्ध्र, गुप्त आदि प्रमुख राजवशो का वर्णन मिलता है । इनमे प्रत्येक राजवश के लिए जितना समय दिया गया है, उनके समय मे समुचित अन्तर करने पर यह सम्भव है कि

पर्याप्त शुद्धता के साथ उनके समय आदि का निर्धारण किया जा सके। पुराणो में जो राजवशो का वर्णन है, उस पर अभी तक पाश्चात्य विद्वानो ने उचित ध्यान नही दिया है। उन्होने पुराणो मे ऐतिहासिक दृष्टि से उसी अश को स्वीकार किया है जो उनके लिए रुचिकर हुआ है और जो उनके लिए रुचिकर नही है, उसको काल्पनिक कथानक मानकर छोड़ दिया है। वास्तविक दृष्टि से पुराणो मे जो कुछ लिखा है, वह ऐतिहासिक सत्य मानना चाहिए।

भारतीय परम्परा के अनुसार जय महाकाव्य के रचयिता व्यास के पिता **पराशर** को **विष्णुपुराण** का लेखक माना जाता है और शेष १७ पुराणो के लेखक **व्यास** माने जाते हैं। १८ पुराण ये हैं —(१) **ब्रह्माण्ड** (२) **ब्रह्मवैवर्त** (३) **मार्कण्डेय** (४) **भविष्य** (५) **वामन** (६) **ब्रह्म** (७) **विष्णु** (८) **नारद** (९) **भागवत** (१०) **गरुड** (११) **पद्म** (१२) **वराह** (१३) **मत्स्य** (१४) **कूर्म** (१५) **लिंग** (१६) **शिव** (१७) **स्कन्ध** (१८) **अग्नि**। पुराणो में ही पुराणो के ये १८ नाम दिये हुए है। कुछ पुराणो में दी हुई सूची मे **शिवपुराण** के स्थान पर **वायुपुराण** के नाम का निर्देश है। पुराणो मे लेखको का भी निर्देश किया गया है। यह कहा जाता है कि व्यास के सामने उससे पूर्ववर्ती लेखको के लिखे हुए बहुत से पुराण विद्यमान थे। व्यास ने उनको प्रकाशित ही किया है। एक दूसरे पुराण का कथन है कि व्यास ने केवल एक ब्रह्मपुराण ही लिखा है, शेष १७ पुराण उसके शिष्यो ने लिखे हैं। यह भी कहा जाता है कि व्यास ने १८ पुराणो का सक्षिप्त अश लिखा है। विष्णुपुराण के अनुसार व्यास ने १८ पुराणो का सक्षिप्त रूप पुराणसहिता लिखी थी।

आख्यानैश्चोपाख्यानैर्गाथाभि कल्पशुद्धिभि ।
पुराणसहिता चक्रे पुराणार्थविशारद ॥

विष्णुपुराण ३–६–१५

शिवपुराण के एक श्लोक का कथन है कि पद्म और ब्रह्मपुराण ब्रह्मा के लिखे हुए हैं, तथा शिवपुराण शैलाली का लिखा हुआ है—

ब्राह्म तु ब्रह्मणा प्रोक्त पाद्म तेनैव शोभनम् ।
पराशरेण कथित वैष्णव मुनिपुगवा ।
शैव शैलालिना प्रोक्तम् ।

शिवपुराण

भविष्यपुराण का कथन है कि सब पुराणो मे कुल मिलाकर १२ सहस्र श्लोक थे । यह उचित है कि व्यास को १८ पुराणो का रचयिता माना जाए। ये १८ पुराण व्यास के पूर्ववर्ती १८ वृहत् पुराणो के सक्षिप्त रूप समझने चाहिए । व्यास के बाद पुराणो के ढग का साहित्य, जिसका अन्यत्र समावेश नही होता था, पुराणो के ही अन्दर समाविष्ट किया गया । ऐसे स्थलो के समावेश के समय प्रकरण आदि का भी उचित ध्यान नही दिया गया है। अतएव पुराण जिस रूप मे आज प्राप्त होते हैं, वे किसी विषय पर कोई निश्चित सूचना नही देते हैं। इस प्रकरण मे यह उल्लेख उचित है कि **शकराचार्य** ने विष्णुपुराण को छोडकर अन्य किसी भी पुराण से कोई उद्धरण नही दिया है । इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ६०० ई० से पूर्व यद्यपि अन्य पुराण विद्यमान थे, तथापि वे प्रामाणिक ग्रन्थो मे नही माने जाते थे । रामानुज के समय के वाद से ही ये पुराण प्रामाणिक माने जाने लगे है।

पुराण दो या अधिक व्यक्तियो के बीच मे वार्तालाप के रूप में है और इस रूप में ये महाभारत के समान है ।

पुराण स्वरूपत नीति ग्रन्थ है और लक्ष्य की दृष्टि से साम्प्रदायिक है । इनमें वहुत से अत्युपयोगी नीति और कर्त्तव्य सम्वन्धी उपदेश हैं । ये कर्त्तव्य शिक्षा के रूप मे दिए हैं। इन उपदेशो के लक्ष्य में अन्तर है। ये धार्मिक सम्प्रदायो के किसी विशेप वर्ग के मन्तव्यो को उपस्थित करते है। इसी विचार से इनको सात्विक, राजस और तामस तीन भेदो मे विभक्त किया गया है। विष्णु की भक्ति से सम्वद्ध विष्णु, नारद, भागवत, गरुड, पद्म और वराह ये ६ पुराण सात्विक पुराण माने गए हैं । ब्रह्मा की भक्ति से सम्वद्ध

ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, भविष्य, वामन और ब्रह्म ये ६ राजस पुराण माने गए है । शिव की भक्ति से सम्बद्ध मत्स्य, कूर्म, लिंग, शिव, स्कन्ध और अग्नि ये ६ तामस पुराण माने गए हैं । पुराणो का यह विभाजन इस बात को लक्ष्य में रखकर किया गया है कि हिन्दुओ के मुख्य तीनो देवताओ के नाम और पुराणो की सख्या समान हो । कुछ पुराण यद्यपि किसी विशेष देवता की भक्ति का प्रतिपादन करते हैं, तथापि वे लक्ष्य की दृष्टि से साम्प्रदायिक नही हैं । मार्कण्डेय और भविष्यपुराण सर्वथा साम्प्रदायिक नही हैं । ब्रह्मपुराण यद्यपि ब्रह्मा की भक्ति का प्रतिपादक है, तथापि उसमे सूर्य की भक्ति का भी वर्णन है । अतएव उपर्युक्त विभाजन पूर्णरूप से ठीक नही है ।

विष्णुपुराण के रचयिता पराशर है । यह विष्णु को अवतार मानता है और उनकी उपासना का वर्णन करता है । इसमे वैष्णवो द्वारा किए जाने वाले उपवास और अन्य आयोजनो का वर्णन नही है और न विष्णु के मन्दिर का ही वर्णन है । इसमे मौर्यवशी राजाओ का वर्णन है । यही एक पुराण है जिसमे पुराण के लक्षणो का पूर्णतया पालन किया गया है । नारदपुराण को बृहन्नारदीयपुराण भी कहते हैं । इसमे उत्सवो और पर्वों आदि का वर्णन है । इस पुराण के अनुसार मुक्ति समाधि और ईश्वर-भक्ति से प्राप्त होती है । भागवतपुराण में कृष्ण के जीवन का वर्णन है । इसमे १८ सहस्र श्लोक हैं । यह १२ स्कन्धो मे विभाजित है । इनमें से दशम स्कन्ध बहुत प्रचलित है । इसमे कृष्ण के पराक्रमो का वर्णन है । इस पुराण की बहुत-सी टीकाएँ हुई हैं और कई भारतीय भाषाओ मे इसका अनुवाद भी हुआ है । इस पुराण मे गौतम बुद्ध और कपिल मुनि को विष्णु का अवतार माना गया है । इसके अध्ययन से ज्ञात होता है कि यह सुसम्बद्ध रचना है । इसकी शैली कुछ स्थलो पर वैदिक काल की शैली से समता रखती है और कुछ स्थलो पर श्रेण्य-काल की शैली से । पुराणो मे यह सबसे अधिक प्रसिद्ध है । शंकराचार्य और रामानुज ने इस पुराण से कोई उद्धरण नहीं दिया है । इस आधार पर यह नही कहा जा सकता है कि यह पुराण ७०० ई० के लगभग नहीं था । विष्णु-

'पुराण प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता था, अत शकर और रामानुज ने विष्णु-पुराण से ही उद्धरण दिए हैं। उनका काम विष्णुपुराण से चल गया है, अत उन्होने अन्य पुराणो से उद्धरण लेने की आवश्यकता अनुभव नही की। **आनन्दतीर्थ** सर्वप्रथम लेखक है, जिन्होने इन पुराणो से उद्धरण दिए है और भागवतपुराण की टीका भी की है। **वोपदेव** (१३वी शताब्दी ई०) ने भागवत का परिशिष्ट **हरिलीला** लिखा है।

गरुडपुराण मे गणित और फलित ज्योतिष, औषधियाँ, व्याकरण, रत्नो के प्रकार और मूल्य तथा इस प्रकार के अन्य विषयो का वर्णन है, जिनका पुराण के लक्ष्य और उद्देश्य से कोई सम्वन्ध नही है। **पद्मपुराण** पाँच खडो मे विभाजित है। उनके नाम ये हैं—आदिखड, भूमिखड, पातालखड, सृष्टिखड और उत्तरखड। इस पुराण का नाम पद्म शब्द से पडा है, जिससे ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई है। इस पुराण मे राधा को कृष्ण की पत्नी होने का उल्लेख किया गया है। विष्णु और भागवतपुराण में राधा को कृष्ण की पत्नी होने का उल्लेख नही है। इसमे अन्य कथाओ के साथ ही शकुन्तला और राम की कथा भी है। इसमें दी हुई ये दोनो कथाएँ कालिदास के शाकुन्तल और रघुवश मे दी हुई कथाओ से अधिक मिलती हैं। रामायण और महाभारत मे दी हुई कथाओ से उतनी नही मिलती है। आलोचको का कथन है कि ये स्थल कालिदास के वाद के लिखे हुए हैं। **वराहपुराण** मे विष्णु का वराह के रूप मे अवतार होने का वर्णन है। इसमे मातृभूमि को देवता मानकर उसकी स्तुति भी की गई है।

ब्रह्माण्डपुराण उपाख्यानो और तीर्थ-माहात्म्यो आदि का सग्रहमात्र है। इसमे पुराणो मे वर्णन वाली वातें कम हैं। इसमे सात खण्डो मे अध्यात्म-रामायण दी हुई है। यह महाभारत आदि के तुल्य शिव और पार्वती के सवाद के रूप मे लिखा गया है। इसका कथन है कि अद्वैत-वुद्धि और राम-भक्ति से मोक्ष प्राप्त होता है। **ब्रह्मवैवर्तपुराण** का मत है कि सम्पूर्ण सृष्टि ब्रह्म की मायामात्र है। अतएव इसका नाम वैवर्त रक्खा गया है। इसके चार

खड हैं—ब्रह्मखड, प्रकृतिखड, गणेशखड, और कृष्णजन्मखड। कृष्ण के आदेशानुसार प्रकृति दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री और राधा के रूप मे परिवर्तित होती है। इसमें शिव के पुत्र गणेश को कृष्ण का अवतार माना गया है। **मार्कण्डेयपुराण** मे इन्द्र, ब्रह्मा, अग्नि और सूर्य को मुख्यता दी गई है। इसमे महाभारत के पात्रों के आचार-विचार पर किए गए प्रश्नो का उत्तर दिया गया है। इसमे देवी दुर्गा की प्रशसा मे देवी-माहात्म्य दिया हुआ है। **भविष्यपुराण** मे भविष्य के विषय मे भविष्यवाणियाँ हैं। इसमे चारो वर्णों के कर्तव्यो और सूर्य, अग्नि तथा नागदेवो की पूजा का वर्णन है। इसी पुराण का परिशिष्ट **भविष्योत्तरपुराण** है, जिसमे धार्मिक कार्यो को विधि दी हुई है। **वामनपुराण** विष्णु के वामन रूप मे अवतार का वर्णन करता है। इसमे लिग की पूजा का वर्णन है। इसमे शिव और पार्वती के विवाह का भी वर्णन है। **ब्रह्मपुराण** का दूसरा नाम **आदिपुराण** है। इसका लेखक व्यास को माना जाता है। इसमे उडीसा के तीर्थों का महत्त्व वर्णित है। इसमे सूर्य को शिव कहा गया है और उसकी महत्ता का वर्णन किया गया है। इसका एक परिशिष्ट भी है। उसे **सौरपुराग** कहते हैं। इस पुराण मे पुरी के समीप कोणार्क मे १२४१ ई० के वाद वने हुए सूर्य-मन्दिर का उल्लेख है।

मत्स्यपुराण मे पर्वो, तीर्थों, शकुन, शैवो और वैष्णवो के द्वारा माने जाने वाली विधियो का वर्णन है। इसमे दक्षिण भारत, नाट्यशास्त्र, जैनधर्म, वौद्धधर्म, नरसिह आदि उपपुराणो और आन्ध्र वशावली का उल्लेख है। इसमे भवन-निर्माण, दक्षिणभारतीय वास्तुकला और मूर्तिकला का वर्णन है। **कूर्मपुराण** की पहले चार सहिताएँ थी, परन्तु अव इसमे केवल एक ब्राह्मीसहिता है। इसमे ६ सहस्र श्लोक हैं। इसमे शिव के अवतार का वर्णन है। इसमे ईश्वरगीता और व्यासगीता है। इन दोनो गीताओ के अनुसार समाधि और कर्तव्य-पालन ज्ञान-प्राप्ति के साधन हैं। **लिगपुराण** शिव के २८ अवतारो का वर्णन करता है। इसमे धार्मिक विधियो का वर्णन है। **शिवपुराण** अपने विशाल ग्रन्थ वायुपुराण का एक भाग माना जाता है। इसमे १२ सहस्र श्लोक

हैं। महाभारत और हरिवंश में इसका उल्लेख आता है। **बाण** (६०० ई०) ने अपने ग्राम मे **वायुपुराण** के पाठ का वर्णन किया है। इसमे बौद्ध और जैन धर्म का उल्लेख नही है। इसमे गुप्त साम्राज्य का उल्लेख है। इसमे एक अध्याय सगीत विषय पर भी है। इस पुराण का अधिकाश भाग ५०० ई० पू० से पूर्व लिखा हुआ माना जाता है। **स्कन्दपुराण** मे पाँच सहिताएँ हैं। उनके नाम हैं—सनत्कुमारीय, ब्राह्मी, वैष्णवी, शकर या अगस्त्य और सौर। इनके अतिरिक्त काशीखण्ड नामक ५० छोटे अध्याय हैं। इनमे बनारस और उसके समीपवर्ती मन्दिरो का वर्णन है। इनमे **सूतसहिता** बहुत प्रसिद्ध है। इसमे शिवभक्ति का वर्णन है। **माधवाचार्य** (१३५० ई०) ने इस पर **तात्पर्यदीपिका** नाम की टीका लिखी है। सम्पूर्ण पुराण मे ८ सहस्र से अधिक श्लोक है। **अग्निपुराण** का वर्णन विश्वकोश के रूप मे है और यह अग्नि के द्वारा वसिष्ठ को बताया गया है।

देवीभागवत भी इन पुराणो मे से एक पुराण माना जाता है। पुराणो मे भागवत के स्थान पर इसका नाम आता है। यह शिव की प्रिया देवी पार्वती की प्रशसा मे लिखा गया है। **योगवासिष्ठ** दार्शनिक ग्रन्थ है। यह ६ प्रकरणो मे विभक्त है। यह भी पुराण के तुल्य है।

उपर्युक्त १८ पुराणो के अतिरिक्त १८ उपपुराण भी हैं। इन सबके लेखक व्यास माने जाते हैं। इनमे कर्मकाण्ड की विधियाँ अधिक हैं, कथा आदि का अश कम है। इनमे से अधिक के नाम वही हैं, जो मुख्य पुराणो के हैं। इनमे से **कालिकापुराण** विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह काली का विभिन्न रूपो मे वर्णन करता है और काली को समर्पण किए जाने वाले जीवो और मनुष्यो की बलि का वर्णन करता है।

इनके अतिरिक्त और भी ग्रन्थ हैं जो पुराणो के रूप मे हैं, परन्तु उनकी गणना पुराणो मे नही है। उनमे से **विष्णुधर्मोत्तर** काश्मीरी वैष्णव धर्म का

वर्णन करता है। **नीलमतपुराण** काश्मीरी नागो के धार्मिक नेता राजा नील के सैद्धान्तिक उपदेशो का वर्णन करता है। इसमे काश्मीर के इतिहास का भी वर्णन है **वृहद्धर्मपुराण** का मत है कि कपिल, वाल्मीकि, व्यास और बुद्ध ये विष्णु के अवतार है। नैपाल की राजवंशावली का भी वर्णन पौराणिक साहित्य मे प्राप्त होता है।

अध्याय ११

काव्य-साहित्य का काल

कालिदास से पूर्व का काल

काव्य-साहित्य का काल रामायण और महाभारत के काल से बहुत अधिक मिला हुआ है। काव्य शब्द का अर्थ है कवि की कोई भी रचना। अत काव्य के अन्तर्गत पद्य, गद्य, कथा, आख्यायिका, गीति और नाटक आदि सभी हैं। यह शब्द योगरूढि के आधार पर कविता का अर्थ बोधित करता है। अन्य अर्थों मे इसका प्रयोग निषिद्ध नही है।

कवियो और उनके ग्रन्थो के विपय मे पूर्ण सूचना न प्राप्त होने के कारण उनका समय आदि निश्चित रूप से निर्धारित नही किया जा सकता है। अतएव यह भी सभव हुआ कि विभिन्न कवियो ने अपनी रचनाएँ किसी विशेष कवि के नाम से प्रसिद्ध कर दी और अपना नाम नही दिया। इसीलिए एक कवि के नाम से प्राप्य ग्रन्थो की शैली और भाषा आदि मे महान् अन्तर प्राप्त होता है। कतिपय ग्रन्थो के लेखक का नाम निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता है, इसका कारण वताना सम्भव है। इस काल मे कोई भी रचना तभी मान्यता प्राप्त कर सकती थी, जब उस समय के प्रसिद्ध आलोचक उस रचना का समर्थन कर देते थे। जिन रचनाओ का वे आलोचक समर्थन नही करते थे, वे रचनाएँ नष्ट हो जाती थी या भुला दी जाती थी। अत साहित्य के प्रत्येक विभाग मे जो उत्कृष्ट रचना होती थी, वही शेष रहने पाती थी। इसका परिणाम यह हुआ कि कुछ रचनाएँ नष्ट हो गईं। अत साधारण कोटि के कवियो ने अपनी रचना को नष्ट होने से वचाने का यह उपाय निकाला कि अपनी रचना को किसी श्रेष्ठ कवि के नाम से प्रचलित किया और इस प्रकार आलोचको की घोर आलोचना से वे वच सके।

इस काल मे जो काव्य लिखे गए, उनमे साहित्यशास्त्रियो द्वारा निर्धारित कतिपय नियमो का पालन करना आवश्यक था। महाकाव्य का प्रारम्भ मगलाचरण या इसी प्रकार के अन्य भाव से होना चाहिए। महाकाव्य सर्गों मे विभक्त होना चाहिए और प्रत्येक सर्ग का अन्तिम श्लोक सर्ग मे प्रयुक्त हुए छन्द से पृथक् छन्द मे होना चाहिए। इसमे नगरो, समुद्रो, पर्वतो, ऋतुओ, सूर्योदय, सूर्यास्त, चन्द्रोदय, चन्द्रास्त, विवाह, युद्ध, विप्रलम्भ शृङ्गार तथा मदिरापान आदि का वर्णन होना चाहिए। इनमे से कवि कोई भी वर्णन अपना सकता है और उसका सुन्दर ढग से वर्णन कर सकता है।

कालिदास से पूर्व का समय अन्धकारमय है। कालिदास ने अपने काव्य-सौन्दर्य के लिए विभिन्न छन्दो और अलकारो का जो वडी चतुरता से उपयोग किया है उससे ज्ञात होता है कि कालिदास से पूर्व काव्य-साहित्य वहुत उन्नत अवस्था मे था। कालिदास के द्वारा उसको पूर्णता प्राप्त हुई है। कालिदास के पूर्ववर्ती कवियो मे वाल्मीकि हैं। उनको आदि-कवि कहना उपयुक्त है। वे लौकिक काव्य के जन्मदाता हैं। उनको रचना रामायण, जो कि आदि काव्य है, आज तक विद्यमान है। यह सभव ज्ञात होता है कि वाल्मीकि को आदर्श मानकर वाद की रचनाएँ हुई हैं। महाकाव्य के जो लक्षण किए गए है, वे रामायण और महाभारत की विशेषताओ को आधार मान कर ही किए गए हैं। सुभाषित ग्रन्थो से ज्ञात होता है कि पाणिनि ने पातालविजय और जाम्ववतीविजय नामक काव्य लिखे हैं। पाणिनि का एक सुन्दर श्लोक इस प्रकार है—

गतेऽर्धरात्रे परिमन्दमन्द
गर्जन्ति यत्प्रावृषि कालमेघा।
अपश्यती वत्समिवेन्दुविम्व
तच्छर्वरी गौरिव हुकरोति ॥

पतजलि के महाभाष्य से ज्ञात होता है कि वररुचि अर्थात् कात्यायन ने भी एक काव्य लिखा था। पिंगल, जिनका दूसरा नाम पिंगलनाग है, ने छन्दशास्त्र पर छन्दसूत्र लिखा है। उनका समय वैदिक काल के वाद मानना

चाहिए । उन्होंने छन्दो के जो नाम रक्खे हैं, वे स्त्रियो के नाम के समान हैं। उन्होने छन्द का लक्षण और उदाहरण एक ही श्लोक मे दिया है अर्थात् वही श्लोक छन्द का लक्षण है और वही उसका उदाहरण भी है। उनके दिए हुए छन्दो के नाम हैं—चचलाक्षिका, कुटिलगति आदि । इससे ज्ञात होता है कि कालिदास से पूर्व काव्य-साहित्य पर्याप्त उन्नत अवस्था मे था । कालिदास के काव्य-ग्रन्थो के असाधारण उत्कर्ष और मनोरमता ने उससे पूर्ववर्ती कवियो की रचनाओ को सर्वथा समाप्त कर दिया है।

अध्याय १२

काव्य-साहित्य

कालिदास

संस्कृत-कवि-शिरोमणि महाकवि **कालिदास** के विषय मे निश्चित रूप से कुछ भी ज्ञात नही है। उसके जीवन के सम्बन्ध मे बहुत-सी कथाएँ प्रचलित हैं। एक कथा के अनुसार वह महामूर्ख था। उसका विवाह एक सुयोग्य कला-प्रवीण राजकुमारी से हुआ। उसके प्रबोधन पर उसने देवी काली की उपासना की और उसके वरदान से उसे कवित्व-शक्ति प्राप्त हुई। तदनन्तर उसने अपने काव्यग्रन्थ बनाए। एक अन्य कथा उसका सम्बन्ध लका के राजा **कुमारदास** (५०० ई०) से बताती है। कालिदास भ्रमणार्थ लका गए थे। वही पर उनका परिचय वहाँ के राजा से हुआ। राजा कालिदास की काव्य-प्रतिभा से प्रसन्न होकर उन्हें बहुमूल्य वस्तुएँ प्रदान करना चाहते थे। वहाँ की एक वेश्या उन वस्तुओ को राजा से प्राप्त करना चाहती थी, अत धन के लोभ मे उसने कालिदास की मृत्यु कराई। इस प्रकार कालिदास का देहान्त लका मे हुआ। अन्य परम्परा के अनुसार वह धारा के **राजा भोज** का आश्रित कवि था। इन सब कथाओ और विचारो को सत्य नही माना जा सकता है, क्योकि ऐसा मानने मे समय-सम्बन्धी कठिनाई मुख्य रूप से आती है। ये कथाएं कालिदास के समर्थको और प्रशसको द्वारा बनाई हुई समझनी चाहिए। धारा के राजा भोज (१००५-१०५४ ई०) का आश्रित कवि **परिमल** था। इसी का दूसरा नाम **पद्मगुप्त** है। उसकी मनोहर शैली कालिदास की शैली मे मिलती हुई थी। अत उसको कालिदास या परिमल कालिदास की उपाधि दी गई थी। सम्भवत भ्रमवश **परिमल** को ही वास्तविक कालिदास समझ लिया गया। अतएव **राजा भोज** का आश्रित कवि कालिदास को माना जाने लगा।

कालिदास का समय निश्चित करने के लिए कोई भी वाह्य या अन्त -साक्ष्य निश्चित रूप से उपलब्ध नही है। तथापि उसका समय ४७२ ई० के शिलालेख के बाद नही है। इस शिलालेख का रचयिता **वत्सभट्टि** है। इसकी कविता पर कालिदास के **मेघदूत** का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। वाण (६०० ई०) ने कालिदास का वहुत आदरपूर्वक उल्लेख किया है। ६३४ ई० के **ऐहोल** के शिलालेख मे कालिदास का नामोल्लेख है। अत कालिदास का समय ४०० ई० के बाद नही रखा जा सकता है।

भारतीय परम्परा के अनुसार कालिदास **राजा विक्रमादित्य** का आश्रित कवि था। यह परम्परा नवीन ज्योतिष के ग्रन्थ **ज्योतिर्विदाभरण** के एक श्लोक के आधार पर है। वह श्लोक है—

धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंह–शकु –वेतालभट्टघटकर्परकालिदासा ।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपते सभाया, रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य ।।

इस पद्य के अनुसार धन्वन्तरि, क्षपणक, अमरसिंह, शकु, वेतालभट्ट, घटकर्पर, कालिदास, वराहमिहिर और वररुचि ये राजा विक्रामादित्य के **नवरत्न** थे। इनमे से क्षपणक, शकु और वेतालभट्ट ये अब नाममात्र ही हैं। धन्वन्तरि, वररुचि और घटकर्पर कौन हैं, इसका निश्चय नही हुआ है। **अमरसिंह अमरकोश** के रचयिता के रूप मे प्रसिद्ध हैं। उसका समय निश्चित नही है, परन्तु वह ४०० से ६०० ई० के वीच मे रहा होगा। **वराहमिहिर** एक ज्योतिर्विद् है। इनका देहान्त ५८७ ई० मे हुआ है। अत इस श्लोक के आवार पर यह सिद्ध नही किया जा सकता है कि उपर्युक्त नवो व्यक्ति सम-कालीन हैं। इससे केवल यही सिद्ध होता है कि कालिदास राजा विक्रमादित्य का आश्रित कवि था। परन्तु विक्रमादित्य का समय निश्चय करना वहुत कठिन है।

ज्योतिर्विदाभरण के इस श्लोक के आवार पर कालिदास के समय के विपय मे वहुत से मन्तव्य उपस्थित किए गए हैं। यह प्रयत्न किया गया कि

कालिदास का सम्वन्ध ऐसे राजा से स्थापित किया जाय, जिसकी उपाधि विक्रमादित्य हो। कम से कम ऐसे चार राजा हैं, जिनकी उपाधि विक्रमादित्य है। वे हैं—(१) उज्जैन के राजा विक्रामादित्य, जिन्होने ५६ ई० पू० मे विक्रम सवत् की स्थापना की है, (२) चन्द्रगुप्त द्वितीय (३५७-४१३ ई०), (३) कुमारगुप्त प्रथम (४१३-४५५ ई०), (४) कश्मीर का विक्रमादित्य (५०० ई०)। भारतीय परम्परा के अनुसार कालिदास उस विक्रमादित्य का आश्रित कवि था, जो ईसा से पूर्व हुआ है। पाश्चात्य विद्वान् उस विक्रमादित्य को काल्पनिक व्यक्ति मानते हैं। ईसा से पूर्व विक्रमादित्य नामक राजा का होना नि सन्दिग्ध है। प्रथम शताब्दी मे उत्पन्न सातवाहन ने अपनी पुस्तक गाथासप्तशती[1] मे विक्रम राजा का उल्लेख किया है तथा विक्रम सवत् की स्थापना से सिद्ध होता है कि ईसा से पूर्व प्रथम शताब्दी मे विक्रमादित्य नामक राजा हुआ है। पाश्चात्त्य विद्वान् कालिदास का सम्वन्ध गुप्त महाराजा चन्द्रगुप्त द्वितीय और कुमारगुप्त प्रथम से स्थापित करते है। इस प्रकार कालिदास के विषय मे दो प्रमुख मत हैं।

कालिदास के ग्रन्थो मे उपलब्ध कतिपय तथ्यो के आधार पर कुछ विद्वानो ने कालिदास का समय ४०० ई० या ५०० ई० निर्धारित करने का प्रयत्न किया है। वे मेघदूत मे आए हुए 'दिङ्नागानाम्'[2] प्रयोग से बौद्ध-दार्शनिक दिङ्नाग (४०० ई०) का उल्लेख समझते हैं। उनके मतानुसार दिङ्नाग कालिदास का विरोधी था। इसी आधार पर वे कालिदास का समय ४०० ई० के लगभग मानते हैं। यह युक्ति सर्वथा अयुक्त है। इसका कोई आधार या प्रमाण प्रस्तुत नही किया गया है कि हिन्दू कवि कालिदास और बौद्ध-दार्शनिक दिङ्नाग मे वस्तुत कोई विरोध था। कुछ भारतीय विद्वान 'दिङ्नागानाम्' से कुन्दमाला नाटक के लेखक हिन्दू कवि दिङ्नाग का उल्लेख समझते हैं। कुछ

---

१ सातवाहन कृत गाथासप्तशती ६-५४।

२ कालिदास—मेघदूत, पूर्व० १४।

व्यक्ति कुन्दमाला के लेखक का नाम धीरनाग मानते हैं । अत इस नाटक के लेखक के विषय मे निर्णय करने मे कठिनाई उपस्थित होती है। इस नाटक के लेखक दिङ्नाग को कवि-प्रतिभा के आधार पर कालिदास का प्रतिद्वन्द्वी माना जाय तो उचित प्रतीत होता है । इस शब्द के आधार पर कोई निर्णय नही किया जा सकता है, क्योकि इसे व्यक्तिवाचक मानने का कोई प्रमाण नही है । इस शब्द का श्लोक में वास्तविक अर्थ है—दिग्गज ।

कुछ पाश्चात्त्य विद्वान् कालिदास के द्वारा प्रयुक्त 'जामित्र'[1] शब्द के आधार पर उसका समय ५०० ई० के लगभग मानते है । उनका मन्तव्य है कि सर्व-प्रथम ज्योतिप के यूनानी पारिभाषिक शब्दो का प्रयोग आर्यभट्ट (५०० ई०) ने किया है और यह जामित्र शब्द कालिदास ने आर्यभट्ट से लिया है । यह शब्द यूनानी शब्द डाएमेट्रन का ही परिवर्तित रूप है। यहाँ पर यह बात ध्यान देने योग्य है कि अश्वघोष (१०० ई०) के काव्य मे भी उन्हें इस प्रकार के यूनानी शब्दो के परिवर्तित रूप मिले हैं, परन्तु वे इस आधार पर उसका समय बाद का नही मानते । उसी प्रकार के शब्द कालिदास ने प्रयुक्त किए हैं, परन्तु वे कालिदास का समय ५०० ई० से पूर्व रखने को उद्यत नही हैं । इससे स्पष्ट है कि उनके निर्णय कितने पक्षपातपूर्ण हैं । इन शब्दो की उत्पत्ति और प्रयोग के विपय मे यह स्मरण रखना उचित है कि बोधायन (५०० ई० पू०) ने अपने गृह्यसूत्रो मे इन शब्दो का प्रयोग किया है और इन शब्दो पर यूनानी शब्दो का कोई प्रभाव नही है। अत कालिदास के समय के निर्धारण मे उपर्युक्त युक्ति असार ही है ।

पाश्चात्त्य आलोचको ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि कालिदास विक्रमादित्य उपाधिधारी किसी गुप्त महाराजा का आश्रित कवि था । शिला-लेखो से ज्ञात होता है कि वे विद्या के उन्नतिकर्ता थे । उनका मत है कि कुमारसभव और विक्रमोर्वशीय मे कुमार और विक्रम शब्द कुमारगुप्त और

१ कुमारसम्भव सर्ग ७-१ ।

गुप्त महाराजाओ की उपाधि विक्रमादित्य की ओर सकेत करते हैं। उनकी यशोवृद्धि के लिए कालिदास ने ग्रथ-नाम मे उनको स्थान दिया है। कालिदास ने रघु के दिग्विजय का जो वर्णन किया है वह समुद्रगुप्त (३५० ई०) के दिग्विजय को ही लक्ष्य मे रखकर किया है। कालिदास के समय तक लोगो को समुद्रगुप्त की दिग्विजय का पूर्ण स्मरण रहा होगा। रघु का हूणो को हराने का जो उल्लेख है, वह स्कन्दगुप्त (४५५ ई०) के हूणो के हराने के आधार पर है।

पाश्चात्त्य आलोचको ने कालिदास को गुप्त राजाओ के साथ सम्बद्ध करने का जो प्रयत्न किया है, वह निराधार है। उनका मत है कि सस्कृत भाषा की पुन उन्नति का श्रेय गुप्त राजाओ को है। उन्होने कवियो को आश्रय दिया। उनका समय भारतीय इतिहास मे स्वर्ण-युग है। किन्तु यहाँ पर यह विचारणीय है कि विद्या-विषयक उन्नति के सम्वन्ध मे भारतवर्ष गुप्त राजाओ को स्मरण नही करता है। इस विषय मे भोज और विक्रमादित्य का नाम ही मुख्य रूप से लिया जाता है। इस विषय मे पाश्चात्त्य आलोचको की अपेक्षा भारतीय विद्वानो की सम्मति अधिक मान्य है, क्योकि वे इस विषय को अधिक घनिष्ठता के साथ जानते है। यदि गुप्त राजा विक्रमादित्य और भोज के तुल्य सस्कृत के उन्नायक होते तो उनका भी नाम उसी आदर के साथ स्मरण किया जाता। अत. कालिदास के विषय मे गुप्त राजाओ का जो मत पाश्चात्त्य विद्वानो ने रक्खा है, वह उनका ही आविष्कार है, इसमे सत्यता कुछ नही है।

पाश्चात्त्य आलोचको ने जो प्रमाण उपस्थित किया है, उससे यह कदापि सिद्ध नही होता कि कालिदास गुप्त-काल मे उत्पन्न हुए थे। कुमारसम्भव और विक्रमोर्वशीय नामो मे ऐसी कोई अपूर्व वात नही रक्खी गई है, जिससे यह निष्कर्ष निकाला जाय कि इनमें गुप्त राजाओ का सकेत है। कुमार शव्द शिव के पुत्र कार्त्तिकेय के अर्थ मे अत्यन्त प्रसिद्ध शव्द है। विक्रम शव्द का अर्थ है पराक्रम। **विक्रमोर्वशीय** का अर्थ है कि जिस नाटक मे उर्वशी को

राजा पुरूरवा ने अपने पराक्रम के द्वारा जीता है। दिग्विजय-यात्रा के समय समुद्रगुप्त को कावेरी नदी के तट पर पाण्ड्य राजा ने पीछे हटा दिया था, अत समुद्रगुप्त की दिग्विजय-यात्रा रघु की दिग्विजय-यात्रा के लिए आदर्श नही हो सकती है । कालिदास के अनुसार रघु ने कावेरी के नीचे भी प्राय सपूर्ण दक्षिण भारत पर विजय प्राप्त की । हूण २य शताब्दी ई० पू० से भारत के पश्चिमी भाग मे विद्यमान थे, अत रघुवश मे हूण शब्द के प्रयोग से यह सिद्ध नही किया जा सकता है कि कालिदास गुप्त-काल मे थे ।

कालिदास को प्रथम शताब्दी ई० से बहुत बाद का सिद्ध करने के लिए एक और प्रमाण उपस्थित किया जाता है । बौद्ध दार्शनिक और कवि **अश्वघोष** प्रथम शताब्दी ई० में हुआ है । इसके दोनो ग्रन्थो **बुद्धचरित** और **सौन्दरनन्द** के कुछ वाक्य और वर्णन कालिदास के ग्रन्थो के वर्णनो से मिलते है । अश्वघोष ने बुद्ध का राजमार्ग पर निकलने का जो वर्णन किया है, वह कालिदास के कुमारसम्भव मे शिव के और रघुवश मे अज के राजमार्ग पर निकलने के वर्णन से बहुत अशो में समान है । इससे ज्ञात होता है कि कालिदास ने अश्वघोष से ये वर्णन लिए हैं ।

यह विचार भी मान्य नही है । इन दोनो कवियो के ग्रन्थो मे समानता अवश्य है । परन्तु इससे यह सिद्ध नही होता है कि कालिदास ने उपर्युक्त वर्णन अश्वघोष से लिया है । गौतम बुद्ध दिन मे साधारण रूप मे राजमार्ग पर जा रहे हैं । इस प्रसग मे अश्वघोष ने लिखा है कि स्त्रियां अपनी नीद से उठी और अपने केशादि-प्रसाधन की ओर ध्यान न देकर सहसा बुद्ध के दर्शनार्थ खिडकी पर जाती हैं । यहां पर इस प्रसग मे उनकी निद्रा, शृङ्गार और बुद्ध-दर्शन की अभिलाषा इस बात को प्रकट करती है कि यह वर्णन अप्रासगिक है और अन्य किसी ग्रन्थ से लिया गया है । कालिदास के ग्रन्थो मे यह वर्णन उन्ही शब्दो मे दुहराया गया है । यदि कालिदास ने यह वर्णन अन्य किसी ग्रन्थ से उद्धृत किया होता तो वह इसको दो स्थलो पर उसी रूप मे रखने

का साहस न करता। कोई भी व्यक्ति चोरी की वस्तु का प्रदर्शन नही करता। इसके अतिरिक्त कतिपय अप्रचलित व्याकरण सम्वन्वी प्रयोग जो कलिदास के ग्रन्थो मे आए हैं, उनका प्रयोग अश्वघोष के ग्रन्थो मे वार-बार आया है। इससे ज्ञात होता है कि अश्वघोष ने ही कालिदास से भाव लिए हैं, न कि कालिदास ने अश्वघोष से।

यदि **अश्वघोष** कालिदास से पूर्ववर्ती प्रतिष्ठित कवि था और कालिदास ने उससे भावादि लिए हैं तो वाद के कवि भी उसका आदरपूर्वक उल्लेख करते। परन्तु किसी भी कवि ने अश्वघोष का न नामोल्लेख किया है और न उसकी शैली का अनुसरण ही किया है। यह नही माना जा सकता है कि कालिदास ने अश्वघोष का अनुकरण किया और उससे अधिक योग्य हो गए, क्योकि यदि कालिदास को परकालीन माना जाय तो उसके लिए **वत्सभट्टि** आदर्श कवि हो सकता था। तथ्य यह है कि अश्वघोष मुख्य रूप से एक दार्शनिक था और गौण रूप से कवि। अत उसने अपने काव्य के लिए एक प्रसिद्ध कवि को आदर्श रक्खा होगा। उसके काव्यो को देखने से ज्ञात होता है कि उसका आदर्श कवि कालिदास ही है। अश्वघोष का समय प्रथम शताव्दी ई० है, अत कालिदास का समय प्रथम शताब्दी ई० पू० मानना उचित है।

कालिदास का यह समय मानने के समर्थन मे कतिपय साक्ष्य उसके ग्रन्थो से उपलब्ध होते हैं। उसने दाश्वान्, विश्रामहेतो, पेलव, त्रियम्वक, आस आदि शब्दो का प्रयोग किया है। कुछ धातुओ के लिट् लकार के पूर्णरूप को दो भागो मे विभक्त किया है। जैसे—'त पातया प्रथममास पपात पश्चात्।' पाणिन के व्याकरण के अनुसार यह प्रयोग शुद्ध नही है। इससे ज्ञात होता है कि कालिदास उस समय जीवित थे, जव पाणिनि और पतजलि के नियम पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित नही हुए थे। अत कालिदास का समय प्रथम शताब्दी ई० पू० ही ज्ञात होता है।

शाकुन्तल नाटक मे धीवर को चोरी के अपराध में कठोर दण्ड तथा उत्तराधिकार के नियम का जो रूप प्राप्त होता है, उससे ज्ञात होता है कि

राजा पुरूरवा ने अपने पराक्रम के द्वारा जीता है। दिग्विजय-यात्रा के समय समुद्रगुप्त को कावेरी नदी के तट पर पाण्ड्य राजा ने पीछे हटा दिया था, अत समुद्रगुप्त की दिग्विजय-यात्रा रघु की दिग्विजय-यात्रा के लिए आदर्श नही हो सकती है । कालिदास के अनुसार रघु ने कावेरी के नीचे भी प्राय सपूर्ण दक्षिण भारत पर विजय प्राप्त की । हूण २य शताब्दी ई० पू० से भारत के पश्चिमी भाग मे विद्यमान थे, अत रघुवश मे हूण शब्द के प्रयोग से यह सिद्ध नही किया जा सकता है कि कालिदास गुप्त-काल मे थे ।

कालिदास को प्रथम शताब्दी ई० से बहुत बाद का सिद्ध करने के लिए एक और प्रमाण उपस्थित किया जाता है । बौद्ध दार्शनिक और कवि **अश्वघोष** प्रथम शताब्दी ई० में हुआ है । इसके दोनो ग्रन्थो **बुद्धचरित** और **सौन्दरनन्द** के कुछ वाक्य और वर्णन कालिदास के ग्रन्थो के वर्णनो से मिलते हैं । अश्वघोष ने बुद्ध का राजमार्ग पर निकलने का जो वर्णन किया है, वह कालिदास के कुमारसम्भव मे शिव के और रघुवश मे अज के राजमार्ग पर निकलने के वर्णन से बहुत अशो में समान है । इससे ज्ञात होता है कि कालिदास ने अश्वघोष से ये वर्णन लिए हैं ।

यह विचार भी मान्य नही है । इन दोनो कवियो के ग्रन्थो मे समानता अवश्य है । परन्तु इससे यह सिद्ध नही होता है कि कालिदास ने उपर्युक्त वर्णन अश्वघोष से लिया है । गौतम बुद्ध दिन मे साधारण रूप मे राजमार्ग पर जा रहे हैं । इस प्रसग मे अश्वघोष ने लिखा है कि स्त्रियां अपनी नीद से उठी और अपने केशादि-प्रसाधन की ओर ध्यान न देकर सहसा बुद्ध के दर्शनार्थ खिडकी पर जाती हैं । यहां पर इस प्रसग मे उनकी निद्रा, शृङ्गार और बुद्ध-दर्शन की अभिलाषा इस बात को प्रकट करती है कि यह वर्णन अप्रासगिक है और अन्य किसी ग्रन्थ से लिया गया है । कालिदास के ग्रन्थो मे यह वर्णन उन्ही शब्दो मे दुहराया गया है । यदि कालिदास ने यह वर्णन अन्य किसी ग्रन्थ से उद्धृत किया होता तो वह इसको दो स्थलो पर उसी रूप मे रखने

का साहस न करता। कोई भी व्यक्ति चोरी की वस्तु का प्रदर्शन नही करता। इसके अतिरिक्त कतिपय अप्रचलित व्याकरण सम्बन्धी प्रयोग जो कलिदास के ग्रन्थो मे आए हैं, उनका प्रयोग अश्वघोष के ग्रन्थो मे बार-बार आया है। इससे ज्ञात होता है कि अश्वघोष ने ही कालिदास से भाव लिए हैं, न कि कालिदास ने अश्वघोष से।

यदि **अश्वघोष** कालिदास से पूर्ववर्ती प्रतिष्ठित कवि था और कालिदास ने उससे भावादि लिए हैं तो बाद के कवि भी उसका आदरपूर्वक उल्लेख करते। परन्तु किसी भी कवि ने अश्वघोष का न नामोल्लेख किया है और न उसकी शैली का अनुसरण ही किया है। यह नही माना जा सकता है कि कालिदास ने अश्वघोष का अनुकरण किया और उससे अधिक योग्य हो गए, क्योकि यदि कालिदास को परकालीन माना जाय तो उसके लिए **वत्सभट्टि** आदर्श कवि हो सकता था। तथ्य यह है कि अश्वघोष मुख्य रूप से एक दार्शनिक था और गौण रूप से कवि। अत उसने अपने काव्य के लिए एक प्रसिद्ध कवि को आदर्श रक्खा होगा। उसके काव्यो को देखने से ज्ञात होता है कि उसका आदर्श कवि कालिदास ही है। अश्वघोष का समय प्रथम शताब्दी ई० है, अत. कालिदास का समय प्रथम शताब्दी ई० पू० मानना उचित है।

कालिदास का यह समय मानने के समर्थन मे कतिपय साक्ष्य उसके ग्रन्थो से उपलब्ध होते हैं। उसने दाश्वान्, विश्रामहेतो, पेलव, त्रियम्बक, आस आदि शब्दो का प्रयोग किया है। कुछ धातुओ के लिट् लकार के पूर्णरूप को दो भागो मे विभक्त किया है। जैसे—'त पातया प्रथममास पपात पश्चात्।' पाणिनि के व्याकरण के अनुसार यह प्रयोग शुद्ध नही है। इसमे ज्ञात होता है कि कालिदास उस समय जीवित थे, जब पाणिनि और पतजलि के नियम पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित नही हुए थे। अत कालिदास का समय प्रथम शताब्दी ई० पू० ही ज्ञात होता है।

शाकुन्तल नाटक मे धीवर को चोरी के अपराध में कठोर दण्ड तथा उत्तराधिकार के नियम का जो रूप प्राप्त होता है, उससे ज्ञात होता है कि

यह ईसा से पूर्व की कृति है, जब मनु, वसिष्ठ और आपस्तम्ब ही धर्म के विषय में प्रमाण माने जाते थे। शाकुन्तल का वर्णन इन स्मृतियो के कथनो से मिलता हुआ है। वृहस्पति और याज्ञवल्क्य आदि के अनुसार चोरी आदि का इतना कठोर दण्ड नही है अत इन स्मृतियो से पूर्ववर्ती कालिदास को मानना चाहिए।

कालिदास ने **मालविकाग्निमित्र** के भरतवाक्य मे अग्निमित्र शब्द का प्रयोग किया है। इससे ज्ञात होता है कि कालिदास का सम्बन्ध शुगवशी राजा अग्निमित्र मे था। कालिदास ने अपने अन्य दो नाटको में जो भरतवाक्य दिए हैं, वे सामान्य रूप से सबकी समृद्धि की कामना करते हैं, परन्तु इसमें अग्निमित्र के नाम से उसके साथ कुछ सम्बन्ध ज्ञात होता है। इस नाटक में राजनीतिक महत्त्व की जो घटनाएँ दी गई हैं, उनसे ज्ञात होता है कि अग्निमित्र के जीवनकाल मे घटित घटनाओ को कालिदास भली प्रकार से जानता था। ये घटनाएँ कालिदास के इस नाटक को छोडकर अन्यत्र कही भी नही प्राप्त होती हैं। इससे ज्ञात होता है कि कालिदास अग्निमित्र का समकालीन था या वह प्रथम शताब्दी मे हुआ था, जब जनता उन घटनाओ को ठीक ढग से जानती थी। अग्निमित्र विदिशा का राजा था। कालिदास ने अपने मेघदूत मे विदिशा को एक समृद्ध प्रदेश माना है। इससे भी उपर्युक्त कथन का समर्थन होता है। इन प्रमाणो के आधार पर यह मानना उचित है कि कालिदास प्रथम शताब्दी ई० पू० मे हुआ था और वह विक्रमीय सवत् के सस्थापक विक्रमादित्य का समकालीन था।

कालिदास ने दो महाकाव्य रघुवश और **कुमारसभव**, एक गीतिकाव्य **मेघदूत** और तीन नाटक **मालविकाग्निमित्र**, **विक्रमोर्वशीय** और **शाकुन्तल** लिखे हैं।

कालिदास के महाकाव्य

कुमारसभव आठ सर्गों का महाकाव्य है। इसमे शिव और पार्वती के विवाह तथा कार्त्तिकेय की उत्पत्ति का वर्णन है। तारक नामक राक्षस के द्वारा

पीडित देवता ब्रह्मा के पास रक्षार्थ गए। ब्रह्मा ने आदेश दिया कि वे शिव और पार्वती का विवाह करायें। उनका जो पुत्र होगा वह तारक राक्षस का नाश करेगा। कामदेव को यह कार्य दिया गया कि वह समाधिस्थ शिव के हृदय मे पार्वती के प्रति प्रेम-भाव उत्पन्न करे। कामदेव ने अपना कार्य किया। समाधि-भग से क्रुद्ध शिव ने कामदेव को भस्म कर दिया। तदनन्तर शिव अन्तर्धान हो जाते हैं। पार्वती शिव की प्राप्ति के लिए तपस्या करती हैं। शिव ब्रह्मचारी के वेष में वहाँ जाते हैं और उसकी तपस्या की परीक्षा करते हैं। तत्पश्चात् उससे विवाह की प्रतिज्ञा करते हैं। सप्तर्षियो ने शिव और पार्वती का विवाह-सम्बन्ध निश्चित किया। विवाह-समारोह के पश्चात् अन्तिम सर्ग मे कालिदास ने दोनो के दाम्पत्य-जीवन का वर्णन किया है। यह महाकाव्य इस सर्ग के पश्चात् समाप्त होता है। विद्वानो का विचार है कि कालिदास के समकालीन लोगो ने देवताओ के युगल के दाम्पत्य-जीवन के वर्णन की कटु आलोचना की, अत कालिदास ने अष्टम सर्ग से आगे रचना नही की। इन सर्गों से ही कुमारसभव नाम की सार्थकता सिद्ध हो जाती है, क्योकि इनमे शिव और पार्वती के विवाह का वर्णन आ गया है, जिससे कुमार की उत्पत्ति हुई। कालिदास के पश्चात् किसी एक कवि ने ग्रन्थ के नाम को अपूर्ण देखकर कुमार की उत्पत्ति तथा तारक-विजय का वर्णन करके इसे पूर्ण करने का प्रयत्न किया है। उसने ९ सर्ग और बनाकर इसे १७ सर्ग का महाकाव्य बनाया है। इन नए ९ सर्गो मे कुमार की उत्पत्ति और तारक की विजय का वर्णन है। कालिदास जिन वाक्यो का प्रयोग न करता, वे प्रयोग इस अश मे पाए जाते हैं। साहित्यशास्त्रियो ने इस अश मे से एक भी पक्ति उद्धृत नही की है। कालिदास की कृतियो के प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ ने इन सर्गों की टीका नही की है। इससे ज्ञात होता है कि ये अन्तिम ९ सर्ग कालिदास के विरचित नही हैं।

रघुवश १९ सर्गो का महाकाव्य है। इसमे रघुवशी राजाओ का जीवन-चरित वर्णित है। इसमे काव्य रूप मे राजा दिलीप, रघु, अज, दशरथ, राम,

अध्याय १३

काव्य-साहित्य, कालिदास के बाद के कवि

कालिदास के वाद के लेखको मे, जिसके विषय मे निश्चित सूचना प्राप्त होती है, अश्वघोष है । यह दो महाकाव्यो का रचयिता है—सौन्दरनन्द और बुद्धचरित । सौन्दरनन्द के अन्तिम श्लोक से ज्ञात होता है कि वह सुवर्णाक्षी का पुत्र और साकेत-निवासी था । उसकी उपाधियाँ थी—भिक्षु, आचार्य भदन्त, महाकवि और महावादी । उसके उपदेश को सुनने के लिए घोडे भी अपना आहार छोड देते थे । ऐसी उसकी वाक्शक्ति थी । अतएव उसका नाम अश्वघोष पडा । वह जन्म से ब्राह्मण था । वाद मे उसने बौद्धधर्म स्वीकार किया था । चीनी परम्परा के अनुसार वह प्रथम शताब्दी के राजा कनिष्क का समकालीन या गुरु था । अश्वघोष बौद्धधर्म की महायान शाखा के सस्थापको में से एक था । उसका समय प्रथम शताब्दी ई० है ।

सौन्दरनन्द महाकाव्य १८ सर्गो मे है । इसमे वर्णन है कि किस प्रकार गौतमवुद्ध ने अपने सौतेले भाई नन्द को वौद्ध भिक्षुक बनाया । नन्द अपनी पत्नी सुन्दरी के प्रणय-पाश को तोडना नही चाहता था । वुद्ध के एक शिष्य आनन्द ने अपने उपदेशो के द्वारा नन्द को प्रेरित किया कि वह भिक्षुक वने और वुद्ध के निरीक्षण मे कार्य करे । वुद्धचरित मे गौतमवुद्ध का जीवन-चरित है । वुद्ध का जीवन-चरित सुप्रसिद्ध है, अत यहाँ देने की आवश्यकता नही है । इस महाकाव्य के चीनी और तिव्वती भाषा के अनुवादो से ज्ञात होता है कि इसमे २८ सर्ग थे । १९वी शताब्दी मे अमृतानन्द ने विद्यमान १३ सर्गों मे अपनी ओर से ४ सर्ग और जोडकर वुद्ध के काशी मे प्रथमोपदेश तक की कथा पूर्ण की है । इस प्रकार मूल ग्रन्थ के केवल १३ सर्ग ही सस्कृत मे उपलव्ध होते

हैं। इस महाकाव्य का चीनी अनुवाद ४१४ से ४२१ ई० के बीच मे हुआ है और तिव्वती अनुवाद सातवी शताब्दी ई० मे हुआ है ।

अश्वघोष की शैली मधुर नही है। उसके काव्य मे अनुप्रास अधिक है। उसने कतिपय अप्रचलित शब्द-रूप और धातु-रूपो का प्रयोग किया है। उनमे कुछ प्रयोग ऐसे भी हैं, जो सस्कृत मे सर्वथा अप्रचलित है। जैसे, 'किमुत' के स्थान पर 'कि वत' का प्रयोग किया है और 'चेत्' के स्थान पर 'स चेत्' का प्रयोग किया है। अश्वघोष ही सर्वप्रथम बौद्ध कवि और दार्शनिक है, जिसने प्राकृत को छोडकर सस्कृत का प्रयोग किया है।

अश्वघोष के पश्चात् लगभग तीन शताब्दी तक कोई भी प्रसिद्ध कवि नही हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय साहित्यिक रचनाएँ प्राय नही हुईं। प्रो० मैक्समूलर ने सस्कृत का पुनरुद्धारवाद प्रचलित किया है। उसमें उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि इस वीच सस्कृत-साहित्य की रचना क्यो नही हुई है। उनका मत है कि प्रथम शताब्दी ई० मे विदेशियो ने भारतवर्ष पर आक्रमण किया। उन्होने भारतीयो की साहित्यक परम्परा नष्ट कर दी। उनका प्रभाव ५४४ ई० तक रहा। इस सन् मे उज्जैन के राजा विक्रमादित्य ने उनको परास्त किया और देश से निकाला। इस राजा ने सस्कृत का पुनरुद्धार किया और उसके आश्रय मे कई प्रसिद्ध कवि हुए। मैक्स-मूलर के मत को स्वीकार करने वाले कतिपय विद्वानो ने उस समय के भारतीय साहित्य के विषय मे कुछ वातें कही हैं। एक का कथन है कि "भारतीय श्रेण्य काव्य-साहित्य का प्रारम्भ ७वी शताब्दी ई० के पूर्वार्ध मे प्रारम्भ होता है।"[1] किसी भी काव्य-ग्रन्थ का समय इस काल से पूर्व निश्चय रूप से नही रक्खा जा सकता है।

मैक्समूलर के इस पुनरुद्धारवाद का खण्डन व्यूलर और फ्लीट के अनुसधानो ने किया है। उन्होने यह सिद्ध किया है कि शक आदि विदेशी

१ A A Macdonell—History of Sanskrit Literature पृष्ठ ३१८

जातियाँ भारत में आई और वे भारतीय हो गई। उन्होने भारतीय शिक्षा, कला, स्थापत्य और मूर्तिकला आदि को प्रश्रय दिया। **ऋषभदत्त, कनिष्क** और **रुद्रदामन्** आदि सस्कृत के आश्रयदाता हुए हैं। साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिए कि विदेशी आक्रमणकारियो ने देश के एक भाग पर ही अधिकार कर रक्खा था। वे देश के अन्य भाग मे सस्कृत के प्रचार और प्रसार को नही रोक सकते थे। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि ५४४ ई० मे **यशोधर्मन् विष्णुवर्धन** ने विदेशियो को पदच्युत किया था न कि **विक्रमादित्य ने**। विदेशियो को भारत से बाहर निकालने का कार्य गुप्त राजाओ ने ४०० ई० पूर्व से ही प्रारम्भ कर दिया था।

इस बात के प्रमाण विद्यमान हैं कि इस काल मे भी साहित्यिक प्रगति सर्वथा बन्द नही हुई थी। **जूनागढ** राज्य के गिरनार स्थान मे **रुद्रदामन्** का १५० ई० के लगभग का एक शिलालेख प्राप्त होता है। यह शिलालेख **सुदर्शन** नामक झील के पुनरुद्धार के स्मृत्यर्थ लिखा गया था। इस शिलालेख से ज्ञात होता है कि इस शिलालेख का लेखक **रुद्रदामन्** शक राजा था। वह साहित्यशास्त्र के नियमो से सम्यक्तया परिचित था। सातवी शताब्दी के पूर्वार्ध मे उत्पन्न **बाण** की गद्यशैली का प्रारम्भ इस शिलालेख मे दृष्टिगोचर होता है।

नासिक का शिलालेख प्रतिष्ठान के श्री **पुलुमायी** के १६वें वर्ष मे प्राकृत मे लिखा गया है। इसका समय १४६ ई० होता है। यह शिलालेख सस्कृत का प्राकृत मे अनुवाद प्रतीत होता है। उसमे लम्बे समास हैं। श्रेण्य सस्कृत-साहित्य मे प्राप्त होने वाले अनुप्रास और उपमाओ की झडी इसमे प्राप्त होती है।

गुप्तकाल के दो मुख्य शिलालेख हैं। प्रथम शिलालेख **समुद्रगुप्त** की प्रशसा मे उसके आश्रित कवि हरिषेण ने लिखा है। यह इलाहाबाद के **अशोकस्तम्भ** पर लिखा हुआ है। यह ३४५ ई० का लिखा हुआ है।[1] यह वैदर्भी रीति में

---

१ A A Macdonell—History of Sanskrit Literature पृष्ठ ३१८।

लिखा हुआ है।[1] इसके प्रारम्भ मे ८ श्लोक हैं। उसके बाद लम्बा गद्य-भाग है और अन्त मे एक श्लोक है। इसमे श्लेष और रूपक अलकार का बहुत प्रयोग हुआ है। दूसरे का लेखक **चन्द्रगुप्त द्वितीय** का मन्त्री **वीरसेन** है। यह **चन्द्रगुप्त** की प्रशसा में लिखा गया है। इसमे **चन्द्रगुप्त** और **वीरसेन** दोनो ही विद्वान् बताए गए हैं।

इनके अतिरिक्त इस काल मे बहुत से शिलालेख लिखे गए हैं। इनमे से कुछ प्राकृत मे हैं और शेष सस्कृत मे हैं। इनसे सिद्ध होता है कि इस काल मे साहित्यिक रचनाएँ बन्द नही हुई थी। इनसे यह भी सिद्ध होता है कि सस्कृत साहित्यिक भाषा के रूप मे प्रचलित थी। बाद के सस्कृत साहित्य मे जो शब्दालकार और अर्थालकार प्राप्त होते हैं, वे इन शिलालेखो मे प्रचुर मात्रा मे प्राप्त होते हैं। इससे सिद्ध होता है कि इस काल मे साहित्यिक कार्य चल रहा था। इस समय सुयोग्य कवि हुए होगे, परन्तु उनकी रचनाएँ नष्ट हो गई हैं, ऐसा ज्ञात होता है। यह भी सभव है कि इस समय बार-बार राजनीतिक आक्रमण के कारण कवियो के आश्रयदाता राजाओ के लिए यह सभव नही रहा होगा कि वे कवियो को आश्रय दें। राजाओ के सरक्षण के अभाव मे योग्य कवि उत्तम ग्रन्थो की रचना नही कर सके होगे। जब तक भारत का नवीन राजनीतिक इतिहास नही लिखा जाता, तब तक इस समय की वास्तविक स्थिति के विषय से कुछ भी निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता है।

वात्स्यायन का **कामसूत्र** इसी समय मे लिखा गया है। यह ग्रन्थ शिष्ट जन-समुदाय का चित्रण करता है। इसमे निर्देश दिए गए है कि मनुष्य को किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए, किस प्रकार समय-यापन करना चाहिए और वह किस प्रकार अच्छे व्यक्तियो की सगति प्राप्त करे। मनुष्य किस प्रकार का

---

१ वैदर्भी और गौडी दो मुख्य रीतियाँ हैं। इसके लिए देखें इसी पुस्तक का अध्याय २५।

जीवन व्यतीत करने के लिए किन साधनो को अपनावे, इन बातो का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। बाद के लेखको पर इसका स्थायी प्रभाव पडा है। उन्होने अपने ग्रन्थो मे ऐसी घटनाएँ और वर्णन दिए हैं, जिससे **कामसूत्र** मे लिखित वर्णनो के साथ समता प्राप्त हो। वस्तुतः ऐसे वर्णनो की प्रसगानुसार आवश्यकता नही थी। **कामसूत्र** मे **सातवाहन** या **आन्ध्रभृत्य वश** के एक राजा का उल्लेख आया है। यह राजा अवश्य ही ईस्वी सन् के प्रारम्भ के समय रहा होगा। **आन्ध्र वश** का राज्य लगभग २१८ ई० के समाप्त हुआ है। **वात्स्यायन** का समय इसी काल के लगभग निश्चित किया जा सकता है। इस प्रकार यह प्रकट होता है कि यह साहित्यिक काल वस्तुतः अन्धकारमय नही रहा है। गुप्त राजाओ को सस्कृत का पुनरुद्धारक माना जाता है, परन्तु यह ज्ञात नही होता है कि उनके आश्रित कवियो के नाम क्यो नही उल्लिखित मिलते हैं।

इस अन्धकारमय काल की समाप्ति पर प्रथम कवि **मेण्ठ** या **भर्तृमेण्ठ** आता है। इसका दूसरा नाम **हस्तिपक** है। यह कश्मीर के राजा **मातृगुप्त** (४३० ई० के लगभग) का आश्रित कवि था। इसका काव्य-ग्रन्थ **हयग्रीववध** नष्ट हो गया है। इस ग्रन्थ का ज्ञान साहित्यिक ग्रन्थो मे इसके उद्धरणो से ही होता है।

वत्सभट्टि ने ४७२ ई० मे एक प्रशस्ति लिखी है। यह **मन्दसोर** के पास एक स्तम्भ पर लिखी हुई है। लेखक ने यह प्रशस्ति उस स्थान के रेशमी वस्त्रो को बनाने वाले जुलाहो की ओर से लिखी है। प्रशस्ति गौडी रीति में लिखी गई है और इस पर मेघदूत तथा ऋतुसहार का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इसमे वसन्त और वर्षा ऋतु का विस्तृत वर्णन किया गया है।

प्रवरसेन ने **सेतुबन्ध** नामक काव्य प्राकृत मे लिखा है। इस काव्य को **रावणवध** और **दशमुखवध** भी कहते हैं। इसमे १५ आश्वास (अध्याय) हैं। इसमे लेखक ने राम के लका-गमन से लेकर अयोध्या मे राज्याभिषेक तक की रामायण की कथा का वर्णन किया है। आश्वास ७, ८ पुल के निर्माण का

वर्णन करते हैं, ६वें आश्वास मे सुवेल का वर्णन है तथा ११वां आश्वास रावण के प्रेम का। इस ग्रन्थ मे लेखक ने यमक अलकार के प्रयोग मे अपनी कुशलता दिखाई है। कुछ अन्य आलोचको का मत है कि प्रवरसेन कश्मीर का राजा था और कालिदास उसका आश्रित कवि था, उसने ही यह सेतुवन्ध लिखा है। यह कथन असगत है, क्योकि वाण, कालिदास और प्रवरसेन दोनो को जानना था। उसने कालिदास को सेतुवन्ध का कर्ता नही माना है। प्रवरसेन का समय चतुर्थ शताव्दी ई० मानना चाहिये। वाण और दण्डी ने इस सेतुवन्ध काव्य की प्रशसा की है।

कीर्ति प्रवरसेनस्य प्रयाता कुमुदोज्ज्वला।
सागरस्य पर पार कपिसेनेव सेतुना॥

—हर्षचरित प्रस्तावना १४

महाराष्ट्राश्रया भापा प्रकृष्ट प्राकृत विदु।
सागर सूक्तिरत्नाना सेतुवन्धादि यन्मयम्॥

—काव्यादर्श १।३४

बुद्धघोष ने दस सर्गो का एक काव्य पद्यचूडामणि लिखा है। वह जन्म से ब्राह्मण था, परन्तु वाद मे वौद्ध हो गया था। इसमे गौतमबुद्ध के जीवन का वर्णन है। इसमे वुद्ध के जीवन का जो वर्णन दिया गया है, वह अश्वघोप के वर्णन से कुछ अशो मे भिन्न है। इस पर कालिदास और अश्वघोष का वहुत प्रभाव पडा है। इसकी शैली सरल और उत्कृष्ट है। वौद्ध ग्रन्थो के अनुसार वह ३८७ ई० मे वुद्ध के त्रिपिटक की पाली भापा मे की गई आलोचनाओ को लाने के लिये लका भेजा गया था। उसने वहुत से वौद्ध ग्रन्थो की प्रतिलिपि की है तथा वहुतो का अनुवाद किया है और उन पर टीका भी लिखी है। उसके एक ग्रन्थ का ४८८ ई० मे चीनी भापा मे अनुवाद हुआ है। अत उसका समय ४०० ई० के लगभग मानना चाहिये।

भीम, जिसको भीमक भी कहते हैं, ने २७ सर्गो का महाकाव्य रावणार्जुनीय या अर्जुनरावणीय लिखा है। इसमे रावण और कार्तवीर्य अर्जुन के

युद्ध का वर्णन है। साथ ही यह ग्रन्थ व्याकरण के नियमो का उदाहरण रूप मे स्पष्टीकरण भी करता है। व्याकरण के एक ग्रन्थ **काशिकावृत्ति** (६०० ई० के लगभग) मे भीम का उद्धरण भी दिया गया है। अत इसका समय ५०० ई० के लगभग मानना चाहिए। भट्टि का रावणवध और हालायुध का कविरहस्य वर्णन की दृष्टि से इसके समान है।

कुमारदास ने **जानकीहरण** काव्य लिखा है। इसमे रामायण की कथा का वर्णन है। यह लेखक लका का राजा कुमारदास है। इसका समय ५१७ से ५२६ ई० है। यह ग्रन्थ मूलरूप मे नष्ट हो गया है। इसका अक्षरश अनुवाद लका की भाषा मे प्राप्य है। इसमे २५ सर्ग बताए जाते हैं। इसके प्रारम्भिक १४ सर्ग तथा १५वें का कुछ अश सस्कृत मे उपलब्ध हुआ है। इसके मूलग्रन्थ के परिमाण के विषय मे मतभेद है। इस महाकाव्य की एक हस्तलिखित प्रति २० सर्गों की है।[१] यह प्रति पूर्ण है और जो मुद्रित प्रति उपलब्ध होती है, उमसे ठीक मिलती है। कुछ स्थलो पर पाठभेद अवश्य है। इस हस्तलिखित प्रति मे ज्ञात होता है कि इसके लेखक कुमारदास ने अपने दो ममेरे चाचाओ की सहायता से यह ग्रन्थ तैयार किया था। इसके १७वें सर्ग मे यमक अलकार बहुत अधिकता के साथ प्राप्त होता है। लेखक ने १८वें सर्ग मे शब्दालंकारो के प्रयोग मे अपनी चतुरता दिखाई है। इसके २०वें सर्ग मे राम का पुष्पक विमान द्वारा अयोध्या लौटने का वर्णन है। इसका लेखक कौन-सा कुमारदास हैं, यह निश्चयपूर्वक कहना कठिन है। यदि इसका लेखक लका का राजा कुमारदास ही है तो इस ग्रन्थ का रचनाकाल ५२० ई० के लगभग मानना चाहिए। कुमारदास कालिदास का विशेप प्रशसक ज्ञात होता है। इसने कालिदास का बहुत सफलता के साथ अनुकरण किया है। अतएव साहित्य-शास्त्री राजशेखर (९०० ई०) ने इसकी प्रशसा मे निम्नलिखित श्लोक कहा है—

---

१ मद्राम गवर्नमेंट लाइब्रेरी। हस्तलिखित प्रति न० २९३५।

जानकीहरणं कर्तुं रघुवंशे स्थिते सति ।
कविः कुमारदासश्च रावणश्च यदि क्षमः ॥

भारवि ने **किरातार्जुनीय** नामक महाकाव्य लिखा है। इसमें १८ सर्ग हैं। यह **महाभारत** की कथा पर आधारित है। वनवास-काल में अर्जुन व्यास की सम्मति से हिमालय पर गया और शिव से दिव्य अस्त्रों की प्राप्ति के लिए उसने तपस्या की। अर्जुन की भक्ति की परीक्षा के लिए शिव किरात के वेष में एक सुअर का पीछा करते हुए प्रकट हुए। शिव और अर्जुन दोनों ने ही उस सुअर पर बाण चलाए। सुअर मर गया। अर्जुन ने उस पर अपना अधिकार बताया। इस पर शिव और अर्जुन में विवाद हुआ और अन्त में वह युद्ध रूप में परिणत हुआ। दोनों ने दोनों पर प्रहार किए। अन्त में शिव की विजय हुई। उन्होंने अर्जुन की वीरता पर प्रसन्न होकर उसे आशीर्वाद दिया और वरदान के रूप में पाशुपत अस्त्र दिया। तत्पश्चात् अर्जुन अपने भाइयों से मिलने के लिए लौटा। यह भाव महाभारत से लिया गया है। इसमें कुछ परिवर्तन भी किया गया है। इसके प्रथम सर्ग में दिया गया है कि पाण्डवों का एक दूत दुर्योधन के राज्य-प्रबन्ध का विवरण जानने के लिए गया हुआ था। वह लौटकर आता है और पाण्डवों को दुर्योधन के उत्तम और न्याययुक्त राज्य-प्रबन्ध की सूचना देता है। अतएव अर्जुन को दिव्य अस्त्र-प्राप्ति के लिए जाना पड़ा। अन्त में अर्जुन का स्कन्द और शिव के साथ युद्ध तथा वरदान के रूप में पाशुपत अस्त्र की प्राप्ति का वर्णन है।

भारवि के काव्य में ओज और शक्ति है। उसके वर्णन बहुत ही विशद हैं। उसकी शैली बहुत शक्तिशाली और अर्थगाम्भीर्य से युक्त है।[1] उसमें माधुर्य की न्यूनता है। उसने व्याकरण सम्बन्धी नियमों के पालन में विशेष कुशलता प्रकट की है। उसने १५वें सर्ग में शब्दालंकारों और चित्रालंकारों के प्रयोग में अपनी विशेष योग्यता प्रदर्शित की है। कुछ ऐसे श्लोक दिये हैं, जो सीधे और

---

१ (क) भारवेरर्थगौरवम्। (ख) नारिकेलफलसंमितं वचो भारवेः। मल्लिनाथ।

उल्टे दोनो रूप मे पढने पर एक ही होते है और अर्थ भी दोनो रूप मे एक ही होता है। कुछ श्लोको मे केवल दो ही व्यजनो का प्रयोग किया गया है। एक श्लोक ऐसा भी है, जिसमे केवल एक ही व्यजन है। ऐसा कहा जाता है कि 'बाद के कवियो मे भारवि ही कई प्रकार से रीतिवाद का जन्मदाता है।' यदि भारवि को कुमारदास से पूर्ववर्ती कवि माने, तभी उपर्युक्त उक्ति कुछ अश तक ठीक मानी जा सकती है। भारवि राजनीति सम्बन्धी विवेचन मे मनु का अनुयायी है। प्रत्येक सर्ग के अन्तिम श्लोक मे 'लक्ष्मी' शब्द का प्रयोग है। ६३४ ई० के ऐहोल के शिलालेख मे भारवि का नामोल्लेख है। अत उसका समय ६०० ई० से पूर्व मानना चाहिए।[1]

भट्टि कवि ने २२ सर्गो मे **रावणवध** नामक महाकाव्य बनाया है। इसमें राम की कथा का वर्णन है। उसका कथन है कि श्रीधरसेन के राज्यकाल मे वलभी मे उसने यह ग्रथ बनाया है।[2] वलभी मे श्रीधरसेन नाम के चार राजा हुए हैं। इनमे से अन्तिम ने ६४४ ई० के लगभग राज्य किया है। अन्तिम राजा विद्वानो का आश्रयदाता था। अत ज्ञात होता है कि कवि भट्टि ने ६४४ ई० के लगभग अपना महाकाव्य बनाया होगा। इस विषय में यह उल्लेख करना उचित है कि वलभी वश के धरसेन चतुर्थ के एक शिलालेख पर ३२६ सवत् लिखा हुआ है।[3] ३१८ ई० मे वलभी सवत् स्थापित हुआ था। यह सवत् उसी का उल्लेख प्रतीत होता है। 'भट्टि' शब्द सस्कृत के 'भर्तृ' शब्द का प्राकृत रूप है। इस आधार पर कुछ विद्वानो ने यह विचार व्यक्त किया है कि वैयाकरण भर्तृहरि और कवि भट्टि एक ही व्यक्ति है। टीकाकारो ने दोनो व्यक्तियो की एकता को स्वीकार किया है। इस एकता का आधार यह है कि दोनो ही व्याकरण के विद्वान् थे। भर्तृहरि ने व्याकरण दर्शन पर **वाक्यपदीय** नामक ग्रन्थ लिखा है और भट्टि ने व्याकरण के नियमो को स्पष्ट करने

१ देखो अध्याय १७ मे दण्डी के वर्णन मे।

२ रावणवध २२--३५।

३ The collected works of Bhandarkar भाग ३ पृष्ठ २२८।

के लिये **रावणवध** काव्य लिखा है। दोनो लेखको का काल भिन्न है, अत यह एकता स्वीकार नही की जा सकती है। भट्टि का काल लगभग ६५० ई० है तथा भर्तृहरि का लगभग ४०० ई० है।

यह **रावणवध** भक्तिकाव्य होने के अतिरिक्त व्याकरण के नियमो और अलकारो का उदाहरण भी है। इसका १३वां सर्ग इस रूप मे लिखा गया है कि वह सस्कृत और प्राकृत दोनो रूपो मे पढा जा सकता है। भट्टि की शैली सरल है। इसमे लम्बे समास नही हैं। यह वैदर्भी रीति मे लिखा गया है। इसका लेखक के नाम से ही प्रचलित नाम 'भट्टिकाव्य' है। इसमे लेखक ने २२ सर्गों मे राम की कथा का वर्णन किया है।

माघ राजा श्रीवर्मल के आश्रित उच्च राजकर्मचारी सुप्रभदेव का पौत्र और दत्तक का पुत्र था। ६२५ ई० का राजा वर्मलात का एक शिलालेख प्राप्त होता है। सभवत वर्मलात और श्रीवर्मल एक ही व्यक्ति है। आनन्द-वर्धन (८५० ई०) नृपतुग (८५० ई०) और राजशेखर (९०० ई०) ने माघ का उल्लेख किया है। माघ के ग्रन्थ शिशुपालवध[1] मे काशिकावृत्ति पर जिनेन्द्रबुद्धिकृत (७०० ई०) न्यास नामक टीका का उल्लेख मिलता है। माघ के टीकाकार मल्लिनाथ इस वात का समर्थन करते है। अत उसका समय ७०० ई० के लगभग मानना चाहिए। कतिपय विद्वानो की कल्पना है कि वह या तो वैश्य था या वौद्ध।

माघ ने २० सर्गों मे **शिशुपालवध** नामक महाकाव्य लिखा है। इसमे युधिष्ठिर द्वारा किए गए राजसूय यज्ञ का वर्णन है और श्रीकृष्ण के द्वारा शिशुपाल के वध का वर्णन है। यह भारवि के किरातार्जुनीय के अनुकरण पर वनाया गया है। दोनो का प्रारम्भ **श्रिय** शब्द (अर्थात् श्री) से होता है और दोनो मे मगलाचरण का श्लोक नही है। राजनीतिक विवाद, पर्वतीय दृश्य, मदिरासेवियो का दल, रण-दृश्य आदि का वर्णन दोनो महाकाव्यो मे एक ही क्रम मे हुआ है। भारवि के तुल्य ही माघ ने भी

१ शिशुपालवध २—११२।

युद्ध के वर्णन मे शब्दालकारो के प्रयोग मे निपुणता दिखाई है। यह कहा जा सकता है कि १९वें सर्ग मे शब्दालकारो के प्रयोग मे माघ भारवि से आगे निकल गया है।[1] एक श्लोक ऐसा है, जिसमे केवल एक ही व्यजन का प्रयोग किया गया है।[2] उसका व्याकरण के नियमो और अलकारो पर असाधारण अधिकार है। उसका बहुत व्यापक शब्दावली पर अधिकार है। यह कहा जाता है कि माघ के ९ सर्ग बीतने पर कोई नया शब्द शेष नही रह जाता है।[3] इसके प्रत्येक सर्ग के अन्तिम श्लोक मे श्री शब्द का प्रयोग मिलता है। माघ के विषय मे अतिप्रसिद्ध उक्ति है कि माघ के काव्य मे उपमा, अर्थगौरव और लालित्य ये तीनो गुण उपलब्ध होते है।[4]

वाक्पति ने प्राकृत मे **गौडवहो** नामक काव्य लिखा है। इसमे १२०९ श्लोक है। इसमे कन्नौज के राजा यशोवर्मा के द्वारा गौड राजकुमार के वध का वर्णन है। यशोवर्मा वाक्पति का आश्रयदाता है। यह काव्य अपूर्ण है। इसमे कश्मीर के राजा ललितादित्य से ७३३ ई० के लगभग यशोवर्मा के पराजित होने तक का वर्णन है। ऐसा जान पडता है कि वाक्पति ने यह ग्रन्थ ७३३ ई० के बाद लिखा। अत इस काव्य का समय ७४० ई० के लगभग होता है। वाक्पति यह स्वीकार करता है कि वह प्रसिद्ध नाटककार **भवभूति** का ऋणी है। उसका यह भी कथन है कि भवभूति यशोवर्मा का आश्रित कवि था। इस काव्य मे लम्बे समास बहुत है। इससे श्रेण्य सस्कृत के काल मे प्राकृत का क्या स्थान था, यह ज्ञात होता है। लेखक ने अपने काव्य मे अपने पूर्व रचित एक काव्य **मधुमथनविजय** का उल्लेख किया है, परन्तु वह अब नष्ट हो गया है।

---

१ तावद् भा भारवेर्भाति यावन् माघस्य नोदय ।
उदिते तु पुनर्माघे भारवेर्भा रवेरिव ॥

२ शिशुपालवध १९—११४।

३ नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते।

४ उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम् ।
दण्डिन पदलालित्य माघे सन्ति त्रयो गुणा ॥

एक जैन लेखक **हरिचन्द** ने **धर्मशर्माभ्युदय** नामक महाकाव्य लिखा है। इसमे २१ सर्ग हैं। इसमे एक जैन मुनि **धर्मनाथ** का जीवन-चरति वर्णन किया गया है। उस पर माघ और वाक्पति का प्रभाव पडा है। अत उसका समय ८०० ई० के वाद होना चाहिए। उसका परिचय अप्राप्त है।

नीतिवर्मा ने **कीचकवध** नामक एक काव्य लिखा है। इसमे पाँच सर्ग हैं। इसमे भीम के द्वारा कीचक के वध का वर्णन है। इसमे अनुप्रास और श्लेष का वहुत अधिकता के साथ प्रयोग किया गया है। इस लेखक के काल और परिचय के विषय मे कुछ भी ज्ञात नही है। भोज (१००५ से १०५४ ई०) ने इसके काव्य का उल्लेख किया है। इस आधार पर विद्वानो ने इसका समय नवी शताब्दी माना है।

रत्नाकर ने ५० सर्ग मे **हरविजय** नामक महाकाव्य लिखा है। वह कश्मीर के जयादित्य और अवन्तिवर्मा का आश्रित कवि था। उसकी उपाधियाँ **राजानक, वागीश्वर और विद्याधिपति** थी। अत उनका समय ८५० ई० है। इसके काव्य मे चार सहस्र श्लोक हैं। इसमे शिव के द्वारा अन्धक नामक राक्षस के वध का वर्णन है। अन्धक राक्षस जन्म से अन्धा था। उसने तपस्या की और असाधारण शक्ति प्राप्त करके ससार का अधिपति वन गया। इससे भयभीत होकर देवताओ ने शिव की सहायता माँगी। शिव ने स्वय जाकर उस राक्षस का वध किया। इस ग्रन्थ के देखने मे ज्ञात होता है कि यह साहित्य-शास्त्रियो के द्वारा निर्धारित महाकाव्य के लक्षणो को पूर्णतया वर्णन करने के लिए ही लिखा गया है। यह असाधारण रूप से लम्बा है। लेखक ने यह स्वीकार किया है कि वाण की गद्य-शैली का अनुकरण करने का उसने प्रयत्न किया है। काव्य की दृष्टि से यह उच्चकोटि का ग्रन्थ नही है, तथापि नृत्य के सिद्धान्तो का विस्तृत वर्णन होने के कारण वहुमूल्य ग्रन्थ है। रत्नाकर के वसन्ततिलका-छन्द के प्रयोग-कौशल को क्षेमेन्द्र ने प्रमाणित किया।

भट्ट शिवस्वामी या **शिवस्वामी** ने २० सर्गो मे **कप्पणाभ्युदय** नामक काव्य लिखा है। वह कश्मीर के अवन्तिवर्मा (८५० ई०) का आश्रित कवि

था, अत रत्नाकर का समाकालीन था। इसमे वर्णन किया गया है कि किस प्रकार एक दक्षिण के राजा कप्पण ने श्रावस्ती के राजा प्रसेनजित् पर आक्रमण का प्रयत्न किया और किस प्रकार प्रसेनजित् से युद्ध किये बिना ही अन्त मे वह बौद्ध हो जाता है। कप्पण की सेना के उत्तर की ओर प्रस्थान के वर्णन से लेखक को अवसर प्राप्त हुआ है कि वह सूर्योदय, सूर्यास्त और सैनिको के मदिरापान आदि का वर्णन कर सके। इसका भाव बौद्धो के अवदानशतको से लिया गया है। इस काव्य पर माघ और भारवि का प्रभाव दिखाई देता है।

अभिनन्द या जिन्हें **गौडाभिनन्द** कहते हैं, प्रसिद्ध नैयायिक **जयन्त भट्ट** (८८० ई०) का पुत्र था। वह **कादम्बरीकथासार** नामक काव्य का लेखक है। इसमे ८ सर्ग हैं। यह बाणकृत कादम्बरी की सक्षिप्त कथा है।

कश्मीर के **शतानन्द** के पुत्र **अभिनन्द** ने **रामचरित** नामक काव्य लिखा है। वह प्रथम अभिनन्द से सर्वथा भिन्न है। इसमे राम की कथा का वर्णन है। भोज (१००० ई०) और महिमभट्ट (१०२५ ई०) ने इसका नामोल्लेख किया है। इसका समय नवम शताब्दी का पूर्वार्ध हैं। इसने ३६ सर्ग लिखे हैं। इस काव्य की भाषा सरल और उच्चकोटि की है। यह अपूर्ण ग्रन्थ था। इसको दो पृथक् लेखको ने चार-चार सर्ग लिखकर पूरा किया है। इन चार सर्गों के दोनो पाठ प्राप्त होते हैं।

एक जैन कवि **धनजय** ने **राघवपाण्डवीय** काव्य लिखा है। इसमे उसने श्लेष का आश्रय लेकर राम और पाण्डवो की कथा साथ ही उन्ही श्लोको मे लिखी है अर्थात् प्रत्येक श्लोक के दो अर्थ है, एक राम के पक्ष मे और दूसरा पाण्डवो के पक्ष मे। द्विसन्धान (अर्थात् एक साथ दो अर्थ के बोधक) पद्धति पर बाद मे कई काव्य लिखे गए है। इस प्रकार के काव्यो के लेखक है—कविराज (१२०० ई०), रामचन्द्र (१५४२ ई०), चिदम्बर (१६०० ई०), वेंकटाध्वरी (१६५० ई०), मेघविजयगणि (१६७० ई०), हरदत्त सूरि (१७०० ई० मे पूर्व) आदि। धनजय का समय दशम शताब्दी का पूर्वार्ध है।

एक जैन मुनि कुमकुसेन वादिराज (९५० ई०) ने चार सर्गो मे **यशोधरचरित** नामक काव्य लिखा है। इसमे एक जैन राजा यशोधरा के जीवन-चरित का वर्णन किया गया है।

हलायुध ने **कविरहस्य** नामक काव्य लिखा है। इसमें व्याकरण के धातु-सम्वन्धी नियमो के उदाहरण दिये गये हैं। धातुओ के वर्तमान काल के रूप दिये गये हैं। लेखक ने इन धातुरूपो के द्वारा अपने आश्रयदाता कृष्ण की प्रशसा की है। यह राजा कृष्ण राष्ट्रकूट राजा तृतीय (९४०-९५६ ई०) है। अत हलायुध का समय दशम शताव्दी उत्तरार्ध समझना चाहिये।

पद्मगुप्त, जिसका दूसरा नाम **परिमल** या **परिमलकालिदास** है, ने १८ सर्गो मे **नवसाहसाकचरित** नामक महाकाव्य लिखा है। इसका रचनाकाल (१००५ ई०) है। यह राजा मुज (९७० ई०) और राजा भोज (१००५-१०५४ ई०) का आश्रित कवि था। यह कालिदास का वहुत प्रशसक था। इसने जो कुछ साहित्यिक रचना की है, वह कालिदास की रचना से वहुत मिलती हुई है। सभवत. इसीलिए इसका नाम परिमलकालिदास पडा है। इस काव्य मे उसने अपने आश्रयदाता भोज का वर्णन किया है। भोज की उपाधि नवसाहसाक थी। इसमे उसने भोज की मृगया का वर्णन किया है और उसका नागवश की राजकुमारी शशिप्रभा से विवाह का वर्णन भी किया है।

कश्मीर का **क्षेमेन्द्र**, जिसका दूसरा नाम **व्यासदास** है, **अभिनवगुप्त** (१००० ई०) का शिष्य था। इसकी साहित्यिक रचना का काल ११वी शताव्दी के मध्यकाल के लगभग मानना चाहिये। इसने साहित्य के कई विभागो पर कई ग्रन्थ लिखे हैं। इसने महाभारत का सक्षेप **भारतमजरी**, रामायण का सक्षेप **रामायणमजरी** और गुणाढ्य की पुस्तक वृहत्कथा का सक्षेप **वृहत्कथा-मजरी** नाम से लिखा है। ये तीनो राचनाएं पद्य मे हैं। विष्णु के दस अवतार पर उसका काव्य **दशावतारचरित** है। वाण की कादम्वरी का पद्यानुवाद उसने **पद्यकादम्वरी** नाम से किया है। उसकी अन्य रचनाएं नष्ट हो गई हैं। उसके **औचित्यविचारचर्चा** तथा अन्य ग्रन्थो से ज्ञात होता है कि उसने शशिवशमहा-

काव्य और **अमृततरगकाव्य** भी लिखे थे । उसके अन्य लुप्त ग्रन्थो के साथ ये भी लुप्त हो चुके है । रामायण और महाभारत आदि के संक्षिप्त वर्णनो से उसकी साहित्यिक योग्यता का पता नही चलता है । उसके ये ग्रन्थ पुराणो और रामायणादि की शैली पर सरल प्रवाहयुक्त भाषा मे लिखे गये है ।

/ **बिल्हण** कश्मीर मे उत्पन्न हुआ था । वह **ज्येष्ठकलश** का पुत्र था । वहाँ पर अध्ययन के बाद उसने १०५० के लगभग कश्मीर छोड दिया । बहुत समय तक इधर-उधर घूमने के बाद १०७० ई० के लगभग **अनहिलवाड** के चालुक्य-राजा **त्रैलोक्यमल्ल** के राजद्वार मे स्थिर हुआ । कुछ वर्ष बाद वहाँ से हट कर वह कल्याण के विक्रमादित्य चतुर्थ के आश्रित राजकवि हुआ । उसने १०८५ ई० के लगभग १८ सर्गों मे **विक्रमाकदेवचरित** नामक महाकाव्य लिखा । इसमे उसने अपने आश्रयदाता का तथा उसके पूर्वजो का जीवन-चरित वर्णन किया है । इसमे उसने अपने आश्रयदाता की मृगया-यात्रा तथा उसका शीलहर की रानी की पुत्री चन्द्रलेखा के साथ विवाह का भी वर्णन किया है । अन्तिम सर्ग मे उसने अपने भ्रमण का विवरण दिया है । बिल्हण विस्तृत वर्णन करने मे अत्यन्त निपुण है । उसकी शैली बहुत उत्तम है और उसका काव्य वैदर्भी रीति का अच्छा उदाहरण है । इस ग्रन्थ मे उसने अपने एक अन्य ग्रन्थ का उल्लेख किया है, जो राम के जीवन के विषय मे था, पर वह अप्राप्य है । /

कृष्णलीलाशुक का दूसरा नाम **बिल्वमगल** था । वह १२वी शताब्दी मे मालाबार मे उत्पन्न हुआ था । उसने बहुत से ग्रन्थ लिखे है, जो कि काव्य, गीतिकाव्य, दर्शन और व्याकरण आदि विषयो पर है । उसने १२ सर्गों मे **गोविन्दाभिषेक** नामक काव्य लिखा है । इसमे प्राकृत व्याकरण के नियमो का उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण है । इसका दूसरा नाम **श्रीचिह्नकाव्य** है । उसके काव्यो मे यह सबसे अधिक प्रसिद्ध काव्य है । ग्रन्थ मे साथ ही उसने अपने इष्ट देव श्रीकृष्ण की प्रशसा भी की है ।

मख या मखक ने २५ सर्गों मे श्रीकण्ठचरित नामक काव्य लिखा है। इसमे शिव के द्वारा त्रिपुर-नाश का वर्णन है। इसमे महाकाव्य की बहुत-सी विशेषताएं हैं। अन्तिम सर्ग मे उसने कश्मीर के राजा जयसिह (११२६–११५० ई०) के मन्त्री तथा अपने भाई लक या अलकार के साथ राजद्वार मे निवास का वर्णन किया है। उसने राजशेखर, मुरारि आदि का उल्लेख अपने पूर्ववर्ती कवि के रूप मे किया है। कल्हण, बिल्हण और जल्हण उसके समकालीन थे। उसने अपने भाई अलकार के आश्रित जिन कवियो का उल्लेख किया है, उनके विषय मे कोई सूचना उपलब्ध नही होती है। मख के चार भाई थे। सभी राज्य मे उच्च पदो पर थे और सभी विद्वान् थे। कल्हण ने मख को राज्य मे मन्त्री के रूप मे उल्लेख किया है। वह साहित्यशास्त्री रुय्यक का शिष्य था। उसका समय ११५० ई० के लगभग मानना चाहिए।

कल्हण ने कश्मीर का इतिहास पद्य मे राजतरगिणी नाम से लिखा है। इसमे आठ अध्याय हैं। उसने यह ग्रन्थ ११४९ ई० मे लिखना प्रारम्भ किया था। अत उसका समय ११५० ई० के लगभग मानना चाहिए। उसका ग्रन्थ जयसिंह के राज्य के वर्णन के साथ समाप्त होता है। यह अलकारो से अलकृत एक उत्तम साहित्यिक ग्रन्थ है।

जल्हण ने **सोमपालविलास** नामक काव्य लिखा है। इसमे राजा सोमपाल का इतिहास वर्णित है। सोमपाल राजपुरी का राजा था। जल्हण उसका आश्रित कवि था। मख ने उसका नामोल्लेख किया है। अत उसका समय ११५० ई० के लगभग मानना चाहिए।

वाग्भट्ट ने एक जैन सन्त नेमिनाथ की प्रशसा मे नेमिनिर्वाण नामक काव्य लिखा है। वाग्भट्ट ११५० ई० के लगभग जीवित था। इसी समय के लगभग सन्ध्याकरनन्दी ने अपने आश्रयदाता वगाल के राजा रामपाल (११०४-११३० ई०) की प्रशसा मे रामपालचरित नामक काव्य लिखा है। इसमे राजा रामपाल का इतिहास वर्णित है। साथ ही राम की कथा भी वर्णित है। इस दृष्टि से यह द्विसन्धानकाव्य है।

हेमचन्द्र (१०८८-११७२ ई०) ने कई विषयो पर ग्रन्थ लिखे हैं। वह जैन था। वह १२वी शताब्दी मे **अनहिलवाद** (गुजरात) के राजा **जयसिंह** और उसके उत्तराधिकारी **कुमारपाल** का आश्रित कवि था। हेमचन्द्र के प्रयत्न से ही कुमारपाल जैन हुआ और राज्य का धर्म जैन धर्म घोषित हुआ। हेमचन्द्र ने **त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित** और **द्व्याश्रयकाव्य** नामक दो काव्य ग्रन्थ लिखे हैं। इनमे से प्रथम पुस्तक दस पर्वों में है। इसमे जैन धर्म के ६३ व्यक्तियो का जीवन चरित वर्णित है। दूसरे में कवि ने अपने आश्रयदाता कुमारपाल के इतिहास का वर्णन किया है। अत इसको **कुमारपालचरित** भी कहते हैं। इसमें बीस सर्ग सस्कृत मे और आठ सर्ग प्राकृत मे हैं। अत इसको द्व्याश्रयकाव्य कहते हैं। हेमचन्द्र ने सस्कृत और प्राकृत भाषा के लिए जो व्याकरण-नियम बनाए हैं, उनका इसमे उदाहरण प्रस्तुत किया है। इन दोनो काव्यो से ज्ञात होता है कि लेखक काव्य के द्वारा जैन धर्म को जन-प्रिय बनाना चाहता था।

कविराज कादम्ब वश के राजा **कामदेव** (११८२-११९७ ई०) का आश्रित कवि था। अत उसका समय ११९० ई० के लगभग मानना चाहिए। वह अपने आपको वक्रोक्ति का आचार्य मानता है और अपना स्थान बाण और सुबन्धु के साथ रखवाना चाहता है। उसने **राघवपाण्डवीय** और **पारिजातहरण** नामक दो काव्य लिखे हैं। इनमे से प्रथम द्विसन्धान काव्य है। इसमे राम और पाण्डवो की कथा १३ सर्गो मे वर्णित की गई है। दूसरे मे १० सर्ग है। इसमे कृष्ण के द्वारा स्वर्ग से पारिजात के लाने का वर्णन है। कविराज द्विसन्धान काव्य की रचना मे प्रवीण है तथा उसमे उनकी प्रतिभा का विकास हुआ है। इसके लिए निम्नलिखित दो श्लोको का प्रमाण पर्याप्त है—

तद्वाक्यान्ते दत्तकर्णानुमोद
पुत्रप्रीत्या जातकृच्छ कुमारम्।
धर्मात्मान प्रेषयामास दूरम्
विश्वामित्रप्रीतये भूमिपाल ॥१७६॥

माश्रा सम सावरज स राज्ञा
प्रस्थापितो धाम तपोधनानाम् ।
स्थानान्तर विद्विषता रणेषु
समर्थकोदण्डधर प्रतस्थे ।।१७७।।

वह अपने को **वक्रोक्ति** का आचार्य कहता है तथा वक्रोक्ति के आचार्य वाण और सुवन्धु की कोटि मे अपने को स्थान देता है ।

सुवन्धुर्वाणभट्टश्च कविराज इति त्रयम् ।
वक्रोक्तिमार्गनिपुणाश्चतुर्थो विद्यते न वा ।।

श्रीहर्ष के पिता का नाम हीर और माता का नाम मामल्लदेवी था । वह १२वी शताब्दी के उत्तरार्ध मे कन्नौज के राजा विजयचन्द्र और जयचन्द्र का आश्रित कवि था । उसने चिन्तामणि मन्त्र[1] का जप किया और कई विद्याओ मे विशेष योग्यता प्राप्त की । उसने कई ग्रन्थ लिखे हैं । उसके काव्य ग्रन्थो मे से केवल **नैषधीयचरित** ही उपलब्ध होता है । ऐसा माना जाता है कि उसने यह महाकाव्य साठ सर्गों मे लिखा था । उसमे से केवल २२ सर्ग अव प्राप्य हैं । उसने नल और दमयन्ती की कथा इसमे वर्णित की है । इसके २२वे सर्ग मे यह कथा अपूर्ण प्राप्त होती है । यह महाकाव्य है । इसमे रस, अलकार आदि के वर्णन मे लेखक की मौलिकता परिलक्षित होती है । उसने साहित्य-शास्त्रियो के महाकाव्य-विषयक नियमो की उपेक्षा की है । कल्पनाओ की ऊँची उडान मे वह सभी सीमाओ को पार कर जाता है । उसने अलकारो के प्रयोग के लिए दर्शन और व्याकरण से उदाहरण लेकर अपनी विशेष योग्यता का परिचय दिया है । उसके इस महाकाव्य को शास्त्रकाव्य कह सकते हैं । उसकी शैली वहुत कठिन है और कोषग्रन्थो की सहायता के विना हम उसका अर्थ नहीं समझ सकते हैं । अत उसके लिए कहा जाता है—नैषध विद्वदौषधम् । श्रीहर्ष ने अपने कला-कौशल की अभिव्यक्ति यमकालकार मे भी की है,

---

१ नैषधीयचरित, सर्ग १—१४५ ।

किन्तु वहुत ही कम । १३वें सर्ग के ३४वें श्लोक की रचना इस ढग की है कि उसका अर्थ अग्नि, यम, वरुण, नल और इन्द्र—हरेक के विषय मे लगाया जा सकता है। काव्य मे यत्र-तत्र रोचक वृत्तान्त भी हैं। विवाहोत्सवो मे वधू-पक्ष ही विवाह का सूत्रपात करता है[1]। साधु जन अपने नाम का उच्चारण स्वय नही करते[2]। विवाहोत्सव के अवसर पर भवन का प्रवेशद्वार कदली-स्तम्भो से सजाया जाता है[3]। इसके कई सर्गो के अन्तिम श्लोको मे उसने अपनी रचनाओ का उल्लेख किया है। इनमे से कुछ ये हैं—**खण्डनखण्डखाद्य, गौडोर्वीशकुलप्रशस्ति, अर्णववर्णन** और **साहसाङ्कचरित**। इनमे से केवल खण्डन-खण्डखाद्य प्राप्य है। शेष अप्राप्य हैं।

चण्डकवि ने **पृथ्वीराजविजय** नामक काव्य लिखा है। इसमे उसने अजमेर और दिल्ली के राजा पृथ्वीराज की ११९१ ई० मे सुल्तान शाहबुद्दीन गौरी के ऊपर विजय का वर्णन किया है। यह काव्य आठ सर्गों से युक्त मुद्रित हुआ है। यह अपूर्ण है। लेखक का समय १२०० ई० के लगभग मानना चाहिए। चन्द्रकवि ने ही यह काव्य बनाया है, इसका कोई प्रमाण प्राप्त नही होता है।

पुरी के **कृष्णानन्द** ने १५ सर्गों मे **सहृदयानन्द** नामक काव्य लिखा है। उसने इसमे नल का जीवन-चरित वर्णन किया है। लेखक वैदर्भी रीति का विशेप विद्वान् है। अत उसके काव्य मे सरलता और मनोज्ञता है। सस्कृत के विशेप रोचक काव्य ग्रन्थो मे यह भी एक है। लेखक का समय १३वी शताब्दी के प्रारम्भ के लगभग है। लगभग इसी समय कश्मीर के जयरथ ने **हरचरित-चिन्तामणि** नामक काव्य लिखा है। यह पद्यात्मक ३२ प्रकाशो (सर्ग) मे लिखा गया है। इसमे शिव और कश्मीरी शैवो के पराक्रमो का वर्णन किया

---

१ नैपधीयचरित १—५०।

२ ,, ६—१३।

३ ,, १६—१८।

गया है। लगभग इसी समय एक जैन कवि **अभयदेव** हुआ है। उसने १२२१ ई० मे १९ सर्गो मे **जयन्तविजय** नामक काव्य लिखा है। इसमें उसने विक्रमसिंह के परिवार के एक राजा जयन्त के जीवन का वर्णन किया है।

अरिसिंह ने १२२२ ई० मे ११ सर्गो मे **सुकृतसंकीर्तन** नामक काव्य लिखा है। यह राजा वीरधवल (१२२० ई०) के मन्त्री वस्तुपाल का आश्रित कवि था। इसमे उसने वीरधवल की वंशावली और वस्तुपाल के परोपकारो का वर्णन किया है। वस्तुपाल के प्रशंसक एक कवि **बालचन्द्रसूरि** ने १२४० ई० मे १४ सर्गो मे **वसन्तविलास** नामक काव्य लिखा है। इसमे वस्तुपाल के कार्यो का वर्णन किया गया है। वस्तुपाल का मित्र **सोमेश्वरदेव** वीरधवल का आश्रित कवि था। वह १३वी शताब्दी के पूर्वार्ध मे हुआ था। उसने १५ सर्गो मे **सुरथोत्सव** नामक काव्य लिखा है। इसमे उसने चैत्र वंश के राजा सुरथ का सुयश-वर्णन किया है। वस्तुपाल के आश्रित कवियो मे एक कवि **अमरचन्द्र** (१२५० ई०) भी था। इसने ४४ सर्गो मे **बालभारत** नामक काव्य लिखा है। इसमे महाभारत की कथा वर्णित है। शैली की दृष्टि से इसमे कालिदास के रघुवंश की-सी मनोज्ञता है।

देवप्रभसूरि ने १८ सर्गों में **पाण्डवचरित** नामक काव्य लिखा है। इसका समय १२५० ई० के लगभग है। इसमे पाण्डवो के जीवन का वर्णन है और उच्च गुणो के आचरण पर बल दिया गया है। **चन्द्रप्रभसूरि** ने १८७८ ई० मे जैन सन्त **प्रभावक** के जीवन के विषय मे **प्रभावकचरित** काव्य लिखा है। **वीरनन्दी** ने १३वी शताब्दी मे **चन्द्रप्रभचरित** नामक काव्य लिखा है। यह १८ सर्गों मे है। इसमे राजा **कनकप्रभ** और जैन मुनि **चन्द्रप्रभ** का जीवन-चरित वर्णित है। **सर्वानन्द** ने १३०० ई० के लगभग ७ सर्गो मे **जगडूचरित** नामक काव्य लिखा है। यह १२५६ ई० मे गुजरात मे पडे अकाल के समय जगडू नामक जैन मुनि के द्वारा की गई अकाल पीडितो की सहायता का वर्णन करता है। **नयचन्द्र** ने १३१० ई० के लगभग १७ सर्गों मे **हम्मीरमहाकाव्य** नामक काव्य लिखा है। इसमे चौहान वंशी राजा हम्मीर का वर्णन किया गया

है कि किस प्रकार उसने अलाउद्दीन से एक मुसलमान को आश्रय देकर बचाया और परिणामस्वरूप अलाउद्दीन ने उसकी राजधानी को घेर लिया और उसे मार डाला।

वासुदेव के पिता का नाम महर्षि और माता का नाम गोपालिका था। वे मालाबार के वेदारण्य स्थान के निवासी थे। उसने २१ काव्य-ग्रन्थ लिखे हैं। उनमे से कुछ यमक अलकार से परिपूर्ण है। इनमे से **युधिष्ठिरविजय** और **नलोदय** दो अधिक प्रसिद्ध काव्य हैं। प्रथम मे युधिष्ठिर के पराक्रमो का वर्णन आठ आश्वासो मे है। दूसरे मे नल की राज्य-प्राप्ति के बाद नल के जीवन का चार आश्वासो मे वर्णन किया गया है। प्रथम मे उल्लेख है कि इस काव्य की रचना के समय राजा कुलशेखर राज्य करते थे और दूसरे मे राजा राम का उल्लेख है। इन दोनों उल्लेखो के आधार पर कोई समय का निर्णय नही किया जा सकता है। मालाबार मे कई राजा हुए हैं, जिसकी उपाधि कुलशेखर है। विद्वानो ने इस लेखक का समय आदि निश्चित नही किया है। मालाबार मे कई कवियो का नाम वासुदेव है। कुछ आलोचको का मत है कि युधिष्ठिर-विजय काव्य का रचयिता और नलोदय काव्य के रचयिता दो भिन्न वासुदेव हैं। कुछ विद्वानो ने युधिष्ठिरविजय के कुशलशेखर के आधार पर लेखक का समय ८०० ई० के लगभग माना है। उनका मत है कि इस समय केरल मे कुलशेखर नाम का एक राजा राज्य करता था। कुछ विद्वानो ने इसका समय १६वी शताब्दी माना है। उनके मतानुसार यह वासुदेव ही नारायणीय का लेखक तथा नारायण भट्ट का पुत्र है। नलोदय का समय १५९९ ई० से पूर्व होना चाहिये, क्योकि इसकी सबसे प्राचीन हस्तलिपि का समय यह है। उद्दण्डकवि (१४०० ई०) ने वासुदेव के पिता का नाम महर्षि लिखा है।[1] **वाचस्पति मिश्र** (८५० ई०) की **न्यायकणिका** की टीका कवि वासुदेव के भतीजे परमेश्वर ने की है। अत लेखक का समय ९०० ई० से १४०० ई०

१ दशम ओरियन्टल कान्फ्रेन्स के विवरण मे यमक कवि वासुदेव के विषय मे वेंकटराम शर्मा का लेख।

के बीच मे है। नलोदय का रचयिता कालिदास को कहना भूल है। एक टीकाकार ने इसका लेखक रविदास लिखा है।

अगस्त्य वारंगल के राजा प्रतापरुद्रदेव (१२६४-१३२५ ई०) का आश्रित कवि था। परम्परा के अनुसार वह ७४ काव्यो का रचयिता है। इनमे से कुछ प्राप्य हैं। इसके आश्रयदाता ने इसको विद्यानाथ की उपाधि दी थी। उसने पाण्डवो के जीवन के विषय मे २० सर्गों मे बालभारत काव्य लिखा है। इसमे वैदर्भी शैली की सुन्दर मनोरमता प्राप्त होती है।

वेदान्तदेशिक का वास्तविक नाम वेंकटनाथ था। इसका समय १२६८-१२६६ ई० है। वह महान् कवि और दार्शनिक था। उसने संस्कृत और तामिल भाषा मे विभिन्न विषयो पर लगभग १२० ग्रन्थ लिखे हैं। वह कांची का निवासी था और रामानुज के विशिष्टाद्वैत का अनुयायी था। उसने जीवन भर अथक साहित्यिक कार्य किया है। उसने यादवाभ्युदय नामक काव्य लिखा है। इसमे २४ सर्ग हैं। इसमे कृष्ण की कथा का वर्णन है। उसने कृष्ण के जीवन की प्रत्येक घटना को लिया है और उसको दार्शनिक पृष्ठभूमि देते हुए उसको साहित्यिक सौन्दर्य प्रदान किया है। इसके १८वे सर्ग मे कृष्ण के द्वारा नरकासुर का वध तथा नरकासुर की राजधानी से कृष्ण के द्वारका जाने का वर्णन है। साथ ही विमान मे भूतल के दृश्यो के रूप का वर्णन है। इसके षष्ठ सर्ग मे भारवि और माघ के तुल्य शब्दालंकारो का प्रदर्शन है। लेखक ने विभिन्न शैलियो का भी प्रदर्शन किया है। उसको उसकी विद्वत्ता के आधार पर वेदान्ताचार्य, कवितार्किकसिंह और सर्वतन्त्रस्वतन्त्र उपाधियाँ दी गई थीं। उसके इस काव्य की टीका अप्पयदीक्षित (१६०० ई०) ने की है।

गंगादेवी विजयनगर के बुक्क प्रथम (१३४३-१३७६ ई०) के द्वितीय पुत्र कम्पन की पत्नी थी। उसने मथुराविजय या वीरकम्परायचरित नामक काव्य लिखा है। यह अपूर्ण रूप मे उपलब्ध है। उसने अपने पति के पराक्रम और उसके दक्षिण की ओर यात्रा का वर्णन किया है। कम्पन मथुरा गया और वहाँ के राजा का उसने वध किया। अत उसने मथुराविजय नाम

रक्खा था। गगादेवी का समय १३८० ई० के लगभग मानना चाहिए। **लोलम्बराज** विजय नगर के राजा हरिहर का आश्रित कवि था। उसने १४०० ई० मे **हरि-विलास** नामक काव्य लिखा है। इसमे ५ सर्ग हैं। इसमे कृष्ण और उनके पराक्रम का वर्णन है।

वामनभट्ट बाण वत्सगोत्र के कोमटि यज्वन् का पुत्र था। वह विद्यारण्य का शिष्य था। वह अदकी के राजा पेद्दकोमटि वेमभूपाल (१४०३-१४२० ई०) का आश्रित कवि था। अत उसका समय १५वी शताब्दी के पूर्वार्ध मे मानना चाहिए। उसने राम के जीवन-चरित के विषय मे ३० सर्गों मे **रघुनाथचरित** नामक काव्य लिखा है और नल के विषय मे ८ सर्गों का **नलाभ्युदय** काव्य लिखा है।

कल्हण की **राजतरगिणी** को **जोनराज** (१४५० ई०) ने चालू रक्खा। उसने जयसिंह से लेकर सुल्तान जैन-ए-अबिदिन तक का वर्णन लिखा है। जोनराज के शिष्य **श्रीवर** ने अपने गुरु के कार्य को अपनी **जैनराजतरगिणी** मे चालू रक्खा है। उसने १४६८ ई० तक के राजाओ का वर्णन किया है। एक वाद के लेखक **प्राज्य भट्ट** ने **राजावलिपताका** नामक ग्रन्थ लिखा है और १४६८ ई० से लेकर अकवर के द्वारा कश्मीर को मिलाने के समय तक का कश्मीर का इतिहास-वर्णन किया है।

मालावार के एक कवि **सुकुमार** कवि (१४५० ई०) ने कृष्ण के पराक्रम के विषय मे चार सर्गो मे **कृष्णविलास** नामक काव्य लिखा है। इसकी शैली की सरलता और मनोरमता ने इसको मालावार के सवसे प्रसिद्ध कवियो मे स्थान दिलाया है।

राजनाथ द्वितीय विजयनगर के राजाओ का आश्रित कवि था। इसकी उपाधि **डिण्डिम-कविसार्वभौम** थी। वह विजयनगर के राजाओ के सेनापति सालुव नरसिंह का प्रिय कवि था। उसने १४३० ई० के लगभग १३ सर्गों मे **सालुवाभ्युदय** नामक काव्य लिखा है। इसमे उसने साल्व नरसिंह के पराक्रम तथा उसके पूर्वजो का वर्णन किया है। उसके पौत्र **राजनाथ तृतीय** ने

१५४० ई० के लगभग २० सर्गों मे **अच्युतरायाभ्युदय** नामक काव्य लिखा है। इसमे उसने विजयनगर के कृष्णदेवराय के भाई राजा अच्युतराय (१५३०-१५४२ ई०) के पराक्रम का वर्णन किया है।

लक्ष्मण भट्ट के पुत्र **रामचन्द्र** ने १५४२ ई० मे द्विसन्धान पद्धति पर **रसिक-रजन** नामक काव्य लिखा है। एक ओर से पढने पर यह शृगारिक अर्थ देता है और दूसरी ओर से पढने पर वैराग्य-सम्बन्धी अर्थ देता है।

मालावार के निवासी **उत्प्रेक्षावल्लभ** ने ३९ पद्धति (अध्याय) मे एक अपूर्ण **भिक्षाटनकाव्य** नामक काव्य लिखा है। इसमे वर्णन किया है कि किस प्रकार शिव एक भिक्षुक के रूप मे एक दानी चोल राजा के दान की परीक्षा के लिए उसके पास जाते हैं। लेखक का नाम ग्रथ मे नही दिया हुआ है। इसके काव्य में शिवभक्तदास शब्द आता है। इसके आधार पर कुछ व्यक्ति इसका यही नाम मानते हैं, किन्तु यह केवल कल्पना ही है। ऐसा ज्ञात होता है कि उसकी उत्तम उत्प्रेक्षाओ की प्रशसा में उसे उत्प्रेक्षावल्लभ उपाधि दी गई थी। इस ग्रन्थ का समय अज्ञात है। आलोचक इसका समय १६वी शताब्दी के लगभग मानते हैं।

रुद्रकवि ने २० सर्गों मे **राष्ट्रौढवशमहाकाव्य** नामक काव्य लिखा है। इसमे उसने मयूरगिरि के प्रथम राजा राष्ट्रौढ से लेकर नारायणशाह तक के परिवार का वर्णन किया है। यह नारायणशाह का आश्रित कवि था। इसने यह काव्य १५९६ ई० मे लिखा है।

चिदम्बर ने १६०० ई० के लगभग त्रिसन्धान पद्धति पर **राघवपाण्डव-यादवीय** नामक काव्य लिखा है। इसके प्रत्येक श्लोक के तीन अर्थ हैं। इसने एक साथ उन्ही श्लोको मे राम, पाडवो और कृष्ण का जीवन-चरित वर्णन किया है।

यज्ञनारायण तन्जोर के नायक राजा अच्युत (१५७७-१६१४ ई०) और उसके उत्तराधिकारी रघुनाथ के प्रधान-मन्त्री गोविन्द दीक्षित का पुत्र था। यज्ञनारायण रघुनाथ का आश्रित कवि था। उसका समय १६०० ई०

रक्खा था। गगादेवी का समय १३८० ई० के लगभग मानना चाहिए। **लोलम्वराज** विजय नगर के राजा हरिहर का श्राश्रित कवि था। उसने १४०० ई० मे **हरि-विलास** नामक काव्य लिखा है। इसमे ५ सर्ग हैं। इसमे कृष्ण और उनके पराक्रम का वर्णन है।

वामनभट्ट बाण वत्सगोत्र के कोमटि यज्वन् का पुत्र था। वह विद्यारण्य का शिष्य था। वह श्रदकी के राजा पेद्दकोमटि वेमभूपाल (१४०३-१४२० ई०) का श्राश्रित कवि था। श्रत उसका समय १५वी शताब्दी के पूर्वार्ध मे मानना चाहिए। उसने राम के जीवन-चरित के विषय मे ३० सर्गों मे **रघुनाथचरित** नामक काव्य लिखा है और नल के विषय मे ८ सर्गों का **नलाभ्युदय** काव्य लिखा है।

कल्हण की **राजतरगिणी** को **जोनराज** (१४५० ई०) ने चालू रखखा। उसने जयसिंह से लेकर सुल्तान जैन-ए-अबिदिन तक का वर्णन लिखा है। जोनराज के शिष्य **श्रीवर** ने अपने गुरु के कार्य को अपनी **जैनराजतरगिणी** मे चालू रक्खा है। उसने १४६८ ई० तक के राजाओ का वर्णन किया है। एक वाद के लेखक **प्राज्य भट्ट** ने **राजावलिपताका** नामक ग्रन्थ लिखा है और १४६८ ई० से लेकर अकवर के द्वारा कश्मीर को मिलाने के समय तक का कश्मीर का इतिहास-वर्णन किया है।

मालावार के एक कवि **सुकुमार** कवि (१४५० ई०) ने कृष्ण के पराक्रम के विपय मे चार सर्गों मे **कृष्णविलास** नामक काव्य लिखा है। इसकी शैली की सरलता और मनोरमता ने इसको मालावार के सवसे प्रसिद्ध कवियो मे स्थान दिलाया है।

राजनाथ द्वितीय विजयनगर के राजाओ का श्राश्रित कवि था। इसकी उपाधि **डिण्डिम-कविसार्वभौम** थी। वह विजयनगर के राजाओ के सेनापति साल्व नरसिंह का प्रिय कवि था। उसने १४३० ई० के लगभग १३ सर्गो मे **सालुवाभ्युदय** नामक काव्य लिखा है। इसमे उसने साल्व नरसिंह के पराक्रम तथा उसके पूर्वजो का वर्णन किया है। उसके पौत्र **राजनाथ तृतीय** ने

१५४० ई० के लगभग २० सर्गों मे **अच्युतरायाभ्युदय** नामक काव्य लिखा है। इसमे उसने विजयनगर के कृष्णदेवराय के भाई राजा अच्युतराय (१५३०-१५४२ ई०) के पराक्रम का वर्णन किया है।

लक्ष्मण भट्ट के पुत्र **रामचन्द्र** ने १५४२ ई० मे द्विसन्धान पद्धति पर **रसिक-रजन** नामक काव्य लिखा है। एक ओर से पढने पर यह शृगारिक अर्थ देता है और दूसरी ओर से पढने पर वैराग्य-सम्बन्धी अर्थ देता है।

मालाबार के निवासी **उत्प्रेक्षावल्लभ** ने ३६ पद्धति (अध्याय) मे एक अपूर्ण **भिक्षाटनकाव्य** नामक काव्य लिखा है। इसमे वर्णन किया है कि किस प्रकार शिव एक भिक्षुक के रूप मे एक दानी चोल राजा के दान की परीक्षा के लिए उसके पास जाते है। लेखक का नाम ग्रथ मे नही दिया हुआ है। इसके काव्य में शिवभक्तदास शब्द आता है। इसके आधार पर कुछ व्यक्ति इसका यही नाम मानते हैं, किन्तु यह केवल कल्पना ही है। ऐसा ज्ञात होता है कि उसकी उत्तम उत्प्रेक्षाओ को प्रशसा में उसे उत्प्रेक्षावल्लभ उपाधि दी गई थी। इस ग्रन्थ का समय अज्ञात है। आलोचक इसका समय १६वी शताब्दी के लगभग मानते हैं।

रुद्रकवि ने २० सर्गों मे **राष्ट्रौढवशमहाकाव्य** नामक काव्य लिखा है। इसमे उसने मयूरगिरि के प्रथम राजा राष्ट्रौढ से लेकर नारायणशाह तक के परिवार का वर्णन किया है। यह नारायणशाह का आश्रित कवि था। इसने यह काव्य १५९६ ई० मे लिखा है।

चिदम्बर ने १६०० ई० के लगभग त्रिसन्धान पद्धति पर **राघवपाण्डव-यादवीय** नामक काव्य लिखा है। इसके प्रत्येक श्लोक के तीन अर्थ हैं। इसने एक साथ उन्ही श्लोको मे राम, पाडवो और कृष्ण का जीवन-चरित वर्णन किया है।

यज्ञनारायण तन्जोर के नायक राजा अच्युत (१५७७-१६१४ ई०) और उसके उत्तराधिकारी रघुनाथ के प्रधान-मन्त्री गोविन्द दीक्षित का पुत्र था। यज्ञनारायण रघुनाथ का आश्रित कवि था। उसका समय १६०० ई०

के लगभग मानना चाहिए। उसने १६ सर्गों मे **रघुनाथभूपविजय** नामक काव्य लिखा है। इसका दूसरा नाम **साहित्यरत्नाकर** है। इसमे रघुनाथ का जीवन-चरित है।

राजचूडामणि दीक्षित अप्पयदीक्षित के समकालीन रत्नखेट श्रीनिवास दीक्षित का पुत्र था। वह तन्जोर के राजा रघुनाथ का आश्रित कवि था। वह १६२० ई० के लगभग था। उसने विभिन्न विषयो पर कई ग्रन्थ लिखे हैं। उसने १० सर्गों मे **रुक्मिणी-कल्याण** नामक काव्य लिखा है। इसमे कृष्ण का रुक्मिणी के साथ विवाह का वर्णन है। इसकी शैली सरल और सुन्दर है।

राजा रघुनाथ की पत्नी रानी **रामभद्राम्बा** उच्चकोटि की कवियित्री थी। वह अपने पति को श्रीराम का अवतार मानती थी। उसने अपने पति के परा-क्रमो की प्रशसा मे १२ सर्गों मे **रघुनाथाभ्युदय** नामक काव्य लिखा है। रघुनाथ स्वय भी उच्चकोटि का कवि था। कहा जाता है कि उसने वहुत से ग्रन्थ लिखे हैं।

चक्र कवि ने ८ सर्गो मे **जानकीपरिणय** नामक काव्य लिखा है। इसमे राम और सीता के विवाह का वर्णन है। वह मदुरा के तिरुमल नायक का आश्रित कवि था। उसका समय १६५० ई० है।

नीलकण्ठ अप्पयदीक्षित के भाई का पौत्र था। वह १६१३ ई० मे उत्पन्न हुआ था। वह गोविन्द दीक्षित के पुत्र वेंकटेश्वर मखिन का शिष्य था। वह मदुरा के तिरुमल नायक का प्रधान मन्त्री था। उसके साहित्यिक कार्य का समय १६५० ई० के लगभग मानना चाहिए। उसने उच्च शैली मे कई मनोहर ग्रथ लिखे हैं। उसने **शिवलीलार्णव** और **गगावतरण** दो काव्य ग्रन्थ लिखे हैं। पहले मे २२ सर्ग हैं। इसमे हालास्यनाथ की ६४ क्रीडाओ का वर्णन है। मदुरा मे शिव की हालास्यनाथ नाम से ही पूजा होती है। गगावतरण मे ८ सर्ग हैं। इसमे भूतल पर गगा के अवतरण का वर्णन है।

वेंकटाध्वरी काची का निवासी था। वह रामानुज के सम्प्रदाय का था। वह एक महान् कवि और दार्शनिक था। वह १६५० ई० के लगभग हुआ

था। उसने **यादवराघवीय** नामक काव्य ३० श्लोको मे लिखा है और उस पर स्वय टीका की है। यह द्विसन्धान पद्धति पर लिखा गया काव्य है। लेखक अनुप्रास के प्रयोग मे अत्यन्त निपुण है। उसने इसमे अनुप्रास के समावेश के कारण काव्य को अत्यन्त कठिन वना दिया है।

एक जैन कवि **मेघविजयगणि** ने १६७१ ई० मे ६ सर्गों मे **सप्तसन्धान-महाकाव्य** नामक काव्य लिखा है। इसमे उसने वृषभनाथ, शान्तिनाथ, पार्श्वनाथ, नेमिनाथ, महावीरस्वामी, कृष्ण और वलदेव के जीवन-चरित का वर्णन किया है। इस काव्य के प्रत्येक श्लोक के सात अर्थ है। अत. प्रत्येक श्लोक मे सातो व्यक्तियो के जीवन का वर्णन साथ ही साथ चलता है। यह काव्य धनजय, कविराज आदि के द्विसन्धान काव्यो की पद्धति पर वनाया गया है। इस काव्य के अतिरिक्त उसने जैन मुनियो और जैन दर्शन के विषय मे कई ग्रन्थ लिखे हैं।

एक जैन कवि **देवविमलगणि** ने १७ सर्गों मे **हीरसौभाग्य** नामक काव्य लिखा है और उस पर स्वय टीका की है। उसने इसमे **हीरविजयसूरि** का जीवनचरित वर्णन किया है। अकवर ने इन्हें जगद्गुरु की उपाधि दी थी। इसका रचनाकाल १७०० ई० के लगभग है।

रामभद्र दीक्षित ने ८ सर्गों मे **पतजलिचरित** नामक काव्य लिखा है। इसमे उसने वैयाकरण पतजलि का जीवन-चरित वर्णन किया है। वह राम का कट्टर भक्त था। वह तजोर के राजा शाहजी (१६८४-१७११ ई०) का आश्रित कवि था। अत उसका समय १७०० ई० के लगभग मानना चाहिए।

१८वीं शताब्दी के पूर्वार्ध मे **हरदत्त सूरि** ने द्विसन्धान पद्धति का **राघव-नैषधीय** नामक काव्य लिखा है। इसमे दो सर्ग हैं। इसमे राम और नल का जीवन-चरित्र साथ ही साथ वर्णित है।

पूरे काव्य साहित्य को देखने से ज्ञात होता है कि इसका वहुत उन्नत रूप से विकास हुआ है। इसके विकास मे तीन काल-विभाग दृष्टिगोचर होते हैं,

अर्थात् (१) कालिदास से पूर्ववर्ती कवि, (२) कालिदास, (३) कालिदास के परवर्ती कवि। कालिदास के पूर्ववर्ती काल का प्रतिनिधित्व केवल वाल्मीकि का रामायण करता है। कालिदास की साहित्यिक योग्यता और श्रेष्ठता के कारण उसके पूर्ववर्ती अन्य कवियो का नाम और उनकी कृतियाँ नष्ट हो गई है। इस समय भाव को सर्वोच्च स्थान दिया गया था और काव्य की शैली को गौण स्थान प्राप्त था। अत कवियो को अपनी रचनात्मक शक्ति को विकसित और प्रकाशित करने का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ। कालिदास और उसके तुरन्त बाद के कवि द्वितीय काल-विभाग मे आते है। इस समय भाव और भाषा को समान एव सतुलित रूप दिया गया जिसका परिणाम यह हुआ कि भाव और भाषा दोनो सतुलित रूप मे प्रकट हुए। कवियो की रचनात्मक शक्ति और आलकारिक सौन्दर्य कविता मे साथ-साथ चलते रहे। इस काल मे कविता का जो उच्च रूप कालिदास ने प्रस्तुत किया, वह अश्वघोष के काव्य से कुछ अवनत अवस्था मे प्राप्त होता है।

तृतीय काल-विभाग की कतिपय प्रमुख विशेषताएँ है। **वात्स्यायन** के **कामसूत्र** ने तथा अन्य साहित्य-शास्त्रियो के शास्त्रीय ग्रन्थो ने कवियो को इतना प्रभावित कर दिया है कि उनकी कविता मे कृत्रिमता और पूर्वानुकरण विशेष रूप से लक्षित होता है। प्रत्येक कवि अपने आश्रयदाता को तथा विद्वन्मडली को सन्तुष्ट करना चाहता था। उसके काव्य को आलोचको की परीक्षा मे उत्तीर्ण होना पडता था, तभी वह उचित स्थान पा सकता था। जो कवि ऐसे वातावरण मे प्रसिद्धि प्राप्त करना चाहते थे, उनके काव्यो मे भावो के स्थान पर भावुकता, प्रवाह के स्थान पर कल्पना, अनुभूति के स्थान पर पाण्डित्य-प्रदर्शन दृष्टिगोचर होता है। जब रचनात्मक प्रवृत्ति का महत्त्व कम हुआ, तब काव्य के बाह्य रूप को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ और परिणाम-स्वरूप विषय का स्थान गौण हो गया। भावो की बलि देकर ही ऐसा करना सभव हुआ। कवियो ने केवल शाब्दिक-चमत्कार-प्रदर्शन मे अपनी कुशलता का प्रदर्शन प्रारम्भ किया और इसकी प्रतियोगिता प्रारम्भ हो गई। महा-

काव्य के लिए निर्धारित नियमो के पालन के लिए कतिपय एसे वर्णनो को स्थान दिया गया, जो वहाँ पर वस्तुत· आवश्यक और उपयुक्त नही हैं। रत्नाकर के **हरविजय**, **मख** के **श्रीकण्ठचरित** और **शिवस्वामी** के **कप्पयाम्युदय** आदि मे यह प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। कवियो ने शब्दालकारो के प्रयोग मे ही अपनी मौलिकता दिखानी प्रारम्भ की। इस विषय मे **भारवि**, **माघ**, **कुमारदास**, **वासुदेव**, **शिवस्वामी** और **वेंकटाध्वरी** विशेष रूप मे उल्लेखनीय हैं। कुछ काव्यो मे वैयाकरणो का प्रभाव विशेषरूप से दृष्टिगोचर होता है। **अश्वघोष** के **बुद्धचरित** और **भारवि** के **किरातार्जुनीय** मे यह प्रवृत्ति विशेषतया दिखाई देती है। **भट्टि**, **भीम** और **हलायुध** ने अपने काव्य केवल इसलिए बनाए हैं कि उनमे व्याकरण के नियमो के उदाहरण प्रस्तुत किए जायें। ज्यो-ज्यो कविता बाह्यरूपात्मक अधिक होती गई, **श्रीहर्ष** जैसे कुछ कवियो ने अपने काव्य मे कवित्व के अतिरिक्त अन्य विषयो का पाण्डित्य प्रदर्शित करना प्रारम्भ कर दिया। एक नई प्रवृत्ति प्रारम्भ हुई कि श्लेष अलकार का आश्रय लेकर एक से अधिक भावो को एक साथ प्रकाशित किया जाय। इस विषय मे **धनजय** और **कविराज** के **राघवपाण्डवीय** काव्य आदि, जो कि द्विसन्धान पद्धति पर लिखे गए हैं, विशेषतया उल्लेखनीय हैं। डा० ए० बी० कीथ ने ठीक ही लिखा है कि "श्लेष अलकार का भाषा पर बहुत घातक प्रभाव पडता है। योग्यतम कवि के लिए असभव है कि वह श्लेष के द्वारा दो अर्थ एक साथ प्रकट करे और अर्थ, रचना तथा अन्वय मे खेच न करे। इस प्रयत्न का प्रभाव यह होता है कि उस समय के वर्तमान कोष-ग्रन्थो को सूक्ष्मता के साथ देखा जाता है और ऐसे शब्द ढूंढ कर निकाले जाते हैं जो अनेक अर्थो का बोध करा सकें। परिणामस्वरूप कवित्व-साधना के स्थान पर बौद्धिक परिश्रम होने लगता है और विचारो तथा भावो को सर्वथा नष्ट किया जाता है।"[1] इस काल मे साम्प्रदायिक भावो का बहुत प्राबल्य रहा है। बौद्धो और जैनो ने काव्य-साहित्य को बहुत देन दी है। इस दृष्टि से **अश्वघोष** और **हेमचन्द्र** उच्चकोटि के

१ A B Keith, History of Sanskrit Literature पृष्ठ १२७

प्रेमिका को प्रणय-सन्देश भेजता है। यह सन्देश किसी दूत के द्वारा भेजा जाता है। दूत का निर्णय प्रेमी अपनी इच्छानुसार करता है। ऐसे गीतिकाव्यो मे कुछ ऐसे भी है, जिनमे प्रेमिका अपने प्रिय को सन्देश भेजती है।

गीतिकाव्यो मे, विशेषकर दूतकाव्यो मे, कालिदास का मेघदूत सर्वश्रेष्ठ है। इसको मेघसन्देश भी कहते हैं। यह दो भागो मे है, पूर्वमेघ और उत्तरमेघ। पूर्वमेघ मे कहा गया है कि किस प्रकार एक यक्ष को अलका मे स्थित अपनी प्रेमिका से वियुक्त होकर रामगिरि पर्वत पर रहना पडा। वर्षा ऋतु के प्रारम्भ मे उसकी इच्छा हुई कि अपने वियोग मे दु खित प्रेमिका को सान्त्वना का सन्देश भेजूं और अपनी अवस्था का भी समाचार भेजूं। उसने समीपस्थ पर्वत की चोटी पर लगे हुए एक मेघ को देखा। उसने मेघ से कहना प्रारम्भ किया। सर्वप्रथम मेघ का स्वागत करने के बाद उसने उसे अलका का मार्ग बताया। कवि ने मार्ग मे स्थित स्थानो का वर्णन किया है। उत्तरमेघ मे उसने अलका नगरी का वर्णन किया है और वहाँ पर अपने गृह की पहचान बताई है। तत्पश्चात् अपनी प्रेमिका की अवस्था का वर्णन करके उसने वह सन्देश बताया है, जो उसे वहाँ जाकर सुनाना है।

कुछ आलोचको का मत है कि कालिदास ने अपने वैयक्तिक अनुभवो को प्रकट करने के लिए इसको बनाया है। विक्रमादित्य ने उन्हे कुन्तलेश की राजसभा मे एक राजदूत बनाकर भेजा था। इस काव्य के माध्यम से उन्होने अपनी उन व्यक्तिगत अनुभूतियो की अभिव्यक्ति की है जो उस समय उन्हें अपने परिवार से विलग होने की अवस्था मे हुई। इसमे सत्यता है या नही, कहा नही जा सकता। किन्तु यह तो स्पष्ट ही है कि कालिदास को इस काव्य की रचना करने की प्रेरणा रामायण, नल-कथा तथा उस सन्देश से प्राप्त हुई जिसे रुक्मिणी ने कृष्ण के पास एक ब्राह्मण द्वारा भेजा था।

कवि प्राकृतिक दृश्यो का वर्णन करने मे बडा ही कुशल है। इस काव्य मे उसकी इस शक्ति की स्पष्ट झलक मिलती है। उसने मन्दाक्रान्ता छन्द चुना जो इस विषय के लिए उपयुक्त कहा गया है। देखिए —

प्रावृट्प्रवासव्यसने मन्दाक्रान्ता विराजते ।
उन्होने इस छन्द को असामान्य सौन्दर्य के साथ अपनाया है ।
सुवशा कालिदासस्य मन्दाक्रान्ता प्रवल्गति ।।

—सुवृत्ततिलक ३।३३

इस काव्य मे ११५ श्लोक हैं। इस श्लोक-सख्या के सम्बन्ध मे मतैक्य नही है।[1] कालिदास ने जो भाव प्रकट किए हैं, उससे उसके मूल स्रोत का ज्ञान होता है । रामायण मे सुग्रीव का वानरो को लका का मार्ग बताना, लका का वर्णन, सायकाल के समय हनुमान का लका मे प्रवेश, अशोकवन मे सीता का वर्णन और अगले दिन प्रात काल हनुमान का सीता से मिलना आदि वर्णनो का प्रभाव कालिदास के इस काव्य पर पडा है।[2]

कालिदास ने अपने इस काव्य को हार्दिक भावों से पूर्ण किया है। यक्ष की पत्नी का वर्णन तथा उसकी वियोगावस्था के वर्णन से स्पष्ट ज्ञात होता है कि किस प्रकार कालिदास ने मानव-हृदय के भावो का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन किया है, विशेषरूप से विपत्ति के काल मे। उसने मनुष्यो के तथा प्रकृति के सुकुमार एव सुन्दर स्वरूप और भावो का गम्भीरता से निरीक्षण किया है। जिस प्रकार मनुष्य अपने भावो को प्रकट कर सकता है, उसी प्रकार अन्य जीव और वनस्पति भी अपने हार्दिक भावो को प्रकट कर सकते हैं। अतएव कालिदास ने मानव-जगत् को प्राकृतिक जगत् से सम्बद्ध किया है। यह कालिदास के मेघ के वर्णन और उसकी यात्रा के वर्णन से स्पष्ट ज्ञात होता है। उसकी शैली परिष्कृत, उत्कृष्ट और सुन्दर है। उसने स्पष्टरूप से प्रति-

---

१ मल्लिनाथ १२१ पूरणसरस्वती ११० तथा वल्लभदेव १११
दक्षिणावर्तनाथ ११० भरतसेन ११४

२ तुलना करो—मेघदूत उत्तरमेघ रामायण सुन्दरकाण्ड

मेघदूत उत्तरमेघ	रामायण सुन्दरकाण्ड
श्लोक ३७	सर्ग २२ के श्लोक १७ और १८
" ३६ और ३८	" ५३ का श्लोक २
" ४८	" ३८ काकासुर वृत्तान्त

प्रेमिका को प्रणय-सन्देश भेजता है। यह सन्देश किसी दूत के द्वारा जाता है। दूत का निर्णय प्रेमी अपनी इच्छानुसार करता है। ऐसे गीति मे कुछ ऐसे भी है, जिनमे प्रेमिका अपने प्रिय को सन्देश भेजती है।

गीतिकाव्यो मे, विशेषकर दूतकाव्यों मे, कालिदास का मेघदूत स है। इसको मेघसन्देश भी कहते हैं। यह दो भागो मे है, पूर्वमेघ और उत्तर पूर्वमेघ मे कहा गया है कि किस प्रकार एक यक्ष को अलका मे अपनी प्रेमिका से वियुक्त होकर रामगिरि पर्वत पर रहना पडा। वर्षा के प्रारम्भ मे उसकी इच्छा हुई कि अपने वियोग मे दु खित प्रेमि सान्त्वना का सन्देश भेजूं और अपनी अवस्था का भी समाचार भेजूं। समीपस्थ पर्वत की चोटी पर लगे हुए एक मेघ को देखा। उसने मे कहना प्रारम्भ किया। सर्वप्रथम मेघ का स्वागत करने के बाद उस अलका का मार्ग बताया। कवि ने मार्ग मे स्थित स्थानो का वर्णन किय उत्तरमेघ मे उसने अलका नगरी का वर्णन किया है और वहाँ पर अप की पहचान बताई है। तत्पश्चात् अपनी प्रेमिका की अवस्था का वर्णन उसने वह सन्देश बताया है, जो उसे वहाँ जाकर सुनाना है।

कुछ आलोचको का मत है कि कालिदास ने अपने वैयक्तिक अ को प्रकट करने के लिए इसको बनाया है। विक्रमादित्य ने उन्हें कु की राजसभा मे एक राजदूत बनाकर भेजा था। इस काव्य के माध्य उन्होने अपनी उन व्यक्तिगत अनुभूतियो की अभिव्यक्ति की है ज समय उन्हें अपने परिवार से विलग होने की अवस्था मे हुई। इसमे स है या नही, कहा नही जा सकता। किन्तु यह तो स्पष्ट ही है कि का को इस काव्य की रचना करने की प्रेरणा रामायण, नल-कथा तथा सन्देश से प्राप्त हुई जिसे रुक्मिणी ने कृष्ण के पास एक ब्राह्मण भेजा था।

कवि प्राकृतिक दृश्यो का वर्णन करने मे बडा ही कुशल है। इस मे उसकी इस शक्ति की स्पष्ट झलक मिलती है। उसने मन्दा छन्द चुना जो इस विषय के लिए उपयुक्त कहा गया है। देखिए —

प्रावृट्प्रवासव्यसने मन्दाक्रान्ता विराजते ।
उन्होने इस छन्द को असामान्य सौन्दर्य के साथ अपनाया है ।
सुवशा कालिदासस्य मन्दाक्रान्ता प्रवल्गति ।।

—सुवृत्ततिलक ३।३३

इस काव्य मे ११५ श्लोक हैं। इस श्लोक-सख्या के सम्बन्ध मे मतैक्य नही है।[1] कालिदास ने जो भाव प्रकट किए हैं, उसमे उसके मूल स्रोत का ज्ञान होता है । रामायण मे सुग्रीव का वानरो को लका का मार्ग वताना, लका का वर्णन, सायकाल के समय हनुमान का लका मे प्रवेश, अशोकवन मे सीता का वर्णन और अगले दिन प्रात काल हनुमान का सीता से मिलना आदि वर्णनो का प्रभाव कालिदास के इस काव्य पर पडा है ।[2]

कालिदास ने अपने इस काव्य को हार्दिक भावो से पूर्ण किया है । यक्ष की पत्नी का वर्णन तथा उसकी वियोगावस्था के वर्णन से स्पष्ट ज्ञात होता है कि किस प्रकार कालिदास ने मानव-हृदय के भावो का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन किया है, विशेषरूप से विपत्ति के काल मे । उसने मनुष्यो के तथा प्रकृति के सुकुमार एव सुन्दर स्वरूप और भावो का गम्भीरता से निरीक्षण किया है। जिस प्रकार मनुष्य अपने भावो को प्रकट कर सकता है, उसी प्रकार अन्य जीव और वनस्पति भी अपने हार्दिक भावो को प्रकट कर सकते हैं । अतएव कालिदास ने मानव-जगत् को प्राकृतिक जगत् से सम्बद्ध किया है । यह कालिदास के मेघ के वर्णन और उसकी यात्रा के वर्णन से स्पष्ट ज्ञात होता है। उसकी शैली परिष्कृत, उत्कृष्ट और सुन्दर है । उसने स्पष्टरूप से प्रति-

---

१ मल्लिनाथ १२१ पूरणसरस्वती ११० तथा वल्लभदेव १११
दक्षिणावर्तनाथ ११० भरतसेन ११४

२ तुलना करो—मेघदूत उत्तरमेघ रामायण सुन्दरकाण्ड

मेघदूत उत्तरमेघ	रामायण सुन्दरकाण्ड
श्लोक ३७	सर्ग २२ के श्लोक १७ और १८
" ३६ और ३८	" ५३ का श्लोक २
" ४८	" ३८ काकासुर वृत्तान्त

ग्पादित किया है कि विरह-प्रेम के कई लाभ हैं और यह पुरुष तथा स्त्री के प्रेम को शुद्ध बनाए रखने के लिए अनिवार्य भी है। कालिदास ने जो मार्ग बताया है, उससे ज्ञात होता है कि उसे भौगोलिक ज्ञान ठीक था और वह विभिन्न स्थानो के लोगो के जीवन और व्यवहारो से सम्यक्तया परिचित था' कालिदास ने इस काव्य के लिए मन्दाक्रान्ता छन्द चुना है और सपूर्ण काव्य मे इसका सफलता से प्रयोग किया है।

मेघदूत को सार्वभौम प्रशसा प्राप्त हुई है। इसने पाश्चात्य कवियो के बहुत प्रभावित किया है। जर्मन कवि **शीलर** (१८०० ई०) ने कालिदास के इस गीतिकाव्य के आदर्श पर **'मारिया स्टुअर्ट'** नामक काव्य लिखा है। इसमें एक बन्दी रानी ने मेघ को सन्देश दिया है कि वह फ्रास की भूमि को वधाई वहाँ पहुँचावे जहाँ उसने युवावस्था बिताई है।

वाद के कवियो पर मेघदूत का प्रभाव वहुत अधिक पडा है। इसी रूपरेखा पर अनुकरणस्वरूप काव्य वनाने के लिये यह उनका आदर्श रहा है। अनुकरण वाले काव्यो में एक प्रकार यह भी रहा है कि उसमे कालिदास के मेघदूत के प्रत्येक श्लोक की एक या अधिक पक्ति को अपने श्लोक मे सम्मिलित कर लिया गया है। इस प्रयत्न का सुफल यह हुआ है कि मेघदूत के श्लोक सुरक्षित रह गये हैं। **जिनसेन** (८१४ ई० के लगभग) ने **पार्श्वाभ्युदय** नामक काव्य चार सर्गों मे लिखा है। इसमे उसने जैन मुनि **पार्श्वनाथ** का जीवन-चरित वर्णन किया है। इसमे मेघदूत के १२० श्लोक सुरक्षित मिलते हैं। **विक्रम** कवि (समय अज्ञात) ने **नेमिदूत** नामक काव्य लिखा है। इसमे उसने जैन मुनि नेमिनाथ का जीवन-चरित वर्णन किया है। इसके काव्य मे मेघदूत के १२५ श्लोक सुरक्षित मिलते हैं।

इसके दूसरे प्रकार के अनुकरण वाले काव्य वे हैं, जिनमे इसी प्रकार के भाव के लिए या अन्य भाव के लिए इसके स्वरूप को अपनाया गया है। **धोयी** कवि वगाल के राजा **लक्ष्मणसेन** (११६९ ई०) का आश्रित कवि था। इसने

मेघदूत के अनुकरण पर पवनदूत नामक काव्य लिखा है। इसमे उसने वर्णन किया है कि एक गन्धर्व कन्या ने कवि के आश्रयदाता राजा लक्ष्मणसेन के पास पवन के द्वारा अपना प्रणय सन्देश भेजा है। वेदान्तदेशिक (१२६८-१३६९ ई०) ने मेघदूत के अनुकरण पर हससन्देश नामक काव्य लिखा है। उसने वर्णन किया है कि जब हनुमान ने सीता का समाचार लाकर दिया तब राम ने हस के द्वारा लका मे सीता को समाचार भेजा। दूत के रूप मे हस को भेजने का भाव कवि को सभवत नल-दमयन्ती की कथा में हस की सेवा से प्राप्त हुआ है। प्राय प्रत्येक पद पर कालिदास का प्रभाव दिखाई देता है। इस काव्य मे प्रेम के भाव के साथ ही भक्ति का भाव भी सम्मिलित है। कवि ने भक्तिभाव के महत्त्व को बताने के लिए तामिल के तीर्थ-स्थानो का वर्णन किया है। इस गीतिकाव्य मे ११० श्लोक है। इसमे कालिदास के मेघदूत का प्रशसनीय रूप से अनुकरण किया गया है। एक तामिल प्रदेश का कवि उद्दण्ड (१४०० ई०) अपनी आजीविका के लिए मालाबार गया और वहाँ कालीकट के जमोरिन का आश्रित कवि हो गया। उसने मेघदूत के अनुकरण पर कोकिलसन्देश नामक गीतिकाव्य लिखा है। इसमे प्रणय-सन्देश का वर्णन है। यह मेघदूत का सुन्दर अनुकरण है। वामनभट्ट बाण (१४२० ई०) ने मेघदूत का पूर्ण अनुकरण करते हुए हससन्देश काव्य लिखा है। कृष्ण चैतन्य के शिष्य रूपगोस्वामी (१५०० ई०) ने हसदूत और उद्धवसन्देश नामक दो दूतकाव्य लिखे है। दोनो मे भक्तिभाव पर विशेष बल दिया गया है। मैसूर के राम शास्त्री ने १९वी शताब्दी मे मेघप्रतिसन्देश नामक काव्य लिखा है। इसमे यक्ष की प्रेमिका ने यक्ष के सन्देश का प्रत्युत्तर मेघ के द्वारा भेजा है। इनके अतिरिक्त निम्नकोटि के बहुत गीतिकाव्य हैं। इनमे से कुछ केवल भक्ति-भाव पर बल देने के लिए ही लिखे गए हैं। पूर्णसरस्वती (परिचय अज्ञात) ने हससन्देश नामक काव्य लिखा है। इसमे कांची की एक भक्त स्त्री ने वृन्दावन-वासी कृष्ण को अपना सन्देश भेजा है। इनमे से कुछ मे २०० से अधिक श्लोक हैं, जैसे विष्णुत्राता (१६वी शताब्दी ई०) का कोकसन्देश और वासुदेव (१७वी शताब्दी ई०) का भृङ्गसन्देश। कुछ गीतिकाव्य

भाई भर्तृहरि तथा शृङ्गारशतक का रचयिता भर्तृहरि ये तीनो एक ही व्यक्ति माने जाते हैं। ये तीनो एक ही व्यक्ति हैं, इसका कोई प्रमाण नही है। **विक्रमांकदेवचरित** के रचयिता **बिल्हण** (१०८० ई०) ने **चौरपचाशिका** नामक गीतिकाव्य ५० श्लोकों मे लिखा है। यह कहा जाता है कि वह अपने आश्रयदाता की कन्या पर आसक्त था। जब राजा को यह ज्ञात हुआ तो उसने उसे फांसी की आज्ञा दी। जब वह फांसी के लिए ले जाया जा रहा था, उस समय उसने यह गीतिकाव्य बनाया था। उस समय राजा भी वहाँ थे और उन्होने इस गीतिकाव्य की मार्मिकता को अनुभव करके आज्ञा दी कि कवि को छोड दिया जाय। इस गीतिकाव्य में प्रेमी अपनी प्रेमिका के साथ अनुभव किए हुए आनन्द को स्मरण करता है।

वगाल के राजा **लक्ष्मणसेन** (११६९ ई०)[1] ने जिन कवियो को आश्रय दिया था, उनमे एक **जयदेव** भी था। उसके अन्य आश्रित कवि **धोयी, उमापतिधर, शरण** और **गोवर्धन** थे। अत जयदेव का समय १२०० ई० के लगभग है। जयदेव ने २० सर्गों मे **गीतगोविन्द** नामक गीतिकाव्य बनाया है। उसका जन्म उडीसा के किन्दुबिल्व नामक स्थान मे हुआ था। इसकी सूचना गीतगोविन्द के तृतीय अध्याय के दसवें श्लोक से मिलती है। अध्यायो का नाम नायक के आचरणो के अनुसार रखा गया है। जैसे, अक्लेशकेशव, मुग्धमधुसूदन, नागरनारायण, सानन्ददामोदर आदि। इसमे कृष्ण, राधा और राधा की सखियो के मध्य वार्तालाप के रूप मे कृष्ण और राधा के प्रेम का वर्णन किया गया है। कतिपय स्थलो पर इसमे एक व्यक्ति की ही गीतात्मक उक्ति है। प्रत्येक गीत कतिपय विभागो मे विभक्त है। प्रत्येक विभाग मे आठ पद हैं। अतएव इसको अष्टपदी भी कहते हैं। प्रत्येक गीत के लिए लय दिए गए है। तदनुसार गीत को गाया जाता है। अन्तरा को साथ ही गाया जाता है। इसमे बडी चतुरता के साथ सगीत, गान, वर्णन और भाषण को समन्वित किया गया है। यह सब साभिप्राय किया गया है। यह कहा जाता है कि यह शुद्ध नाटक और

---

१ Collected works of R G Bhandarkar Vol II पृ०, ३४६

शुद्ध गीतिकाव्य के पारस्परिक परिवर्तन की अवस्था का प्रतिनिधित्व करता है। इसमे प्रेम के प्रत्येक पद्य को लिया गया है । भारतीय टीकाकार इस गीतिकाव्य के प्रेम की रूपकात्मक व्याख्या करते हैं । इसमें कृष्ण ब्रह्म के प्रतिनिधि हैं और राधा जीवात्मा की । यह गीतिकाव्य ब्रह्म और जीवात्मा मे नायक-नायिका-भाव सम्वन्व मानता है । यह गीतिकाव्य यद्यपि मूलत· शृङ्गारात्मक है, परन्तु पूर्वोक्त आध्यात्मिक व्याख्या के कारण अत्यन्त प्रसिद्ध हो गया है । समस्त देश मे इसके असख्य प्रशसक हैं और यह पूजा के अवसरो पर गाया जाता है । राधाकृष्ण की पूजा को प्रसिद्धि का वहुत अविक श्रेय इस गीतगोविन्द को है । यद्यपि भक्तिकाव्य के रूप में इसका महत्त्व कम नही किया जा सकता है तथापि शृङ्गारात्मक गीतिकाव्य के रूप मे इसका महत्त्व अविक है । इसकी वहुत सी टीकाएँ हैं। रुकेर्ट ने जर्मन भाषा मे इसका अनुवाद किया है। रायभट्ट (१६०० ई० पू०) का शृङ्गारकल्लोल विपय और रचना की दृष्टि से अमरुशतक के समान है ।

धार्मिक गीतिकाव्य

गीतिकाव्य मे धार्मिक गीतिकाव्यों का वहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है । साहित्य के अन्य विभागो की अपेक्षा इन भक्तिकाव्यो ने जनता को अधिक प्रभावित किया है । इनके ही प्रभाव के कारण धार्मिक भावना की अग्नि शान्त नहीं होने पाई है । भारत मे विभिन्न धर्मों ने जो आध्यात्मिक उन्नति की है, उसका प्रमुख श्रेय इन्ही को है । हिन्दुओ के धार्मिक गीतिकाव्यों के प्रभाव को देखकर वौद्धो और जैनो ने अपने पृथक् धार्मिक गीतिकाव्य लिखे हैं । इन भक्तिकाव्यो का लक्ष्य यह रहा है कि मनुष्य के मन को सासारिक विपय, सासारिक सुख और सासारिक ऐश्वर्य की ओर से हटाकर उसे वुद्धिमार्ग और ईशभक्ति के मार्ग पर लगावे । धार्मिक कार्यों की आवश्यकता पर जो वल दिया गया, उसके परिणामस्वरूप धार्मिक गीतिकाव्यो का जन्म हुआ । इन गीतिकाव्यो का दृष्टिकोण दार्शनिक है । ये पचक, अष्टक, दशक, पचाशत और

शतक आदि के रूप में है अर्थात किसी में ५, ८, १०, ५० या १०० आदि पद्य हैं । इनमे से अधिकाश पद्यात्मक हैं । कुछ दण्डक हैं । ये गद्य रूप मे हैं । इनकी रचना सगीतात्मक रूप मे होती है । इनमे पदो के तुल्य विभाजन होता है । कुछ गद्य रूप मे हैं । इनका सगीत के रूप मे पाठ होता है । ऐसे सगीतात्मक गद्यो की उत्पत्ति वैदिक-काल तथा रामायण और महाभारत के काल मे दिखाई देती है । ये धार्मिक गीतिकाव्य असख्य हैं । इनमें से अधिकाश के लेखक अज्ञात हैं ।

कालिदास कुछ धार्मिक गीतिकाव्यो के भी रचयिता माने जाते हैं । **श्यामलादण्डक** उनकी कृति मानी जाती है । बुद्धचरित और सौन्दरनन्द के लेखक **अश्वघोष** (प्रथम शताब्दी ई०) ने **गाण्डिस्तोत्रगाथा** नामक गीतिकाव्य लिखा है । इनमे धार्मिक सवाद है । एक जैन कवि **सिद्धसेन दिवाकर** (५०० ई० के लगभग) ने जैन तीर्थंकरो की प्रशसा मे **कल्याणमन्दिरस्तोत्र** लिखा है । राजा हर्ष को **सुप्रभातस्तोत्र** और **अष्टमहाश्रीचत्यस्तोत्र** का रचयिता कहा जाता है । ये दोनो स्तोत्र बौद्ध धर्म के भावो से युक्त हैं । **बाण** (६०० ई०) ने **चण्डीशतक** लिखा है । इसमे शिव की पत्नी चण्डी के विषय मे १०० श्लोक हैं । **मानतुग** को **भक्तामरस्तोत्र** का रचयिता कहा जाता है । यह देवताओ की स्तुति के रूप मे लिखा गया है । वह हर्ष का समकालीन था, अत उसका समय सातवीं शताब्दी के पूर्वार्ध मे मानना चाहिए । **मयूर** को बाण का श्वशुर माना जाता है । वह हर्ष का आश्रित कवि था । उसने सूर्य की स्तुति मे गौडी रीति मे **सूर्यशतक** लिखा है । **सर्वज्ञमित्र** ने बौद्धो मे आस्तिकवादियो के प्रिय देवता तारा की स्तुति मे **स्रग्धरास्तोत्र** बनाया है । उसका समय अज्ञात है ।

भक्तिभावना-प्रधान कतिपय धार्मिक गीतिकाव्य प्रसिद्ध अद्वैतवादी **शकराचार्य** (६३२ से ६६४ ई०) की कृति माने जाते हैं ।[1] निश्चित सूचना के अभाव के कारण इन सबके लेखक का निर्णय निश्चयपूर्वक नही किया

---

१ पाश्चात्य विद्वानो ने शकराचार्य का जो समय ७८८ से ८२० ई०

जा सकता है। कुछ आलोचको का मत है कि ये सभी काव्य शकराचार्य की रचना नही हैं। उनका कथन है कि सौन्दर्यलहरी जैसे गीतिकाव्य शकराचार्य की रचना नही हो सकते हैं, क्योकि ये गीतिकाव्य शक्ति आगमो के अनुसार शक्ति की पूजा का विधान करते हैं और शकराचार्य ने अपने ब्रह्मसूत्रभाष्य मे शक्ति आगमो की प्रामाणिकता का खडन किया है। किन्तु भारतीय परम्परा सौन्दर्यलहरी का लेखक शकराचार्य को मानती है। इन गीतिकाव्यो के लेखक के विषय मे निश्चयपूर्वक कुछ नही कहा जा सकता है। इन गीतिकाव्यो मे मे कुछ अवश्य ही शकराचार्य की रचना हैं। शेष मठो के अध्यक्षो की रचना होगी। इनको भी शकराचार्य की उपाधि प्राप्त थी। इनमे से जो शकराचार्य की निजी रचनाएँ मानी जाती है, उनमे से विशेष उल्लेखनीय ये हैं—अन्नपूर्णादशक, अन्नपूर्णाष्टक, कनकधारास्तव, दक्षिणामूर्त्यष्टक, रामभुजगस्तोत्र, लक्ष्मीनृसिहस्तोत्र, विष्णुपादादिकेशान्तवर्णन, शिवभुजगस्तोत्र, शिवानन्दलहरी और सौन्दर्यलहरी।

केरल के राजा कुलशेखर ने विष्णु की स्तुति मे मुकुन्दमाला गीतिकाव्य बनाया है। वह और वैष्णव सन्त कुलशेखर अलवर एक ही व्यक्ति हैं। इस गीतिकाव्य की रचना का समय ७०० ई० दिया गया है। इस गीतिकाव्य मे भक्तिभाव को बहुत महत्त्व दिया गया है। इसकी शैली परिष्कृत, स्पष्ट और अति सरल है।

मूक कवि सभवत शकराचार्य का समकालीन था। यह जन्म से ही मूक था। काँची की देवी कामाक्षी की कृपा से उसे भाषण की शक्ति प्राप्त हुई थी। इस शक्ति का उसने देवी की पूजा मे सदुपयोग किया और पाँच सौ सुन्दर गेय पद्यो से युक्त मूकपचशती नामक गीतिकाव्य लिखा। नवम शताब्दी के पूर्वार्ध मे कश्मीर के कवि पुष्पदन्त ने शिव की स्तुति मे महिम्नस्तव काव्य

निश्चित किया है, वह त्रुटिपूर्ण है। शकराचार्य तथा उनके समकालीन विद्वानो का ठीक समय महामहोपाध्याय एस० कुप्पुस्वामी ने मडन मिश्र की पुस्तक ब्रह्मसिद्धि की भूमिका मे दिया है।

लिखा। हरविजय काव्य के लेखक रत्नाकर ने शिव और पार्वती के सवाद के रूप मे ५० पद्यो से युक्त वक्रोक्तिपचाशिका नामक गीतिकाव्य लिखा है। यह काव्य वक्रोक्ति से परिपूर्ण है। इससे लेखक की पटुता का ज्ञान होता है। देखिए —

त्व हालाहलभृत्करोषि मनसो मूर्च्छां ममालिंगितो
हाला नैव बिभर्मि नैव हल मुग्धे कथ हालिक ।
सत्य हालिकतैव ते समुचिता सक्तस्य गोवाहने
वक्रोक्त्येति जितो हिमाद्रिसुतया स्मेरो हर पातु व ।।

श्लोक २

कश्मीर के राजा अवन्तिवर्मा (८५० ई० के लगभग) के आश्रित कवि आनन्दवर्धन ने पार्वती की स्तुति मे देवीशतक काव्य लिखा है। इसमे शब्दालकारो के होते हुए भी माधुर्य पूर्ण रूप से विद्यमान है। अभिनवगुप्त के गुरु उत्पलदेव (९२५ ई०) ने शिव की स्तुति मे स्वरचित पद्यो का सग्रह स्तोत्रावलि नाम से स्वय लिखा है।

रामानुज के गुरु के गुरु यामुन थे। वह १००० ई० के लगभग हुए हैं। उन्होने दो गीतिकाव्य चतुश्लोकी और स्तोत्ररत्न लिखे हैं। इनमे से प्रथम देवी लक्ष्मी की स्तुति मे है और दूसरा विष्णु की स्तुति मे। प्रथम मे चार श्लोक हैं और द्वितीय मे ६५। ये दोनो गीतिकाव्य भावो और अनुभूत की उत्कृष्टता के लिये प्रसिद्ध हैं। विशिष्टाद्वैत के सर्वश्रेष्ठ आचार्य रामानुज (१०१७-११२५ ई०) ने गद्यरूप मे तीन गीतिकाव्य गद्यत्रय नाम से लिखे हैं। इसमे शरणागतिगद्य, वैकुण्ठगद्य और श्रीरगगद्य ये तीन काव्य है। ये अपनी हार्दिक प्रभावोत्पादकता के लिए प्रसिद्ध हैं। रामानुज के प्रमुख शिष्यो मे श्रीवत्साक एक था। उसने पाँच स्तुति-ग्रन्थ पचस्तव नाम से लिखे है। इनके नाम हैं—श्रीस्तव, अतिमानुषस्तव, वरदराजस्तव, सुन्दरबाहुस्तव और वैकुण्ठस्तव। इनसे ज्ञात होता है कि यह कवि उच्च कल्पनाशील और परिष्कृत छन्द-निर्माता था। श्रीवत्साक का सुयोग्य पुत्र पराशर भट्ट था। वह ११००

ई० के लगभग हुआ था। उसके गीतिकाव्यो मे श्रीरंगराजस्तव और श्रीगुण-रत्नकोश बहुत प्रसिद्ध हैं।

गीतगोविन्द के रचयिता जयदेव ने गगास्तव नामक धार्मिक गीतिकाव्य भी लिखा है। जयदेव का गीतगोविन्द यद्यपि मुख्यरूप से शृगारिक है तथापि उसको कतिपय विद्वान् भक्तिकाव्य मानते हैं। बिल्वमगल या कृष्णलीलाशुक के कृष्णकर्णामृत के विषय मे भी यही बात है। इसके तीन विभागो मे ३१० पद्य हैं। इसमे शृगार का अश उतना मुख्य नही है, जितना गीतगोविन्द मे। वह मालावार का निवासी माना जाता है। कुछ विद्वानो के मतानुसार यह कवि और दार्शनिक विद्वान् ८वी शताब्दी के उत्तरार्ध मे हुआ था और कुछ के मतानुसार वह १२वीं शताब्दी मे हुआ था। इसके काव्य मे श्रीकृष्ण की लीलाओ का विस्तृत वर्णन है। इस काव्य की प्रसिद्धि देश भर मे चारो ओर फैली है। बगाल मे चैतन्य के आन्दोलन की उत्पत्ति और विस्तार पर इस काव्य का बहुत प्रभाव पडा है।

द्वैत मत के प्रमुख आचार्य आनंदतीर्थ, प्रसिद्ध नाम मध्व, (११९९-१२७७ ई०) ने बहुत से ग्रन्थ लिखे हैं। इनमे उसका द्वादशस्तोत्र प्रसिद्ध गीतिकाव्य है।

वेदान्तदेशिक (१२६८-१३६९ ई०) ने २५ गीतिकाव्य लिखे हैं। इससे उसकी स्वाभाविक भक्ति और सस्कृत भाषा पर अधिकार का ज्ञान होता है। श्रीराम की पादुकाओ की स्तुति मे एक सहस्र पद्यो से युक्त पादुकासहस्र नामक गीतिकाव्य उसने लिखा है। ऐसा माना जाता है कि अपने एक प्रति-स्पर्धी कवि की प्रतिस्पर्धा मे उसने ये एक सहस्र पद्य एक ही रात्रि मे बनाए हैं। यह गीतिकाव्य कवि की उच्च कल्पनाशक्ति से समन्वित सुन्दर रचना है। इसने गरुड पक्षी की स्तुति मे गरुडदण्डक लिखा है। श्रीराम की प्रशसा मे गद्यरूप में रघुवीरगद्य लिखा है। ये दोनो गीतिकाव्य लेखक की विभिन्न प्रकार की रचना की योग्यता को बताते हैं। उसने विष्णु की स्तुति मे प्राकृत मे १०० पद्यो से युक्त अच्युतशतक लिखा है। उसके अन्य गीतिकाव्य

आकार मे छोटे हैं, परन्तु भाव और भाषा की उत्कृष्टता की दृष्टि से अन्य काव्यो के तुल्य ही महत्त्वपूर्ण हैं।

अप्पयदीक्षित कांची के निवासी थे। उनका जन्म १५५४ ई० मे हुआ था। उसने विभिन्न विषयो पर अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। उसका **वरदराजस्तव** कांची के देवता वरदराज की स्तुति के रूप मे है। इसमे १०० पद्य हैं और उन पर लेखक की टीका भी है। इस गीतिकाव्य से स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि लेखक मौलिकता और कल्पना की दृष्टि से प्रतिभाशाली और महान् कवि है।

नारायणभट्ट केरल के मेप्पथूर स्थान का निवासी था। वह सहृदय कवि था। उसकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। उसके अनेक ग्रन्थ हैं। उसके गीतिकाव्यो में **नारायणीयम्** सर्वोत्तम है। उसने यह १५८५ ई० मे लिखा है, जव वह केरल के गुरुवायूर स्थान मे कृष्ण की पूजा मे लीन था और सहसा उसका गठिया का रोग आश्चर्यजनक रूप से अपने आप ठीक हो गया। नारायणीयम् श्रीकृष्ण की स्तुति के रूप मे है। इसमे भागवतपुराण का सक्षेप है। इसमे १०३६ पद्य हैं। वे १२ स्कन्धो मे वँटे हुए हैं। यह ग्रन्थ मालाबार मे वडे आदर की दृष्टि से देखा जाता है भागवत के तुल्य यह भी दैनिक पारायण के कार्य मे आता है।

मधुसूदन सरस्वती (१६०० ई० के लगभग) ने **आनन्दमन्दाकिनी** नामक गीतिकाव्य लिखा है। इसमे श्रीकृष्ण का नखशिख वर्णन है। कृष्ण चैतन्य के शिष्य **रूपगोस्वामी** ने कई ग्रन्थ लिखे हैं। उसके गीतिकाव्यो मे **गन्धर्व-प्रार्थनाष्टक** और **मुकुन्दमुक्तावली** अधिक प्रसिद्ध हैं। **जगन्नाथ पण्डित** वादशाह शाहजहाँ का आश्रित कवि था। उसका समय १५९०-१६६५ ई० है। उसने पाँच गीतिकाव्य लिखे हैं—**सुधालहरी**, **अमृतलहरी**, **लक्ष्मीलहरी**, **करुणालहरी** और **गगालहरी**। सुधालहरी मे सूर्य की स्तुति मे ३० पद्य हैं। अमृतलहरी मे यमुना नदी की स्तुति में १० पद्य हैं। लक्ष्मीलहरी मे देवी लक्ष्मी की स्तुति में ४१ पद्य हैं। करुणालहरी का दूसरा नाम विष्णुलहरी

है। इसमे विष्णु की स्तुति मे ४३ पद्य हैं। गगालहरी का दूसरा नाम पीयूषलहरी है। इसमे गगा नदी की स्तुति मे ५२ पद्य हैं। इनमे से अन्तिम दो भाव और भाषा की दृष्टि से सर्वोत्तम हैं। नीलकण्ठदीक्षित (१६५० ई०) ने दो गीतिकाव्य लिखे हैं—आनन्दसागरस्तव और शिवोत्कर्षमजरी। प्रथम मे पार्वती की भक्ति से प्राप्त आनन्द का वर्णन है और द्वितीय मे सर्वश्रेष्ठ देवता के रूप में शिव का महत्त्व बताया गया है। वेंकटाध्वरी (१६५० ई०) ने लक्ष्मीसहस्र नामक गीतिकाव्य एक सहस्र पद्यो मे लक्ष्मी और विष्णु की स्तुति के रूप में लिखा है। सभी पद्य बहुत कठिन हैं और लेखक की प्रयत्न-साध्य शैली को सूचित करते हैं। इनमे कल्पना बहुत उच्चकोटि की है। रामभद्र दीक्षित (१७०० ई०) श्री राम की भक्ति में अनुपम है। उसने राम की स्तुति में १० गीतिकाव्य लिखे हैं। इनमे से एक राम के बाण की स्तुति में रामबाणस्तव है। अद्भुतसीतारामस्तोत्र है, इसमे सीता और राम की स्तुति है। एक सन्यासी नारायणतीर्थ (१७०० ई०) ने १२ तरगो मे कृष्णलीलातरगिणी नामक गीतिकाव्य लिखा है। इसमे श्रीकृष्ण की लीलाओ का वर्णन है। ये पद्य वाद्य की सहायता से कई लय मे गाए जा सकते हैं। त्यागराज, श्यामशास्त्री और मुठुस्वामी दीक्षित ये गत शताब्दी के दक्षिण भारत के सगीतज्ञो और गीतिकाव्यकारो की त्रयी हैं। ये अपने भावो की गम्भीरता, भक्ति की सात्विकता और भाषा की मधुरता के लिये प्रसिद्ध हैं।

अध्याय १५

नीति-विषयक और उपदेशात्मक काव्य

नीति-विषयक सूक्तियां अनुभव के आधार पर सिद्ध तथ्यो पर निर्भर होती हैं। साधारणतया वे आचार से सम्बद्ध विषयो का वर्णन करती हैं। उपदेशात्मक काव्यो का लक्ष्य उपदेश देना होता है। नीति-विषयक और उपदेशात्मक काव्यो मे भेद पूर्णरूप से निर्धारित नही किया जा सकता है। उपदेशात्मक काव्य मे नीति-विषयक सूक्तियाँ प्राप्त हो सकती हैं और नीति-विषयक काव्य मे उपदेशात्मक सूक्तियाँ हो सकती हैं।

इस प्रकार का काव्य बहुत प्राचीन समय से विद्यमान है। इस प्रकार के काव्य के विकास मे धर्म और दर्शनो का प्रभाव बहुत स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। वार-वार जन्म और मरण से जीवात्मा की मुक्ति के लिए सत्य के अन्वेषण की इच्छा प्रारम्भ हुई। सुख-दु ख का अध्ययन किया गया तथा उनका जीवन मे स्थान निश्चित किया गया। उन्नति के मार्ग पर चलते हुए सद्गुणो और दुर्गुणो का मूल्य निर्धारित किया गया। जीवन की भलाई और बुराई तथा भले और बुरे व्यक्तियो पर विचार किया गया, जो मानव-जीवन को बहुत कुछ अश मे प्रभावित करते हैं। अत इसके परिणाम-स्वरूप उदाहरणो के साथ सदाचार और दुराचार के नियम दिए गए। अत ये काव्य सहनशीलता और भ्रातृभाव के विचारो का महत्व बताते हैं। मनुष्यों को पशुओ और पक्षियो के साथ भी प्रेम-भाव का उपदेश देते हैं। देखिए —

निर्गुणेष्वपि सत्त्वेषु दया कुर्वन्ति साधव ।
न हि सहरते ज्योत्स्ना चन्द्रश्चण्डालवेश्मन ॥

अनासक्ति और सन्यास की प्रशसा की गई है। इन सिद्धान्तो के समर्थन के लिए मानव और पशु-जगत से नि सकोच उदाहरण लिए गए है। इस प्रकार

के काव्य-लेखको ने सच्ची मित्रता, सदाचारिणी स्त्री और आत्म-बलिदान की बहुत प्रशसा की है। दूसरी ओर दुर्गुणो के साधनो की बहुत तीव्र निन्दा की गई है। साधारणतया स्त्रियों की निन्दा की गई है। पाण्डित्य-प्रदर्शन और अवास्तविक अध्ययन की निन्दा की गई है। कृपणता और दीनता की त्रुटियो का उल्लेख किया गया है तथा इनका मनुष्यो और उनके जीवन पर क्या बुरा प्रभाव पडता है, इसका विस्तृत वर्णन किया गया है। भाग्य की अवश्यभाविता का उदाहरणपूर्वक वर्णन किया गया है, किन्तु साथ ही यह भी वर्णन किया गया है कि मनुष्य को अपना उत्साह और प्रयत्न नहीं छोडना चाहिए और अवसर के अनुकूल कार्य करना चाहिए, क्योकि पुरुषार्थ से ही भाग्य बनता है। देखिए —

उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः ।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य निपतन्ति मुखे मृगा ।।

अत इस प्रकार के काव्य मे धर्म, दर्शन, सदाचार और राजनीति का वर्णन है। हिन्दू, बौद्ध और जैनो ने इस प्रकार के काव्य की समृद्धि के लिए पूर्ण प्रयत्न किया है। इस प्रकार की कविता को नीतिकाव्य कह सकते हैं।

गीतिकाव्य के तुल्य नीतिकाव्य भी विभिन्न प्रकार का है। नीतिकाव्य पद्यबद्ध हैं। परिमाण मे वे एक श्लोक से लेकर कई श्लोको से युक्त हैं। इनका वास्तविक प्रभाव डालने के लिए इनको कथाओ के साथ प्रस्तुत करते हैं। इनमे से कुछ ऐसे श्लोक भी हैं, जो किसी पुस्तक मे उपलब्ध नही होते हैं, परन्तु परम्परा के अनुसार प्राप्त हुए हैं। इस काव्य के इस प्रकार विकास का प्रभाव यह हुआ कि जो श्लोक इधर-उधर प्राप्त होते थे, उनको पुस्तको में स्थान देकर पुस्तकाकार बना दिया गया। इन श्लोको के अधिकाश लेखक अज्ञात हैं। एक ही श्लोक विभिन्न पुस्तको मे प्राप्त होता है।

इस प्रकार के काव्य का प्रारम्भ ऋग्वेद और ऐतरेय ब्राह्मण मे दिखाई देता है। महाभारत इस प्रकार के श्लोको से परिपूर्ण है। इस प्रकार के काव्य

का सर्वप्रथम सग्रह **चाणक्यशतक** है। इसमे ३४० श्लोक हैं। इसमे साधारणतया आचार-विषयक वातो का वर्णन है। यह स्पष्ट नही है कि अर्थशास्त्र का लेखक चाणक्य ही इसका लेखक है। **राजनीतिसमुच्चय** और **वृद्धचाणक्य** आदि ग्रन्थ भी इसी प्रकार के हैं। बौद्धो ने बौद्धधर्मावलम्बियो के लिए इस प्रकार का सग्रह **धम्मपद** नामक ग्रन्थ के रूप मे किया है।

सुन्दरपाण्ड्य का **नीतिद्विषष्ठिका** ही सबसे प्राचीन ग्रन्थ है जिसके विषय मे निश्चित सूचना प्राप्त होती है। इसमे उपदेशात्मक ११६ श्लोक हैं। सुभाषित-ग्रन्थकारो ने इस ग्रन्थ से वहुत से श्लोक उद्धृत किए हैं, परन्तु उन्होने इस ग्रन्थ का नामोल्लेख नही किया है। **जनाश्रय** (६०० ई०) ने इसकी एक पक्ति अपने ग्रन्थ **छन्दोविचित** मे उद्धृत की है। सुन्दरपाण्डय ने अन्य ग्रन्थ भी लिखे थे, परन्तु वे अब नष्ट हो गए हैं। **कुमारिल** (६५० ई०) और **शकराचार्य** ने उनके अन्य ग्रन्थो के भी श्लोक उद्धृत किए हैं। वह मदुरा का निवासी था। उसका समय (५०० ई०) के लगभग है।[1] **शातिदेव** (६०० ई० के लगभग) ने **वोधिचर्यावतार** ग्रन्थ लिखा है। इसमे वोधिसत्त्व (ज्ञानप्राप्ति के इच्छुक) के कर्तव्यो का उल्लेख किया गया है। मनुष्यमात्र से प्रेम करने के महत्त्व पर विशेष वल दिया गया है। इस ग्रन्थ की प्रसिद्धि इस पर प्राप्त होने वाली अनेक टीकाओ से ज्ञात होती है। उसने इसी प्रकार के अन्य दो ग्रन्थ **शिक्षासमुच्चय** और **सूत्रसमुच्चय** लिखे है। ये दोनो कम महत्त्व के हैं। **भर्तृहरि** ने **शृगारशतक** के अतिरिक्त **नीतिशतक** और **वैराग्यशतक** भी लिखे है। इनमे से प्रथम मे नीतिविपयक सौ श्लोक हैं और दूसरे मे वैराग्यसम्बन्धी सौ श्लोक हैं। पाश्चात्य विद्वान् भर्तृहरि को तीनो शतको का लेखक नही मानते हैं। इन तीनो शतको का आजकल जो सस्करण मिलता है, उसमे वहुत से प्रक्षिप्त श्लोक मिलते हैं। साहित्यिक महत्त्व की दृष्टि से इस प्रकार के काव्य मे नीतिशतक सर्वोत्तम ग्रन्थो मे से एक है। वैराग्यशतक उत्कृष्ट शैली मे लिखा गया है। इसमे इस

१ एम० आर० कवि लिखित नीतिद्विपष्ठिका की भूमिका।

बात पर बल दिया गया है कि मनुष्यो में साधारणतया प्राप्त होने वाले दुर्गुणो को दूर किया जाय। साथ ही इसमे शिव की भक्ति पर बल दिया गया है और सन्यास की प्रशसा की गई है।

मोहमुद्गर, शकराचार्य की रचना मानी जाती है। इसमे सासारिक विषयों को छोडने और मायाजाल से मुक्त होने का उपदेश दिया गया है। इसमे नैतिक और दार्शनिक भाव हैं। शकराचार्य के कुछ और ग्रन्थ इस प्रकार के माने जाते हैं। उनमे दार्शनिक भाव हैं और वे उपदेशात्मक हैं।

कश्मीर के राजा जयापीड (७७९-८१३ ई०) के आश्रित कवि दामोदर-गुप्त ने **कुट्टिनीमत** नामक ग्रन्थ लिखा है। इसका दूसरा नाम **शम्भलीमत** है। इसमे ९२७ श्लोक है और यह अपूर्ण है। इसे वेश्याओ का शिक्षाग्रन्थ कह सकते हैं। इसमे बताया गया है कि किस प्रकार वेश्याएँ मनुष्यों को अपने जाल में फँसावें और उन्हें धोखा दें। इस ग्रन्थ की प्रसिद्धि इस बात से ज्ञात होती है कि इसके बहुत से श्लोक सुभाषितग्रन्थकारो ने अपने ग्रन्थो मे उद्धृत किए हैं।

एक जैन लेखक **अमितगति** ने ९९४ ई० मे **सुभाषितरत्नसन्दोह** और १०१४ ई० मे **धर्मपरीक्षा** नामक दो ग्रन्थ लिखे हैं। इनमें से प्रथम मे ३२ अध्याय हैं। इसमे जैन साधुओ और साधारण जनो के लिए आचारविषयक नियम है। इसमे हिन्दुओ के देवताओ और हिन्दुओ के व्यवहारो पर बहुत कटु आक्षेप हैं। दूसरे ग्रन्थ में हिन्दू-धर्म की अपेक्षा जैन-धर्म की उत्कृष्टता बताई गई है।

क्षेमेन्द्र (१०५० ई०) ने नीतिविषयक और उपदेशात्मक कई ग्रन्थ लिखे हैं। इसके ग्रन्थ **चारुचर्या** मे १०० श्लोक हैं। इसमे लेखक ने सुन्दर व्यवहार के लिए आवश्यक नियमो को उदाहरण के साथ प्रस्तुत किया है। **चतुर्वर्ग-सग्रह** मे जीवन के उद्देश्यस्वरूप चारो चीजें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का बडी सुन्दरता के साथ प्रतिपादन किया है। **सेव्यसेवकोपदेश** मे ६१ श्लोक हैं। इसमे स्वामी और सेवक दोनो को व्यग्यात्मक ध्वनि में उपदेश दिया गया है।

का सर्वप्रथम संग्रह **चाणक्यशतक** है। इसमे ३४० श्लोक हैं। इसमे साधारणतया आचार-विषयक बातो का वर्णन है। यह स्पष्ट नही है कि अर्थशास्त्र का लेखक चाणक्य ही इसका लेखक है। **राजनीतिसमुच्चय** और **वृद्धचाणक्य** आदि ग्रन्थ भी इसी प्रकार के हैं। बौद्धो ने बौद्धधर्मावलम्बियो के लिए इस प्रकार का संग्रह **धम्मपद** नामक ग्रन्थ के रूप मे किया है।

सुन्दरपाण्ड्य का **नीतिद्विषष्ठिका** ही सबसे प्राचीन ग्रन्थ है जिसके विषय मे निश्चित सूचना प्राप्त होती है। इसमे उपदेशात्मक ११६ श्लोक हैं। सुभाषित-ग्रन्थकारो ने इस ग्रन्थ से बहुत से श्लोक उद्धृत किए हैं, परन्तु उन्होने इस ग्रन्थ का नामोल्लेख नही किया है। **जनाश्रय** (६०० ई०) ने इसकी एक पंक्ति अपने ग्रन्थ **छन्दोविचित** मे उद्धृत की है। सुन्दरपाण्ड्य ने अन्य ग्रन्थ भी लिखे थे, परन्तु वे अब नष्ट हो गए हैं। **कुमारिल** (६५० ई०) और **शंकराचार्य** ने उनके अन्य ग्रन्थो के भी श्लोक उद्धृत किए हैं। वह मदुरा का निवासी था। उसका समय (५०० ई०) के लगभग है।[1] **शान्तिदेव** (६०० ई० के लगभग) ने **बोधिचर्यावतार** ग्रन्थ लिखा है। इसमे बोधिसत्त्व (ज्ञानप्राप्ति के इच्छुक) के कर्तव्यो का उल्लेख किया गया है। मनुष्यमात्र से प्रेम करने के महत्त्व पर विशेष बल दिया गया है। इस ग्रन्थ की प्रसिद्धि इस पर प्राप्त होने वाली अनेक टीकाओ से ज्ञात होती है। उसने इसी प्रकार के अन्य दो ग्रन्थ **शिक्षासमुच्चय** और **सूत्रसमुच्चय** लिखे है। ये दोनो कम महत्त्व के हैं। **भर्तृहरि** ने **शृंगारशतक** के अतिरिक्त **नीतिशतक** और **वैराग्यशतक** भी लिखे हैं। इनमे से प्रथम मे नीतिविषयक सौ श्लोक हैं और दूसरे मे वैराग्यसम्बन्धी सौ श्लोक हैं। पाश्चात्य विद्वान् भर्तृहरि को तीनो शतको का लेखक नही मानते हैं। इन तीनो शतको का आजकल जो संस्करण मिलता है, उसमे बहुत से प्रक्षिप्त श्लोक मिलते हैं। साहित्यिक महत्त्व की दृष्टि से इस प्रकार के काव्य मे नीतिशतक सर्वोत्तम ग्रन्थो मे से एक है। वैराग्यशतक उत्कृष्ट शैली मे लिखा गया है। इसमे इस

१ एम० आर० कवि लिखित नीतिद्विषष्ठिका की भूमिका।

बात पर बल दिया गया है कि मनुष्यो में साधारणतया प्राप्त होने वाले दुर्गुणो को दूर किया जाय। साथ ही इसमे शिव की भक्ति पर बल दिया गया है और सन्यास की प्रशसा की गई है।

मोहमुद्गर, शंकराचार्य की रचना मानी जाती है। इसमे सासारिक विषयों को छोडने और मायाजाल से मुक्त होने का उपदेश दिया गया है। इसमे नैतिक और दार्शनिक भाव हैं। शकराचार्य के कुछ और ग्रन्थ इस प्रकार के माने जाते हैं। उनमे दार्शनिक भाव हैं और वे उपदेशात्मक हैं।

कश्मीर के राजा जयापीड (७७९-८१३ ई०) के आश्रित कवि **दामोदरगुप्त** ने **कुट्टिनीमत** नामक ग्रन्थ लिखा है। इसका दूसरा नाम **शम्भलीमत** है। इसमे ९२७ श्लोक हैं और यह अपूर्ण है। इसे वेश्याओ का शिक्षाग्रन्थ कह सकते हैं। इसमे बताया गया है कि किस प्रकार वेश्याएँ मनुष्यो को अपने जाल में फँसावें और उन्हें धोखा दें। इस ग्रन्थ की प्रसिद्धि इस बात से ज्ञात होती है कि इसके बहुत से श्लोक सुभाषितग्रन्थकारो ने अपने ग्रन्थो मे उद्धृत किए हैं।

एक जैन लेखक **अमितगति** ने ९९४ ई० मे **सुभाषितरत्नसन्दोह** और १०१४ ई० मे **धर्मपरीक्षा** नामक दो ग्रन्थ लिखे हैं। इनमे से प्रथम मे ३२ अध्याय हैं। इसमे जैन साधुओ और साधारण जनो के लिए आचारविषयक नियम हैं। इसमे हिन्दुओ के देवताओ और हिन्दुओ के व्यवहारो पर बहुत कटु आक्षेप हैं। दूसरे ग्रन्थ में हिन्दू-धर्म की अपेक्षा जैन-धर्म की उत्कृष्टता बताई गई है।

क्षेमेन्द्र (१०५० ई०) ने नीतिविषयक और उपदेशात्मक कई ग्रन्थ लिखे हैं। इसके ग्रन्थ **चारुचर्या** मे १०० श्लोक हैं। इसमे लेखक ने सुन्दर व्यवहार के लिए आवश्यक नियमो को उदाहरण के साथ प्रस्तुत किया है। **चतुर्वर्गसग्रह** मे जीवन के उद्देश्यस्वरूप चारो चीजे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का बडी सुन्दरता के साथ प्रतिपादन किया है। **सेव्यसेवकोपदेश** मे ६१ श्लोक हैं। इसमे स्वामी और सेवक दोनो को व्यग्यात्मक ध्वनि मे उपदेश दिया गया है।

भूमिशायी निराहार शीतवातातपक्षत ।
मुनिव्रतोऽपि नरकक्लेशमश्नाति सेवक ॥

समयमातृका मे आठ अध्याय हैं। इसमे वेश्याओ के प्रपचो का वर्णन है। कलाविलास मे १० अध्याय हैं। इसमे जनता के अपनाये गये आजीविका के विभिन्न साधनो का वर्णन है। इसमे जनता के एक विभाग के द्वारा प्रयोग किए जाने वाले छल-प्रपचो और धूर्तताओ का विस्तृत वर्णन किया गया है। दर्पदलन मे सात अध्याय हैं। इसमे वर्णन किया गया है कि दर्प किसी भी रूप में क्यो न हो, उसका निरादर करना चाहिए और इसके समर्थन मे कथाएँ भी दी हैं। देखिए —

कुल वित्त श्रुत रूप शौर्यं दान तपस्तथा ।
प्राधान्येन मनुष्याणा सप्तैते मदहेतव ॥

जैन लेखक हेमचन्द्र (१०८८-११७२ ई०) ने योगशास्त्र लिखा है। इसमे जैनो के कर्तव्यो का तथा जैन साधुओ के द्वारा अपनाये जाने वाले कठोर नियमो का वर्णन किया गया है। सोमपालविलास के लेखक जल्हण (११५० ई०) ने मुग्धोपदेश ग्रन्थ लिखा है। इसमे उसने वेश्याओ के छल-प्रपचो से बचने की शिक्षा दी है। शिल्हण (१२०५ ई०) ने शान्तिशतक लिखा है। सदुक्तिकर्णामृत (१२०५ ई०) मे उसके इस ग्रन्थ का उद्धरण दिया गया है। यह भर्तृहरि के नीतिशतक और वैराग्यशतक के अनुकरण पर लिखा गया है। इसमे लेखक ने मानसिक शान्ति की प्राप्ति पर विशेष बल दिया है और उल्लेख किया है कि प्रत्येक व्यक्ति इसका अभ्यास करे। सोमप्रभ ने १२७६ ई० मे शृगारवैराग्यतरगिणी लिखा है। इसमे स्त्रियो के ससर्ग से हानियाँ और वैराग्य के लाभो का वर्णन है।

वेदान्तदेशिक (१२६८-१३६९ ई०) ने सुभाषितनीवी ग्रन्थ लिखा है। इसमें १४५ सुभाषित श्लोको का सग्रह है। ये श्लोक १२ पद्धतियो (अध्यायो) मे बँटे हुए हैं। यह भर्तृहरि के नीतिशतक के अनुकरण पर लिखा गया है। उसने एक दूसरा काव्य वैराग्यपचक लिखा है। इसमें उसने वैराग्य का वर्णन

किया है, जिसका उसने स्वय अभ्यास किया था। कुसुमदेव ने दृष्टान्तशतक लिखा है। वल्लभदेव (१५०० ई०) ने उसका उल्लेख किया है। अतः वह इस समय से पूर्व हुआ है। उसने इस ग्रन्थ मे जीवन के आदर्शो का उदाहरणो के साथ वर्णन किया है। द्याद्विवेद ने १४६४ ई० मे नीतिमजरी ग्रन्थ लिखा है। इसमे उसने नीति की बातो का वर्णन किया है और उसके लिए उदाहरण ऋग्वेद, सायण के वेदभाष्य और बृहद्देवता आदि से लिए हैं। कतिपय स्थलो पर उसने वेद के मन्त्रो को उद्धृत किया है और उनकी व्याख्या भी की है।

जगन्नाथ पण्डित (१५६०-१६६५ ई०) ने भामिनीविलास लिखा है। इसमे चार भाग हैं। इनमे क्रमश अन्योक्ति, शृङ्गार, करुण और शान्त रस का वर्णन है। इनमें क्रमश १०१, १००, १९ और ३२ श्लोक हैं। ये श्लोक भाव और ओज से परिपूर्ण हैं। तृतीय भाग मे करुणरस का प्रवाह है। इस भाग में एक स्थान पर भामिनी शब्द का प्रयोग आता है। इसके आधार पर यह विचार प्रस्तुत किया गया है कि सभवत लेखक की पत्नी का नाम भामिनी था और उसके स्वर्गवास के दु ख मे उसने अपने भाव इन श्लोको मे प्रकट किए हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि उसने इस ग्रन्थ का नाम उसके आधार पर ही भामिनीविलास रक्खा है। अन्तिम भाग मे लेखक ने जीवात्मा से अनुरोध किया है कि वह शान्त रस को अपनावे। इस भाग के द्वारा ज्ञात होता है कि लेखक कितना उच्चकोटि का भावुक कवि था।

नीलकण्ठ दीक्षित (१६५० ई०) ने चार काव्यग्रन्थ लिखे हैं—कलिविडम्बन, सभारञ्जनशतक, शान्तिविलास और वैराग्यशतक। कलिविडम्बन कलियुग की घटनाओ पर एक व्यग्यप्रधान काव्य है। देखिए —

यत्र भार्यागिरो वेदा यत्र धर्मोऽर्थसाधनम्।
यत्र स्वप्रतिभा मान तस्मै श्रीकलये नम ॥

सभारजनशतक मे बताया गया है कि किस प्रकार विद्वन्मण्डली को तथा राजसभा के व्यक्तियो को प्रसन्न करना चाहिए। यह व्यग्योक्तियो से पूर्ण है। देखिए :—

जानाते यत्र चन्द्रार्कौ जानते यत्र योगिन ।
जानीते यन्न भर्गोऽपि तज्जानाति कवि स्वयम् ।।

शान्तिविलास मे ५१ श्लोक हैं । इसमे मानसिक शान्ति के लाभ बताए गए हैं । वैराग्यशतक मे वैराग्य का जीवन बिताने के लाभ बहुत बल के साथ बताए गए है । **गुमानि** कवि ने **उपदेशशतक** लिखा है । इसमें मनुष्यों के लिये उपदेशात्मक १०० श्लोक हैं । **वेंकटाध्वरी** (१६५० ई०) का **सुभाषितकौस्तुभ** भी इसी प्रकार के वर्णन से युक्त है ।

अन्योक्ति या अन्यापदेश उस काव्य को कहते हैं, जिसमे जीवन से सबद्ध किसी तथ्य का वर्णन अप्रत्यक्ष रूप से किया गया हो । उसमे किसी वस्तु या किसी काल्पनिक व्यक्ति का नाम देकर वर्णन किया जाता है । वह बात सामान्य रूप से सब पर लागू हो सकती है। कश्मीर के राजा शकरवर्मा (८८३-९०२ ई०) के आश्रित कवि **भल्लट** ने इस प्रकार का सर्वप्रथम काव्य लिखा है । **भल्लटशतक** की भाषा सरल है । इन श्लोको मे स्वतत्र विचार का भाव स्पष्ट दिखाई देता है । सुभाषित ग्रन्थो मे इसके श्लोक उद्धृत किए गए हैं । देखिए --

अन्तश्छिद्राणि भूयासि कण्टका बहवो बहि ।
कथ कमलनालस्य मा भूवन् भगुरा गुणा ।।

कश्मीर के राजा हर्ष (१०८९-११०१ ई०) के आश्रित कवि **शम्भु** ने **अन्योक्तिमुक्तालता** नामक काव्य लिखा है । इसमे अन्योक्ति की पद्धति के १०८ श्लोक हैं । जगन्नाथ पण्डित के भामिनीविलास के प्रथम भाग को अन्यापदेशशतक भी कहते हैं ।

नैर्गुण्यमेव साधीयो धिगस्तु गुणगौरवम् ।
शाखिनोऽन्ये विराजन्ते खण्ड्यन्ते चन्दनद्रुमा ।।

नीलकण्ठ दीक्षित का **अन्योक्तिशतक** या **अन्यापदेशशतक** लेखक की उच्च कल्पनाशक्ति का परिचय देता है । यह काव्य सर्वश्रेष्ठ अन्योक्ति-काव्यो मे मे एक है । **वीरेश्वर** (समय अज्ञात) का **अन्योक्तिशतक** इसी प्रकार के भाव से युक्त है ।

अध्याय १६

सुभाषित-ग्रन्थ

सुभाषित-ग्रन्थ कवियो का समय-निर्धारण करने और उनके ग्रन्थो के निर्णय करने मे वहुत सहायक होते है। इन ग्रन्थो मे विभिन्न कवियो के रचित श्लोक विषयो के अनुसार सग्रह किये जाते हैं। ये श्लोक काव्यग्रन्थो, गीतिकाव्यो और सामान्य सग्रहो से लिए जाते हैं। कुछ सुभाषित-ग्रन्थो मे लेखकों के नाम भी दिए हुए होते हैं कि यह श्लोक अमुक कवि की रचना है। इन ग्रन्थो मे जो श्लोक जिस कवि के नाम से दिए हुए हैं, उनमें से कुछ श्लोक आजकल के मुद्रित सस्करणो मे प्राप्त नही होते है। इन सुभाषित-ग्रन्थो के आधार पर ही आजकल प्रयत्न किया जा रहा है कि कतिपय कवियो और उनके काव्यों का निर्धारण किया जा सके। अत ये सुभाषित-ग्रन्थ कवियो के वशानुक्रम और काल के निर्धारण मे वहुत सहायक है।

इस प्रकार के श्लोको का सवसे प्राचीन सग्रह गाथासप्तशती है। इसमे महाराष्ट्री प्राकृत मे लिखित सात सौ श्लोक हैं। इसमे शृंगार-विषयक प्राचीन लेखको के रचित श्लोक सग्रह किए गए हैं। इन श्लोको मे से कुछ प्रवरसेन, मायुराज, हाल आदि की रचनाएँ हैं। इस ग्रन्थ मे इसका लेखक हाल कवि वताया गया है। वाण ने हर्षचरित में इसको सातवाहन की रचना मानी है।[1] सातवाहन का प्राकृत रूप शालिवाहन है। यह आन्ध्रभृत्य राजाओ का पारिवारिक नाम था। सातवाहन राजाओ ने महाराष्ट्र मे ७३ ई० पू० से लेकर २१८ ई० तक राज्य किया है।[2] इन राजाओ मे से

---

१ अविनाशिनमग्राम्यमकरोत् सातवाहन ।
विशुद्धजातिभि कोश रत्नैरिव सुभाषितै ॥ हर्षचरित की भूमिका मे वाण, श्लोक १३ ।

२ The Collected Works of Bhandarkar, भाग ३, पृष्ठ ५१ और ५२

सातवाहनवशी एक हाल नामक राजा ने ७८ ई० पू० के लगभग राज्य किया है । उसने प्राकृत मे गीतरूप मे कुछ श्लोक बनाए होगे और कुछ ऐसे श्लोको का सग्रह किया होगा अथवा अपने आश्रित किसी कवि के द्वारा अपने से पूर्व के प्राप्त श्लोको को क्रमबद्ध कराया होगा और उसको अपने पारिवारिक नाम सातवाहन के नाम से प्रसिद्ध किया होगा । आन्ध्रभृत्य राजा विद्वानो के आश्रयदाता थे और उन्होने प्राकृत साहित्य को भी आश्रय दिया था । अत गाथासप्तशती का समय प्रथम शताब्दी ई० मे समझना चाहिए । इस सप्तशती मे शृङ्गार के विभिन्न अगो का विस्तृत और वास्तविक रूप प्रस्तुत किया गया है । इन श्लोको मे कोमलता और भाव-सौन्दर्य विद्यमान है । पाश्चात्य विद्वानो का मत है कि इस सप्तशती के निर्माण के वाद बहुत से परिवर्तन हुए हैं ।

सस्कृत श्लोको का सर्वप्रथम सुभाषित-सग्रह **'कवीन्द्रवचनसमुच्चय'** है । इस ग्रन्थ की नेपाली भाषा मे प्राप्त हस्तलिपि १२वी शताब्दी ई० की है । इसमे सबसे बाद का कवि राजशेखर (९०० ई०) है, जिसका उद्धरण दिया गया है । अत इस ग्रन्थ का समय १००० ई० के लगभग मानना चाहिए । इसमे प्राचीन लेखको के ५२५ श्लोको का सग्रह है । इसके लेखक का नाम प्राप्त नही होता है ।

चालुक्य सम्राट् विक्रमादित्य द्वितीय के पुत्र **सोमेश्वर** ने ११३१ ई० मे **अभिलषितार्थचिन्तामणि** लिखा है । इसका दूसरा नाम मानसोल्लास भी है । इसमे विभिन्न विषयो पर बहुत सामग्री प्राप्त होती है । इसमे पाँच भाग हैं । इसमे राजाओ के रहने की विधि, उनके मनोरजन की वस्तुओ आदि का वर्णन है । इसमे मनोरजन की सभी चीजो का वर्णन है । "इन विषयो के साथ ही सस्कृत मे प्राप्त ज्ञान और कला का ऐसा कोई भी विभाग शेष नही रह गया है, जिसके प्रमुख सिद्धान्तो का वर्णन इसमे उपलब्ध न होता हो । इसमे राज्य-व्यवस्था, गणित और फलित ज्योतिष, तर्कशास्त्र,

साहित्यशास्त्र, काव्य, सगीत, चित्रकला, वास्तुकला, वैद्यक, घोडे, हाथी और कुत्ते आदि की शिक्षा इत्यादि सभी विषयो का वर्णन है।"[1]

गोवर्धन वगाल के राजा लक्ष्मणसेन (११६९ ई०) का आश्रित कवि था। उसने गाथासप्तशती के अनुकरण पर सस्कृत के सात सौ श्लोको का सग्रह किया और उनको अकारादि-अनुक्रम मे रखा। ये सभी श्लोक आर्या छन्द मे हैं और इनमे शृङ्गार विषय का वर्णन है। इसका नाम आर्यासप्तशती है।

वटुदास के पुत्र श्रीधरदास ने सदुक्तिकर्णामृत लिखा है। उसने यह ग्रन्थ लक्ष्मणसेन के राज्यकाल मे लिखा है। उसने अपने इस ग्रन्थ का रचनाकाल १२०५ ई० दिया है। उसने ४४६ कवियो के २३६८ श्लोक उद्धृत किये हैं। इन कवियो मे अधिकाश वगाल के हैं। यादव राजा कृष्ण (१२४७-१२६० ई०) के मन्त्री कवि जल्हण ने १२५७ ई० मे एक सुभाषित-ग्रन्थ सूक्तिमुक्तावली लिखा है। उसने २४३ कवियो के २७९० श्लोक उद्धृत किए हैं। भूमिका मे उसने ग्रन्थ की विषय-सूची भी दी है। जयवल्लभ कृत प्राकृत वज्जालग्गम की रचना उसी समय की है।

कलिङ्गरायसूर्य का सूक्तिरत्नहार १४वी शताब्दी पूर्वार्ध की रचना है। सायण विजयनगर राज्य के चार राजाओ—कम्पस, सगम द्वितीय, वुक्क प्रथम और हरिहर द्वितीय का मन्त्री था। उसने वेदो की टीका लिखी है। वह १३५० ई० के लगभग जीवित था। उसने एक सुभाषित-ग्रन्थ सुभाषित-सुधानिधि लिखा है। इसमे उसने प्रसिद्ध लेखको की सूक्तियो का सग्रह किया है। अपने भाई भोगनाथ की सूक्तियो का भी उसने इसमें सग्रह किया है।

दामोदर के पुत्र शार्ङ्गधर ने १३६३ ई० मे शार्ङ्गधरपद्धति लिखी है। इसमे १६३ विभागो मे विभक्त ४६८९ श्लोक है। इसने २६४ कवियो के

---

१ The Collected Works of R G Bhandarkar भाग ३, पृष्ठ १२४।

गन्थो से सूक्तियाँ एकत्र की है। उसने अपनी भी सूक्तियाँ इसमे दी हैं। इसे उसने १६३ अनुभागो मे क्रमबद्ध किया है। **सकलकीर्ति** की लिखी हुई **सुभाषितावलि** की एक हस्तलिखित प्रति प्राप्त होती है। यह ज्ञात नही है कि यह सकलकीर्ति जैन विद्वान् सकलकीर्ति ही है, जो १४५० ई० के लगभग जीवित था।

पोतयार्य ने १४६६ ई० मे **प्रसगरत्नावलि** लिखी है। यह विभिन्न विषयो पर श्लोको का सग्रह है। जोनराज के शिष्य **श्रीवर** ने १४८० ई० के लगभग **सुभाषितावलि** लिखी है। उसने उसमे ३८० से अधिक कवियो के श्लोक उद्धृत किए हैं। इसी समय के लगभग **वल्लभदेव** ने **सुभाषितावलि** लिखी है। यह १०१ भागो मे विभक्त है। इसमे ३५२७ श्लोक हैं। ये ३५० से अधिक कवियो की रचनाओ से लिए गए है। इनमे से अधिकाश उत्तरी भारत के है। कृष्णचैतन्य के शिष्य **रूपगोस्वामी** (१५०० ई०) ने **पद्यावली** ग्रन्थ लिखा है। इसमे १२५ कवियो के ३८६ श्लोक उद्धृत हैं। इसमे उसने वे श्लोक रखे हैं, जो श्रीकृष्ण की पूजा का महत्त्व वताते हैं **पेड्डभट्ट** ने १५०० ई० के लगभग **सूक्तिवारिधि** लिखा है। **हरिकवि** ने **सुभाषितहारावलि** लिखी है। इसमे उसने पूर्ववर्ती और समकालीन कवियो के श्लोक उद्धृत किए हैं। उसने **जगन्नाथ पण्डित** के भी श्लोक उद्धृत किए हैं, अत उसका समय १७०० ई० के लगभग मानना चाहिए।

शिवाजी के पुत्र **शम्भु** ने १६९० ई० के लगभग **बुधभूषण** ग्रन्थ लिखा है। इसमे तीन भागो मे ८८३ श्लोक हैं। **डा० वार्टलिक** ने १९वी शताब्दी के उत्तरार्ध मे सम्पूर्ण सस्कृत साहित्य के छटे हुए लगभग ८००० श्लोक एकत्र किए और उनको आलोचनात्मक पद्धति से सकलन करके उनका जर्मन भाषा मे गद्य मे अनुवाद किया। इस ग्रन्थ का नाम है—**इण्डिशे स्प्रूखे** (भारतीय सूक्तियाँ)। हरिभास्कर का सगृहीत सुभाषित-ग्रन्थ **पद्यामृततरगिणी** है। इसका समय अज्ञात है। शिवदत्त के किए हुए सुभाषितसग्रह का नाम **सुभाषितरत्नभाण्डागार** है।

अध्याय १७

गद्य-काव्य

अपद्यबद्ध रचना को गद्य कहते हैं ।[1] कृष्णयजुर्वेद, ब्राह्मणग्रन्थ, आरण्यक आदि, वेदाग तथा प्राचीन विज्ञान-विषयक ग्रन्थ गद्य मे ही है । वैदिक-काल के बाद श्रेण्यकाल मे गद्य से पूर्व पद्य का समय आता है । रामायण, महाभारत और पुराण पद्यरूप मे है । पद्यबद्ध रचना को स्मरण करना सरल होता है, गद्य की रचना को नही । अतः श्रेण्यकाल के प्रारम्भिक काल मे गद्य को साहित्यिक काव्य नही माना गया था । इस समय पद्यबद्ध काव्यो को ही काव्य माना गया था । आलोचक पद्यात्मक काव्यो को रुचिकर मानते थे, अत उन्होने गद्य-काव्य को आदर नही दिया । अत कवियो के लिए पद्य की अपेक्षा गद्य की रचना करना अधिक कठिन था । गद्य की सुन्दर रचना के लिए असाधारण कौशल की आवश्यकता थी । अतएव कहा गया था कि—

गद्य कवीना निकष वदन्ति ।

अर्थात् गद्य कवियो के लिए कसौटी है । आलोचक यह चाहते थे कि गद्य का स्तर बहुत ऊंचा हो, अत उनको सन्तुष्ट करने के लिए गद्य-लेखको को यह आवश्यक हो गया कि वे गद्य मे कुछ विशेप बातो को स्थान दें । इसके लिए लम्बे-लम्बे समास और विशेपणो की परम्परा को स्थान दिया गया । वर्णनो मे वाक्य आवश्यकता से अधिक लम्बे हो गए । परिणाम यह हुआ कि थोडी कथा, अधिक वर्णन और गतिशीलता का अभाव गद्य की प्रमुख विशेपता हो गई ।

गद्य-काव्य मुख्य रूप से दो प्रकार का माना गया है—कथा और आख्यायिका । कथा को उपविभागो मे बांटा जाता है, इन्हें लम्बक कहते

---

१ अपाद पदसन्तानो गद्यम् । दण्डी, काव्यादर्श १. २३ ।

हैं। इसमे आर्या छन्द मे पद्य होते हैं। आख्यायिका को उच्छ्वास नामक उपविभागो मे बांटते हैं। इसमे वक्त्र और अपवक्त्र नामक छन्दो मे श्लोक होते हैं। इसमें कुमारियो का हरण, युद्ध आदि दृश्य होते हैं। इसमे लेखक कुछ ऐसा चिह्न रखता है, जिससे यह पहचाना जा सके कि यह रचना अमुक लेखक की है। आख्यायिका आत्मकथा के रूप मे होती है और कथा का वर्णन करने वाला लेखक भी हो सकता है तथा अन्य कोई भी हो सकता है। यह ज्ञात नही है कि कब यह अन्तर किया गया था। सबसे प्राचीन आलोचक दण्डी (७०० ई०) ने इस अन्तर का उल्लेख किया है और इस अन्तर की हँसी उडाई है। उसने यह मत प्रकट किया है कि कथा और आख्यायिका मे वास्तविक कोई अन्तर नही किया जा सकता है। ये दोनो ही गद्य-साहित्य के एक विशेष प्रकार के विभिन्न नाम हैं। इन दोनो मे जो अन्तर किया गया है, उसका पालन नही किया जा सकता है। जो ग्रन्थ अब तक प्राप्त है, उनके देखने से ज्ञात होता है कि इस अन्तर का पालन नही के बराबर हुआ है। अधिकाश मे इस अन्तर की उपेक्षा ही की गई है। तथापि आलोचको ने गद्य के उपर्युक्त दो विभाग किए हैं। यह प्रय न किया गया कि इन दोनो का यह अन्तर माना जाय कि आख्यायिका वास्तविक घटना पर निर्भर हो और कथा का विषय काल्पनिक हो। गद्य के आख्यान, परिकथा, खण्डकथा आदि कई भेद है। इनमे बहुत थोडा अन्तर है।

पतजलि के महाभाष्य (१५० ई० पू०), रुद्रदामन् के शिलालेख (१५० ई०) और हरिषेण (३४५ ई०) के शिलालेख आदि से ज्ञात होता है कि श्रेण्यकाल के बहुत प्रारम्भिक काल से गद्य का प्रयोग होने लगा था। रुद्रदामन् और हरिषेण के शिलालेख बहुत सुन्दर और अलकृत भाषा मे लिखे गए है। इन दोनो शिलालेखो की शैली बाण आदि (७वी शताब्दी ई०) की शैली से बहुत मिलती है। पतजलि ने महाभाष्य मे वासवदत्ता, सुमनोत्तरा और भैमरथी, इन गद्य-ग्रन्थो का उल्लेख किया है। इनमे से प्रथम

दो आख्यायिका हैं ।[1] यह कहा जाता है कि वररुचि ने चारुमती नामक गद्य-ग्रन्थ लिखा है । रामिल और सौमिल शूद्रककथा के रचयिता माने जाते हैं । उसी नाम के एक अन्य ग्रन्थ का सम्बन्ध भोज (१००५–१०५४ ई०) कृत पञ्चाशिका से लगाया जाता है । यह ज्ञात नही है कि यह ग्रन्थ, जिसका चिह्न 'आनन्द' है, दूसरी शूद्रककथा मे अभिन्न है या नही । शातकर्णीहरण, मनोवती और तरगवती ये भी गद्य-ग्रन्थ हैं। ये आन्ध्रभृत्य राजाओ के निरीक्षण मे लिखे गए थे । इनमे से कुछ प्राकृत में हो सकते हैं । [वाण ने भट्टार हरिचन्द्र और आढ्यराज को प्रमुख गद्यलेखक माना है । ये सब ग्रन्थ आजकल प्राप्य नहीं है ।

वाण ही सर्वप्रथम गद्यलेखक है, जिसके ग्रन्थ अब तक प्राप्य हैं । वह हर्षचरित और कादम्बरी का लेखक है । उक्त प्रथम ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि वाण श्रीवत्सगोत्र मे उत्पन्न चित्रभानु का पुत्र था । उसका वश वात्स्यायन वश है । वह सोन नदी के किनारे पृथुकूट नामक ग्राम का वासी था । वह जब वालक था, तभी उसकी माता का स्वर्गवास हो गया था और जब वह चौदह वर्ष का हुआ, तब उसके पिता का भी स्वर्गवास हो गया । शिक्षा प्राप्त करने के वाद वह सारे देश में घूमा । उसके इस यात्रा के साथी सभी प्रकार के व्यक्ति थे । वह जब घर लौटा, तब वह विद्या और अनुभव में समृद्ध हो गया था । एक दिन उसे हर्षवर्धन के राजद्वार मे पहुँचने का निमन्त्रण मिला । तदनुसार वह हर्ष के राजद्वार मे गया और वहाँ उसका सम्मान हुआ और वह राजकवि वना दिया गया । राज-सम्मान प्राप्त करने के कई वर्ष वाद वह घर लौटा और सुखपूर्वक रहने लगा । वाण ने हर्षचरित में अपने विषय मे ये वातें लिखी हैं । उसके वाद के जीवन के विषय मे और कुछ ज्ञात नही है । हर्ष ६०६ ई० मे गद्दी पर वैठा । इस समय के वाद ही वाण राजा हर्ष के राजद्वार मे आश्रित कवि हुआ होगा । अत उसकी रचनाओं का समय सातवी शताब्दी ई० का पूर्वार्ध मानना चाहिए ।

---

१ महाभाष्य ४-२-६० ।

वाण ने ये ग्रन्थ लिखे हैं—दो गद्य-ग्रन्थ—हर्षचरित और कादम्बरी, एक चण्डीशतक नामक गीतिकाव्य और एक ग्रन्थ मुकुटताडितक। मुकुटताडितक नष्ट हो गया है, अत इसका विषयादि अज्ञात है। आलोचको ने बाण को रत्नावली, प्रियदर्शिका और नागानन्द इन तीन नाटको का भी रचयिता माना है। तीनो नाटक राजा हर्ष की रचना माने जाते है। वाण उच्चकोटि का एव परिष्कृत गद्य-लेखक है। उसके पद्य सौन्दर्य और कल्पना की दृष्टि से उतने उच्चकोटि के नही हैं। इसका समर्थन चण्डीशतक करता है। उपर्युक्त तीनो नाटको मे श्लोक अपेक्षाकृत सरल और अलकृत हैं। इन पर बाण का प्रभाव दिखाई नही देता है। अत इन तीनो नाटको को बाण की रचना मानना उचित नही है। यह कथन कि हर्ष ने वहुत धन देकर अपने नाम से ये ग्रन्थ वाण से लिखवाए हैं, सर्वथा निराधार है। यदि बाण ने धन के लिए ग्रन्थरचना की होती तो वह कादम्वरी को ही हर्ष के नाम से लिखता और इसके द्वारा वहुत धनराशि प्राप्त करता।

वाण के दो गद्य-ग्रन्थो मे से हर्षचरित प्रारम्भिक रचना है। इसमे आठ उच्छ्वास है। प्रथम दो उच्छ्वासो और तृतीय के कुछ भाग मे वाण ने आत्मकथा दी है। उसने तृतीय उच्छ्वास मे हर्ष के वश के आदिपुरुष पुष्पभूति का उल्लेख किया है। अवशिष्ट अध्यायो मे उसने प्रभाकरवर्धन का जीवन, हर्ष और उसके वडे भाई राज्यवर्धन और उसकी छोटी वहन राज्यश्री की उत्पत्ति और विकास का वर्णन किया है। राज्यश्री का विवाह मौखरी राजा ग्रहवर्मा के साथ हुआ था। प्रभाकरवर्धन के स्वर्गवास के वाद ही मालवा के राजा ने ग्रहवर्मा का वध कर दिया था। राज्यवर्धन ने मालवा के राजा पर आक्रमण किया और उसका वध कर दिया, किन्तु मार्ग मे ही गौड राजा ने उसके शिविर मे ही उसका धोखे से वध कर दिया। हर्ष ने गौड राजा के विरुद्ध प्रस्थान किया, किन्तु मार्ग मे राज्यश्री के अज्ञात स्थान पर चले जाने का समाचार सुनकर उसने उसको ढूंढा और उसको ग्रहवर्मा के मित्र एक बौद्ध सन्यासी की देख-रेख मे रखकर गौड राजा की ओर प्रस्थान किया। यह कथा अपूर्ण रूप से यही पर वाण ने समाप्त कर दी है।

इस ग्रन्थ को यही पर अपूर्ण रूप मे समाप्त करने का कारण अज्ञात है। इस विषय मे यह विचार प्रस्तुत किया गया है कि हर्ष ने बौद्धो को जो आदर दिया है, उसको बाण ने उचित नही समझा। दूसरा विचार यह है कि जब बाण यह ग्रन्थ लिख रहा था, उस समय पुलकेशी द्वितीय के आक्रमण के कारण उसके आश्रयदाता हर्ष को बहुत क्षति पहुँची थी। बाण ने अपने आश्रयदाता के विषय मे इन दुर्घटनाओ का उल्लेख उचित नही समझा होगा, अत उसने आगे की घटनाएँ नही लिखी। कुछ विद्वानो ने यह विचार प्रस्तुत किया है कि बाण के स्वर्गवास के कारण वह इसको पूर्ण नही कर सका। उपर्युक्त सभी विचार केवल कल्पनामात्र हैं, अत विशेष ध्यान देने योग्य नही हैं।

यह ग्रन्थ बाण के पूर्ववर्ती कवियो का समय-निर्धारण करने के लिए बहुत ही उपयोगी है। उसके प्रारम्भिक श्लोको मे निम्नलिखित कवियो और ग्रन्थो का उल्लेख है—वासवदत्ता, भट्टार हरिचन्द्र, सातवाहन, प्रवरसेन, भास, कालिदास, बृहत्कथा और आढ्यराज।

कादम्बरी एक प्रेमाख्यान है। इसमे कादम्बरी और चन्द्रापीड तथा महाश्वेता और पुण्डरीक इन दोनो युगलो के प्रेम का वर्णन है। बाण इस ग्रन्थ को अपूर्ण छोडकर दिवगत हुआ। शेष अश को उसके पुत्र भूषण बाण ने पूर्ण किया।[1] एक शाप के कारण पुण्डरीक का स्वर्गवास हो जाता है और वह वैशम्पायन नाम से उत्पन्न होता है तथा चन्द्रापीड का मित्र होता है। दैवगति से चन्द्रापीड और वैशम्पायन का स्वर्गवास होता है और चन्द्रापीड राजा शूद्रक के रूप मे उत्पन्न होता है तथा वैशम्पायन तोते के रूप मे उत्पन्न होता है और उनका नाम वही रहता है। कादम्बरी और महाश्वेता सखियाँ हैं। कादम्बरी का चन्द्रापीड मे और महाश्वेता का पुण्डरीक से प्रेम होता है। आकाशवाणी होती है कि उनका अपने प्रेमियो से पुनर्मिलन होगा। एक दिन तोता वैशम्पायन राजा शूद्रक की सभा मे लाया गया और उसने पूर्व जन्म की सारी बातें उसको

१ कादम्बरी उत्तर भाग भूमिका—श्लोक ४।

वताईं, जैसा कि जाबालि ऋषि ने उसे बताया था। जाबालि ऋषि की कृपा से तोता वैशम्पायन ने अपने पूर्व जन्म की सारी कथा कही और फिर पुण्डरीक हो गया। राजा शूद्रक ने यह कथा सुनी और वह चन्द्रापीड हो गया। ये दोनो अपने प्रियाओ से मिले और इनका विवाह-समारोह विशेष आयोजन के साथ हुआ।

बाण के स्वर्गवास के कारण ही कादम्बरी अपूर्ण रह गई। कादम्बरी अवश्य ही हर्षचरित के बाद मे लिखी गई है। दोनो ग्रन्थो की शैली की तुलना से ज्ञात होता है कि कादम्बरी की शैली अधिक परिष्कृत और परिमार्जित है। यदि कादम्बरी पहली रचना होती तो वाण के लिए यह सम्भव न होता कि वह कम परिष्कृत शैली मे बाद के ग्रन्थ को लिखता।

ये दोनो ग्रन्थ भारत की ७वी शताब्दी ई० की सामाजिक स्थिति के ज्ञान के लिए बहुत उपयोगी हैं। वाण ने अपनी यात्राओं के द्वारा जो ज्ञान प्राप्त किया था, उससे वह प्रत्येक स्थान की रीति और प्रथाओ को बहुत सूक्ष्मता के साथ देखता था। उसने उन सबका बहुत विस्तार और सूक्ष्मता के साथ वर्णन किया है। अत उसके वनो और नगरो के दृश्यो के वर्णन, राजप्रासादो, सेना-शिविरो, ऋषियो और उनके जीवन के वर्णन बहुत वास्तविक हैं। उसने मानव-हृदय की चेष्टाओ का बहुत सूक्ष्मता से अध्ययन किया था। वाण की इस प्रतिभा का ज्ञान चन्द्रापीड को प्रथम वार देखकर कादम्बरी के हृद्भावो के वर्णन, प्रभाकरवर्धन का स्वर्गवास और उसका हर्षवर्धन पर प्रभाव, ग्रहवर्मा के वध पर हर्ष की प्रतिक्रिया आदि के वर्णनो मे प्राप्त होता है।

साहित्यिक दृष्टिकोण से कादम्बरी हर्षचरित से उत्कृष्ट है। वाण ने विशेष रूप मे कादम्बरी पर अपनी निरीक्षण-शक्ति का सर्वस्व, कल्पना और उत्प्रेक्षा का सारा भण्डार और सहानुभूति की सारी भावना लगा दी है। कादम्बरी गुणाढ य की बृहत्कथा पर आधारित प्रतीत होती है। इसमे वाण ने अपनी प्रतिभा के प्रकाशन का बहुत स्वाधीन मार्ग अपनाया है। हर्षचरित

वास्तविक घटनाओ पर आश्रित है, अत उसमे वाण को अपनी प्रतिभा के प्रकाशन का उत्तम अवसर प्राप्त नही हुआ है। कादम्बरी भाव, भाषा और शैली सभी दृष्टि से हर्षचरित से उत्कृष्ट है। अतएव यह उचित ही कहा गया है कि 'कादम्बरी के रसज्ञो को भोजन भी अच्छा नही लगता'।

कादम्बरीरसज्ञानामाहारोऽपि न रोचते।।

वाण की रचनाएँ पांचाली रीति मे हैं। पाचाली रीति के सर्वश्रेष्ठ कवियो मे वाण और कवयित्री **शीलाभट्टारिका** का नाम उल्लिखित है।[१] शीलाभट्टारिका का कोई ग्रन्थ आजकल प्राप्त नही है। वाण की शैली की कई प्रमुख विशेपताएँ हैं। उसने समासो का वहुत प्रयोग किया है। समासो का अस्तित्व गद्यशैली की प्रमुख विशेपता मानी गई है।[२] वाण ने अपने ग्रन्थो की रचना साहित्यिको के द्वारा निर्धारित नियमो का पूर्णतया पालन करते हुए की है। श्लेष और विरोधाभास के कठिन प्रयोगो के होते हुए भी उसकी कविता का महत्व नही घटा है। यहाँ पर यह स्मरण रखना उचित है कि सस्कृत साहित्य के आलोचको ने वहुत से कवियो की रचनाओ की वहुत कटु समालोचना की है, किन्तु वाण और कुछ थोडे से कवि ऐसे हैं, जो उन आलोचको की कठोरतम परीक्षा मे सफल हुए। वाण का शब्दकोष असाधारण रूप से विशाल है। उसने वहुत लम्वे वाक्यो के पश्चात् सहसा छोटे-छोटे वाक्य दिए हैं। उसने वर्णनो मे लम्वे समासो का प्रयोग किया है, परन्तु वार्तालाप मे ऐसे लम्वे समासो का सर्वथा अभाव है। अतएव उसकी शैली सन्तुलित है। वह भाव के अनुसार ही शैली को अपनाता है। उसने केवल अति-प्रचलित उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलकारो का ही प्रयोग

१ शब्दार्थयोस्समो गुम्फ पाचाली रीतिरिष्यते।
शीलाभट्टारिकावाचि वाणोक्तिषु च सा यदि।। जल्हण की सूक्तिमुक्तावली।

२ ओज समासभूयस्त्वमेतद् गद्यस्य जीवितम्।। दण्डी का काव्यादर्श १८०।

हो गया था। दडी ६५५ ई० के कुछ समय बाद काची लौटा होगा। अतः वह सातवी शताब्दी ई० के उत्तरार्ध मे रहा होगा। यदि अवन्तिसुन्दरीकथा का लेखक दडी ही काव्यादर्श का लेखक है, तब यह समय उचित प्रतीत होता है। पुलकेशी द्वितीय के ज्येष्ठ पुत्र राजा चन्द्रादित्य की धर्मपत्नी और कवयित्री विजया ने काव्यादर्श के मगलाचरण के श्लोक को उद्धृत किया है। चन्द्रादित्य ६४२ ई० के बाद एक प्रान्त का राजा था। पल्लव राजाओ और चालुक्य राजाओ मे परस्पर सम्बन्ध था। यह सभव है कि दडी का काव्यादर्श रचना के बाद ही चालुक्य राज्य मे प्रचलित हो गया होगा। यहाँ पर यह कथन उचित है कि अवन्तिसुन्दरीकथा की जो हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई है, वह अपूर्ण है और उसका पाठ्य भी त्रुटिपूर्ण है। उसमे दण्डी के समय के निर्धारण के लिए निश्चित सूचना प्राप्त नही होती है।

अवन्तिसुन्दरीकथा हर्षचरित के अनुसार ही कतिपय श्लोको से प्रारम्भ होती है। उसमे बहुत से कवियो के नाम दिए हुए हैं। वाल्मीकि, व्यास, सुबन्धु, गुणाढ्य, शूद्रक, भास, प्रवरसेन, कालिदास, नारायण, बाण और मयूर का नाम स्पष्ट रूप से लिखा हुआ है। कुछ श्लोको मे बीच का भाग अप्राप्य है, अत उन श्लोको मे जिन कवियो का उल्लेख रहा होगा, उनके विषय मे कुछ ज्ञात नही हो सका है। इन श्लोको के पश्चात् गद्य मे कथा प्रारम्भ होती है। इसमे काञ्ची नगरी का वर्णन है और दण्डी ने आत्मकथा लिखी है। इसके बाद अवन्तिसुन्दरीकथा की कथा प्रारम्भ होती है। भाव की दृष्टि से यह दशकुमारचरित की पूर्वपीठिका के समान है। यह प्रहारवर्मा के अपने पुत्रो के वियोग के वर्णन के साथ समाप्त होती है।

इसकी शैली कादम्बरी की शैली से बहुत मिलती हुई है। दण्डी ने काची से बाहर रहने के समय बाण की कादम्बरी पढी होगी। वर्णनो मे भी दण्डी बाण का बहुत ऋणी है।

उपर्युक्त ग्रन्थ के अतिरिक्त यह कथा पद्यात्मक रूप मे भी प्राप्त होती है। इस ग्रन्थ का नाम अवन्तिसुन्दरीकथासार है। यह सात परिच्छेद (अध्यायो) मे है। अन्तिम परिच्छेद अपूर्ण है। प्रथम परिच्छेद मे दण्डी का जीवनचरित है। शेष ६ परिच्छेदो मे दशकुमारचरित की पूर्वपीठिका मे जो कथा वर्णित है, वही कथा प्राप्त होती है। प्रत्येक परिच्छेद के अन्तिम श्लोक मे आनन्द शब्द आया है। इस ग्रन्थ मे बाण की कादम्बरी की कथा का साराश भी दिया हुआ है। इस ग्रन्थ का लेखक अज्ञात है।

भारतीय परम्परा के अनुसार दण्डी दशकुमारचरित और काव्यादर्श का लेखक है। दशकुमारचरित मे तीन भाग है—पूर्वपीठिका, मुख्य गद्यभाग तथा उत्तरपीठिका। इनमे से प्रथम भाग मे पाँच उच्छ्वास हैं, द्वितीय मे आठ और तृतीय मे कोई विभाजन नही है। इसमे राजा मानसार के द्वारा मगध के राजा राजहस की पराजय का वर्णन है तथा उसका प्रवासित होकर वन मे रहने का वर्णन है। वही पर उसका पुत्र राजवाहन तथा उसके ६ साथी उत्पन्न हुए। इन ६ मे से कुछ राजकुमार थे और कुछ मन्त्रियो के पुत्र थे। ये दसो कुमार अर्थोपार्जन के लिए निकले। वे सब पृथक् हो गए और कुछ वर्षो के बाद पुन मिले। प्रत्येक ने अपने-अपने भ्रमणका वृत्तात सुनाया। इन सबने मिलकर राजहस के शत्रु मानसार पर आक्रमण किया और मगध का राज्य पुन प्राप्त किया।

दशकुमारचरित के ये तीनो भाग तीन विभिन्न लेखको के द्वारा विभिन्न समय मे लिखे हुए प्रतीत होते है। शैली की दृष्टि से प्रथम और अन्तिम भाग मध्य वाले भाग से निस्सन्देह निकृष्ट हैं। प्रथम और द्वितीय भाग के वर्णनो के विवरण मे पूर्णतया असामजस्य है। यह स्पष्ट है कि जिसने प्रथम भाग लिखा है, उसने मध्य के मुख्य भाग की घटनाओ को ठीक नही समझा है। इनके अतिरिक्त प्रथम और अन्तिम भाग के कई पाठ-भेद मिलते हैं। इससे यह ज्ञात होता है कि प्रथम और अन्तिम भाग का कुछ अश नष्ट हो गया था और उस क्षति-पूर्ति के लिए कुछ प्रयत्न किया गया होगा,

उसी के परिणामस्वरूप ये भाग अन्य-लिखित प्राप्त होते हैं। यह भी सुझाव प्रस्तुत किया गया है कि इस ग्रन्थ का मूल नाम अवन्तिसुन्दरीकथा था। जो भाग नष्ट नही हुआ था, उसका नाम दशकुमारचरित रक्खा गया, क्योकि सभवत मूल ग्रन्थ का नाम अज्ञात हो गया था या जो भाग प्राप्त हुआ था, उसका नाम अवन्तिसुन्दरीकथा रखना उचित नही समझा गया, क्योकि उसमे अवन्तिसुन्दरी का विशेष रूप से वर्णन नही है। इसका प्रारम्भिक भाग जो नष्ट हो गया था, वह अब अपूर्ण रूप मे प्राप्त हुआ है। इस सुझाव को केवल कल्पनामात्र समझना चाहिए।

गद्य-काव्य की दृष्टि से दशकुमारचरित बहुत उच्चकोटि का नही है। इसमे व्याकरण-सम्बन्धी त्रुटियाँ है, विशेष रूप से पूर्वपीठिका वाले भाग मे। लम्बे समास जो कि गद्य-काव्य का जीवन माना जाता है, इसमे प्राय अप्राप्त है। दण्डी ने काव्यादर्श मे जिस भावाभिव्यक्ति मे ग्राम्यता की निन्दा की है, वह इसमे प्रचुर मात्रा मे प्राप्त होती है। इस आधार पर आलोचको का मत है कि काव्यादर्श का रचयिता दण्डी इस दशकुमारचरित का कर्ता नही है। कुछ अन्य आलोचको का मत है कि दण्डी उच्चकोटि का साहित्य-शास्त्री था, परन्तु वह निम्न कोटि का गद्य-लेखक था। यह उसके दशकुमार-चरित से प्रकट होता है। यह भी मत प्रकट किया गया है कि दण्डी ने पहले दशकुमारचरित और बाद मे काव्यादर्श लिखा है। पुष्ट प्रमाणो के अभाव मे ये सब विचार केवल कल्पनामात्र समझने चाहिए।

दण्डी पदलालित्य के लिए प्रसिद्ध है। दशकुमारचरित कुछ अश तक इस बात की पुष्टि करता है। परन्तु यदि अवन्तिसुन्दरीकथा दण्डी की रचना मानी जाती है तो वह इसका अधिक अच्छा समर्थन करती है। इसका लेखक जो भी कोई हो, वह सप्तम उच्छ्वास के लिए विशेष प्रशसा का पात्र है, क्योकि उसमे उसने ऐसी रचना की है कि सारे उच्छ्वास मे एक भी ओष्ठ्य वर्ण नही है।

राजशेखर (९०० ई०) का कथन है कि दण्डी ने तीन ग्रन्थ लिखे है। काव्यादर्श और दशकुमारचरित ये दोनो उसके ग्रन्थ माने जाते है। कुछ समय पूर्व यह विचार प्रस्तुत किया गया था कि छन्दोविचिति और कला-परिच्छेद उसके अन्य ग्रन्थ हैं। परन्तु यह विचार निरर्थक था। भोज (१००० ई०) ने अपने शृङ्गारप्रकाश मे उल्लेख किया है कि दण्डी का एक द्विसन्धान पद्धति का काव्य है। यह सम्भव है कि दण्डी ने इस प्रकार का कोई काव्य लिखा हो, परन्तु वह नष्ट हो चुका है।

सुबन्धु ने वासवदत्ता नामक गद्यकाव्य लिखा है। यह मत भ्रमात्मक है कि बाण ने हर्षचरित मे इसका उल्लेख किया है। बाण ने सुबन्धु-रचित वासवदत्ता का उल्लेख किया है, परन्तु वह सुबन्धु पतंजलि (१५० ई० पू०) से पूर्ववर्ती लेखक है। बाण की कादम्बरी का इस पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है, इसके समर्थन के लिए बहुत से प्रमाण इस ग्रन्थ मे उपलब्ध होते है। गौडवहो के लेखक वाक्पति (७२० ई०) ने सुबन्धु के नाम का उल्लेख किया है। अत सुबन्धु का समय ७०० ई० के लगभग ज्ञात होता है और विशेष रूप से सातवी शताब्दी के उत्तरार्ध मे। सुबन्धु के समय का निर्णय इसके ग्रन्थ मे उपलब्ध दो उल्लेखो के आधार पर किया जाता है—(१) एक बौद्ध ग्रन्थ का उल्लेख, (२) प्रसिद्ध नैयायिक उद्योतकर का नामोल्लेख। इनमे से प्रथम उल्लेख अस्पष्ट है, अत उसके आधार पर कोई निर्णय नही किया जा सकता। उद्योतकर का समय छठी शताब्दी है, अत सुबन्धु का समय ७०० ई० के लगभग मानना उचित है। एक भारतीय परम्परा के अनुसार सुबन्धु वररुचि का भतीजा था। परन्तु इस परम्परा से कोई सहायता प्राप्त नही होती है, क्योकि वररुचि का समय निश्चित नही है।

वासवदत्ता मे राजकुमारी वासवदत्ता की कथा है। राजकुमार कन्दर्पकेतु ने स्वप्न मे उसका दर्शन किया और वह उससे मिलने के लिए चल पड़ा। राजकुमारी ने कन्दर्पकेतु का स्वप्न मे दर्शन किया और वह उस पर मुग्ध हो गई। वासवदत्ता ने अपनी दासी को कन्दर्पकेतु का पता लगाने के लिए

भेजा। उसे कन्दर्पकेतु मिला और वह वासवदत्ता की नगरी मे आया तथा वासवदत्ता को भगा ले गया। वासवदत्ता के पिता की सेना ने दोनो का पीछा किया और वे एक निषिद्ध उपवन मे पहुँचे। वहाँ पर वासवदत्ता पत्थर के रूप मे परिवर्तित हो गई। इस पर कन्दर्पकेतु आत्महत्या करने के लिए उद्यत हो गया। इतने मे आकाशवाणी हुई और उसने कहा कि तुम्हारा मिलन फिर अपनी प्रिया से होगा, अत' आत्महत्या न करो। उसने उसी उपवन मे दु खमय समय बिताया। एक दिन उसने अकस्मात् उस पत्थर को छुआ और उससे वह वासवदत्ता जीवित हो उठी। तव दोनो का सुखमय पुनर्मिलन होता है। लेखक ने गौडी रीति मे यह ग्रन्थ लिखा है। इसमे सूक्ष्म पौराणिक कथाओ के सकेत हैं तथा विभिन्न प्रकार का शब्दकोष प्रयोग किया गया है। लेखक ने इस बात का वडे गौरव के साथ उल्लेख किया है कि इस ग्रन्थ के प्रत्येक अक्षर मे श्लेष अलकार है।

देखिए —

सरस्वतीदत्तवरप्रसादश्चक्रे सुवन्धु सुजनैकवन्धु ।
प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रपचविन्यासवैदग्ध्यनिधि प्रवन्धम् ॥

—वासवदत्ता २६६

धनपाल ने ९७३ ई० के लगभग तिलकमजरी ग्रन्थ लिखा है। इसमे राजकुमारी तिलका और राजकुमार समरकेतु के प्रेम का वर्णन है। यह ग्रन्थ कादम्बरी के पूर्ण अनुकरण पर लिखा गया है। धनपाल ने अपने को प्रसिद्ध विद्वान् सर्वदेव का पुत्र उल्लिखित किया है।[1] वह धारानरेश मुज का आश्रित था।[2] भूमिका-भाग मे उसने वाल्मीकि, व्यास, प्रवरसेन, जीवदेव, कालिदास, वाण, समरादित्य, भद्रकीर्ति, माघ, भारवि, भवभूति, वाक्पतिराज और राजशेखर का उल्लेख किया है। वही पर वृहत्कथा और तरगवती इन दो ग्रन्थो का भी उल्लेख है।

---

१ तिलकमजरी ५२ ।
२ तिलकमजरी ५३ ।

ओडयदेव की उपाधि वादीभसिंह थी। इसने ११ लम्बकों (अध्यायों) में गद्यचिन्तामणि ग्रन्थ लिखा है। इसमें एक राजकुमार जीवन्धर के जीवन-चरित का वर्णन किया गया है। वह सन्यासी हो गया था। इसमें जीवन्धर को जो उपदेश दिया गया है, वह कादम्बरी में शुकनास के द्वारा चन्द्रापीड को दिये गये उपदेश के अनुकरण के रूप में है। उसने क्षत्रचूडामणि ग्रन्थ भी लिखा है, यह तामिल भाषा के ग्रन्थ जीवकचिन्तामणि का संस्कृत अनुवाद है। इसका समय १२०० ई० के लगभग है।

बालभारत के लेखक अगस्त्य (१३२० ई०) ने कृष्णचरित ग्रन्थ भी लिखा है। रघुनाथचरित और नलाभ्युदय के लेखक वामनभट्ट बाण (१४२० ई०) ने वेमभूपालचरित ग्रन्थ भी लिखा है। इस ग्रन्थ का दूसरा नाम वीरनारायण-चरित है। इस ग्रन्थ में उसने अपने आश्रयदाता वेमभूपाल राजाओं की वंशावली चार अध्यायों में दी है। यह कालिदास विरचित रघुवंश और अभिज्ञानशाकुन्तल की अनुकृति है। इसमें पग-पग पर बाण का प्रभाव पाया जाता है। वह अपना स्थान बाण, सुबन्धु और कविराज के समकक्ष मानता है, परन्तु वह इस योग्य नहीं है। अनन्तशर्मा (१६५० ई०) ने विशाखदत्त की मुद्राराक्षस-कथा के आधार पर मुद्राराक्षसपूर्वसंकथानक नामक गद्य की रचना की है। इसमें काली की स्तुति दण्डक में है।

———

अध्याय १८

चम्पू

गद्य और पद्यात्मक दो प्रकार की रचना के अतिरिक्त एक तीसरे प्रकार की रचना होती है, उसे चम्पू कहते हैं। गद्य और पद्य-मिश्रित रचना को चम्पू कहते हैं।[1] इसमे गद्य और पद्य को प्राय समान स्थान दिया जाता है। वर्णन और विवरण के लिए गद्य का उपयोग किया जाता है और प्रभावोत्पादक तथा निश्चित बात के कहने के लिए पद्य का उपयोग किया जाता है। साधारणतया गद्य मे जो बात विस्तार के साथ कही जाती है, उसी को पद्य मे सक्षिप्त रूप मे कहा जाता है। गद्य और पद्य के इस प्रकार चम्पू के रूप मे मिश्रण की विद्वानो ने बहुत प्रशसा की है। इसे मौखिक और वाद्य सगीत का समन्वय[2] तथा द्राक्षा और मधु का मिश्रण बताया है।[3]

इस प्रकार का काव्य ईस्वी सन् के प्रारम्भ से पूर्व ही प्रारम्भ हो चुका था। गुप्तकाल के शिलालेखो से ज्ञात होता है कि इस प्रकार का काव्य चतुर्थ शताब्दी ई० में विद्यमान था। इस प्रकार से लिखे हुए ग्रन्थो को चम्पू कहते हैं, परन्तु कतिपय ग्रन्थो के नाम में चम्पू नाम नही है।

सबसे प्राचीन चम्पू-काव्य नलचम्पू है, इसका दूसरा नाम दमयन्तीकथा है। इसके लेखक त्रिविक्रमभट्ट है। उसके पिता घर से कही बाहर गये हुए थे, उस समय एक कवि ने आकर उसके पिता को योग्यता-प्रदर्शनार्थ आह्वान

---

१ गद्य-पद्यमयी काचिच्चम्पूरित्यभिधीयते। दण्डी का काव्यादर्श १. ३१।

२ भोज का चम्पूरामायण—बालकाण्ड ३।

३ वेंकटाध्वरी का विश्वगुणादर्श ४।

किया, उसके उत्तर मे त्रिविक्रमभट्ट ने यह रचना की। जव उसके पिता आये, तव उसने आगे रचना वन्द कर दी और ग्रन्थ को अपूर्ण छोड दिया। इसमे सात उच्छ्वास हैं और-नल तथा दमयन्ती की कथा वर्णित है। प्रत्येक उच्छ्वास के अन्तिम श्लोक मे हरचरणसरोज शब्द है। इसमे नल के मन्त्री सालकायन ने नल को जो उपदेश दिया है वह कादम्वरी मे चन्द्रापीड को दिये शुकनास के उपदेश के अनुकरण पर है। लेखक ने न्याय, वैशेपिक आदि दर्शनो से भी उदाहरण लिये हैं। प्रारम्भिक श्लोको मे लेखक ने वाल्मीकि, व्यास, वाण और गुणाढ्य का उल्लेख किया है। इस ग्रन्थ की शैली क्लिष्ट है। त्रिविक्रमभट्ट ने एक और चम्पू ग्रन्थ मदालसाचम्पू लिखा है। राष्ट्र-कूट राजा इन्द्र तृतीय के ९१५ ई० के नौसारी दानपत्र का लेखक त्रिविक्रम-भट्ट ही है। उसके पिता का नाम नेमादित्य था। त्रिविक्रमभट्ट का समय १०वी शताब्दी का पूर्वार्ध ही मानना चाहिये।

एक जैन लेखक हरिचन्द्र ने जैन मुनि जीवन्धर के जीवन को लेकर जीवन्धरचम्पू लिखा है। यह ग्रन्थ ८५० ई० के लगभग गुणभद्र द्वारा लिखे गये उत्तरपुराण पर आधारित है। अत लेखक ९०० ई० के वाद हुआ होगा। उसने माघ और वाक्पति का सफलतापूर्वक अनुकरण किया है। यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता है कि धर्मशर्माभ्युदय का लेखक और यह एक ही व्यक्ति हैं।

नेमिदेव के शिष्य सोमदेव ने ९५९ ई० मे यशस्तिलक लिखा है। इसमे आठ आश्वास हैं। वह राष्ट्रकूट राजा कृष्ण तृतीय, जिसका दूसरा नाम कृष्णराजदेव था, का आश्रित कवि था। उसने राजा मारिदत्त के द्वारा किये जाने वाले यज्ञ का वर्णन किया है, जिसमे वह अपने परिवार की इष्टदेवी को प्रसन्न करने के लिए सभी प्राणियो का एक-एक जोडा वलि देने के लिए तैयार करता है। मनुष्यो का भी एक जोडा वलि के लिए तैयार करता है। उसने अल्प आयु के एक वालक और एक वालिका को, जो कि जुडवा उत्पन्न हुए थे, वलि के लिए तैयार किया। उन्होने राजा को अपने तथा उसके

पूर्वजन्म की घटनाएँ बताई । एक सुदत्तमुनि ने राजा को इस प्रकार के यज्ञ की निरर्थकता बताई। वह राजा जैन हो गया । इस ग्रन्थ के अन्तिम तीन अध्याय जैन धर्म की प्रसिद्ध पुस्तिका है। कादम्बरी की तरह इसमे भी कथा मे कथा वर्णित हैं। लेखक ने प्रारम्भिक श्लोको मे भारवि, भवभूति भर्तृहरि, मेण्ठ, गुणाढ्य, भास, कालिदास, बाण, मयूर, नारायण, माघ, राजशेखर तथा भारतप्रमितकाव्याध्याय आदि का नामोल्लेख किया है। यह चम्पू **यशोधर्मराजचरित** नाम से भी विख्यात है ।

भोज ने **रामायणचम्पू** लिखा है । मुद्रित पुस्तक मे अन्त मे लेखक का नाम नही लिखा है, अपितु लेखक को विदर्भराज कहा गया है। भारतीय परम्परा के अनुसार मालवा मे स्थित धारा का राजा इसका लेखक है। विदर्भ और मालवा दो विभिन्न स्थान है, अत इन दोनो स्थानो के राजा भी पृथक् व्यक्ति होगे। अब तक जो सामग्री उपलब्ध है, उसके आधार पर भोज का विदर्भराज कहना सभव नही है। भोज के राज्य का समय १००५ से १०५४ ई० के बीच मे है, अत इस ग्रन्थ का समय ११वी शताब्दी का पूर्वार्घ होता है। राजा भोज ने यह चम्पू सुन्दरकाण्ड के अन्त तक लिखा है, युद्धकाण्ड बाद में लक्ष्मण नाम के किसी व्यक्ति ने लिखा है । यह चम्पू वैदर्भी रीति मे लिखा गया है। यह सर्वोत्तम चम्पूग्रन्थो मे से एक है। वर्णनो मे उच्चकोटि की कल्पना है। उनमे अनुप्रास और चित्त को बरबस खीच लेने वाली उपमाओ का प्रयोग किया गया है ।[1] ऐसा जान पडता है कि उनमे से कुछ वर्णनो पर कुमारदास का प्रभाव पड़ा है ।[2]

अभिनवकालिदास (१०५० ई०) ने **भागवतचम्पू** लिखा है। इसमें ६

---

१ रामायणचम्पू बालकाण्ड ४१ ।
रामायणचम्पू अयोध्याकाण्ड ७० ।
रामायणचम्पू सुन्दरकाण्ड १७, २० ।

२ अयोध्याकाण्ड २३ ।

स्तवको में भागवत की कथा है। अभिनवकालिदास नाम के कई कवि हुए है। लेखक का वास्तविक नाम अज्ञात है। एक क्षत्रिय सोड्ढल ने उदयसुन्दरीकथा लिखी है। यह ११वी शताब्दी ई० मे हुआ था। यह ग्रन्थ गद्य और पद्य मे है। इसकी गणना चम्पूग्रन्थो मे की जा सकती है। इसमे ६ उच्छ्वासो मे नाग-राजकुमारी उदयसुन्दरी और प्रतिष्ठान के राजा मलयवाहन के विवाह का वर्णन है। यह प्रशसनीय और आकर्षक शैली में लिखा गया है। इसका प्रथम अध्याय आत्मकथा के रूप मे है। इसकी कहानी एक तोता कहता है—जैसे कादम्बरी मे। कदम-कदम पर बाण का प्रभाव दृष्टि मे आता है। सारस्वतश्री इस चम्पू का लक्षण है। लेखक ने कुछ ऐसे शब्दो का प्रयोग किया है जो सस्कृत भाषा के लिए विदेशी है, जैसे—क्षक्, झम्प इत्यादि। भूमिका-भाग मे लेखक ने चित्तराज, नागार्जुन तथा मुम्मुनिराज, कोङ्खणनरेशो और वत्सराज का भी उल्लेख किया है। लाट के राजा चालुक्य का उल्लेख अपने आश्रयदाता के रूप मे किया है। वही पर उसने वाल्मीकि, व्यास, वाक्पतिराज, मायुराज, विशाख-देव, गुणाढ्य, भर्तृमेण्ठ, कालिदास, बाण, भवभूति, अभिनन्द, यायावर (राजशेखर), कुमारदास तथा भास की भी चर्चा की है। कहा जाता है कि महाराज हर्षवर्धन ने बाण को सैकडो करोड की सम्पत्ति से पुरस्कृत किया। उसने अभिनन्द, वाक्पतिराज, कालिदास और बाण का जो उल्लेख किया है वह चित्रात्मक है। देखिए —

> वागीश्वर हन्त भजेऽभिनन्द-
> मर्थेश्वर वाक्पतिराजमीडे।
> रसेश्वर स्तौमि च कालिदास
> बाण तु सर्वेश्वरमानतोऽस्मि ॥ उदयसुन्दरीकथा

सुरथोत्सव का लेखक सोमेश्वरदेव (१२४० ई०) चम्पू रीति मे लिखे हुए कीर्तिकौमुदी ग्रन्थ का लेखक है। इसमें वीरधवल के मन्त्री वस्तुपाल का

जीवनचरित वर्णित है। **वासुदेवरथ** ने १४२० ई० के लगभग चम्पू रीति में **गगावशानुचरित** लिखा है। इसमें कलिंग पर राज्य करने वाले गगा वश का इतिहास वर्णित है। **रामानुजाचार्य** (१६०० ई०) ने **रामानुजचम्पू** लिखा है। इसकी शैली बडी सुन्दर और सरल है। इस चम्पू मे विशिष्टाद्वैत वेदान्त के प्रवर्तक रामानुज के जीवन का वर्णन किया गया है। **अनन्तभट्ट** ने १२ स्तवको मे **भारतचम्पू** लिखा है। ग्रन्थ के अन्त मे लेखक के विषय मे उल्लेख मिलता है कि वह एक यशम्वी व्यक्ति था और मधुर काव्य का प्रणेता था, सम्भव है लेखक ने स्वय ऐसा किया हो। नारायणभट्ट (१६०२ ई०) ने अनन्तभट्ट का उल्लेख किया है। अत उसका समय १५०० ई० के लगभग मानना उचित है। विजयनगर के राजा अच्युतराय (१५४० ई०) की धर्मपत्नी रानी **तिरुमलाम्बा** ने **वरवाम्बिकापरिणयचम्पू** लिखा है। इसमे उसने अपने पति का राजकुमारी वरदाम्बा के साथ विवाह का वर्णन किया है। इस चम्पू की रचना सुन्दर और आकर्षक शैली मे की गई है। यह स्थान-स्थान पर भगश्लेप के प्रयोग मे लेखिका के कौशल को व्यक्त करता है। इसका समय १५५० ई० के लगभग मानना चाहिये। नारायणीय के लेखक **नारायणभट्ट** (१६०० ई०) ने **पाञ्चालीस्वयवरचम्पू** लिखा है। इसमे द्रौपदी के स्वयवर का वर्णन है। यह सुन्दर और सरल शैली मे लिखा गया है। यह लम्बे समासो और श्लेपो से पूर्णतया मुक्त है। लगभग उसी समय **समरपु गव दीक्षित** ने **यात्राबन्ध** नामक ग्रन्थ लिखा। इसमे ६ आश्वास हैं तथा उत्तर और दक्षिण के समस्त तीर्थस्थानो का वर्णन है। नीतिग्रन्थ वीरमित्रोदय के लेखक मित्रमिश्र (१६२०ई०) ने श्रीकृष्ण के बाल-जीवन पर आनन्दकन्दचम्पू लिखा है। ग्रन्थ भगश्लेप से गूँथा हुआ है। राघवपाण्डवयादवीय के लेखक **चिदम्बर** (१६०० ई०) ने भागवत की कथा के आधार पर **भागवतचम्पू** लिखा है। **शेषकृष्ण** (१६०० ई०) ने पांच अध्यायो मे **पारिजातहरणचम्पू** लिखा है। इसमे श्रीकृष्ण के द्वारा स्वर्ग मे पारिजात के लाने का वर्णन है।

नीलकण्ठ दीक्षित (१६५० ई०) ने पाँच अध्यायो मे नीलकण्ठविजय-चम्पू लिखा है। उसका वक्रोक्ति अलकार पर पूर्ण अधिकार है और वह भावो की सूक्ष्मता को बहुत कुशलता के साथ प्रकाशित कर सकता है, यह उसके ग्रन्थ को देखने से ज्ञात होता है। इसमे उसने शिव के पराक्रमो का वर्णन किया है। इस ग्रन्थ की रचना १६३७ ई० मे हुई है। राजचूडामणि दीक्षित (१६०० ई०) ने भारतचम्पू लिखा है। चक्रकवि (१६५० ई०) ने द्रौपदीपरिणयचम्पू लिखा है। वेंकटाध्वरी (१६५० ई०) ने चार चम्पू ग्रन्थ लिखे हैं—विश्वगुणादर्शचम्पू, वरदाभ्युदयचम्पू, उत्तरचम्पू और श्रीनिवास-चम्पू। विश्वगणादर्शचम्पू मे जीवन के अच्छे और बुरे दोनो पक्षो का उल्लेख किया गया है। अपने समय मे प्रचलित रीतियो और प्रथाओ की त्रुटियो का विशेष रूप से तामिल देश मे प्रचलित रीतियो की त्रुटियो का, उसने बहुत सुन्दरता के साथ प्रतिपादन किया है। उसके आक्रमण के विषय पुरोहित, सगीतज्ञ, ज्योतिषी, वैद्य तथा अन्य व्यवसायो को करने वाले व्यक्ति हैं। उसने अनुप्रास पर अपने पूर्ण अधिकार का समुचित प्रदर्शन किया है। वर-दाभ्युदय का दूसरा नाम हस्तिगिरिचम्पू है। इसमे काची मे विद्यमान देवता का महत्त्व वर्णन किया गया है। उत्तरचम्पू मे रामायण के उत्तरकाण्ड की कथा वर्णित है। श्रीनिवासचम्पू मे दस अध्यायो मे तिरुपति समीप तिरुमलाइ मे विद्यमान देवता की प्रशस्ति वर्णित है। इन चारो ग्रन्थो मे से विश्वगुणादर्श तामिल देश मे बहुत अधिक प्रचलित है। बाणेश्वर ने चित्रचम्पू लिखा है। यह अर्ध-ऐतिहासिक काव्य है। यह वर्दवान परिवार के राजा चित्रसेन के जीवन का वर्णन करता है, जिनका स्वर्गवास १७४४ ई० मे हुआ है। इस ग्रन्थ का समय १८वी शताब्दी का उत्तरार्ध समझना चाहिये। कृष्ण कवि ने मन्दारमरन्दचम्पू लिखा है। इसका समय अज्ञात है। इसमे छन्दो और अलकारो आदि के उदाहरण दिये गये है। १९वी शती पूर्वार्ध मे तजोर के राजा सर्फोजी द्वितीय ने कालिदास के कुमारसम्भव के विषय को सक्षिप्त करते हुए कुमारसम्भवचम्पू की रचना की है। सर्वदेवविलास मे मद्रास नगर

और वहाँ के सौदागरो का वर्णन है। इसका लेखक अज्ञात है। यह रच
अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह १८०० ई० के आस-पास के समय के मद्रा
के विभिन्न भागो का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत करती है। इसमे बहुत-से मुहाव
है जिनका उद्गम तामिल से है। इसमे ६ आश्वास हैं। यह अप्र
ग्रन्थ है।

अध्याय १९

कथा-साहित्य

प्राचीन काल मे भारत मे कहानियाँ बहुत प्रचलित है । ये कहानियाँ पराक्रमो, समुद्री यात्राओ तथा अन्य घटनाओ पर आधारित है । कुछ कहानियाँ लेखक की कल्पना पर ही आधारित है । वे अधिकतर अभौतिक घटनाओ से सम्बद्ध है, जैसे—आकाश मे और पर्वतीय प्रदेशो मे प्राणियो का सचार । कुछ गन्धर्वो आदि की कथा से सम्बद्ध है। कथा-साहित्य के अभ्युदय के समय धार्मिक भावना ने इस पर पर्याप्त प्रभाव डाला है । बौद्धो और जैनो ने अपने सिद्धान्तो के प्रचारार्थ कथा-साहित्य का आश्रय लिया ।

यह ज्ञात नही है कि कथा-साहित्य के प्रारम्भ के समय कौन-सी भाषा और कौन से रूप का आश्रय लिया गया था । कथाएँ प्रारम्भ मे जनप्रिय रही है, अत यह माना जा सकता है कि प्रारम्भ मे कथाएँ प्राकृत मे लिखी गई थी । प्राचीन कथा-ग्रन्थो के अभाव मे इस विषय पर कोई निश्चित मत प्रस्तुत नही किया जा सकता है।

सबसे प्राचीन कथा-ग्रन्थ गुणाढ्य की बृहत्कथा है । यह ग्रन्थ अब अप्राप्य है । गुणाढ्य और उसके ग्रन्थ के विषय मे इन पुस्तको से कुछ परिचय प्राप्त होता है—बुधस्वामी का बृहत्कथाश्लोकसग्रह, क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामजरी और सोमदेव का कथासरित्सागर । इन तीनो ग्रन्थो के लेखको का कथन है कि ये ग्रन्थ बृहत्कथा के सक्षिप्त रूप है । शिव पार्वती को एक कथा सुना रहे थे । वह कथा उनके एक सेवक पुष्पदन्त ने सुन ली । पार्वती ने उसको शाप दिया । उसका भाई माल्यवान् बीच मे अपने भाई की ओर से कुछ कहने लगा, इस पर पार्वती ने उसे भी शाप दिया । पुष्पदन्त को यह शाप दिया कि वह मनुष्य के रूप मे उत्पन्न होगा और एक दानव काणभूति

को यह कथा सुनाकर पुन अपनी पूर्वावस्था को प्राप्त होगा। माल्यवान् को शाप दिया कि वह भी मनुष्य के रूप मे उत्पन्न होगा और काणभूति से यह कथा सुनकर अपनी पूर्वावस्था को प्राप्त होगा। तदनुसार पुष्पदन्त प्रसिद्ध वैयाकरण एव नन्दराजाओ के मन्त्री वररुचि के रूप मे उत्पन्न हुआ। जीवन के अन्तिम समय मे वह विन्ध्याचल के वन मे गया और वहाँ काणभूति को यह कथा सुनाई तथा अपनी पूर्वावस्था को प्राप्त हुआ। माल्यवान् गुणाढ्य के रूप मे उत्पन्न हुआ और वह प्रतिष्ठान के राजा सातवाहन का मन्त्री हुआ। राजा सस्कृत नही जानता था, अत वह अन्त पुर में स्त्रियो में जाने मे लज्जित होता था, क्योकि उनमे से कुछ सस्कृत अच्छी तरह जानती थी। उसने अपने राजद्वार के विद्वानो को इसलिए आमन्त्रित किया कि क्या वह सस्कृत कम से कम समय मे और कम से कम परिश्रम से सीख सकता है। गुणाढ्य ने राजा को सस्कृत सीखने के लिए कम से कम ६ वर्ष का समय वताया। इस पर एक दूसरे विद्वान् शर्ववर्मा ने कहा कि वह राजा को ६ मास मे सस्कृत सिखा सकता है। इस पर गुणाढ्य ने प्रतिज्ञा की कि वह साहित्यिक कार्यो के लिए सस्कृत का प्रयोग नही करेगा और उसने राजद्वार छोड दिया। वह वन मे गया और वहाँ वह काणभूति से मिला तथा उससे वह कथा सुनी। उसने वह कथा पैशाची प्राकृत मे लिखी। गुणाढ्य के शिष्यो ने यह ग्रन्थ सातवाहन को दिखाया, परन्तु उसने इसे देखना अस्वीकार किया। इस पर गणाढ्य ने यह ग्रन्थ वन की अग्नि मे डाल दिया। उसके शिष्य ग्रन्थ का सातवाँ भाग वचा सके।

सक्षेप मे गुणाढय और उसके ग्रन्थ की यह कथा है। इस ग्रन्थ के सक्षिप्त ग्रन्थो से ज्ञात होता है कि मूलग्रन्थ मे कौशाम्वी के राजा उदयन के पुत्र नरवाहनदत्त के पराक्रमो का वर्णन था। नरवाहनदत्त अपने मित्र गोमुख के साथ पराक्रम के लिए वन मे गया। उसने एक विद्याधर राजकुमारी मदनमजुका से विवाह किया। एक विद्याधर मानसवेग मदनमजुका को भगा ले गया। मानसवेग की वहिन वेगवती ने मदनमजुका के पता चलाने मे नर-

[वा]हनदत्त की सहायता की। नरवाहनदत्त मदनमजुका का पता लगाने मे सफल हुआ और अन्त मे विद्याधरो का महाराज हो गया। इस मुख्य कथा मे कई अन्य कथाएँ सम्मिलित की गई हैं।

बाण, दण्डी, सुबन्धु, त्रिविक्रमभट्ट, धनजय आदि ने वृहत्कथा का उल्लेख किया है। इन सभी कवियो को इस कथा का मुख्य भाग ज्ञात था। यह ज्ञात नही है कि इनमे से किसी ने भी मूलग्रन्थ को देखा है या नही। बुधस्वामी (६वी शताब्दी ई०), क्षेमेन्द्र (१०३७ ई०) और सोमदेव (१०८ ई०) का कथन है कि उन्होने मूल ग्रन्थ को देखा है और उन्होने उसका सक्षिप्त रूप प्रस्तुत किया है। गगा वश के राजकुमार दूरविनीत (६०० ई०) किरातार्जुनीय की जो टीका लिखी है, उसमे १५वें सर्ग की पुष्पिका मे लिखा है कि दूरविनीत ने गुणाढ्य की वृहत्कथा को सस्कृत मे रूपान्तरित किया है। उपर्युक्त साक्षियो से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ६ठी शताब्दी के बाद वृहत्कथा मूल रूप मे साधारणतया प्राप्य नही थी। यह कश्मीर और नेपाल में तथा विन्ध्य पर्वत के कुछ प्रदेशो मे, जहाँ गुणाढ्य ने इसकी रचना की थी, सुरक्षित रही।

यदि गुणाढ्य के विषय में कथासरित्सागर के लेख पर विश्वास करें तो वररुचि ३२० ई० पू० के पूर्व हुआ था, जब कि चन्द्रगुप्त मौर्य गद्दी पर बैठा था। गुणाढ्य का आश्रयदाता सातवाहन, आन्ध्रभृत्य राजाओ मे से एक है। इस वश का राज्यकाल ७३ ई० पू० से लेकर २१८ ई० तक है। गुणाढ्य इसी समय मे हुआ होगा।

गुणाढ्य ने वृहत्कथा लिखने के लिए जिस पैशाची प्राकृत का प्रयोग किया है, वह विन्ध्य प्रदेश मे व्यवहृत विभाषाओ मे से एक प्रतीत होती है। आन्ध्रभृत्य राजाओ की राजधानी गोदावरी नदी के किनारे प्रतिष्ठान नगर मे थी। यह स्थान विन्ध्य पर्वत के समीप ही है। राजशेखर ने इस विचार का समर्थन किया है। डा० जार्ज ग्रियर्सन ने लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इन्डिया मे अपना यह मत प्रस्तुत किया है कि पैशाची प्राकृत भारतवर्ष के पश्चिमोत्तर

प्रदेश मे बोली जाती थी । इस विषय का निर्णय इस आधार पर किया जा सकता है कि उस समय ११ भाषाएँ देश के विभिन्न भागो मे बोली जाती थी ।[१] इससे यह मानने मे कोई कठिनाई नही आती है कि विन्ध्य प्रदेश पैशाची प्राकृत की जन्मभूमि है । गुणाढ्य ने पैशाची प्राकृत को साहित्यिक स्वरूप प्रदान किया । यह दण्डी के काव्यादर्श के लेख से सिद्ध होता है—

'भूतभाषामयी प्राहुरद्भुतार्थां वृहत्कथाम्' ।

काव्यादर्श १-३८

कम्बोडिया के ८७५ ई० के शिलालेख मे यह उल्लेख किया गया है कि गुणाढ्य ने प्राकृत को क्यो अपनाया । इससे भी वृहत्कथा का प्राकृत मे होना ज्ञात होता है ।

यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता है कि गुणाढ्य ने यह ग्रन्थ गद्य मे लिखा था या पद्य मे । इसके सक्षिप्त रूप पद्य मे है । दण्डी ने इसको कथा कहा है, इसके आधार पर यह माना जा सकता है कि यह गद्य मे रहा होगा । अथवा कथा का अर्थ केवल कहानी मात्र समझना चाहिए ।

परवर्ती लेखको मे वृहत्कथा ने पर्याप्त प्रशस्ति प्राप्त की और उनकी रचनाओ को प्रभावित किया । देखिए —

समुद्दीपितकन्दर्पा कृतगौरीप्रसाधना ।
हरलीलेव नो कस्य विस्मयाय वृहत्कथा ॥

—हर्षचरित की भूमिका श्लोक १७

वाण, सुवन्धु और दण्डी ने इसकी ख्याति का उल्लेख किया है ।

सक्षिप्त ग्रन्थो से ज्ञात होता है कि वृहत्कथा का आधार रामायण, वहुत प्राचीन समय से प्रचलित उदयन और वासवदत्ता की कथा, समुद्री यात्राएँ, व्यापारियो और राजकुमारो की पराक्रम-कथाएँ है । बाद के लेखको पर वृहत्कथा का वहुत अधिक प्रभाव पडा है । वाण और सुवन्धु को वृहत्कथा की कहानियां ज्ञात थी । यशस्तिलकचम्पू के लेखक सोमदेव, तिलकमजरी के

१—षड्भाषाचन्द्रिका पृ० ४ ।

लेखक वनपाल और दशकुमारचरित के लेखक दण्डी पर बृहत्कथा का बहुत प्रभाव पड़ा है।

नेपाल के बुधस्वामी ने श्लोकसंग्रह लिखा है। इसी का दूसरा नाम बृहत्कथाश्लोकसंग्रह है। इस ग्रन्थ के नाम से ज्ञात होता है कि मूल ग्रन्थ पद्य में था। श्लोकसंग्रह में २८ सर्ग तथा ४५३९ श्लोक हैं। यह ग्रन्थ अपूर्ण ज्ञात होता है। जितना अंश प्राप्य है, उससे ज्ञात होता है कि बुधस्वामी ने लगभग २५ सहस्र श्लोक लिखे होंगे। इस संक्षिप्त ग्रन्थ में क्षेमेन्द्र और सोमदेव की कथा में भेद है। इसमें वर्णनों का अभाव है और शब्दों के प्राकृत रूपों का प्रयोग है। इससे ज्ञात होता है कि यह मूल ग्रन्थ के अधिक समीप है। इसकी हस्तलिखित प्रति नेपाल में प्राप्त हुई है, इसके अतिरिक्त इसको नेपाल की रचना मानने का और कोई आधार नहीं है। आलोचकों का कथन है कि यह हस्तलिखित प्रति की प्राचीन प्रति के आधार पर आठवीं या नवीं शताब्दी में लिखा गया है।

क्षेमेन्द्र ने १०३७ ई० में बृहत्कथा का संक्षिप्त रूप बृहत्कथामंजरी लिखा है। इसमें १९ अध्याय हैं और ७५०० श्लोक हैं। इस ग्रन्थ का श्लोकसंग्रह से जो भेद है, उससे ज्ञात होता है कि इसमें कुछ ऐसी कथाएँ भी सम्मिलित कर दी गई हैं, जो कश्मीर में प्रचलित थी। जैसे-विक्रम और वेताल की कथा इसमें संग्रहीत है। श्लोकसंग्रह अपूर्ण है, अतः उसके आधार पर यह निश्चयरूप से नहीं कहा जा सकता है कि यह कथा कश्मीरी देन है। क्षेमेन्द्र ने जो बहुत लम्बी कथा को अतिसंक्षिप्त किया है, उससे वह दुर्बोध हो गयी है। मूल ग्रन्थ में नरवाहनदत्त प्रमुख पात्र है, परन्तु इसमें वह गौण स्थान पर है।

कश्मीर के राम के पुत्र सोमदेव ने १०६३ ई० और १०८१ ई० के बीच में कथासरित्सागर लिखा है। यह वस्तुतः बृहत्कथासरित्सागर है। यह १८ लम्बकों में विभक्त है। इनके उपविभाग १२४ तरंगें हैं। इसमें २२ सहस्र श्लोक हैं। क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामंजरी की तरह इसमें भी कश्मीरी

कहानियाँ हैं । सक्षिप्त सस्करण के रूप मे रोचकता और प्रवाह आदि की दृष्टि से सोमदेव का यह ग्रन्थ क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामजरी से बहुत अधिक उत्कृष्ट है । इसकी शैली आकर्षक और सरल है ।

अवदानशतक मे सौ वीर-गाथाओ का सकलन है । ये कथाएँ बौद्ध विचारो के आधार पर हैं । प्रत्येक अवदान मे एक प्राचीन कथा का वर्णन है और उससे कुछ नैतिक शिक्षा प्रस्तुत की गयी है । इन कथाओ से यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है कि मनुष्य पूर्वजन्म के कर्मों के अनुसार शरीर धारण करता है । इसके सग्रहकर्ता का नाम अज्ञात है । ये कथाएँ बहुत प्राचीन ज्ञात होती हैं । तृतीय शताब्दी ई० मे इसका अनुवाद चीनी भाषा मे हुआ है । इन कथाओ का सग्रह सभवत ईसा की प्रथम शताब्दी मे हुआ है । इसी के अनुकरण पर एक बाद का सग्रह ग्रन्थ दिव्यावदान है । इस ग्रन्थ की एक कथा का चीनी भाषा मे अनुवाद २६५ ई० मे हुआ है । यह सग्रह सभवत अवदानशतक के कुछ ही समय बाद किया गया है । ये दोनो ग्रन्थ सस्कृत गद्य मे हैं । इनमे स्थान-स्थान पर कुछ श्लोक सस्कृत या प्राकृत मे दिये हुए हैं । अवदानशतक मे कथाएँ ठीक ढग से क्रमबद्ध की गयी है, परन्तु दिव्यावदान-शतक मे कोई क्रम आदि नही है । क्षेमेन्द्र (१०५० ई०) ने **अवदानकल्पलता** ग्रन्थ लिखा है । इसका दूसरा नाम **बोधिसत्त्वावदानकल्पलता** है । इसमे १०७ कथाएँ हैं, जो कि अवदानशतक तथा अन्य कथा-ग्रन्थो से ली गयी हैं ।

आर्यशूर की जातकमाला जातक-कथाओ का सग्रह है । इनमे बोधिसत्व के पूर्वजन्म की कथाओ का वर्णन है । ये कथाएँ कहानी और सलाप के रूप मे हैं । ये गद्य मे है, परन्तु बीच-बीच मे पद्य भी हैं । यह कहा जाता है कि जातक-कथाओ की सख्या पाँच सौ है । इनमे से कुछ कथाएँ मूलत बौद्ध धर्म से सबद्ध नही ह । आर्यशूर सभवत इन कथाओ का केवल सग्रह-कर्ता है । इसके सग्रह का समय निश्चयपूर्वक कुछ नही कहा जा सकता है, किन्तु इसके सग्रह का समय ४०० ई० से पूर्व मानना चाहिए, क्योकि ४३४ ई० मे इसका चीनी भाषा मे अनुवाद हुआ है ।

जातकों और अवदानों का गद्य और पद्य में एक संग्रह सूत्रालंकार या कल्पनामण्डित नाम से है। इसकी मूल प्रति खण्डित रूप में प्राप्य है। इसका लेखक अश्वघोष समझा जाता था, परन्तु कुछ समय पूर्व ज्ञात हुआ है कि इसका लेखक अश्वघोष के बाद का एक लेखक कुमारलात है।

वेतालपंचविंशतिका २५ कहानियों का एक संग्रह है। इसमें वर्णन किया गया है कि किस प्रकार राजा विक्रमादित्य एक वेताल को पकड़ना चाहता है और वह उसे ये २५ कथाएँ सुनाता है। ये कथाएँ बहुत प्राचीन हैं। ये बृहत्कथामंजरी और कथासरित्सागर दोनों में सम्मिलित की गई हैं। इनके अतिरिक्त इन कथाओं को शिवदास ने १२वीं शताब्दी ई० में गद्य और पद्य रूप में प्रस्तुत किया है, जम्भालदत्त ने गद्य रूप में प्रस्तुत किया है, वल्लभदेव ने इसका एक संक्षिप्त रूप प्रस्तुत किया है और एक अज्ञात लेखक का संस्करण गद्य में है। इस ग्रन्थ की प्रसिद्धि इस बात से ज्ञात होती है कि इसका अनुवाद बहुत-सी भारतीय भाषाओं में हुआ है।

विक्रमादित्य से संबद्ध वेतालपंचविंशतिका की तरह कई कथा-ग्रन्थ हैं। सिंहासनद्वात्रिंशिका में ३२ कहानियाँ हैं। विक्रमादित्य के सिंहासन की ३२ सीढ़ियों में प्रत्येक में एक पुतली बनी हुई थी। उनमें से प्रत्येक ने एक कहानी कही है। पुतलियों ने यह कहानियाँ राजा भोज को कही हैं। जब यह सिंहासन मिला, तब राजा भोज उस पर बैठना चाहता था। पुतलियों ने राजा भोज को सिंहासन पर बैठने से रोका और एक-एक दिन एक-एक पुतली ने एक-एक कथा विक्रमादित्य के पराक्रम की उसे सुनाई और कहा कि यदि वह इन गुणों से युक्त हो तो सिंहासन पर बैठे, अन्यथा नहीं। इस प्रकार पुतलियों ने उसे ३२ दिन रोक कर रक्खा। इसका लेखक और इसका समय अज्ञात है। इस ग्रन्थ के दूसरे नाम द्वात्रिंसत्पुत्तलिका और विक्रमार्कचरित हैं। १४वीं शताब्दी ई० के एक जैन लेखक क्षेमंकर ने गद्य में इसका जैन रूपान्तर प्रस्तुत किया है। इसका एक रूपान्तर वररुचि के नाम से प्रसिद्ध बंगाल में प्राप्य है। दक्षिण भारत में यह विक्रमार्कचरित के नाम से प्रसिद्ध है। यह

ग्रन्थ भी भारतीय भाषाओ में अनूदित प्राप्य है । विक्रमादित्य के पराक्रम का वर्णन करने वाले अन्य ग्रन्थ ये हैं—१. अनन्तरचित **वीरचरित्र**, २ एक अज्ञात लेखक का **विक्रमोदय**, ३ एक जैन लेखक का **पञ्चदण्डछत्रप्रबन्ध**, ४ शिवदास की **शालिवाहनकथा** और **वेतालपञ्चविंशतिका** आदि ।

शुकसप्तति ७० कहानियो का सग्रह है । इसके लेखक और समय का पता नही है । इसमे एक तोता अपनी स्वामिनी को ७० रात तक एक-एक कहानी करके ७० कहानियाँ सुनाता है । उसकी स्वामिनी अपने पति के अभाव मे दुराचारिणी होना चाहती थी । तोता प्रतिदिन रात भर एक कहानी सुनाता था, इस प्रकार उसने अपनी स्वामिनी को दुराचारिणी होने से बचाया । यह गद्य मे है । इसका फारसी मे अनुवाद १४वी शताब्दी ई० मे हुआ है । हेमचन्द्र (१०८८-११७२ ई०) शुकसप्तति को जानता था । अत इसका रचनाकाल १००० ई० से पूर्व है ।

बल्लालसेन ने १६वी शताब्दी मे **भोजप्रबन्ध** लिखा है । यह अधिकाश पद्य मे है, थोडा अश गद्य मे है । इसमे उसने राजा भोज के राजद्वार का विशद वर्णन किया है । राजा भोज स्वय कवि था और कवियो का आश्रयदाता था । राजा भोज राजद्वार की कविगोष्ठियो का सभापति होता था । कविगोष्ठी मे भाग लेने वाले कालिदास, दण्डी, बाण, माघ, भवभूति आदि थ । कवि-गोष्ठियो के कार्य का विवरण प्रत्युत्पन्नमतित्व तथा हास्य से युक्त है । समस्यापूरण[1] या समस्यापूर्ति के रूप मे निम्नलिखित श्लोक भोजराज-परिषद् के क्रिया-कलाप पर प्रकाश डालता है—

भोज —परिपतति पयोनिधौ पतङ्ग
बाण —सरसिरुहामुदरेषु मत्तभृङ्ग ।
महेश्वर —उपवनतरुकोटरे विहङ्ग
कालिदास — युवतिजनेषु शनै शनैरनङ्ग ॥

---

१ उस श्लोक की पूर्ति करना जिसका एक अश किसी ने पहले ही बना दिया है— समस्यापूरण कहलाता है ।

इसमे राजा मुज के बाद भोज किस प्रकार सिहासन पर बैठा, इसका भी वर्णन है। इसमे काल-सम्बन्धी त्रुटियाँ बहुत है।

वेतालपचविंशतिका के लेखक शिवदास ने कथार्णव लिखा है। इसमे प्रसिद्ध ३५ कहानियाँ है। श्रीवीरकवि ने १४५१ ई० मे कथाकौतुक लिखा है। यह १५ अध्यायो मे पद्य मे है। यह यूसुफ और जुलेका की कथाओ पर आधारित है। यह जोनराज का शिष्य श्रीवर ही है। इनके अतिरिक्त आनन्दकृत माधवानलकथा और विद्यापति कृत पुरुषपरीक्षा आदि प्रचलित ग्रन्थ है।

अध्याय २०

नीति-कथाएँ

नीति-कथाएँ भारतीय साहित्य की एक मुख्य विशेषता रही हैं। ई० सन् से पूर्व नीति-कथा-साहित्य की सत्ता पतजलि के एक कथन से ज्ञात होती है।[१] नीति-कथाएँ गद्य मे लिखी जाती हैं और उनमे श्लोक बीच-बीच मे उद्धृत होते हैं। ये श्लोक रामायण, महाभारत तथा अन्य नीति-ग्रन्थो से लिये हुए होते हैं। इन श्लोको मे नीति-सम्बन्धी कोई शिक्षा होती है और उसके समर्थन मे कथा दी जाती है। साधारणतया एक कहानी के अन्दर दूसरी कहानी जोडी हुई होती है। इस प्रकार एक कहानी मे कई कहानियाँ हो जाती हैं। ये कहानियाँ नीति-श्लोको के साथ दी गई हैं। प्रत्येक कहानी के अन्त मे पद्य मे नीति-सम्बन्धी शिक्षा दी गई है और उनके साथ ही नई कहानी का सकेत होता है। तत्पश्चात् नई कहानी कही जाती है। प्रत्येक कहानी के साथ यह ही क्रम होता है। कहानी के अन्दर कहानी रखने का क्रम बहुत प्रचलित हुआ और इस पद्धति को विदेशियो ने भी अपनाया तथा अरेबियन नाइट्स जैसी पुस्तकें प्रस्तुत की। ये नीति-कथाएँ सस्कृत मे लिखी गई।

इन कथाओ की एक विशेषता यह है कि इनमे मनुष्य के स्थान पर पशु और पक्षी रक्खे गये हैं। वे मानवीय गुणो और स्वभाव से युक्त होते हैं। पशु, पक्षी और वृक्ष अपने स्वभाव और व्यवहार के द्वारा मनुष्य को बहुत कुछ शिक्षा दे सकते हैं। पशु, पक्षी और वृक्षो की कथा के द्वारा जीवन के अच्छे और बुरे दोनो स्वरूपो का बहुत सुन्दरता के साथ प्रतिपादन किया गया है।

---

१ पतजलि ने अजाकृपाणीय और काकतालीय आदि शब्दो की व्युत्पत्ति दी है। इससे ज्ञात होता है कि इनका सम्बन्ध किसी कहानी मे है।

पुनर्जन्म के सिद्धान्त से भी इस बात का समर्थन होता है। महाभारत मे भी इस प्रकार की बात का उल्लेख मिलता है। विदुर ने धृतराष्ट्र से कहा है कि वह पाडवो को न मारे, नही तो वह सोने का अडा देने वाले पक्षी को मारेगा। बौद्ध जातको में भी ऐसी विशेषता प्राप्त होती है। इस प्रकार का साहित्य ई० सन् से पूर्व विद्यमान था।

ये कथाएँ मनुष्य के राजनीतिक जीवन तथा अन्य प्रकार के दैनिक जीवन का वर्णन करती हैं। आजकल जो नीति-ग्रन्थ प्राप्त हैं, उनसे ज्ञात होता है कि वे राजकुमारो को राजनीति सम्बन्धी शिक्षा देने के लिए बनाये गये थे। इस उद्देश्य के साथ ही इनमे जीवन के बुरे पक्ष का भी भली भाँति स्पष्टीकरण किया गया है—जैसे, ब्राह्मणो के द्वारा छल-प्रपच, कपट और लोभ का व्यवहार, अन्त पुर के छल-प्रपच और स्त्रियो की दुराचारवृत्तिता आदि। इसी प्रकार जीवन के अच्छे पक्ष का भी वर्णन है, जैसे—ब्राह्मणो की पवित्रता और उनका गौरव, क्षत्रियो के लिए आदेश कि वे अपने कर्तव्य का तत्परता के साथ पालन करें, स्त्रियो के लिए शिक्षा कि वे पतिव्रता हो। दुर्गुणो को सुन्दर व्यग्य के साथ प्रकट किया गया है।

प्रचलित कहानियाँ और नीति-कथाओ के स्वरूप मे कोई निश्चित अन्तर नही प्रतीत होता है। तथापि इतना कहा जा सकता है कि प्रचलित कहानियो मे कहानी को अधिक महत्त्व दिया जाता है और नीति-कथाओ मे नीति-सम्बन्धी विषय को।

नीति-कथा के मुख्य प्रतिनिधि ग्रन्थ पचतन्त्र और हितोपदेश है। पचतन्त्र के बहुत से सस्करण है और उनमे थोडा अन्तर है। ऐसा सभव प्रतीत नही होता है कि ये सभी सस्करण स्वतन्त्र रूप मे उत्पन्न हुए है। ये सभी ग्रन्थ एक मूल-ग्रन्थ से निकले है, जो कि आजकल अप्राप्य है। कुछ साक्षियो के आधार पर मूल-ग्रन्थ के स्वरूप का अनुमान हो सकता है। पचतन्त्र की एक सस्कृत मे लिखी मूल प्रति का अनुवाद फारस के बादशाह नौशीरवाँ के लिए उनके हकीम बुर्जो ने पहलवी भाषा मे किया। इस पहलवी सस्करण का

अनुवाद सीरिया की भाषा मे एक बुद नामक व्यक्ति ने ५७० ई० मे किया। ७५० ई० मे पहलवी सस्करण का अनुवाद अरबी भाषा मे हुआ। योरोपीय भाषाओ मे जो इसके अन्य अनुवाद हुए है, वे अरबी अनुवाद पर आश्रित है, जैसे—११०० ई० मे हिब्रू भाषा मे अनुवाद, १२७० ई० मे लेटिन मे अनुवाद, १४८० ई० मे जर्मन भाषा मे अनुवाद, १५५२ ई० मे इटालियन भाषा मे अनुवाद, १६७८ ई० मे फ्रेंच भाषा मे अनुवाद, १०८० ई० मे यूनानी भाषा मे अनुवाद, १२वी शताब्दी मे फारसी भाषा मे अनुवाद, इसके बाद अन्य भाषाओ मे अनुवाद हुए। पचतन्त्र का मूल सस्कृत वाला सस्करण तथा पहलवी वाला सस्करण नष्ट हो चुका है। इससे इतना कहा जा सकता है कि पहलवी वाले सस्करण से बहुत समय पूर्व सस्कृत वाला सस्करण बन चुका था। इस पहलवी वाले सस्करण का ५७० ई० मे सीरिया की भाषा मे अनुवाद हुआ है। अत मूल पचतन्त्र की रचना का काल तृतीय शताब्दी ई० मानना उचित है। इस समय सभवत भारतीय क्षत्रियो ने विदेशियो को हटाकर हिन्दू साम्राज्य स्थापित करने का प्रयत्न किया होगा और उन्हे इस प्रकार के ग्रन्थ की आवश्यकता पडी होगी। पाश्चात्य विद्वान् इसका सबध कश्मीर या मगध से जोडते है। डा० कीथ के मतानुसार इसका रचयिता वैष्णव विद्वान् था। निश्चित सूचना के अभाव मे इन सभी विचारो को केवल कल्पनामात्र समझना चाहिए। बौद्ध धर्म प्राय हिंदू धर्म मे समानता रखता है, अत इन विचारो को कोई महत्त्व नही दिया जाना चाहिए कि मूल पचतन्त्र पर बौद्ध जातक-ग्रथो का प्रभाव पडा है। पचतन्त्र का मूल नाम क्या था, यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता है। पहलवी अनुवाद मे कलिलग और दमनग नाम तथा अरबी अनुवाद मे कलिलह और दमनह नाम से सस्कृत कर्कटक और दमनक का अनुमान लगाया जा सकता है। मूल-ग्रन्थ का यह नाम था, यह सन्देह की बात है, क्योकि कर्कटक और दमनक पचतत्र के केवल प्रथम तत्र मे प्राप्य है, अन्य तत्रो मे नही। यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता है कि पहलवी वाला अनुवाद केवल प्रथम तन्त्र का ही अनुवाद था। अत मूलग्रथ का वास्तविक नाम अनिश्चित ही है। बाद के भारतीय सस्करणो

मे जो इसके नाम के साथ तन्त्र शब्द पाया जाता है वह स्वतन्त्र कल्पना नही प्रतीत होती है। यह शब्द मूल नाम मे रहा होगा। मूल-ग्रन्थ का नाम पचतन्त्र रहा होगा। बाद के सस्करणो मे तन्त्रो के क्रम मे अन्तर है तथा कहानियो के क्रम मे अतर है। अत मूल-ग्रन्थ मे कितना और क्या पाठ्य था, यह निश्चय करना कठिन है। सीरिया की भाषा वाले अनुवाद मे १० खण्ड है और अरबी वाले अनुवाद मे २२ खण्ड है।

इसके तीन मुख्य सस्करणो के द्वारा मूल ग्रन्थ के विषय का ज्ञान हो सकता है—१ तन्त्राख्यायिका, २ उत्तरी भारत का प्रचलित सस्करण पचतन्त्र, ३ बृहत्कथामजरी और कथासरित्सागर के द्वारा ज्ञात पचतन्त्र। इसके नाम मे प्रयुक्त तन्त्र शब्द से ज्ञात होता है कि यह ग्रन्थ आचार अथवा नीति-विषयक ग्रन्थ है। इसकी रचना मे काव्य की शैली को अपनाया गया है और गद्य तथा पद्य दोनो को सम्मिलित किया गया है।

बाद के सस्करणो मे इसका जो पचतन्त्र नाम रक्खा गया है, वह पाच तन्त्रो के आधार पर है। वे पाँच तन्त्र ये है—मित्रभेद, मित्रलाभ, विग्रह, लब्धप्रणाश और अपरीक्षितकारक। प्रथम तन्त्र मे दिखाया गया है कि भेद-नीति का प्रयोग करके किस प्रकार दो गीदडो ने सिह और बैल मे युद्ध करा दिया है। दूसरे तन्त्र मे मित्रता और पारस्परिक सहयोग का महत्त्व दिखाया गया है। तीसरे तन्त्र मे युद्ध उसके कारण और सन्धि की उपयोगिता का वर्णन किया गया है। चौथे तन्त्र मे दिखाया गया है कि किस प्रकार प्राप्त वस्तु भी असावधानी से नष्ट हो जाती है। पाँचवें तन्त्र मे दिखाया गया है कि किस प्रकार बिना विचारे कार्य करने से नाश होता है। बाद के सस्करणो मे ये पाँचो तन्त्र इसी प्रकार है परन्तु उपर्युक्त लक्ष्यो की पूर्ति के लिए जो कहानियां दी गई है, उनमे पर्याप्त अन्तर है।

मूल ग्रन्थ के दो विभिन्न सस्करण प्राप्त है—तन्त्राख्यायिका और पच-तन्त्र। इनमे से प्रथम सीरियन सस्करण से अधिक मिलता है और मूल ग्रन्थ के अधिक समीप है। इसकी भाषा सरल और परिमार्जित है। सम्भवत

यह मूल ग्रन्थ का परिमार्जित और सशोधित रूप है। इसके नाम मे आख्यायिका शब्द से ज्ञात होता है कि मूल ग्रन्थ को कहानी के रूप मे प्रस्तुत किया गया है। यह ग्रन्थ कश्मीर में प्राप्त होता है। पचतन्त्र कई सस्करणो में प्राप्त होता है। बृहत्कथा और कथासरित्सागर के अनुसार पचतन्त्र का स्वरूप दूसरा ही है। पचतन्त्र का एक जैन सस्करण ११०० ई० के लगभग तैयार हुआ है। इसमे **माघ** (७०० ई०) और **रुद्रभट्ट** (९०० ई०) का उल्लेख है। इसमें कहानियो में परिवर्तन किया गया है और नई कहानियाँ जोडी गई हैं। ११९९ ई० में एक जैन **पूर्णभद्र** ने पचतन्त्र का एक नवीन सस्करण तैयार किया। यह तन्त्राख्यायिका, पचतन्त्र के जैन सस्करण तथा अन्य आधारो पर अवलम्बित है। इस सस्करण मे गुजराती और प्राकृत वाले प्रयोग भी प्राप्त होते हैं। इस सस्करण का नाम **पचाख्यानक** है। एक जैन लेखक **मेघविजय** (१६६० ई०) ने **पचाख्यानोद्धार** ग्रन्थ लिखा है। इसमे बहुत-सी मनोरजक कहानियाँ है। पचतन्त्र के दक्षिण भारत मे कई सस्करण प्राप्त होते हैं। इसमे कालिदास और भवभूति का उल्लेख है। यह ग्रन्थ ६०० ई० के बाद बना होगा। पचतन्त्र की एक नेपाली हस्तलिखित प्रति है। इसमे केवल श्लोक ही हैं, केवल एक सदर्भ गद्य मे है। यह दक्षिण भारत मे **पचतन्त्र** नाम से प्रसिद्ध है और उत्तर भारत मे **चाख्यानक** नाम से। पचतन्त्र का शुकसप्तति और वैतालपचविशतिका पर बहुत प्रभाव पडा है।

हितोपदेश पचतन्त्र का पुनर्निर्माण करने के लिए एक दूसरा प्रयत्न है। इसमे नया विषय भी सम्मिलित किया गया है। पचतन्त्र की अधिकाश कहानियाँ इसमे पुन दृष्टिगोचर होती हैं। कामन्दक के **नीतिसार** से इसमे श्लोक सगृहीत हैं। इसके केवल चार खण्ड है। उनके नाम है—मित्रलाभ, सुहृद्भेद, विग्रह और सन्धि। पचतन्त्र का चौथा तन्त्र इसमे सर्वथा छोड दिया गया है। हितोपदेश का चौथा खण्ड लेखक की अपनी कृति है। इसका लेखक **नारायण** है। यह बगाल के एक धवलचन्द्र का आश्रित कवि है। इसकी सबसे प्राचीन हस्तलिखित प्रति १३७३ ई० की है। यह ग्रथ इस

समय मे बहुत समय पूर्व लिखा जा चुका होगा । इस ग्रथ का उद्देश्य, जैसा कि पुस्तक मे वर्णित है, पाटलिपुत्र के राजा सुदर्शन के पुत्रो को नीतिविषयक शिक्षा देना था । इस ग्रन्थ की शैली बहुत सरल और आकर्षक है। यह ग्रन्थ भारतीय भाषाओ मे भी बहुत प्रचलित है ।

पचतन्त्र और हितोपदेश राजनीति-शास्त्र की श्रेणी मे आते हैं । इन दोनो ग्रन्थो के अतिरिक्त इस विषय के और भी ग्रन्थ रहे होगे । इनमे से कुछ नष्ट हो गये होगे और कुछ पचतन्त्र और हितोपदेश मे ही सम्मिलित हो गये होगे ।

बौद्धो और जैनो के नीति-कथा के ग्रन्थ अपने हैं। एक जैन सिद्धर्षि ने ९०६ ई० मे उपमितिभावप्रपचकथा ग्रन्थ लिखा है । यह गद्य मे है, बीच-बीच मे पद्य हैं । इसमे बहुत-सी कथाएँ सम्मिलित हैं । इसमे भाव-जगत की अनेकरूपताएँ कहानियो के द्वारा प्रस्तुत की गई है। हेमचन्द्र (१०८८-११७२ ई०) ने अपने ग्रन्थ त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित के परिशिष्ट के रूप मे परिशिष्टपर्व लिखा है । इसमे जैन मुनियो की आत्मकथाएँ हैं । साथ ही इसमे बहुत-सी प्रचलित कहानियाँ भी सम्मिलित हैं ।

विक अर्थ है—नाटक के क्रिया-कलाप का नियन्ता। सुखान्त नाटक मनुष्य के प्रारम्भिक जीवन के सुख के अनुभव का अभिव्यजन है। इसमे हास्य और चातुर्य का समिश्रण होता है। अत नाटक की उत्पत्ति गुडिया के खेल और छाया-दृश्य पर निर्भर नही रह सकती थी। वस्तुत नाटको का जन्म इनमे बहुत पूर्व हो चुका था।

सस्कृत नाटको की विशेषताएँ

जीवन की अवस्थाओ के अनुकरण का नाम नाट्य है।[1] भरत ने निम्नलिखित शब्दो मे नाट्य का उद्देश्य बताया है—

उत्तमाधममध्याना नराणा कर्मसश्रयम्।
हितोपदेशजनन धृतिक्रीडासुखादिकृत्।
दु खार्ताना समर्थाना शोकार्ताना तपस्विनाम्।
विश्रान्तिजनन काले नाट्यमेतन्मया कृतम्। नाट्यशास्त्र १ ११४-११५।

नाटक का उद्देश्य यह है कि वह जनमात्र के लिए आमोद, मनोरजन और सुख देने वाला हो। अस्थिर-चित्त मनुष्यो को उचित उपदेश दे। दु ख-पीडित और शोकग्रस्तो को शान्ति प्रदान करे। कार्य करने मे समर्थ व्यक्तियो को तथा तपस्विवर्ग को आवश्यक मनोरजन प्रदान करे। नाटको के इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन सभी घटनाओ और कार्यों का सग्रह किया गया, जिससे उनका यह उद्देश्य पूर्ण हो। अत नाटककारो का यह कर्त्तव्य हो गया है कि वे मानव-जीवन की सभी घटनाओ को सुबोध और विश्वसनीय ढङ्ग से प्रस्तुत करे तथा रचना इस प्रकार की हो कि दर्शको को आनन्द-प्रदान कर सके।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए नाटककार को मानव-जीवन की उन अवस्थाओ को चित्रित करना पडा, जिनमे नाटक वास्तविक प्रतीत हो। साथ ही जीवन की कठोर वास्तविकताओ को छोडना पडा, क्योकि उनसे दर्शको के मन पर ठीक प्रभाव नही पडता और उन्हे उसमे आनन्द प्राप्त नही होता।

---

१ अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्।

अतः जीवन की वास्तविकताओं को कलात्मक रूप देकर प्रस्तुत करना पड़ा। अतः संस्कृत नाटकों को केवल आदर्शवादी नहीं कह सकते हैं।

संस्कृत नाटकों का उद्देश्य आनन्द-प्रदान करना है, अतः उसमें दुःखद घटनाओं के मिश्रण के लिए स्थान नहीं है। दुःखित और शोकार्त्त व्यक्ति शान्ति चाहता है। दुःखान्त घटनाएँ उसको और दुःखित बनायेंगी। अतः संस्कृत नाटककारों ने ऐसी घटनाओं को स्थान नहीं दिया है। साथ ही हिन्दू आचारशास्त्र का सिद्धान्त है कि धर्म की विजय होती है और अधर्म की पराजय होती है। अतः उदात्त गुणों से युक्त नायक की पराजय नहीं होनी चाहिए और न पापी की विजय ही होनी चाहिए। पापी पर जो विपत्ति या मृत्यु आदि आती है, वह कर्मफल-सिद्धान्त के नियमानुसार उसके किये हुए कर्मों का ही फल है, अतः जनता की उसके प्रति सहानुभूति नहीं होती है। इसीलिए पापी का पतन दुःखान्त घटना नहीं है। तथापि संस्कृत नाटकों में बहुत-सी घटनाएँ ऐसी हैं, जो दुःखप्रद और करुणाजनक हैं। उत्तररामचरित, वेणीसंहार और नागानन्द आदि में इस प्रकार के दृश्य हैं। इस प्रकार के दृश्य रामायण, महाभारत तथा अन्य कथानकों में हैं, जहाँ से इनकी कथाएँ ली गई हैं। उनका प्रभाव नाटककारों पर अवश्य पड़ा है।

यदि नाटककार अपनी असाधारण प्रतिभा से इनको सुखान्त न बना देते तो ये दृश्य इन नाटकों को दुःखान्त नाटक बना देते।

इसका अभिप्राय यह नहीं है कि पाश्चात्य नाटकों की तरह संस्कृत नाटक पूर्णतया सुखान्त और पूर्णतया दुःखान्त नाटकों के रूप में विभक्त हैं। इन नाटकों में सुख, दुःख तथा अन्य भाव स्वतन्त्र रूप से मिश्रित हैं। इन नाटकों में हास्य का रस विदूषक उत्पन्न करता है।

संस्कृत नाटकों में काल, स्थान और क्रिया सम्बन्धी संकलनत्रय का पूर्णतया पालन नहीं हुआ है। नाटक के दृश्यों के प्रदर्शन में उतना ही समय लगना चाहिए, जितना कि वास्तविक घटना के घटित होने में लगता है। इन

नियम का सस्कृत नाटको मे उल्लघन हुआ है। यह भी माना जाता है कि दो अको की घटनाओ के बीच मे एक रात्रि का कम से कम व्यवधान होना चाहिए। इस नियम का भी पालन नही हुआ है। कतिपय नाटको मे अगला अक पूर्व अक से क्रमबद्ध है और उसमे समय का कुछ भी व्यवधान नही है। **शाकुन्तल, विक्रमोर्वशीय, उत्तररामचरित** आदि नाटको की घटनाएँ कई वर्ष की घटनाएँ हैं। उत्तररामचरित के द्वितीय अक की कथा प्रथम अक की कथा से १२ वर्ष बाद की घटना है।

स्थान की एकता का भी पालन नही किया गया है। नाटको के लिए जो भाव लिया गया है, वह विभिन्न स्थानो का है। साथ ही यह विश्वास कि अलौकिक जीव भी मनुष्य के कार्यों मे हाथ डालते हैं, दृश्य के स्थानपरिवर्तन का कारण हो जाता है। स्थानपरिवर्तन के बिना इन दृश्यो की वास्तविकता दर्शको के सम्मुख उपस्थित नही की जा सकती है। विक्रमोर्वशीय और शाकुन्तल के दृश्य कुछ पृथिवी पर घटित हुए हैं और कुछ स्वर्ग मे। कई नाटको मे एक ही अक मे स्थानपरिवर्तन हो गया है।

सस्कृत नाटको मे कथानक की एकता को विशेष महत्त्व दिया गया है। कथानक की एकता का पूर्णतया निर्वाह **कालिदास, शूद्रक** आदि नाटककारो ने ही किया है। भरत के नाट्यशास्त्र का यह श्लोक नाट्य मे भाव के महत्त्व पर प्रकाश डालता है—

नानाभावोपसम्पन्न नानावस्थान्तरालकम्।
लोकवृत्तानुकरण नाट्यमेतन्मया कृतम् ॥

भरत ने यह उल्लेख किया है कि अभिनय का उद्देश्य लोगो को सदुपदेश देना, आमोद और विहार आदि प्रदान करना है, अत अभिनय-दर्शको को इसका आनन्द अवश्य लेना चाहिए। आनन्द वैयक्तिक अनुभूति मे होता है जो सुखद है और जिसकी उत्पत्ति घटनाओ अथवा दृश्यो से होती है इस प्रकार के सुख का आधार मानस अनुभूतियो या भावो का उत्कर्ष है इसीलिए प्रत्येक अभिनयद्रष्टा को शान्ति, आमोद, हर्ष और विषाद के

अनुभूति पृथक्-पृथक् होती है। यह उसके हृदय मे उठने वाले अपने भावो पर निर्भर है। इस प्रकार के भावो को जागृत करने मे अभिनय के दो अङ्ग सहायक होते हैं—पहला है नृत्य जिसमे भाव की प्रमुखता रहती है और दूसरा है नृत्त जिसका आश्रय ताल और लय है। किन्तु नाटक का प्रमुख आश्रय रस होता है। देखिए —

> धीरोदात्ताद्यवस्थानुकृतिर्नाट्य रसाश्रयम्।
> भावाश्रय तु नृत्य स्यान्नृत्त ताललयाश्रयम्॥
>
> प्रतापरुद्रीय—नाटकप्रकरण १-२

सस्कृत नाटको मे और बातो की अपेक्षा रस-परिपाक को अधिक महत्त्व दिया गया है। शृङ्गार और वीर रस मुख्य रस होते हैं, अन्य रस उसके सहायक होते हैं। जो नाटककार रस-परिपाक को लक्ष्य मे रखते हैं, वे उन्ही बातो का नाटक मे सग्रह करते हैं जो रस की पुष्टि मे सहायक हो। जो बातें उस रस की पुष्टि मे बाधक होती हैं, उनको छोड देते हैं या उन्हें गौण स्थान देते हैं। रस की पुष्टि के लिए गद्य की अपेक्षा पद्य अधिक उपयुक्त होता है। अतएव सस्कृत नाटको मे गेय छन्दो मे श्लोक पर्याप्त सख्या मे है। शकुन्तला नाटक मे १९२ श्लोक हैं, विक्रमोर्वशीय मे १३३, उत्तररामचरित मे २५५, मृच्छकटिक मे ३८०, वेणीसहार मे २०८ श्लोक हैं। ये श्लोक अधिकाश मे भावो या दृश्यो का वर्णन करते हैं। नाटककार रसो के परिपाक के लिए प्रकृति का वर्णन करते हैं। सवादो के लिए गद्य का प्रयोग उचित रूप से किया जा सकता था, परन्तु गद्य को उचित स्थान नही प्राप्त हुआ है। कथानक के विकास लिए सवाद सबसे अधिक उपयुक्त होते हैं। सस्कृत नाटको मे कथानक की प्रगति को गौण स्थान दिया गया है, अत गद्य अश बहुत कम है। तथापि कालिदास, शूद्रक, भट्टनारायण, विशाखदत्त आदि के नाटको मे गद्य अश का प्रयोग उचित मात्रा मे हुआ है। रस को मुख्यता दी गयी है, अतएव कथानक और पात्रो को गौण स्थान दिया गया है, क्योंकि यदि कथानक और पात्रो के चरित्र-चित्रण पर विशेष ध्यान दिया जाता तो

रस के परिपाक मे विघ्न होता। रस-परिपाक के लिए ही कैशिकी, सात्वती, आरभटी और भारती इन चार नाटकीय वृत्तियो का उपयोग किया जाता है। अलकारो का प्रयोग भी रस की पुष्टि के लिए ही किया जाता है। रस-परिपाक को जो इतना महत्त्व दिया गया है, उससे कुछ अश तक सस्कृत नाटक आदर्शवादी हो गये हैं। पद्याश की अधिकता, गद्याश का कम प्रयोग, एक ही प्रकार के कथानक और पात्र आदि के कारण इन नाटको की वास्तविकता कम हो जाती है। इन बातो के होते हुए भी भास, कालिदास, भट्टनारायण, शूद्रक, विशाखदत्त आदि के नाटको मे वास्तविकता की कमी नही है। उपर्युक्त बातो का यह प्रभाव हुआ कि सस्कृत के नाटक अधिकाश मे पाठ्य-ग्रन्थ हुए, उनका अभिनय ठीक ढग से नही हो सका।

इन नाटको के कथानक रामायण, महाभारत पर या उपाख्यानो पर आधारित हैं अथवा इनकी कथाएँ काल्पनिक हैं। बहुत से नाटककारो ने रामायण और महाभारत से ही अपने कथानक लिए हैं। उन्होने कथानक मे कोई विशेष परिवर्तन नही किया है। कालिदास तथा भवभूति आदि कतिपय कवियो ने मूल कथानक मे कुछ परिवर्तन किया है। बहुत कम कवियो ने नवीन कथा का आविष्कार किया है और सफलतापूर्वक उसको प्रस्तुत किया है। शूद्रक ही अकेला ऐसा कवि है जो इस दृष्टि से सफल हुआ है। साधारणतया नाटको का विषय प्रेम-कथा है। एक राजकुमार, जिसके कई विवाह हो चुके हैं, रानी की सेविका के रूप मे नियुक्त अज्ञात कुल की युवती स्त्री मे प्रेम करने लगता है। रानी नई सेविका पर कठोर नियन्त्रण रखती है कि वह उसके पति का ध्यान आकृष्ट न करे। परन्तु राजकुमार विदूषक की सहायता से उस युवती से एकान्त में मिलने का प्रबन्ध कर लेता है। जब यह घोषणा हो जाती है कि दोनो का प्रेम-प्रसग हो गया है तो रानी उस सेविका को राजकुमार को अर्पण कर देती है। साधारणतया इस प्रकार के कथानक हैं। कुछ नाटको मे कुछ परिवर्तन भी है। शूद्रक के नाटक मृच्छकटिक मे प्रेम-कथा और राजनीतिक कथा मिश्रित है। इस नाटक का कथा-सघटन बहुत उत्तम है। हर्षवर्धन के नागानन्द की कथा मे

उक्त कथाओं से अन्तर है । विशाखदत्त के मुद्राराक्षस की कथा राजनीतिक विषय पर आधारित है ।

इन नाटकों में कथानक के बाद महत्त्व की दृष्टि से पात्रों का स्थान आता है । पात्रों के पुरुष और स्त्री रूप में विभाजन से नाटकों में वास्तविकता आ जाती है । "इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि भारतीय नाटककारों ने लगभग १३ सौ वर्ष पूर्व स्त्रियों को स्त्रीपात्रों का अभिनय करने की स्वीकृति देकर अपनी दूरदर्शिता का परिचय दिया है । जिसको अब पाश्चात्य नाटककारों ने अपनाया है।"[1] ये पात्र ही संस्कृत का प्रयोग करें और ये पात्र प्राकृत का प्रयोग करें, इस नियन्त्रण से ज्ञात होता है कि संस्कृत नाटक कितने अधिक वास्तविक जीवन से सम्बद्ध थे । उस समय जिस प्रकार भाषा का प्रयोग होता था, उसी प्रकार नाटकों में भी भाषा का प्रयोग है । पुरुष पात्रों में नायक, प्रतिनायक, विदूषक, भृत्य आदि उल्लेखनीय हैं । संस्कृत नाटकों में नायक को दबाकर प्रतिनायक विजयी नहीं हो सकता है । नाटककारों का पहले से निर्णय कि नायक का पतन नहीं होना चाहिए और जैसे भी हो उसकी विजय-पताका फहरानी चाहिए, इस निश्चय के कारण पात्रों का चरित्र-चित्रण अच्छा नहीं हो पाया है । यही अवस्था स्त्रीपात्रों की भी है । नायक चार प्रकार के होते है—धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरशान्त और धीरललित । प्रेमी की दृष्टि से नायक चार प्रकार के होते हैं—अनुकूल, दक्षिण, धृष्ट और शठ । नाटक के अनुसार नायक किसी एक विशेष प्रकार का होना चाहिए। विदूषक कोई ब्राह्मण व्यक्ति ही होता है । कालिदास के मालविकाग्निमित्र और शूद्रक के मृच्छकटिक के अतिरिक्त सभी नाटकों में विदूषक एक मूर्ख व्यक्ति है । वह प्रेमी और प्रेमिका का प्रणय-सम्बन्ध कराने में सहयोग देता है और अन्य सभी पात्रों के लिए हास्य का पात्र होता है । स्त्रीपात्रों में महारानी का स्थान ऊँचा होता है । अधिकांश नाटकों में

---

१. C E M Joad The History of Indian Civilisation. पृष्ठ ६५ ।

नायिका भी होती है। कुछ विशेष प्रकार के नाटको मे अन्य स्त्रियाँ भी नायिका हो सकती हैं। प्रेमकथा वाले नाटको मे साधारणतया दो या अधिक प्रतिद्वन्द्वी होते हैं। ऐसे नाटको मे नाटककार को अवसर प्राप्त होता है कि वह दो प्रतिस्पर्धी रानियो की तुलना करे और उनकी विषमताओ को दिखाकर उनका चरित्र-चित्रण करे। कालिदास का मालविकाग्निमित्र इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। ये स्त्रीपात्र प्राकृत मे बात करते है। मालविकाग्निमित्र और मालतीमाधव मे सन्यासिनी कौशिकी और कामन्दकी दोनो प्रेमियो का सम्बन्ध कराने मे बहुत सहायता प्रदान करती हैं। ये दोनो सस्कृत मे वार्तालाप करती है। यद्यपि अधिकाश नाटको मे चरित्र-चित्रण अच्छा नही हुआ है, तथापि कालिदास, शूद्रक और भट्टनारायण के नाटक चरित्र-चित्रण की दृष्टि से बहुत उत्तम हैं। इनमे प्रत्येक पात्र का स्वतन्त्र व्यक्तित्व है।

प्रत्येक नाटक इष्टदेवता के स्तुतिपाठ के साथ प्रारम्भ होता है। इसको नान्दीपाठ कहते हैं। यह इस बात का सूचक है कि पर्दे के पीछे होने वाले प्रारम्भिक मागलिक कार्य, जिसको पूर्वरग कहते हैं, समाप्त हो गये हैं। नान्दीपाठ के बाद सूत्रधार रगमच पर आता है। कुछ नाटको मे सूत्रधार ही रगमच पर आकर नान्दीपाठ करता है। सूत्रधार अपनी पत्नी नटी या अपने सेवक मारिष से नाटक, उसके लेखक और उसके अभिनय के विषय मे वार्तालाप करता है। इसके पश्चात् वह इनके साथ रगमच से चला जाता है। इस अश को प्रस्तावना, आमुख या स्थापना कहते हैं। सस्कृत नाट्य के नियमानुसार रगमच पर इन कार्यो का दिखाना सर्वथा वर्जित है—मृत्यु आदि दु खद घटनाएँ, युद्ध, शाप देना, शयन, चुम्बन आदि। उपर्युक्त दृश्य तथा आकाश मे उडना आदि दृश्य जो कि कठिनाई से दिखाये जा सकते थे और ऐसे दृश्य जिनका अक के मुख्य भाग मे दिखाना आवश्यक नही था, इन दृश्यो को पाँच प्रकार से दर्शको को बताया जाता था—विष्कम्भक, प्रवेशक, चूलिका, अकावतार और अकास्य। इनमे से प्रथम दो

वार्तालाप के रूप मे है, जिनमे दर्शको को घटना का ज्ञान हो जाता है। विष्कम्भक दो प्रकार का होता है—१ शुद्ध विष्कम्भक, जब मध्यम श्रेणी के सस्कृत मे वार्तालाप करने वाले पात्र इसमे भाग लेते है। २ मिश्र विष्कम्भक जब मध्यम श्रेणी के पात्र सस्कृत मे वार्तालाप करते है और निम्न श्रेणी के पात्र प्राकृत मे वार्तालाप करते हुए इसमे भाग लेते है। इसमे सस्कृत और प्राकृत दोनो के प्रयोग करने वाले पात्र भाग लेते है। प्रवेशक मे केवल प्राकृत बोलने वाले निम्न श्रेणी के पात्र भाग लेते है। यह प्रथम अक के प्रारम्भ मे नही आता है। चूलिका पर्दे के पीछे से भाषण के रूप मे होता है। यह भाषण दो अको की कथा को जोडता है। अकावतार मे पहले अक मे पात्र आगामी अक की कथा का निर्देश कर देते है और अगला अक पूर्व अक का ही चालू रूप होता है। अकास्य उसे कहते है जहाँ पर एक ही अक मे आगामी अको की कथा सक्षेप मे बता दी जाए। इनके अतिरिक्त और कुछ नाटकीय निर्देश है, जैसे—अपवार्य, आत्मगतम्, जनान्तिकम् आदि। आत्मगतम् अर्थात् पात्र मन मे कोई बात कहता है, जिसको अन्य पात्र नही सुन पाते है। शेष दो मे पात्र इस प्रकार बात करते है कि वह अन्य पात्र न सुन सके। यह बात दर्शक ही सुन पाते है। नये पात्र के प्रवेश की सूचना रगमच पर विद्यमान पात्र देता है। कभी-कभी जब किसी पात्र का प्रवेश अत्यावश्यक होता है तो वह स्वय पर्दा हटाकर रगमच पर आ जाता है। कथानक को प्रगति देने के लिए कतिपय उपाय किए गये है, जैसे प्रेम-पत्र का लिखना, प्रेमी का चित्र बनाना, नाचना, एक खेल मे ही दूसरे खेल का आरम्भ करना आदि। पुरुष का अभिनय स्त्री और स्त्री का अभिनय पुरुष करे, इनकी भी स्वीकृति दी गयी है जैसा कि मालतीमाधव मे है। नाटक को सुखान्त समाप्ति के लिए अलौकिक तत्वो का भी आश्रय लिया जाता है, जैसे शाकुन्तल, विक्रमोर्वशीय और नागानन्द आदि मे। कुछ नाटको मे दैवी शक्ति वाले जीव भी भाग लेते है। प्रत्येक नाटक भरतवाक्य के साथ समाप्त होता है। भरत-वाक्य स्तुति-वाक्य के रूप में होता है, यह नायक या अन्य कोई मुख्य पात्र कहता है।

प्रत्येक नाटक अको मे विभाजित होता है और अक दृश्यो मे । ये दृश्य स्पष्ट रूप से विभक्त नही होते हैं। अक के अन्त मे अभिनेता रगमच से चले जाते है । साधारणतया नाटको मे पाँच अक होते हैं, परन्तु कतिपय नाटको मे एक से दस तक अक है । महानाटक मे १४ अक है । पात्रो की सख्या के विषय मे कोई नियम नही है । शाकुन्तल मे ३० पात्र है, वेणीसहार मे ३२, मृच्छकटिक मे २६, मुद्राराक्षस मे २४, विक्रमोर्वशीय मे १८, मालतीमाधव मे १३ और उत्तररामचरित मे १० ।

पाश्चात्य आलोचको का कथन है कि भारत मे रगमच या चित्रशाला आदि नही थे । उनका यह कथन असत्य है, क्योकि नाटको मे ही चित्रशाला, सगीतशाला और प्रेक्ष-गृह आदि का उल्लेख है । नाट्यशास्त्र मे रगमच, नेपथ्य, दर्शकगृह आदि की लम्बाई-चौडाई आदि का विस्तृत वर्णन है । शारदातनय के भावप्रकाशनम् मे तीन प्रकार की नाट्यशालाओ का उल्लेख है ।

सस्कृत-नाटक जीवन की अवस्था या परिस्थिति का अनुकरण प्रस्तुत करते है, जीवन के किसी कार्यविशेष का अनुकरण नही । अतएव इनमे नाटकीय निर्देश प्राय प्राप्त होता है कि नाटयित्वा अर्थात् इस प्रकार का नाट्य करके । मनुष्य वास्तविक जीवन मे जिस प्रकार का कार्य करता है, अभिनेता उसी का अनुकरण करते हैं । रथ पर चढना, पेडो को पानी देना या शिकार खेलना आदि कार्यों का निर्देश मात्र किया जाता है । दर्शक उस क्रिया को स्वय समझे । रगमच के पीछे जो पर्दा पडा रहता है, उस पर प्राकृतिक दृश्य बने होते हैं। वह जनता के लिए प्राकृतिक शोभा प्रस्तुत करता है । शिक्षित जनता रगमच पर होने वाली घटनाओं की वास्तविकता को अनुभव करती है । रगमच पर दृश्य-सबधी विस्तृत प्रबध करने मे कुछ कठिनाइयां हैं, अत साधारण दृश्यो का प्रबध किया जाता है । शिक्षित जनता नाटक मे रस का उत्तम परिपाक देखना

चाहती है, अतएव वह प्राकृतिक दृश्यो के प्रदर्शन को विशेष महत्त्व नही देती। आलोचक नाटक के अन्दर किसी ऐसी चीज का होना सहन नही कर सकते हैं, जो मन की रस-मग्नता को विक्षुब्ध करे। यदि रगमच पर अश्लील दृश्य और जीवन की कठोर वास्तविकता का ही प्रदर्शन किया जाय तो इससे जनता का मानसिक स्तर निकृष्ट होगा। नाटको का उद्देश्य मानसिक स्तर को ऊँचा करना है। अत नाटको मे कुछ अश तक आदर्शवादिता सहनीय है।

संस्कृत नाटको के भेद

सस्कृत नाटको के जो अनेक भेद उपलब्ध होते हैं, उनसे उनके विस्तृत विकास का पता चलता है। नाटको को दृश्यकाव्य या रूपक कहते हैं। रूपक का अभिप्राय है किसी वस्तु या कार्य को दृश्य रूप मे प्रस्तुत करना। सम्पूर्ण दृश्यकाव्य को रूपक और उपरूपक इन दो मुख्य भागो मे विभक्त किया गया है। रूपक के दस भेद हैं—नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, डिम, व्यायोग, समवकार, वीथी, अक और ईहामृग। इन दस विभागो मे से नाटक सबसे अधिक प्रचलित है। इसके बाद प्रकरण और तत्पश्चात् प्रहसन का क्रम आता है। बहुत थोडे से दृश्यकाव्यो को छोडकर शेष सभी इन तीन भेदो मे आ जाते हैं। अन्य भेदो के दृश्यकाव्य बहुत थोडे हैं।

नाटक साधारणतया प्रसिद्ध कथा पर निर्भर होता है। इसका नायक राजा होता है। इसमें मुख्य रस शृङ्गार, वीर या करुण होता है। जैसे—शाकुन्तल में शृङ्गार रस है, वेणीसहार में वीर और उत्तररामचरित में करुण रस है। इसमें अको की सख्या पांच से दस तक होती है। प्रकरण की कथा काल्पनिक होती है। इस कथा का जन्मदाता नाटककार होता है। राजकुमार के अतिरिक्त अन्य कोई इसका नायक होता है। इसमें कोई भी स्त्री, वेश्या भी, नायिका हो सकती है। इसमें अको की सख्या १० होती है। इस

प्रकार के रूपक-ग्रन्थ मृच्छकटिक और मालतीमाधव हैं। भाण एकाकी रूपक ग्रन्थ होता है। इसमें किसी धूर्त का जीवन-चरित होता है। इसमें मुख्य रस शृङ्गार या वीर होता है। इसमे एक ही पात्र होता है। वह आकाशभाषित के रूप में सब बात कहता है। इसमे सगीत, नृत्य आदि भी सम्मिलित होते है। **वामनभट्टबाण** का **शृङ्गारभूषणभाण** इस प्रकार का रूपक है। प्रहसन एकाकी नाटक होता है। इसमें हास्य रस की प्रधानता होती है। इसमें हास्य-प्रधान दृश्य होते हैं। **महेन्द्रविक्रम** का **मत्तविलासप्रहसन** इस प्रकार का रूपक है। डिम मे चार अक होते हैं। इसमे माया, इन्द्रजाल आदि का वर्णन होता है। इसकी कथा प्रसिद्ध होती है। इसमे देवता, राक्षस, अर्धदेवता, सर्प आदि पात्र होते हैं। इसमे शृङ्गार और हास्य को छोडकर अन्य कोई रस प्रधान होता है। **वत्सराज** का **त्रिपुरविजय** इस प्रकार का रूपक ग्रन्थ है। व्यायोग एकाकी नाटक होता है। इसमे प्रसिद्ध कथा होती है। इसका नायक धीरोद्धत होता है। इसमे युद्ध का दृश्य होता है, परन्तु उस युद्ध का कारण कोई स्त्री नही होनी चाहिए। शृगार और हास्य को छोडकर अन्य कोई रस इसमे मुख्य होता है। **विश्वनाथ** का **सौगन्धिकाहरण** इस प्रकार का रूपक है। समवकार मे तीन अक होते है। इसकी कथा प्रचलित होती है। इसमे युद्ध के दृश्य होते है। इसमे वीर रस मुख्य होता है। इसमे देवता और राक्षस पात्र होते है। **वत्सराज** का **समुद्रमथन** इस प्रकार का रूपक है। वीथी एकाकी नाटक होता है। इसमे दो या तीन पात्र होते है। इसमें शृगार मुख्य रस होता है। **रविपति** का **प्रेमाभिराम** इस प्रकार का रूपक है। अक एकाकी नाटक होता है। इसमे करुण रस प्रधान होता है। इसमे रोने का वर्णन होता है। **भास्कर** का **उन्मत्तराघव** इस प्रकार का रूपक ग्रन्थ है। ईहामृग मे चार अक होते है। इसका नायक देवता होता है। इसमे बलात् स्त्री के हरण का वर्णन होता है, परन्तु युद्ध नही होता। **वत्सराज** का **रुक्मिणीहरण** इस प्रकार का रूपक ग्रन्थ है।

उपरूपक के १८ भेद है। इनमे से नाटिका, सट्टक, त्रोटक और प्रेक्षणक मुख्य है। नाटिका बहुत-सी बातो मे नाटक के ही तुल्य होती है। इसमे स्त्रीपात्र

अधिक होते हैं। इसका नायक धीरललित होता है। इसमे शृगार रस मुख्य होता है। इसमे केवल चार अक होते है। रत्नावली इस प्रकार का उपरूपक है। सट्टक पूरा प्राकृत भाषा मे होता है। भाषा के अतिरिक्त अन्य सभी बातो मे यह नाटिका के ही तुल्य होता है। राजशेखर की कर्पूरमजरी इस प्रकार का उपरूपक है। त्रोटक मे पाँच, सात, आठ या नव अक होते हैं। इसका आधार दैवी या मरणशील प्राणियो का क्रिया-कलाप है। विदूषक प्रत्येक अङ्क मे उपस्थित रहता है। इसके उदाहरण मे कालिदास के विक्रमोर्वशीय का नाम लिया जाता है। यह अज्ञात है कि इसे त्रोटक कैसे कहते हैं क्योकि इसमे विदूषक प्रथम और चतुर्थ अक मे उपस्थित नही रहता। प्रेक्षणक एकाकी नाटक है। इसमे सूत्रधार नही होता। यह द्वन्द्वयुद्ध का वर्णन करता है। किसी नीच नायक के चरित्र का वर्णन होता है। इसमे प्रवेशक और विष्कम्भ नही होता। वालिवध इसी प्रकार का एक नाटक है।

प्राचीन समय मे जो नाटक उपलब्ध थे, उनके आधार पर ही रूपको और उपरूपको के लक्षण बनाये गये होगे और उनका इन दो भागो मे विभाजन किया गया होगा। इनमे अन्य भेदो की अपेक्षा नाटक, प्रकरण, प्रहसन, भाण और नाटिका कही अधिक विख्यात हुए। इस पर भी, केवल नाटक ने ही श्रोताओ तथा आलोचको को अपनी ओर आकृष्ट किया। इसका प्रमाण यह है कि नाटको की सख्या बहुत अधिक है और रूपक या उपरूपक के अन्य भेदो की सख्या बहुत ही कम है। परन्तु ऐसा ज्ञात होता है कि यह भेद जनता को प्रिय नही हुए, अतएव इन भेदो और उपभेदो के आधार पर आगे अधिक सख्या मे नाटक-ग्रन्थ नही बने।

नही करते थे, उन्होने निम्नलिखित कारणो से इन नाटको के भास की रचना होने का खडन किया है—(१) इन नाटको मे जिन कतिपय नाटकीय विशेषताओ का उल्लेख किया गया है, वे विशेषताएँ भास के अतिरिक्त अन्य नाटककारो की रचनाओ मत्तविलास-प्रहसन आदि मे भी प्राप्त होती हैं। ये विशेषताएँ दक्षिण भारत के नाटको मे उपलब्ध होती है, अत इन विशेषताओ के आधार पर इन सबको भास की रचना मानना उचित नही है। इन नाटको मे जो अपाणिनीय प्रयोग प्राप्त होते हैं, उनको प्रतिलिपिकर्ताओ की भूल समझनी चाहिए। (२) भास को स्वप्नवासवदत्तम् नाटक का रचयिता होने का निषेध नही किया जा सकता है। भास कई नाटको का रचयिता है। स्वप्नवासवदत्तम् को छोडकर अन्य भास के नाटको का नाम किसी ने उल्लेख नही किया है। साहित्यशास्त्रियो ने स्वप्नवासवदत्तम् को ही भास की रचना बताया है, उसके अन्य किसी नाटक का उन्होने उल्लेख नही किया है। आजकल जो स्वप्नवासवदत्तम् उपलब्ध है, उसमे वे सभी श्लोक प्राप्त नही होते हैं, जिनको साहित्यशास्त्रियो ने भास के श्लोक कहकर उल्लेख किया है। अत इस स्वप्नवासवदत्तम् को भी भास की रचना नही मानना चाहिए।

कुछ विद्वान् जो मध्यम मार्ग का आश्रय लेने वाले हैं, उनका मन्तव्य है कि त्रिवेन्द्रम ग्रन्थमाला मे जो ग्रन्थ प्रकाशित हुए है, वे भास के मूल ग्रन्थो के सक्षिप्त सस्करण हैं। ये सक्षिप्त सस्करण रगमच की आवश्यकता की पूर्ति के लिए बनाये गये थ। [x]कालिदास ने मालविकाग्निमित्र मे भास, सौमिल्ल और कविपुत्र का जो उल्लेख किया है तथा उनकी प्रसिद्धि का वर्णन किया है, उसको उनकी प्रशसा के रूप मे नही समझना चाहिए, अपितु कालिदास का यह कथन उनकी त्रुटियो के प्रदर्शन के लिए एक प्रयत्न समझना चाहिए।[x] कालिदास के नाटको के पश्चात् भास के नाटको की वह प्रसिद्धि नष्ट होती गयी। भास के नाटको की आलोचको ने कठोर परीक्षा की और उनमे से केवल स्वप्नवासवदत्तम् ही उस परीक्षा मे खरा उतरा। राजशेखर

और वाक्पति आदि के ग्रन्थो मे स्वप्नवासवदत्तम् का उल्लेख प्राप्त होता है। इनमे भास और उसके ग्रन्थो का सम्बन्ध अग्नि से बताया गया है। आलोचको की परीक्षा के पश्चात् स्वप्नवासवदत्तम् को छोडकर भास के अन्य नाटक प्राय नष्ट होते गये। सम्भवत पल्लव राजा नरसिंहवर्मा द्वितीय (६८०-७०० ई०) के आश्रित कतिपय अभिनेताओ ने रगमच के लिए इनको अपनाया। इस राजा की उपाधि राजसिंह है। त्रिवेन्द्रमग्रन्थमाला मे जो ये नाटक प्रकाशित हुए हैं, ये भास के नाटको के रगमच के उपयोगी सस्करण प्रतीत होते हैं। इनमे अधिकाश नाटको के भरतवाक्य मे राजसिंह शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है। इससे ज्ञात होता है कि इन नाटको का और पल्लव राजाओ का कुछ पारस्परिक सम्बन्ध है। जब पल्लव राज्य नष्ट हुआ तब ये नाटक तथा अन्य कुछ ग्रन्थ, जो पल्लव राजाओ के आश्रय मे बने थे, मालावार चले गये। अतएव यह सगत प्रतीत होता है कि भास के नाटक तथा पल्लव राजाओ के आश्रित कवि दण्डी की अवन्तिसुन्दरीकथा मालावार मे प्राप्त हो। यवनो के आगमन के पश्चात् ही सस्कृत नाटक लुप्त हो गये, यह विचार केवल कल्पनामात्र है। त्रिवेन्द्रम ग्रन्थमाला मे प्रकाशित इन नाटको को रगमचोपयोगी सस्करण ही समझना चाहिए, क्योकि भास के नाम से उद्धृत जो श्लोक इन नाटको मे नही मिलते है, वे मूल वृहत् सस्करण मे रहे होगे। इन नाटको मे कुछ और अश रहता तो ये पूर्ण ग्रथ ज्ञात होते। अत यह ज्ञात होता है कि ये नाटक भास के मूल नाटको के रगमचोपयोगी सस्करण हैं। इनमे से कुछ नाटक मूल रूप मे अवश्य भास के लिखे हुए हैं, परन्तु सब उसके ही लिखे नही हैं। कुछ दक्षिण भारत के किसी विद्वान् के द्वारा बनाये हुए हैं। अत भास को इन तेरहो नाटको का रचयिता नही मानना चाहिए।

कालिदास ने भास का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है, अत भास उनसे पूर्ववर्ती होना चाहिए। अतएव भास का समय ३०० ई० पू० के लगभग मानना चाहिए।

विषय की दृष्टि से भास के नाटको को चार भागो मे बाँटा जा सकता है। इनमे से दो रामायण पर आधारित है, ६ महाभारत पर, एक कृष्ण के जीवन पर और चार कहानियो पर आश्रित है।

रामायण पर आधारित भास के नाटक

(१) **प्रतिमानाटक**। इसमे सात अक है। इसमे दशरथ की मृत्यु से लेकर राम के राज्याभिषेक तक राम की कथा वर्णित है। दशरथ की मृत्यु के बाद भरत जब अयोध्या जाते हैं तब एक प्रतिमागृह मे अपने मृत पूर्वजो की प्रतिमा के साथ दशरथ की प्रतिमा देखकर उन्हें ज्ञात होता है कि उनके पिता अब जीवित नही है। अतएव इस नाटक का नाम प्रतिमानाटक पडा है। सीता के अपहरण को सुनकर भरत राम की सहायता के लिए सेना भेजते हैं, परन्तु राम तब तक रावण को जीतकर लौट रहे थे और वे सेना को मार्ग मे लौटते हुए मिले। (२) **अभिषेकनाटक**। इसमे ६ अक है। इसमे बाली के वध से लेकर अयोध्या मे राम के अभिषेक तक राम की कथा वर्णित है। भास ने रगमच पर बाली का वध दिखाकर साहित्यिक परम्परा का उल्लघन किया है।

महाभारत पर आश्रित भास के नाटक

(१) **पचरात्र**। इसमे तीन अक है। यह समवकार रूपक है। द्रोणाचार्य ने एक यज्ञ किया। दुर्योधन ने प्रतिज्ञा की कि यज्ञ की समाप्ति पर वे जो कुछ मागेंगे, वह दूंगा। द्रोण ने यज्ञ के अन्त मे माँग की कि वह पाण्डवो को आधा राज्य दे दे। दुर्योधन ने कहा कि यदि पांच रात्रि के अन्दर वे मिल जायेंगे तो मैं ऐसा कर दूंगा। कौरव विराट के नगर से गायो को भगाकर लाने के लिए जाते हैं। पाण्डव वहाँ पर गुप्त वेष मे रहते थे। उन्होने कौरवो पर आक्रमण किया और उनको पराजित किया। वहाँ पर पाण्डवो का पता चल जाता है और दुर्योधन उन्हें आधा राज्य लौटा देता है (२) दूतवाक्य। इसमे एक अक है। यह व्यायोग रूपक है। इसमे पाण्डवो के दूत के

रूप मे कृष्ण का दुर्योधन के पास जाने का वर्णन है। यही अकेला नाटक है जिसमे एक भी प्राकृत का वाक्य नही है। (३) मध्यमव्यायोग। यह एकाकी नाटक है। यह व्यायोग रूपक है। भीम के पुत्र घटोत्कच ने एक ब्राह्मण के पुत्र पर आक्रमण किया और भीम ने उसको बचाया। घटोत्कच की माता हिडम्बा ने उसके पिता से उसका परिचय कराया। घटोत्कच ने प्रतिज्ञा की कि वह भविष्य मे किसी ब्राह्मण की हत्या नही करेगा (४) दूत-घटोत्कच। यह एकाकी नाटक है। अभिमन्यु की मृत्यु के पश्चात् श्रीकृष्ण घटोत्कच को दुर्योधन के पास भेजते हैं। दुर्योधन उसका अपमान करता है। उसने अर्जुन के द्वारा कौरवो के नाश की भविष्यवाणी की। (५) कर्णभार। यह एकाकी नाटक है। इसमे कर्ण का ब्राह्मण-वेषधारी इन्द्र को कवच और कुण्डल दान मे देने का वर्णन है। इसमे कर्ण की शूरवीरता की भावना का सुन्दर वर्णन है। (६) ऊरुभग। यह एकाकी नाटक है। इसमे भीम के द्वारा दुर्योधन की जंघा को भग करके उसको मारने का वर्णन है। इसमे नाट-कीय परम्परा के विरुद्ध रगमच पर दुर्योधन का वध दिखाया गया है।

बालचरित मे पाँच अक है। इसमे श्रीकृष्ण के जन्म और उनकी बाल-क्रीडाओ का वर्णन है। इसमे कृष्ण के जीवन के विषय मे जिन घटनाओ का वर्णन है, उनका उल्लेख भागवत, विष्णुपुराण और हरिवश मे नही है। इसमे कृष्ण को वसुदेव का सातवाँ पुत्र बताया गया है। बाद के ग्रन्थो मे राधा कृष्ण की प्रिया के रूप मे वर्णित है, परन्तु इसमे राधा का उल्लेख नही है। कृष्ण-जीवन से सबद्ध बाद के ग्रन्थो मे जो शृङ्गार और अश्लीलता प्राप्त होती है, वह इसमे सर्वथा नही है। नाटकीय परम्परा के विरुद्ध भास ने इस नाटक मे रगमच पर श्रीकृष्ण और अरिष्ट नामक राक्षस का युद्ध तथा कस की मृत्यु का वर्णन किया है। इसके तृतीय अक मे हल्लीश नृत्य का एक दृश्य है।

कथाओ पर आश्रित भास के नाटक

(१) प्रतिज्ञायौगन्धरायण। इसमे चार अक हैं। इसमे उज्जैन के राजा प्रद्योत के द्वारा राजा उदयन के बन्दी किये जाने का वर्णन है। राजा

प्रद्योत अपनी पुत्री वासवदत्ता का उदयन से विवाह करना चाहते थे। उदयन के मन्त्री यौगन्धरायण ने प्रतिज्ञा की कि वह अपने राजा उदयन को वहाँ से छुड़ा कर लायेगा। अत इस नाटक का नाम प्रतिज्ञायौगन्धरायण पड़ा है। यौगन्धरायण अपने प्रयत्न मे सफल होता है और उसकी प्रतिज्ञा पूर्ण होती है। भामह (७०० ई०) ने इस नाटक के कथानक की बहुत कड़ी आलोचना की है। प्रस्तावना मे यद्यपि इसको प्रकरण रूपक बताया गया है, परन्तु इसमे केवल चार अक हैं। यह सभव है कि भास ने जब यह नाटक लिखना प्रारम्भ किया होगा, तब उसका विचार रहा होगा कि वह इस नाटक और स्वप्नवासवदत्तम् को एक मे ही रक्खेगा।

(२) **स्वप्नवासवदत्तम्**। इसमे ६ अक हैं। वासवदत्ता से विवाह के बाद उदयन अपनी पत्नी मे इतना अधिक आसक्त हो गया कि उसने राज्य की उपेक्षा कर दी और परिणामस्वरूप उसके राज्य का अधिकाश भाग नष्ट हो गया। उसके मन्त्रियो ने एक उपाय सोचा कि इस प्रकार नष्ट हुआ राज्य पुन प्राप्त हो सकता है। एक दिन राजा जब अपने पड़ाव से शिकार खेलने के लिए गया हुआ था, तब मन्त्रियो ने झूठी अफवाह उड़ा दी कि वासवदत्ता गाँव मे आग लगने से जल गयी और उसके साथ मत्री यौगन्धरायण भी उसको बचाता हुआ जल गया है। यौगन्धरायण वासवदत्ता को मगध-राजकुमारी पद्मावती के पास ले गया और उसके पास धरोहर के रूप मे रख दिया। वह चाहता था कि उदयन का विवाह पद्मावती के साथ हो जाय और इस प्रकार मगध-राज की सहायता प्राप्त करके नष्ट राज्य को पुन प्राप्त किया जाय। यौगन्धरायण ने अपने आप को वासवदत्ता का भाई बताया और कहा कि इसका पति प्रवास मे गया है। वासवदत्ता पद्मावती के पास रही। लौटकर आने पर उदयन बहुत दु खित हुआ और अपनी इच्छा के विरुद्ध पद्मावती से विवाह के लिए उद्यत हो गया। विवाह के पश्चात् रुग्ण पद्मावती को देखने के लिए उदयन समुद्रगृह मे गया और वहाँ खाली स्थान देखकर सो गया। वासवदत्ता पद्मावती की सेवा के लिए वहाँ

आई और उदयन को पद्मावती समझकर वहाँ सो गई। उदयन ने नींद मे वासवदत्ता का नाम लेना प्रारम्भ किया। वासवदत्ता अपना भेद गुप्त रखने के लिए वहाँ से शीघ्र ही चली गई। उधर मगध राजा की सहायता से कौशाम्बी का नष्ट राज्य उदयन को पुन प्राप्त हो गया। तत्पश्चात् वासवदत्ता और यौगन्धरायण ने अपना भेद प्रकट किया। इस प्रकार नाटक सुखान्त समाप्त होता है। यह नाटक भास के नाटको मे सबसे अधिक प्रसिद्ध है और सर्वोत्तम है। नाटकीय परम्परा के विरुद्ध भास ने इस नाटक मे रगमच पर राजा के सोने का दृश्य उपस्थित किया है।

(३) चारुदत्त। इसमे चार अक है। इसमे एक ब्राह्मण चारुदत्त का एक वेश्या वसन्तसेना से प्रेम का वर्णन है। वसन्तसेना भी चारुदत्त से प्रेम करती है। एक दिन वसन्तसेना ने अपने आभूषण चारुदत्त के पास रखे कि रात्रि मे चोर उन्हे चुराकर न ले जाएँ। कुछ समय चारुदत्त के साथ रहकर वह अपने घर जाती है। शर्विलक नाम का एक चोर चारुदत्त के घर मे रात्रि मे सेंध लगाकर घुसता है और वसन्तसेना के आभूषण चुराकर ले जाता है और अगले दिन प्रात जाकर वसन्तसेना को देता है कि वह उसकी प्रेमिका मदनिका को अपनी सेवा से मुक्त कर दे। यह नाटक यहाँ पर समाप्त होता है। भास के समर्थको का कथन है कि शूद्रक ने इसी नाटक के आधार पर अपना नाटक मृच्छकटिक लिखा है।

(४) अविमारक। इसमे ६ अक है। इसमे राजा कुन्तिभोज की पुत्री कुरगी और राजकुमार अविमारक के गुप्त प्रेम का वर्णन है। शाप के कारण अविमारक का राजत्व नष्ट हो गया था। कुन्तिभोज के घर में किसी को भी अविमारक का परिचय ज्ञात नहीं था अतएव वह गुप्तरूप से कुरगी से मिला। अन्त मे नारद मुनि ने अविमारक का परिचय बताया और दोनो प्रेमियो का विवाह हो गया।

कुछ समय हुआ एक नाटक यज्ञफल नाम का प्राप्त हुआ है। इस नाटक मे भी भास के अन्य नाटको वाली विशेषतायें प्राप्त होती है, अत इसको

भी भास की रचना कहा जाता है। इसमे ६ अक हैं और सातवें अक का नाम निर्वहणाक है। इसमे पुत्रोत्पत्ति के लिए राजा दशरथ के यज्ञ करने का वर्णन है।

भास की नाटचकला

कालिदास, बाण और दण्डी आदि ने भास को उच्च कोटि का नाटककार माना है। भाषा और नाट्यकला की दृष्टि से वह अवश्य ही कालिदास से हीन है। उसने तेरह नाटक लिखे हैं, इससे ही ज्ञात होता है कि वह उच्च कोटि का नाटककार था। उसकी भाषा मे जो त्रुटियाँ प्राप्त होती हैं, वे बाद के लिपिकर्ताओ के कारण ही समझनी चाहिए। जिस रूप मे ये नाटक आजकल प्राप्त होते हैं उस रूप मे भास ने इनको नही लिखा होगा। इन नाटको को मूलरूप मे लिखने वाला भास अवश्य ही उच्च कोटि का नाटककार रहा होगा। भास के नाटको की सख्या, उनके भाव और प्रकार की विभिन्नता से सिद्ध होता है कि भास को सस्कृत नाटककारो मे जो उच्च स्थान मिला है, वह उचित ही है। उसने बहुत से नाटक लिखे होंगे, परन्तु कुल कितने नाटक उसने लिखे हैं, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है। उसने नाटकीय परम्पराओ का जो उल्लघन किया है, वह वास्तविकता को आधार मान कर ही किया है। उसने कथानक मे जो परिवर्तन किए हैं, उससे उसकी मौलिकता का ज्ञान होता है। जैसे—पचरात्र मे दुर्योधन के चरित मे मौलिकता है। कतिपय स्थानो पर पात्रो का प्रवेश और प्रस्थान अस्वाभाविक प्रतीत होता है। यह खेद की बात है कि उसने कितने नाटक लिखे हैं, यह स्पष्टरूप से ज्ञात नही है। जो नाटक प्राप्त हैं, वे भी मूल रूप मे नही ज्ञात होते हैं।

उन तेरह नाटको के कथानक और नान्दी-श्लोको से ऐसा ज्ञात होता है कि वह विष्णुभक्त था[1]। भास के प्रशसको मे बाण और दण्डी विशेपरूप से उल्लेखनीय हैं। देखिए —

---

[1] पृथ्वीराजविजय १-८।

सूत्रधारकृतारम्भै नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ।।

हर्षचरित—प्रस्तावना श्लोक १५

'पताका' शब्द किसी पात्र की उस भयंकर घटना की ओर संकेत करता है जिसका सम्बन्ध उस पात्र से सीधा नहीं है । यहाँ बाण का यह कहना है कि भास के नाटकों में 'पताकास्थान'[1] है । दण्डिन् की कल्पना है कि भास अपने नाटकों से आज भी जीवित है । देखिए —

सुविभक्तमुखाद्यङ्गैर्व्यक्तलक्षणवृत्तिभिः ।
परेतोऽपि स्थितो भासः शरीरैरिव नाटकैः ।।

अवन्तिसुन्दरी—प्रस्तावना श्लोक ११

दुर्भाग्यवश न तो भास के किसी भी नाटक की सत्यता सिद्ध हो सकी और जो नाटक प्राप्य हैं, न तो उनके लेखक का ही निर्विरोध निश्चय किया जा सकता है । उनमें से कतिपय प्राप्य नाटक तो उनके हो सकते हैं, कुछ, जो सचमुच उनके हैं, अब तक प्रकाश में नहीं आये । ऐसी प्रसिद्धि है कि भास ने नाट्यशास्त्र पर एक ग्रन्थ लिखा था, परन्तु वह अप्राप्य है ।

कालिदास ने मालविकाग्निमित्र की प्रस्तावना में भास के साथ ही सौमिल्ल और कविपुत्र इन दो और प्रसिद्ध नाटककारों का उल्लेख किया है । कुछ ग्रन्थ में इन दोनों नामों के स्थान पर रामिल और सौमिल नाम प्राप्त होते हैं । इन दोनों लेखकों के विषय में कुछ भी निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है । राजशेखर ने रामिल और सौमिल की रचना शूद्रकथा नामक ग्रन्थ माना है । यह ग्रन्थ भी अप्राप्य है । इसके अतिरिक्त कालिदास के पूर्ववर्ती नाटककारों के विषय में और कुछ ज्ञान नहीं है ।

कालिदास

कालिदास तीन नाटकों का रचयिता है—मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय और शाकुन्तल । ऐसी प्रसिद्धि है कि इन नाटकों और काव्यों के अतिरिक्त

1 पञ्चरात्रम् २-६, अभिषेकनाटक ४-११ ।

उसने 'कुन्तलेश्वरदौत्य' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। ज्ञात नही कि यह किस प्रकार की रचना है क्यो कि आज यह ग्रन्थ उपलब्ध नही है। जिस क्रम मे ये नाम ऊपर दिये गये है, इसी क्रम से उसने ये नाटक लिखे है। मालविकाग्निमित्र से यह ज्ञात होता है कि वह भास आदि नाटककारो की समता प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील था। विक्रमोर्वशीय से ज्ञात होता है कि वह नाटककार के रूप मे प्रसिद्ध हो चला था और उसने यह नाटक आलोचको की समीक्षा के लिए प्रस्तुत किया था। शाकुन्तल से ज्ञात होता है कि वह प्रसिद्ध नाटककार हो गया था और आलोचको के द्वारा अपने नाटक के स्वीकृत होने की प्रतीक्षा मे था।

मालविकाग्निमित्र मे पाँच अक है। इसके पात्र ऐतिहासिक व्यक्ति है। मालवा के राजकुमार माधवसेन की वहिन मालविका का विवाह विदिशा के राजा अग्निमित्र के साथ होना था। माधवसेन अपनी वहिन के साथ विदिशा को चला। मार्ग मे उसके चचेरे भाई यज्ञसेन ने उस पर आक्रमण कर दिया। वह माधवसेन से पहले से क्रुद्ध था। यज्ञसेन ने उसको बन्दी वना लिया। माधवसेन के साथी अपने मार्ग पर चलते रहे। आगे चलकर उन पर डाकुओ ने आक्रमण किया और मालविका मार्ग भूल गयी। वह विदिशा के सैनिको की सुरक्षा मे पहुँची और वहाँ से वह अग्निमित्र की रानी धारिणी के अन्त पुर मे पहुँची। एक कलाकार के द्वारा चित्रित मालविका का चित्र देखकर राजा अग्निमित्र उस पर आसक्त हो गया। अपने साथी विदूषक की सहायता से उसने मालविका से मिलने का प्रवन्ध कर लिया। धारिणी यह प्रयत्न करती थी कि मालविका राजा के सामने न आने पावे। अग्निमित्र की एक छोटी रानी इरावती ने सहसा वहाँ पहुँचकर अग्निमित्र और मालविका के प्रेमालाप को भग कर दिया। इरावती के विघ्न के कारण दोनो प्रेमियो को वहुत वुरा लगा। कुछ समय वाद माधवसेन के साथी, जो मार्ग भूल गये थे, अग्निमित्र के द्वार पर पहुँचे। उन्होने मालविका का परिचय दिया और उस परिचय के आधार पर राजा मालविका के साथ विवाह कर सका। रानी धारिणी

ने इस विवाह की स्वीकृति दी। पुष्यमित्र और अग्निमित्र दोनो शुंग वंश के राजा थे। इस वंश का राज्य १८३ ई० पू० के लगभग प्रारम्भ हुआ था। कुछ राजनीतिक घटनाओं का उल्लेख इस नाटक मे ही मिलता है, अन्यत्र नही, जैसे—माधवसेन और यज्ञसेन की शत्रुता। यह नाटक अग्निमित्र के राजद्वार मे घटित घटनाओ पर आश्रित ज्ञात होता है। यह संभव प्रतीत होता है कि कालिदास अग्निमित्र का समकालीन था या उसकी सभा मे एक कवि था या वह अग्निमित्र के कुछ ही समय बाद हुआ था, जब जनता को अग्निमित्र के जीवन की घटनाएँ पूर्णतया स्मरण थी।

विक्रमोर्वशीय मे पाँच अंक हैं। स्वर्गीय अप्सरा उर्वशी को एक राक्षस भगाकर ले जा रहा था। प्रतिष्ठान के राजा पुरूरवा ने उसकी रक्षा की। वह अपने रक्षक से प्रेम करने लगी और पुरूरवा भी उसके प्रेम मे बद्ध हो गया। स्वर्ग को जाने के बाद एक बार वह गुप्त रूप से पुरूरवा से आकर मिली। एक बार देवताओं के सामने प्रदर्शित किये जाने वाले एक नाटक में वह एक विशेष पात्र का अभिनय कर रही थी, परन्तु उसका मन पुरूरवा की ओर लगा हुआ था, अत एक स्थान पर जहाँ उसे विष्णु का नाम लेना चाहिए था, उसने पुरूरवा का नाम ले लिया। भरत मुनि ने उसको इस त्रुटि के लिए दोषी बनाया और उसे शाप दिया कि जब तक वह अपने प्रेमी से पुत्र न प्राप्त कर ले तब तक स्वर्ग मे न रहे। वह मर्त्यलोक मे आयी और अपने प्रेमी के साथ आनन्दपूर्वक दिन व्यतीत करने लगी। पुरूरवा की रानी ने उसकी यह स्वतन्त्रता नही रोकी। एक दिन उर्वशी ईर्ष्या-भाव से एक निषिद्ध वाटिका मे गयी और वहाँ वह लता के रूप में परिवर्तित हो गयी। राजा पुरूरवा अपनी प्रिया को न पाकर पागल हो गया और उसको ढूँढता हुआ इधर-उधर फिरने लगा। एक दिन सहसा उसने वही लता छुई, जिसमे उर्वशी परिवर्तित हुई थी। वह जीवितरूप मे उठकर खड़ी हुई। महल मे लौटकर आने के बाद उसका पुत्र उसके सामने लाया गया। इस पुत्र का लालन-पालन अब तक एक और स्त्री करती थी। राजा ने

पुत्र को देखा और उर्वशी ने विचारा कि अब उसका स्वर्ग को जाने का समय हो गया है। राजा ने निश्चय किया कि वह वन को चला जायेगा। इसी समय नारद वहां आये और उन्होंने इन्द्र का आदेश सुनाया कि उन्होंने स्वीकृति दी है कि उर्वशी पुरूरवा के साथ जीवन भर रहे। कुछ अन्तर के साथ यह कथा वेद, पद्मपुराण, मत्स्यपुराण, रामायण और महाभारत मे मिलती है।

इस नाटक के उत्तर-भारतीय सस्करण मे चतुर्थ अक मे कई श्लोक अपभ्रश मे दिये गये हैं। यह स्पष्ट है कि ये श्लोक वाद मे मिलाये गये है, क्योकि कालिदास के समय मे अपभ्रश वाले श्लोक प्रचलित नही थे। इस नाटक को त्रोटक नाटक माना जाता है। त्रोटक नाटक में पाँच, सात, आठ या नौ अक होते हैं। इसमे मानवीय और दिव्य घनटाएँ होती हैं। इसके प्रत्येक अक मे विदूषक रहता है। उपर्युक्त लक्षण के आधार पर विचार करने से ज्ञात होता है कि यह त्रोटक नाटक नही है, क्योकि इसके प्रत्येक अक मे विदूषक नही है।

इस नाटक का नाम सार्थक है। यह निर्देश करता है कि उर्वशी को पुरूरवा ने अपने विक्रम से जीता है। इसकी घटनाएं कुछ मानवीय तथा कुछ स्वर्गीय हैं। इसके चतुर्थ अक मे राजा की उन्मत्तावस्था का वर्णन नाटकीय दृष्टि से असगत सा है, तथापि यह अनिर्वचनीय कोमल भावनाओ से पूर्ण है। इस नाटक के कथानक ने अवसर प्रदान किया है कि कालिदास प्रकृति के वर्णन मे अपनी योग्यता का पूर्ण प्रदर्शन कर सके।

शाकुन्तल नाटक मे सात अक हैं। इसमे दुष्यन्त और शकुन्तला के प्रेम का वर्णन है। इसकी कथा महाभारत मे वर्णित शकुन्तलोपाख्यान के आधार पर है। दुष्यन्त की अँगूठी और दुर्वासा के शाप का उल्लेख कर कालिदास ने मूल कथा मे परिवर्तन कर दिया है। नायक द्वारा नायिका को दी गई अभिज्ञानस्वरूप अँगूठी के खो जाने मे नाटक सजीव सा हो जाता है तथा नायक और नायिका का चरित्र अधिक निखर जाता है। नाटक के 'अभिज्ञान-

शाकुन्तल' नाम पडने का कारण भी यही है। दुष्यन्त शिकार खेलते हुए कण्व ऋषि के आश्रम पर पहुँचते है। कण्व बाहर गये हुए थे। ऋषि की पोष्य पुत्री शकुन्तला ने उसका आतिथ्य किया। दोनो का परस्पर प्रेम हो गया और दोनो ने गान्धर्व विवाह कर लिया। दुष्यन्त कुछ दिन बाद अपने राज्य को लौट आया। उसने शकुन्तला को आश्वासन दिया कि कुछ दिन मे ही वह उसको अपनी राजधानी मे बुला लेगा। उसने अपनी अँगूठी शकुन्तला को दी। शकुन्तला ने प्रेम-मग्न होने के कारण आए हुए दुर्वासा ऋषि का स्वागत नही किया। इस पर क्रुद्ध होकर दुर्वासा ने उसे शाप दिया कि उसका प्रेमी उसे भूल जाएगा और कोई पहचान दिखाने पर उसे स्मरण करेगा। कण्व ऋषि को आने पर सब समाचार ज्ञात हुआ। उन्होने गर्भवती शकुन्तला को दुष्यन्त के पास भेजा। राजा शाप के कारण उसे पहचान न सका और उसने शकुन्तला को पत्नी के रूप मे स्वीकार करने मे निषेध कर दिया। मार्ग मे जाते समय उस बेचारी शकुन्तला की अँगूठी एक तालाब मे गिर गई थी, अत वह अपने सम्बन्ध के प्रमाणस्वरूप कुछ प्रस्तुत न कर सकी। उसकी माता मेनका उस समय प्रकट हुई और वह उसको स्वर्ग मे ले गई। इस प्रकार समय बीतता गया। शकुन्तला के हाथ मे जो अँगूठी जल मे गिर गई थी, उसे एक मछली ने निगल लिया था। वह एक मछुए के हाथ पडी। वह उसे बेचने के लिए बाजार मे लाया। वह अँगूठी जब राजा के सामने लाई गई तब उसे शकुन्तला का स्मरण हुआ। उसने बहुत दुःख के साथ कई वर्ष बिताए। राजा दुष्यन्त को इन्द्र ने राक्षसो के साथ युद्ध के लिए आमन्त्रित किया। उसने सफलता के साथ युद्ध किया। लौटते समय उसने मारीच ऋषि के आश्रम मे, अपनी स्त्री शकुन्तला और अपने पुत्र भरत को देखा। इस प्रकार दोनो का सुखमय सम्बन्ध हो गया।

स्थिर सौन्दर्यपूर्ण दृश्यो की रचना मे कालिदास अत्यन्त उच्चकोटि की कला का प्रदर्शन करते है। मालविकाग्निमित्र मे, कथावस्तु के व्यापार को सुगम बनाने मे विदूषक, पण्डित, कौशिकी और बकुलावलिका बहुत

अधिक सहायता प्रदान करते हैं। विक्रमोर्वशीय मे, प्रेमी का मिलन और उर्वशी के लिए राजा की खोज—इन दो दृश्यो पर पूर्ण विचार किया गया है। अभिज्ञानशाकुन्तल मे एक भी ऐसा दृश्य नही है जिसमे सौन्दर्य और आकर्पण न हो। ऐसा कहा जाता है कि इस नाटक का चतुर्थ अङ्क बहुत ही रम्य है और उसमे चार श्लोक सर्वोत्तम हैं।[1]

देखिए —

काव्येपु नाटक रम्य तत्र रम्या शकुन्तला।
तत्रापि च चतुर्थोऽङ्क तत्र श्लोकचतुष्टयम्॥

कुछ लोगो के अनुसार चतुर्थ अङ्क की अपेक्षा पचम अङ्क अधिक रम्य है।

देखिए —

शाकुन्तलचतुर्थोऽङ्क सर्वोत्कृष्ट इति प्रथा।
न सर्वसम्मता यस्मात्पचमोऽस्ति ततोऽधिक॥

यह नाटक कई विभिन्न सस्करणो में प्राप्त होता है। इसका नाम अभिज्ञानशाकुन्तल इसलिए पडा, क्योकि इसमें राजा ने पहचान के रूप मे अँगूठी दी थी और वाद की घटनाएँ इसी के आधार पर हैं। इस नाटक मे मुख्य रस शृङ्गार है परन्तु चतुर्थ अक से साथ ही साथ करुण रस की भी धारा है।

कालिदास ने नाटक को सुखान्त बनाने के लिए शाकुन्तल और विक्रमोर्वशीय मे दैवी अश को भी स्थान दिया है। उसने कथानक के विकास के लिए मालविकाग्निमित्र मे नृत्य, विक्रमोर्वशीय मे नाटकीय प्रदर्शन और शाकुन्तल मे गीत को स्थान दिया है।

कालिदास नाटककार, कवि और गीति-काव्य लेखक के रूप में

कालिदास ने अपने नाटको के लिए शृङ्गार रस को अपनाया है। उसके प्रत्येक नाटक मे शृङ्गार और चरित्र-चित्रण बहुत व्यवस्थित रूप मे

1 अभिज्ञानशाकुन्तल ४—६, ९, १७ और १८।

विकसित हुआ है। अग्निमित्र ने कई विवाह किए थे और वह मालविका से विवाह करना चाहते थे। यह अधिक उचित होता यदि वह मालविका को अपने पुत्र वसुमित्र के लिए पत्नी रूप मे चाहता। उसके प्रेम का सम्बन्ध दो रानियो और तीसरी मालविका मे है। तीनो के स्वभाव मे अन्तर है। नाटककार ने अग्निमित्र की घोर कामुकता को बहुत स्पष्ट रूप मे प्रकट किया है। कालिदास ने तीनो स्त्रियो को प्रतिस्पर्धी के रूप मे प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है, अतएव मालविका और अग्निमित्र का प्रेमी के रूप मे चरित्र-चित्रण अच्छा नही हो पाया है। अग्निमित्र का राजा के रूप मे चित्रण अवश्य अच्छा हुआ है। विक्रमोर्वशीय मे प्रतिस्पर्धी दो ही स्त्रियाँ है। इसमे रानी का स्वभाव पूर्व नाटक से अधिक उच्च कोटि का है। तथापि उर्वशी मे मातृप्रेम का अभाव है। शाकुन्तल नाटक मे कोई प्रतिस्पर्धी स्त्री रगमच पर नही लाई गई है, क्योकि इससे नायक और नायिका की उत्कृष्टता न्यून हो जाती। प्रतिस्पर्धी स्त्री के न होने के कारण दुष्यन्त और शकुन्तला का चरित्र-चित्रण भी अच्छा हो सका है।

कालिदास ने पुरुष पात्रो की अपेक्षा स्त्री पात्रो का अधिक अच्छा वर्णन किया है। यह बात उनके काव्य ग्रन्थो के विषय मे भी सत्य है। कालिदास के सभी स्त्री पात्र निरपराध होते हुए भी कष्ट का अनुभव करते है। कालिदास सभवत यह निर्देश करना चाहते है कि स्त्रियाँ पुरुषो के प्रति अपने कर्तव्य का पालन न करने से दुःख प्राप्त करती है। कालिदास के स्त्री पात्र अनेक प्रकार के है। स्त्री पात्रो के द्वारा कालिदास पुरुष पात्रो की उत्कृष्टता प्रकट करता है। कालिदास के पुरुष पात्र क्रमश उच्च होते गए है, कामुक अग्निमित्र से वीर पुरूरवा उच्च कोटि का है और दुष्यन्त उससे भी उच्च कोटि का है।

कालिदास का मन्तव्य है कि प्रेम का लक्ष्य उदात्त गुणता है, न कि कामुकता। प्रेम दुःखो के सहन करने और पापो के प्रायश्चित्त से उत्कृष्ट और आध्यात्मिक रूप को प्राप्त करता है, काम-भाव की तृप्ति से नही।

दण्डी ने अपनी पुस्तक अवन्तिसुन्दरीकथा मे लिखा है—

लिप्ता मधुद्रवेणासन् यस्य निर्विवशा गिर ।
तेनेद वर्त्म वैदर्भं कालिदासेन शोधितम् ।।

प्रस्तावना, श्लोक १५

जयन्त ने कवि कालिदास की सूक्तियो के विषय मे अपनी न्यायमजरी मे लिखा है—

अमृतेनेव ससिक्ता: चन्दनेनेव चर्चिता ।
चन्द्रांशुभिरिवोद्घृष्टा कालिदासस्य सूक्तय ।।

उसका नाम शाकुन्तल नाटक के साथ बहुत आदर के साथ लिया जाता है ।[1] शाकुन्तल नाटक के विषय मे कहा गया है कि "यह विशद और मनोरम है । इसमे ओज के साथ ही मनोज्ञता है और सक्षेप के साथ ही भावप्राजलता है ।"[2]

उसके ग्रन्थो मे ज्ञात होता है कि वह पूर्ण शिवभक्त था और हिन्दुओ के देवत्रय मे एकता को मानता था ।[3] वह उपनिषदो और भगवद्गीता की शिक्षाओ पर पूर्ण विश्वास करता था । वह साख्य, योग और वेदान्त दर्शन के सिद्धान्तो से पूर्णतया परिचित था । उसने सभवत. एक ग्रन्थ कुन्तेश्वरदौत्य लिखा था, क्षेमेन्द्र (१०५० ई०) ने उससे उद्धरण दिया है, परन्तु वह ग्रन्थ नष्ट हो गया है । वह कवियो, गीतिकाव्यकारो और नाटककारों मे सर्वश्रेष्ठ है ।

---

१ कालिदासस्य सर्वस्वमभिज्ञानशकुन्तलम् ।
तत्रापि चतुर्थोऽङ्क यत्र याति शकुन्तला ।।

२ C E M Joad The History of Indian Civilization पृष्ट ९७ ।

३ कुमारसभव, सर्ग ६, श्लोक ४४ ।

पाश्चात्य आलोचकों ने कालिदास पर यह दोषारोपण किया है कि उसने जीवन की समस्याओं को हल करने का कोई मार्ग या साधन नहीं बताया है। उनका यह दोषारोपण कालिदास के ग्रन्थों के अध्ययन से सर्वथा निराधार सिद्ध होता है। कालिदास की पद्धति यह है कि वह किसी बात को कहता नहीं है, अपितु उसको व्यंजना के द्वारा प्रकट करता है। उसके ग्रन्थों में ऐसी सैकड़ों सूक्तियाँ हैं जिनसे प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकता के अनुसार इष्ट-साधन कर सकता है। उसने जीवन की समस्याओं के हल के लिए स्वतन्त्र कोई ग्रन्थ नहीं लिखा है, परन्तु उसने प्रत्येक समस्या के विषय में अपने विचार अवसर के अनुसार व्यक्त किए हैं, उसने इन विषयों पर बहुत विस्तार के साथ अपने विचार व्यक्त किए हैं—त्याग का महत्त्व, अत्यधिक विषय-लिप्तता का दोष, प्रेम के दैवी-स्वरूप का महत्त्व, राजा आदि के कर्तव्यों का वर्णन।

———

अध्याय २३

कालिदास के परवर्ती नाटककार

कालिदास के परवर्ती नाटककारो में शूद्रक सर्वप्रथम आता है। वह एक ऐतिहासिक महापुरुष जान पडता है। वह इन्द्राणीगुप्त नामक ब्राह्मण था। ब्राह्मण के कर्तव्यो को छोड़कर राजा हो जाने के कारण वह शूद्रक कहा जाने लगा। उसने आन्ध्रजातीय राजकुमार स्वाति को पराजित किया तथा उज्जैन साम्राज्य पर शासन करने लगा। उसने लगभग एक वर्ष तक शासन किया। इसका उल्लेख दण्डिन् की अवन्तिसुन्दरी कथा (पृ०२००-२०१) और अवन्तिसुन्दरीकथासार (४-१७५-२००) मे प्राप्त होता है। उसने मृच्छकटिक नामक प्रकरण लिखा है। इसमे दस अक हैं। उसका परिचय पूर्णतया निश्चित नही हो पाया है। उसका नाम वहुत सी कथाओ मे नायक या एक पात्र के रूप मे आता है। मृच्छकटिक की प्रस्तावना मे वह एक कवि और राजा वताया गया है और कहा गया है कि अपने वाद उसने अपने पुत्र को राजगद्दी पर वैठाया और एक सौ वर्ष आठ दिन को लम्वी आयु विताकर अग्नि मे प्रविष्ट हो गया। आलोचकों ने इस उल्लेख के आधार पर इस नाटक का रचयिता शूद्रक को मानना अस्वीकार किया है, क्योकि अपनी की हुई घटना का स्वय वर्णन नही कर सकता था। यदि प्रस्तावना के इस उल्लेख को वाद की मिलावट मानी जाय तो शूद्रक को इस नाटक का रचयिता मानने मे कोई आपत्ति नही होती है।

उसका समय भी सरलता से निश्चित किया जा सकता है। इस नाटक मे दाक्षिणात्यो, कर्णाट, द्राविड, चोल आदि के उल्लेख है और कर्णाटक का ओरो के साथ युद्ध का वर्णन है। इस उल्लेखो से ज्ञात होता है कि नाटककार या तो दाक्षिणात्य था या दक्षिण प्रदेश को अच्छी प्रकार जानता था।

उसकी भाषा की सरलता, प्राकृत की विभिन्न-रूपता आदि से ज्ञात होता है कि वह हर्ष और भवभूति से बहुत पहले हुआ था। बौद्ध पात्र का स्वतन्त्रता के साथ घूमना, राज्य करने वाले राजा के प्रति प्रकटरूप से अस्वामिभक्ति, राजनीतिक कुचक्रों के द्वारा राज्य करने वाले राजा को हटाना, वेश्या को वैध विवाहित पत्नी मानना, राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक स्थिति का अस्थिर और निम्नकोटि का होना इत्यादि बातों से ज्ञात होता है कि यह नाटक ई० सन् के प्रारम्भ के लगभग बना है।

भास के तेरह नाटकों के प्रकाशन ने इस नाटक के लेखक के विषय में समस्या उत्पन्न कर दी है। इन तेरह नाटकों में से एक नाटक चारुदत्त की कथा इस नाटक के प्रथम चार अङ्कों की कथा से सर्वथा मिलती है। भास के समर्थकों का कथन है कि शूद्रक ने भास के चार अङ्कों में और ६ नए अङ्क मिला कर उसको मृच्छकटिक नाम दिया है। उसमें प्रारम्भिक चार अङ्क भास के चारुदत्त के ही अपनाए गए हैं और आगे के ६ अङ्क शूद्रक की रचना है। इस प्रकार शूद्रक ने अपूर्ण नाटक को पूर्ण किया है और पूरे नाटक का रचयिता अपने आपको लिखा।

भास के समर्थकों का यह कथन हास्यास्पद है। मृच्छकटिक में अन्तर्कथा राजनीतिक भाव को लेकर है। इस बात का श्रेय शूद्रक को ही है कि उसने एक राजनीतिक कथानक को प्रेमाख्यान से बहुत कुशलता के साथ सम्बद्ध कर दिया है। शूद्रक एक मौलिक लेखक है। वह अपनी रचना में दूसरे की रचना को सम्मिलित करने का साहस न करता और न उस ग्रन्थ को अपनी रचना बताता। यदि वह ऐसा करता तो उसकी प्रतिष्ठा को आंच आती। उससे अच्छा वह नया नाटक तैयार करता। इसके अतिरिक्त किसी साहित्य शास्त्री ने चारुदत्त को भास की रचना होने का उल्लेख नहीं किया है। चारुदत्त को मृच्छकटिक का ही संक्षिप्त संस्करण समझना चाहिए। सर्वप्रथम शूद्रक का नामोल्लेख करने वाला और मृच्छकटिक से उद्धरण देने वाला लेखक वामन (८०० ई०) है। अतः शूद्रक को इसका लेखक मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

मृच्छकटिक के प्रथम चार अङ्को की कथा वही है जो भास के चारुदत्त की है। दूसरे दिन वसन्तसेना ने चारुदत्त के घर पर रात विताई। उसके दूसरे दिन प्रात काल चारुदत्त नगर के उपवन मे गया और उसने वसन्तसेना से कहा कि वह उसे वहाँ मिले। चारुदत्त के शिशु रोहसेन ने दाई से कहा कि वह मिट्टी की गाडी के स्थान पर खिलौने वाली गाडी खेलने के लिए दे। वसन्तसेना को उस शिशु पर दया आई और उसने उस शिशु की मिट्टी की गाडी अपने आभूषणो और रत्नो से भर दी और उसको प्रसन्न कर दिया। उसके घर के आगे एक गाडी रुकी, उसने भ्रमवश यह समझा कि यह गाडी चारुदत्त ने उसके लिए भेजी है, वह उस पर चढकर उद्यान को चल दी। वस्तुत वह गाडी वहाँ के राजा के साले सस्थानक की थी। वह एक दुराचारी व्यक्ति था। वसन्तसेना उसमे प्रेम नही करना चाहती थी, परन्तु वह उसको फंसाना चाहता था। वसन्तसेना उस गाडी मे उपवन मे वहाँ पहुँची जहाँ सस्थनाक उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। वहाँ वसन्तसेना ने उससे प्रेम करने से निषेध किया। इस पर उसने क्रुद्ध होकर उसका गला दवा दिया और वह निश्चेष्ट होकर गिर गई। उधर न्यायालय में जाकर उस सस्थानक ने चारुदत्त के विरुद्ध अभियोग चलाया कि उसने आभूपणो के लोभ मे वसन्तसेना का वध कर दिया है। दूमरी ओर चारुदत्त ने वसन्तसेना के लिए जो गाडी भेजी थी, उस पर आर्यक नाम का एक राजनीतिक वन्दी कारागृह से भागकर आश्रय लेता है। चारुदत्त ने उसको आश्रय दिया। आर्यक ने वर्तमान राजा को पदच्युत करने के लिए शर्विलक आदि का साथ दिया। उपवन मे वमन्तसेना को न पाकर निराश होकर वह घर आया। वहाँ आने पर उसे न्यायालय मे उपस्थित होने का आदेश मिला और वह वहाँ गया। जव अभियोग चल रहा था, तव चारुदत्त का एक मित्र विदूषक चारुदत्त की स्त्री के आदेशानुसार वमन्तसेना के आभूपण उसको लौटाने जा रहा था। उसने मार्ग मे जव चारुदत्त के ऊपर अभियोग की वात सुनी तो वह आभूपणो के सहित न्यायालय मे पहुँचा। चारुदत्त के पास निरपराध होने का कोई

प्रमाण नहीं था। वह विदूषक के द्वारा लाए हुए आभूषणों के आधार पर अपराधी घोषित किया गया और उसे फाँसी का आदेश दिया गया। उधर वसन्तसेना एक बौद्ध भिक्षुक की सेवा से कुछ होश में आती है। चारुदत्त वध के लिए वधगृह में लाया गया। उधर वसन्तसेना भी उसी स्थान पर बौद्ध भिक्षुक के साथ आती है। वसन्तसेना के कथन पर चारुदत्त मुक्त किया जाता है। झूठा अभियोग चलाने के अपराध में शकारस्थानक को बन्दी बनाया जाता है। उसने चारुदत्त से दयाभाव की प्रार्थना की। चारुदत्त ने उसको मुक्त कर दिया।

इस नाटक का आधार ज्ञात नहीं है। इस नाटक के कथानक में वसन्तसेना के द्वारा मिट्टी की गाड़ी का आभूषणों से भरा जाना विशेष उल्लेखनीय घटना है, अतः नाटक का नाम मृच्छकटिक (मिट्टी की गाड़ी) उचित ही है। इस नाटक में जुआ खेलना, चोरी और राजनैतिक के द्वारा भागे हुए बन्दी के लिए गाड़ी की जाँच करना आदि दृश्य बहुत वास्तविकता से युक्त हैं। इस नाटक का कथा-संघटन बहुत उत्तम है। नाटककार को संगीत, द्यूत और चोरी का पूर्ण ज्ञान था। वह दृश्यों में सुन्दरता के साथ प्रकट किया गया है। नाटककार ने रंगमंच पर सोना और हाथापाई का दृश्य उपस्थित करके नाटकीय परम्परा का उल्लंघन किया है। शूद्रक प्रभावोत्पादक चरित्र-चित्रण में बहुत पटु है। इसमें तीस पात्र हैं। ये सभी प्रकार के व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसमें सुशिक्षित न्यायाधीश से लेकर नीच तर पात्र हैं। अतएव यह नाटक सार्वजनीन प्रतीत होता है। इसके पात्र व्यक्ति हैं। अन्य नाटकों के तुल्य वे किसी श्रेणी के प्रतिनिधि नहीं हैं। इसमें शृङ्गार, हास्य और करुण रस हैं। इनमें से शृङ्गार इनमें प्रमुख है। इस नाटक का निर्णय है कि चरित्र मनुष्य को उच्च बनाता है। इसकी शैली सरल और स्वाभाविक है, परन्तु कालिदास के समान परिष्कृत नहीं है। लेखक ने विभिन्न प्रकार की प्राकृतों के प्रयोग में अपनी कुशलता दिखाई है। इसके पात्रों में से ६ संस्कृत बोलते हैं, १५ शौरसेनी और ७ मागधी।

इसकी प्राकृतो मे विभाषा-सम्बन्धी अन्तर भी प्राप्त होते हैं । इसमे ३७७ श्लोक हैं, जिनमें से ६९ श्लोक प्राकृत मे हैं । सूत्रधार पहले सस्कृत मे वोलता है, परन्तु वाद मे प्राकृत मे बोलने लगता है । वसन्तसेना सस्कृत और प्राकृत दोनो मे वोलती है । पात्रो का प्रभावोत्पादक चरित्र-चित्रण, ओजयुक्तता, सजीवता और गतिमत्ता, घटनाओ की अधिकता, अङ्क ५ को छोडकर विस्तृत वर्णन का अभाव, सरल और स्पष्ट भाषा आदि के द्वारा यह नाटक वास्तविकता से पूर्ण ज्ञात होता है । यह वास्तविकता अन्य सस्कृत नाटको मे अप्राप्य है ।

शूद्रक को पद्मप्राभृतक नामक भाण-रूपक का रचयिता भी मानते हैं । इसमे चोरो के प्रामाणिक आचार्य मूलदेव का देवदत्त के साथ प्रेम का वर्णन है । इसमे पाणिनि के पूर्ववर्ती एक आचार्य दत्तकलशि का उल्लेख है । इसमे एक प्रकरण ग्रन्थ कुमुद्वतीप्रकरण और एक प्राकृत काव्य कामदत्त का उल्लेख है । इन दोनो के लेखको का नाम अज्ञात है और ये दोनो ग्रन्थ अप्राप्य हैं । भापा की समता के आधार पर इसको शूद्रक की रचना माना जाता है ।

शूद्रक के वाद वौद्ध कवि अश्वघोष आता है, जिसने सौन्दरनन्द और वुद्ध-चरित काव्य लिखे हैं । उसने एक प्रकरण-ग्रन्थ लिखा है जिसका नाम है—शारिपुत्रप्रकरण या शारद्वतीपुत्रप्रकरण । इसमे ९ अङ्क है । इसमे गौतम वुद्ध के द्वारा मौद्गल्यायन और शारिपुत्र को वौद्ध-धर्म मे दीक्षित करने का वर्णन है । इसमे अश्वघोप ने सभी नाटकीय नियमो का कठोरता के साथ पालन किया है । शारिपुत्रप्रकरण की हस्तलिखित प्रति के साथ ही दो और नाटको की अपूर्ण हस्तलिखित प्रति प्राप्त होती हैं । ये दोनो नाटक सम्भवत अश्वघोप की रचना हैं । इनके नाम अज्ञात हैं । इनमे से एक रूपकात्मक है । दूसरे मे पात्रो मे से एक पात्र एक वेश्या मगधवती है । यह नाटक एक उपवन मे दिखाया गया है ।

इसके अतिरिक्त कुछ नाटक हैं, जिनका समय अज्ञात है । किन्तु वे ईसा की प्रथम दो शताब्दी मे रक्खे जा सकते हैं । वररुचि ने एक भाण-

ग्रन्थ उभयाभिसारिका लिखा है। इसमें कुबेरदत्त और नारायणदत्त का जीवन वर्णित है। वररुचि का पूर्ण परिचय अज्ञात है। इसमें न्याय और सांख्य सिद्धान्तों का उल्लेख है और नृत्यकला का भी वर्णन है। भास के नाटकों में जो विशेषताएँ प्राप्त होती हैं, वे इसमें भी दृष्टिगोचर होती हैं।

ईश्वरदत्त ने एक भाण-ग्रन्थ धूर्तविटसंवाद लिखा है। इसे वेश्या-कार्य-र्णन की एक पुस्तिका कह सकते हैं। इसमें नान्दी नहीं है। इसमें कुसुमपुर ा उल्लेख है। इसमें दत्तक को शृङ्गार का आचार्य बताया गया है। इसमें ामसूत्र (२५० ई०) का उल्लेख नहीं है, अतः इसे प्रथम या द्वितीय शताब्दी ० की रचना मान सकते हैं। इसके लेखक के विषय में कुछ भी ज्ञात हीं है।

बोधायन ने एक प्रहसन ग्रन्थ भगवदज्जुक लिखा है। इसके लेखक के िषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। इसमें रूपक के दस भेदों के जो नाम दिए ए हैं, वे अन्य ग्रन्थों में उपलब्ध नामों से पृथक् हैं। इससे ज्ञात होता है कि यह नाटक प्रथम या द्वितीय शताब्दी ई० में लिखा गया है। पल्लव राजा महेन्द्रविक्रमन् के ६१० ई० के एक शिलालेख में मत्तविलासप्रहसन के साथ इस नाटक का भी उल्लेख है। इस शिलालेख का पाठ्य अस्पष्ट है, अतः उसके आधार पर इस नाटक के लेखक के विषय में कोई निर्णय नहीं किया जा सकता है। कुछ आलोचक इस शिलालेख के आधार पर इस नाटक का रचयिता महेन्द्र-विक्रमन् को मानते हैं। इसमें वर्णन है कि भगवान नाम का एक योगी अपनी यौगिक शक्ति के प्रदर्शन के लिए अज्जुका नाम की एक वेश्या के शव में प्रवेश करता है। वह शव जीवित हो जाता है और सन्यास-धर्म का उपदेश देने लगता है। यमराज ने वेश्या की आत्मा को आदेश दिया कि वह पुनः संसार में जावे। उसके निर्जीव शरीर को योगी भगवान् ने अपनी इच्छानुसार प्रवेश के लिए अपने पास सुरक्षित

रक्खा था। वेश्या की आत्मा ने उस शरीर मे प्रवेश किया और वह सजीव हो गया तथा प्रेम-सम्बन्धी विषयो पर उपदेश देने लगा। लेखक को दार्शनिक सिद्धान्तो का अच्छा ज्ञान था, यह ग्रन्थ के पढने से ज्ञात होता है।

वीणावासवदत्तम् नाम का चार अङ्को का एक अपूर्ण नाटक प्राप्त होता है। इसमे वर्णन किया गया है कि किस प्रकार प्रद्योत के द्वारा उदयन को बन्दी बनाए जाने से वासवदत्ता को यह अवकाश मिला कि वह उदयन से वीणा बजाना सीख सके। इस नाटक का लेखक अज्ञात है। इसकी शैली के आधार पर इसको ईसवीय सन् की प्रारम्भिक शताब्दी मे रखना उचित है। एक अज्ञात लेखक का एक प्रहसन दामक है। इसमे वर्णन किया गया है कि किस प्रकार कर्ण ने परशुराम से अस्त्रशिक्षा प्राप्त की। इस नाटक मे कर्ण का एक मित्र दामक विशेष भाग लेता है। भास के नाटको मे जो विशेषता प्राप्त होती हैं, वह इसमे भी प्राप्त होती है। इसका समय ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियो मे समझना चाहिए।

दिङनाग ने कुन्दमाला नाटक लिखा है। इसका दूसरा नाम धीरनाग भी है। इसमे ६ अङ्क हैं। इसका आधार रामायण के उत्तरकाण्ड की कथा है। इसका लेखक बौद्ध नैयायिक दिङ्नाग से भिन्न व्यक्ति है, क्योकि वह हिन्दू-विचार वाला नाटक न लिखता। भाषा की सरलता से ज्ञात होता है कि वह २०० ई० के लगभग हुआ होगा। उसका प्रभाव भवभूति (७०० ई०) के उत्तररामचरित पर भी पडा है। उसकी सरल शैली की तुलना जब भवभूति की क्लिष्ट और कठोर शैली मे की जाती है, तो ज्ञात होता है कि वह भवभूति से पूर्ववर्ती है। इसके नाटक पर भास और कालिदास का प्रभाव पडा है। यह ज्ञात नहीं है कि वह कालिदास का समकालीन है या बाद का। कुछ हस्तलिखित प्रतियो मे उसका नाम धीरनाग दिया गया है। यह नाटक सुखान्त है। इसमे अन्त मे राम के सम्मुख माता पृथ्वी के द्वारा सीता की पवित्रता सिद्ध की जाती है और कुश तथा लव क्रमश राजा और

उपराजा बनाए जाते है। यह सबसे पहला नाटक है, जिसमे रामायण के उत्तरकाण्ड की कथा आई है। इनमे विदूषक है।

विशाखदत्त राजा पृथु के मन्त्री भास्करदत्त का पुत्र था। उसने मुद्राराक्षस नाटक लिखा है। इसमे सात अङ्क है। इसके भरतवाक्य मे राजा चन्द्रगुप्त का उल्लेख है। इस चन्द्रगुप्त के स्थान पर दन्तिवर्मा, रन्तिवर्मा और अवन्तिवर्मा पाठभेद है। भरतवाक्य का चन्द्रगुप्त, मौर्य चन्द्रगुप्त के लिए नही है, क्योकि वह इस नाटक का नायक है। वह गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त के लिए हो सकता है। ऐसी अवस्था मे लेखक का समय ३५० ई० के लगभग मानना चाहिए। दन्तिवर्मा पाठ मानने पर वह राष्ट्रकूट राजा दन्तिवर्मा (६०० ई०) या लाट राजा दन्तिवर्मा (८५० ई०) या पल्लव राजा दन्तिवर्मा (८०० ई०) के लिए हो सकता है। दन्तिवर्मा पाठ भ्रमात्मक ज्ञात होता है। अवन्तिवर्मा पाठ से लेखक का सम्बन्ध स्थाण्वीश्वर के राजा हर्ष की बहिन राज्यश्री के श्वसुर मौखरी वंश के राजा अवन्तिवर्मा से ज्ञात होता है। इसके अनुसार लेखक का समय ६०० ई० ज्ञात होता है और वह बगाल के समीप का रहने वाला सिद्ध होता है। मौखरी राजा के साथ उसका सम्बन्ध तथा ६०० ई० के लगभग उसका समय उचित प्रतीत होता है, क्योकि लेखक पटना की उस समय की स्थिति से सर्वथा अभिज्ञ था। उसने नाटक मे पटना को समृद्ध नगर बताया है। ह्वेनसाग की यात्रा के समय यह नगर नष्ट हो गया था। अत लेखक का समय ५०० ई० के बाद तथा ६०० ई० से पूर्व समझना चाहिए। इस नाटक मे उन्ही हूणो का उल्लेख समझना चाहिए, जिन पर राज्यवर्धन ने आक्रमण किया था। इस नाटक मे वर्णन किया गया है कि नन्द राजाओ के मन्त्री राक्षस ने यह प्रयत्न किया है कि किसी प्रकार राजा चन्द्रगुप्त को गद्दी से हटाया जाय, क्योकि छलपूर्वक नन्दो का वध करके चन्द्रगुप्त को गद्दी पर बैठाया गया था। राक्षस के सभी प्रयत्न कूटनीतिज्ञ ब्राह्मण चाणक्य के कारण विफल

रहे । चाणक्य चन्द्रगुप्त का हितेच्छु था । वह चाहता था कि राक्षस को चन्द्रगुप्त का मत्री बनाऊँ । चाणक्य ने अपने दूतो के चतुर प्रयत्न से राक्षस की राजकीय मुद्रा (मुहर) प्राप्त कर ली और उस मुहर को लगाकर राक्षस के समर्थको के नाम एक जाली पत्र लिखा । उस पत्र पर राक्षस की मुहर थी, अत उसके द्वारा राक्षस और उसके सहायको मे मतभेद हो गया । राक्षस निराश्रित हो गया । चन्द्रगुप्त के आदेशानुसार उसका एक प्रिय मित्र राजद्रोह के अभियोग मे फाँसी पर चढाया जा रहा था । राक्षस उसे बचाने के लिए दौडा । चाणक्य ने प्रतिज्ञा की कि वह उसके मित्र को फाँसी से छुडा देगा, यदि राक्षस चन्द्रगुप्त का मत्री होना स्वीकार करे । राक्षस के पास और कोई मार्ग नही था । अत उसने विवश होकर मन्त्री होना स्वीकार किया । चाणक्य राक्षस की मुद्रा के द्वारा अपने प्रयत्न मे सफल हुआ, अतः इस नाटक का नाम मुद्राराक्षस पडा है । इस नाटक पर मृच्छकटिक नाटक का प्रभाव दिखाई पडता है । लेखक गणित और फलित-ज्योतिष तथा न्याय शास्त्र से पूर्णतया परिचित था । यही एक नाटक है, जो पूर्णतया राजनीतिक कथा से युक्त है । सूक्ष्म कथा-सघटन तथा सुसवद्ध दृश्यो के कारण लेखक की चतुरता स्पष्ट है । इसकी शैली सरल है । इसमे शक्ति और प्रवाह है । साथ ही लम्बे समासो का अभाव है । विशाखदत्त का दूसरा नाम विशाखदेव भी है । साहित्यशास्त्रियो ने जिन ग्रथो का उल्लेख किया है, उससे ज्ञात होता है कि उसने दो नाटक और लिखे हैं—(१) देवीचन्द्रगुप्त । यह एक प्रेमाख्यान वाला नाटक है । इसका सम्बन्ध चन्द्रगुप्त से है । (२) अभिसारिकावचितक या अभिसारिकावन्धितक । इसमे उदयन, वासवदत्ता और पद्मावती पात्र हैं । ये दोनो नाटक लुप्त हो गए हैं । मुद्राराक्षस के भरतवाक्य मे चन्द्रगुप्त शब्द मे तथा देवीचन्द्रगुप्त के कथानक मे ज्ञात होता है कि विशाखदत्त गुप्त राजाओ के दरबार मे राजकवि रहा होगा । अत उसका समय ३५० ई० के लगभग सिद्ध होता है ।

कौमुदीमहोत्सव नाटक में पांच अंक हैं। इसमें वर्णन किया गया है कि किस प्रकार ३४० ई० के लगभग कल्याणवर्मा ने अपना मगध का नष्ट हुआ राज्य पुनः प्राप्त किया। जब कल्याणवर्मा राजा बना था, तब इस नाटक का अभिनय हुआ था। इसका कथानक राजनीतिक है, परन्तु साथ ही प्रेम-कथा भी वर्णित है। इसका लेखक अज्ञात है। इसके लेखक के नाम वाला अंश लुप्त हो गया है। उसका अंतिम भाग है "कया"। इससे ज्ञात होता है कि इसकी लेखिका कोई स्त्री है, जिसका नाम अज्ञात है। इस नाटक पर भास और कालिदास का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। इस नाटक का समय चतुर्थ शताब्दी ई० मानना चाहिए।

पल्लव-राजा सिंहविष्णु के पुत्र महेन्द्रविक्रमन् प्रथम ने एक प्रहसन नाटक मत्तविलासप्रहसन लिखा है। इसका समय ६१० ई० के लगभग है। इसमें कांची के नागरिक जीवन का वर्णन है। इसमें चोर-विद्या पर एक ग्रन्थ-लेखक कर्पट बताया गया है। इसमें लेखक ने दिखाया है कि किस प्रकार बौद्ध धर्म के अनुयायी तथा कापालिक और पाशुपत धर्म के अनुयायी मदिरापानादि दुर्गुणों में फंसे हुए थे।

श्यामिलक ने एक भाण-ग्रन्थ पादताडितक लिखा है। उसने एक कवि पारशव का नाम लिखा है। बाण ने पारशव का नाम लिखा है। इस नाटक में चोरों, नकावाणिशों, आन्ध्रों और कोंकण आदि का उल्लेख है। इसमें एक कवि शार्दक का उल्लेख है जो दक्षिण से आया था। इसमें वक्त्र और अपवक्त्र छन्दों का उल्लेख है। इसकी शैली बाण की कादम्बरी की शैली से मिलती है। बाण ने अपने एक मित्र का नाम सोमिल लिखा है। इस नाटक का लेखक श्यामिल और सोमिल सम्भवतः एक ही व्यक्ति है। इस प्रकार इसका समय सातवीं शताब्दी का पूर्वार्ध होता है। इसमें कामतन्त्र के दत्तक को आचार्य मानने और वात्स्यायन (२५० ई०) के कामसूत्र का उल्लेख न करने से लेखक का यह समय ठीक प्रतीत नहीं होता है। विष्णुनाग नाम के एक ब्राह्मण के सिर पर एक वेश्या ने पैर मारा। वह इस विषय के

विद्वानो से मिला कि वे इसका प्रायश्चित्त वतावें। उन्होने इसका प्रायश्चित्त वताया कि वह वेश्या के दूसरे पैर से मार खावे। सभवत इस नाम के ग्राधार पर ही वाण ने अपने एक ग्रन्थ का नाम मुकुटताडितक रक्खा है।

हर्षवर्धन, जिसका ग्रधिक प्रचलित नाम हर्षदेव है, ६०६ से ६४८ ई० के वीच मे स्थाण्वीश्वर का राजा था। वह स्वय कवि था ग्रौर कवियो का ग्राश्रय-दाता था। उसके ग्राश्रित कवियो मे विशेष उल्लेखनीय वाण, मयूर, मातग-दिवाकर ग्रादि थे। हष तीन नाटको का लेखक है—रत्नावली, प्रियदर्शिका ग्रौर नागानन्द। पाश्चात्य विद्वान् हर्ष को इन तीन नाटको का लेखक नही मानते हैं। उनका कथन है कि ये नाटक वाण या ग्रन्य किसी उसके ग्राश्रित कवि ने लिखे हैं। इन नाटको की भाषा से स्पष्ट है कि वाण इन नाटको का लेखक नही है। हर्ष को इन नाटको का लेखक मानने की जो परम्परा है, उसको निराधार नही माना जा सकता है, क्योकि चीनी यात्री ह्वेनत्साग ने उल्लेख किया है कि हर्ष नागानन्द नाटक का लेखक है।

रत्नावली नाटिका है। इसमे चार ग्रक है। इसमे वर्णन किया गया है कि किस प्रकार कौशाम्वी के राजा उदयन ने लका की राजकुमारी साग-रिका (रत्नावली) से विवाह किया है। इसकी पूरी कथा मालविकाग्निमित्र की कथा के ग्रावार पर वनाई गई है। वासवदत्ता ने सागरिका को उदयन से ग्रधिक सम्पर्क रखने के कारण वन्दी वनाया था। उदयन ने एक जादूगर की सहायता से सागरिका को मुक्त किया। लका के राजा के यहाँ से यह समा-चार प्राप्त होने पर कि सागरिका उसकी पुत्री है, दोनो प्रेमियो का विवाह सम्वन्ध हो गया। जादूगर का दिव्य दृष्टि प्राप्त करना ग्रौर सागरिका का वचकर निकलने के लिए रानी का वेप धारण करना, ये नाटककार की ग्रपनी कल्पनाएँ हैं।

प्रियदर्शिका भी नाटिका है। इसमे चार ग्रक हैं। इसमे राजा उदयन ग्रौर राजकुमारी ग्रारण्यिका (प्रियदर्शिका) के प्रेम का वर्णन है। इसकी कथा रत्नावली ग्रौर मालविकाग्निमित्र से मिलती हुई है। इसमे लेखक ने उल्लेख

किया है कि रानी वासवदत्ता के सामने एक नाटक खेला जाता है और उसमे उदयन और वासवदत्ता का विवाह दिखाया जाता है। आरण्यिका वासवदत्ता का अभिनय करती है और उदयन का अभिनय आरण्यिका का एक मित्र करता है। इस प्रकार प्रेमाख्यान विकास को प्राप्त होता है। उदयन आरण्यिका को सांप के काटने से बचाता है। इस नाटक पर शाकुन्तल और मालविकाग्निमित्र का प्रभाव दिखाई पडता है।

नागानन्द नाटक मे पांच अङ्क हैं। इसमे विद्याधरो के राजकुमार जीमूतवाहन के आत्म-बलिदान का वर्णन है। गरुड के भोजन के रूप मे एक सांप शंखचूड की बारी थी। जीमूतवाहन ने उसके स्थान पर अपने आप को गरुड के लिए आहाररूप मे भेंट किया। राजकुमार के उच्च व्यवहार को जानकर गरुड को प्रायश्चित्त हुआ और उसने अब तक जितने सांप मारे थे, उन सभी को जीवित कर दिया और बौद्ध विचारधारा के अनुसार उसने प्रतिज्ञा की कि वह आगे किसी को भी नही मारेगा। जीमूतवाहन का रगमच पर प्राणान्त हो गया था। उसको देवी गौरी ने पुनर्जीवित किया और विद्याधरो का राजा बना दिया। इसमे साथ ही राजकुमार का एक सिद्ध राजकुमारी मलयवती के साथ प्रेम का वर्णन है। यह नाटक एक बौद्ध जातक के आधार पर बना है। उसको लेखक ने हिन्दू रूप दे दिया है। लेखक ने हिन्दूधर्म और बौद्धधर्म दोनो के प्रति सहिष्णुता के भाव को प्रकट करने के लिए सम्भवतः ऐसा किया है।

हर्ष कथानक के सघटन मे पटु नही है। उसने दूसरे नाटककारो से उधार लेने मे पर्याप्त परिश्रम किया है और उसको अपनी आवश्यकता के अनुसार उसने परिवर्तित कर लिया है। इसमे चरित्र-चित्रण अच्छा नही हुआ है। स्त्री-पात्रो का चित्रण और घटिया हुआ है। उसके पात्र राजा, नायक, रानी आदि नामो से उल्लेख किए गए हैं। इसकी शैली वैदर्भी है। रत्नावली और प्रियदर्शिका मे शृङ्गार रस मुख्य है और नागानन्द मे शान्तरस प्रधान है। रत्नावली और प्रियदर्शिका से रत्नावली रस-परिपाक की दृष्टि से अधिक अच्छी है। नागानन्द नाटक के रूप मे बहुत उच्च कोटि का नही है।

इसमे अन्य रसो का समुचित परिपाक नही हुआ है। लेखक सङ्गीत और ज्योतिप की सूक्ष्मताओ से सम्यक्तया परिचित था।

भट्टनारायण ने वेणीसहार नाटक लिखा है। इसमें ६ अङ्क हैं। इसमे महाभारत की घटनाओ का वर्णन है और अन्त मे भीम के द्वारा द्रौपदी की वेणी के बांधने का वर्णन है। भट्टनारायण को बङ्गाल के राजा आदिशूर ने दुर्भिक्ष के कुप्रभाव को दूर करने के लिए एक यज्ञ करने को बुलाया था। यह राजा ६५० ई० के लगभग हुआ था। सर्वप्रथम इसके नाटक से उद्धरण साहित्यशास्त्री वामन (८०० ई०) ने दिया है। अत इसका समय सातवी शताब्दी ई० का उत्तरार्द्ध मानना चाहिए। भट्टनारायण ने महाभारत की कथा मे एक नवीनता प्रस्तुत की है कि द्यूतक्रीडा के समय द्रौपदी ने अपना अपमान होने पर अपने केश खोल दिए और प्रतिज्ञा की कि दुर्योधन के प्राणान्त होने पर ही वह इस वेणी को बांधेगी। दुर्योधन के प्राणान्त होने पर भीम ने उसकी वेणी बांधी। अत इस नाटक का नाम वेणीसहार पडा। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए नाटककार ने मूल कथा मे कई परिवर्तन किए हैं। इसमे भीम की प्रशसा की गई है, क्योकि वही द्रौपदी की वेणी बांधता है। दुर्योधन की न्यूनताएँ विशेप रूप से दिखाई गई हैं। इसके लिए नाटककार ने दुर्योधन की पत्नी भानुमती को उपस्थित किया है और सम्पूर्ण द्वितीय अङ्क के द्वारा यह सिद्ध किया गया है कि दुर्योधन बहुत ही कामी व्यक्ति था। कर्ण को भी घटिया ढग से प्रस्तुत करके अश्वत्थामा को उत्कृष्ट सिद्ध किया गया है। इस नाटक की मुख्य विशेपता है पात्रो का स्वतन्त्र-व्यक्तित्व। किन्तु लेखक ने कही पर भी यह सकेत नही किया है कि इस नाटक का नायक कौन है। इसमे वीर रस मुख्य है। यह गौडी रीति मे लिखा गया है। इसकी भापा बहुत प्रभावशाली और ओजपूर्ण है। इस नाटक मे कई दृश्य बहुत सुन्दर हैं, परन्तु वे असम्बद्ध हैं। इस नाटक मे कथा-सघटन मे एकता का अभाव है।

शक्तिभद्र ने सात अङ्को मे आश्चर्यचूडामणि नामक नाटक लिखा है। वह शङ्कराचार्य (६३२-६६४ ई०) का शिष्य कहा जाता है। इस नाटक मे

भास के नाटकों की बहुत सी समता प्राप्त होती है। इस नाटक से ज्ञात होता है कि दक्षिण भारत में यह नाटक सबसे प्रथम लिखा गया है। इसका समय ७०० ई० मानना उचित है। राम और सीता को आश्रमवासियों ने एक आश्चर्यजनक रत्न दिया था, उसी से इसका नाम पड़ा है। रावण ने नकली राम, सीता और लक्ष्मण बनाए थे। इस रत्न की सहायता से राम और सीता उसके छल से बच सके। अद्भुत रस इस नाटक का प्रमुख तत्त्व है। इस नाटक की प्रस्तावना से ज्ञात होता है कि उसने एक और नाटक उन्मादवासवदत्त लिखा है। यह नाटक अब नष्ट हो गया है।

कन्नौज का राजा यशोवर्मा स्वयं कवि था और कवियों का आश्रयदाता था। नाटककार भवभूति और प्राकृत-भाषा का कवि वाक्पति उसके आश्रित कवि थे। ललितादित्य ने ७३३ ई० में उसको पराजित किया था। उसने रामायण की कथा के आधार पर ६ अङ्कों में रामाभ्युदय नाटक लिखा है। साहित्यशास्त्रियों के उद्धरणों से ही यह ज्ञान हुआ है। यह नष्ट हो गया है।

भवभूति यशोवर्मा का आश्रित कवि था। वह वाक्पति का समकालीन था। उसका समय ७०० ई० के लगभग मानना चाहिए। उसने तीन नाटक लिखे हैं—महावीरचरित, मालतीमाधव और उत्तररामचरित। इन नाटकों की प्रस्तावना से ज्ञात होता है कि उसका वास्तविक नाम श्रीकण्ठ था। शिव-भक्त होने के कारण उसका नाम भवभूति पड़ा। उसके पिता का नाम नीलकण्ठ और माता का नाम जतुकर्णी था। भट्टगोपाल उसके पितामह थे। वह कश्यप गोत्र का था तथा कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा का था। वह विदर्भ में पद्मपुर का निवासी था। वह व्याकरण, न्याय और मीमांसा का विशेषज्ञ था। वह साहित्यशास्त्र उपनिषद्, सांख्य और योग का भी विशेष विद्वान् था। जब वह युवक था, तब वह धनिक लोगों के साथ बहुत प्रेम से घूमा करता था।[1]

१ भवभूतिर्नाम कविर्निसर्गसौहृदेन भरतेषु वर्तमानः। मालतीमाधव की प्रस्तावना।

उसके गुरु का नाम ज्ञाननिधि था। मालतीमाधव की एक हस्तलिखित प्रति मे उल्लेख है कि कुमारिल भट्ट के शिष्य उवेक ने यह नाटक लिखा है। इस आधार पर एक वाद-विवाद प्रारम्भ हो गया है कि भवभूति और उवेक (६४०-७२५ ई०) एक ही व्यक्ति है। परन्तु यह अभी तक सिद्ध नही हो पाया है।

महावीरचरित भवभूति की प्रथम रचना ज्ञात होती है। इसमें सात अङ्क हैं। इसमे रामायण की कथा राम-सीता के विवाह से लेकर राम के राज्याभिषेक तक की है। रावण सीता से विवाह करना चाहता है, परन्तु धनुष-भग न कर सकने के कारण धनुष को भग करने वाले राम से पराजित होता है। रावण के मन्त्री माल्यवान् ने राम से बदला लेने का निश्चय किया। शूर्पणखा कैकेयी की दासी के रूप में मिथिला मे प्रगट होती है और कैकेई के द्वारा पहले से मांगे हुए दोनो वर दशरथ से मँगवाती है। माल्यवान् ने ही वालि को प्रेरित किया था कि वह किष्किधा मे जाने पर राम पर आक्रमण करे। रामायण की कथा मे वालि के वध के लिए जो कठिन समस्या उपस्थित हुई है, वह इस प्रकार नही उपस्थित होती और राम के द्वारा वालि का वध उचित सिद्ध होता है। यह नाटक नाटकीय दृष्टि से अच्छा नही है। इसके दो अङ्को मे राम और परशुराम का मौखिक विवाद है। बातचीत मे बहुत लम्बे वक्तव्यो के द्वारा इस नाटक का प्रभाव मारा जाता है। यह माना जाता है कि भवभूति ने चतुर्थ अक के ४६ श्लोक तक यह ग्रन्थ लिखा है, शेष अश एक विद्वान् सुब्रह्मण्य ने लिखा है। कोई भी कारण पर्याप्त नही है कि चतुर्थ अङ्क मे भवभूति सहसा रुक क्यो गये ?

मालतीमाधव एक प्रकरण-नाटक है। इसमे दस अङ्क हैं। इसमे वर्णन किया गया है कि किस प्रकार विदर्भ के राजा के मन्त्री देवरात के पुत्र माधव का विवाह पद्मावती के राजा के मन्त्री भूरिवसु

की पुत्री मालती से हुआ और माधव के मित्र मकरन्द का विवाह मालती की एक सखी मदयन्तिका से हुआ। माधव पद्मावती में पढ़ने के लिए आया। माधव और मालती दोनों के पिता की एक सहपाठिनी कामन्दकी नाम की स्त्री सन्यासिनी हो गई थी। वह अपने सहपाठियों के इन बच्चों का सदा कुशल चाहती थी। माधव ने एक दिन मालती को देखा और वह उससे प्रेम करने लगा। मालती भी माधव से प्रेम करने लगी। परन्तु उसके पिता पर राजा की ओर से यह दबाव डाला गया कि वह राजा के कृपा-पात्र और मदयन्तिका के भाई नन्दन से उसका विवाह कर दे। इस प्रकार विवाह का आयोजन हुआ। मकरन्द ने स्त्री का वेष बनाया और उसका विवाह नन्दन से हो गया। उन दोनों विवाहितों में विवाद प्रारम्भ हुआ और स्त्री मकरन्द ने नन्दन से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। नन्दन की बहिन मदयन्तिका को एक दिन मकरन्द ने एक बाघ से बचाया और वह तब से उससे प्रेम करने लगा। मालती, जिसका विवाह नन्दन से होना था, कामन्दकी के निर्देशानुसार एक मठ में चली गई। वहाँ एक पाशुपत सम्प्रदाय की स्त्री कपालिका उसे शिव के आगे बलि देने के लिए ले गई। माधव अकस्मात् वहाँ पहुँचा और उसने उस पाशुपत स्त्री से मालती की रक्षा की। प्रतिकार की भावना से पुनः पाशुपत सम्प्रदाय के व्यक्तियों ने मालती का पकड़ा, परन्तु कामन्दकी के एक साथी ने उसे बचाया। तत्पश्चात् मालती और माधव का विवाह धूमधामपूर्वक हो जाता है। इसकी कथा का सगठन अच्छा नहीं है। इसके नवम अङ्क में मालती के अदृश्य होने पर माधव के दुःख का जो वर्णन हुआ है, वह करुण रस की दृष्टि से कालिदास के विक्रमोर्वशीय के चतुर्थ अङ्क के वर्णन से अच्छा है, परन्तु कल्पना और सौन्दर्य की दृष्टि से उससे घटिया है। इस अङ्क में माधव ने अपनी अदृश्य प्रिया के पास मेघ के द्वारा सन्देश भेजा है। इस सन्देश के दो श्लोकों पर कालिदास के मेघदूत का प्रभाव पड़ा है। इस नाटक में कई बिखरे हुए सुन्दर दृश्य हैं।

उत्तररामचरित मे सात अङ्क हैं। इसमे रामायण के उत्तरकाण्ड की कथा वर्णित है। इसमे वर्णन किया गया है कि लक्ष्मण के पुत्र चन्द्रकेतु की सुरक्षा मे जाते हुए अश्वमेध के घोडे को लव और कुश ने रोका। इस प्रकार राम अपने दोनो पुत्रो से मिल सके। अन्तिम अङ्क मे रामायण की कथा का एक छोटा सा दृश्य उपस्थित करके राम और सीता का शुभ मिलन दिखाया गया है। नाटक के दृष्टिकोण से उत्तररामचरित बहुत उच्चकोटि का सिद्ध नही होता है। यह नाटक की अपेक्षा एक नाटकीय काव्य अधिक है। इसमे वनो का वर्णन तथा राम और सीता के वियोग का वर्णन अत्यन्त प्रशसनीय और सस्कृत साहित्य मे अतुलनीय है। राम का सीता के आश्रम मे अपने पुत्रो और सीता से मिलना, इस वर्णन पर कालिदास के अभिज्ञान-शाकुन्तल, दिङ्नाग के कुन्दमाला और वेणीसहार का प्रभाव दिखाई पडता है।

भवभूति के ये तीनो नाटक उज्जैन मे कालप्रियानाथ के महोत्सव पर अभिनीत किए गए थे। मालतीमाधव का दृश्य पद्मावती मे रखा गया है।

कारण है कि उनकी रचनाओं में कोयल, आम्रमञ्जरी, अशोक और बकुल आदि वृक्षों का उल्लेख नहीं है। वह माधव में मनुष्य का मांस बेचवाता है और श्मशान का वर्णन करता है। भवभूति ने कथा के वर्णन में कोई विशेष योग्यता प्रदर्शित नहीं की है। उसने अपने नाटकों में समय की एकता का भी पालन नहीं किया है। उसने चरित्र-चित्रण बहुत अच्छा किया है, अतः उसका यह दोष छिप जाता है। उसके सभी पात्र सजीव और भावपूर्ण हैं। उसके नाटकों में एक विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि उनमें विदूषक का सर्वथा अभाव है। उसके नाटकों में से मालतीमाधव में शृङ्गार रस मुख्य है, महावीरचरित में वीररस और उत्तररामचरित में करुण रस मुख्य है। मालतीमाधव आदि के पठन से ज्ञात होता है कि वह भयानक वीभत्स आदि रसों के वर्णन में भी उसी प्रकार दक्ष है, परन्तु करुण रस के वर्णन में अनुपम है। अतएव कहा जाता है कि 'कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते' तथा 'उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते' शृङ्गार के वर्णन में उसने विषय-वासना वाले प्रेम तथा अन्तःपुर के वर्णन को नहीं लिया है। उसने स्त्री और पुरुष के आदर्श प्रेम का ही वर्णन किया है, जो आजन्म पवित्र जीवन बिताते हैं। उसकी शैली गौडी है, विशेष रूप से महावीरचरित और मालतीमाधव में। उसकी शैली परिपुष्ट, उत्कृष्ट, ओजस्विनी और सामञ्जस्ययुक्त है। उत्तररामचरित को छोड़कर अन्य नाटकों में उसने जो गद्यांश दिए हैं, वे इतने लम्बे और क्लिष्ट हैं कि उनका सौन्दर्य नष्ट हो गया है। उसकी पंक्तियों में कवित्व की अपेक्षा भाव की अधिकता है। उसने शिखरिणी छन्द का बहुत कुशलता के साथ प्रयोग किया है।[1]

महत्त्व और ख्याति की दृष्टि से नाटककारों में कालिदास के बाद भवभूति का ही स्थान है। उसने चरित्र-चित्रण और शैली का एक नवीन मार्ग उद्भावित किया है। कालिदास ने प्रकृति के कोमल रूप को अपनाया,

१. क्षेमेन्द्रकृत सुवृत्ततिलक ३-३३।

उत्तररामचरित मे सात अङ्क हैं। इसमे रामायण के उत्तरकाण्ड की कथा वर्णित है। इसमे वर्णन किया गया है कि लक्ष्मण के पुत्र चन्द्रकेतु की सुरक्षा मे जाते हुए अश्वमेध के घोडे को लव और कुश ने रोका। इस प्रकार राम अपने दोनो पुत्रो से मिल सके। अन्तिम अङ्क मे रामायण की कथा का एक छोटा सा दृश्य उपस्थित करके राम और सीता का शुभ मिलन दिखाया गया है। नाटक के दृष्टिकोण से उत्तररामचरित बहुत उच्चकोटि का सिद्ध नही होता है। यह नाटक की अपेक्षा एक नाटकीय काव्य अधिक है। इसमे वनो का वर्णन तथा राम और सीता के वियोग का वर्णन अत्यन्त प्रशसनीय और सस्कृत साहित्य मे अतुलनीय है। राम का सीता के आश्रम मे अपने पुत्रो और सीता से मिलना, इस वर्णन पर कालिदास के अभिज्ञान-शाकुन्तल, दिङ्नाग के कुन्दमाला और वेणीसहार का प्रभाव दिखाई पडता है।

भवभूति के ये तीनो नाटक उज्जैन मे कालप्रियानाथ के महोत्सव पर अभिनीत किए गए थे। मालतीमाधव का दृश्य पद्मावती मे रखा गया है। मालतीमाधव की कथा कवि की अपनी कल्पना है, परन्तु अन्य दोनो नाटको की कथा रामायण पर आश्रित है। उक्त तीनो नाटको का अध्ययन करने से स्पष्ट जान पडता है कि भवभूति के पास जो कुछ भी था उससे वह सन्तुष्ट था। भौतिक वस्तुओ की प्राप्ति के लिए ससार मे असमान सघर्षों का वर्णन करने में उसे विश्वास नही था। वह एक आदर्श गृहस्थ था। उसके अनुसार प्रेम केवल एक भावात्मक कार्य नही बल्कि आत्माओ का आत्मिक सयोग है[1]। इसकी पूर्णता सतति के माध्यम से होती है[2]। अत उसने अन्त पुर के वातावरण या बहुत सी पत्नियो को रखने वाले पात्रो को अपनी रचना का विषय नही बनाया। उसने उन परम्पराओ मे अपने को नही बांधा जिनका अन्य नाटककारो ने पालन किया। यही

१ उत्तररामचरित १–३९ और मालतीमाधव ६–१८।

२ उत्तररामचरित ३–१७।

कारण है कि उसकी रचनाओं में कोयल, आम्रमञ्जरी, अशोक और बकुल आदि वृक्षों का उल्लेख नहीं है। वह माधव से मनुष्य का मांस बेचवाता है और श्मशान का वर्णन करता है। भवभूति ने कथा के वर्णन में कोई विशेष योग्यता प्रदर्शित नहीं की है। उसने अपने नाटकों में समय की एकता का भी पालन नहीं किया है। उसने चरित्र-चित्रण बहुत अच्छा किया है, अतः उसका यह दोष छिप जाता है। उसके सभी पात्र सजीव और भावपूर्ण हैं। उसके नाटकों में एक विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि उनमें विदूषक का सर्वथा अभाव है। उसके नाटकों में से मालतीमाधव में शृङ्गार रस मुख्य है, महावीरचरित में वीररस और उत्तररामचरित में करुण रस मुख्य है। मालतीमाधव आदि के पठन से ज्ञात होता है कि वह भयानक वीभत्स आदि रसों के वर्णन में भी उसी प्रकार दक्ष है, परन्तु करुण रस के वर्णन में अनुपम है। अतएव कहा जाता है कि 'कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते' तथा 'उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते' शृङ्गार के वर्णन में उसने विषय-वासना वाले प्रेम तथा अन्तःपुर के वर्णन को नहीं लिया है। उसने स्त्री और पुरुष के आदर्श प्रेम का ही वर्णन किया है, जो आजन्म पवित्र जीवन विताते हैं। उसकी शैली गौडी है, विशेष रूप से महावीरचरित और मालतीमाधव में। उसकी शैली परिपुष्ट, उत्कृष्ट, ओजस्विनी और सामजस्ययुक्त है। उत्तररामचरित को छोड़कर अन्य नाटकों में उसने जो गद्यांश दिए हैं, वे इतने लम्बे और क्लिष्ट हैं कि उनका सौन्दर्य नष्ट हो गया है। उसकी पंक्तियों में कवित्व की अपेक्षा भाव की अधिकता है। उसने शिखरिणी छन्द का बहुत कुशलता के साथ प्रयोग किया है।[1]

महत्त्व और ख्याति की दृष्टि से नाटककारों में कालिदास के बाद भवभूति का ही स्थान है। उसने चरित्र-चित्रण और शैली का एक नवीन मार्ग उद्भिन्न किया है। कालिदास ने प्रकृति के कोमल रूप को अपनाया

1 क्षेमेन्द्रकृत सुवृत्ततिलक ३-३३।

है, किन्तु भवभूति ने उसके उन्नत और भयकर रूप को अपनाया है। कालिदास ने नाट्यशास्त्रो द्वारा निर्धारित परम्पराओ का पालन किया है, अत वह निश्चित सीमा के अन्दर ही विचरण कर सकता था, परन्तु भवभूति ने उन सीमाओ का उल्लघन किया है और अपने कौशल के प्रदर्शन के लिए विस्तृत क्षेत्र को अपनाया है। जैसे मालतीमाधव[1] मे उसने नाटकीय परम्परा के विरुद्ध रगमच पर व्याघ्र को दिखाया है, श्मशान का दृश्य दिखाया है और मनुष्य के मास का बेचना दिखाया है। उसने भयकर वनो और पर्वतीय अधित्यकाओ और उपत्यकाओ के दृश्यो का वास्तविक चित्र उपस्थित किया है। कालिदास भवभूति की अपेक्षा कल्पना और भावो मे बढा हुआ है और भवभूति गम्भीर, ओजस्वी और भावपूर्ण भावाभिव्यक्ति मे सर्वोच्च आचार्य है। कालिदास जो बात सक्षेप मे व्यजना के द्वारा अभिव्यक्त करते हैं, भवभूनि उसको व्यापक और ओजस्वी रूप मे प्रकट करते हैं। कालिदास पूर्णतया आशावादी थे, अत उनके पात्र वास्तविक होने की अपेक्षा अधिक रसिक एव काल्पनिक हैं। भवभूति ने ससार के दुखो को भुगता था और निराशा का भी अनुभव किया था। उनके पात्र काल्पनिक न होकर अधिक सासारिक और वास्तविक हैं। 'किसी भी अन्य भारतीय नाटक की अपेक्षा भवभूति के नाटक मे प्रायश्चित्त के कारण पवित्र राम और सीता के कोमल प्रेम का अधिक वास्तविकता के साथ वर्णन है।'[2] कालिदास ने अपने पात्रो के द्वारा कुछ सामान्य उपदेशात्मक सूक्तियाँ कहवाई है, किन्तु भवभूति की सूक्तियाँ उच्चकोटि की है। उनके पात्र अपने अनुभव की बातें कहते है। जैसे-कर्त्तव्य-पालन और आत्मबलिदान[3]

---

१ मालती माधव १-८।

२ A A Macdonell History of the Sanskrit literature, पृष्ठ ३६५।

३ उत्तररामचरित १-१२।

सच्ची मित्रता,[1] वास्तविक प्रेम[2], और पुत्र-वात्सल्य[3] आदि की सूक्तियाँ वास्तविकता का प्रदर्शन कराती हैं। उनके नाटकों में हास्य नहीं है, परन्तु पताका-स्थान है। उन्होंने स्मृति, नीतिशास्त्र, कामशास्त्र और वेदान्त में अपनी विशेषता का परिचय दिया है।

भवभूति शब्दब्रह्मवित् था[4]। वह भाषा पर असाधारण अधिकार रखने का दावा करता है।[5] उसके इस दावे को प्रमाणित करने के लिये तिलकमंजरी के लेखक धनपाल की प्रशस्ति से प्रमाण प्राप्त होता है।

स्पष्टभावरसा चित्रैः पदन्यासैः प्रवर्तिता।
नाटकेषु नटस्त्रीव भारती भवभूतिना॥

अनंगहर्षमात्राराज ने ६ अंकों में तापसवत्सराज नाटक लिखा है। आनन्दवर्धन (८५० ई०) ने उसका उल्लेख किया है। उसका निश्चित समय अज्ञात है। वह ८५० ई० से पूर्व हुआ होगा। इसमें नाटक-वर्णन किया गया है कि वासवदत्ता के स्वर्गवास का झूठा समाचार सुनकर उदयन अत्यन्त खिन्न हुआ और वन में इधर-उधर घूमने लगा। वह जीवन से निस्पृह होकर सन्यासी हो गया। अपने को अति दुःखमय देखकर वह अपने आपको नदी में डालकर नष्ट करना चाहता था। इधर वासवदत्ता भी अपने जीवन से तंग आकर नदी में डूबना चाहती थी। वह भी वहीं पहुँची। दोनों एक दूसरे को पाकर प्रसन्न हो जाते हैं और जीवन-त्याग का विचार छोड़ देते हैं।

मायुराज ने रामायण की कथा पर उदात्तराघव नामक नाटक लिखा है। यह ग्रन्थ अब अप्राप्य है। राजशेखर (९०० ई०) ने उसका उल्लेख किया है। अतः लेखक का समय ९०० ई० से पूर्व मानना चाहिए। कुछ आलोचकों ने अनंगहर्षमात्राराज और मायुराज को एक ही व्यक्ति माना

---

१ उत्तररामचरित ४. १३-१४ २ उत्तररामचरित १ ३६
३ उत्तररामचरित ३ १८ ४ उत्तररामचरित ७/२१
५ उत्तररामचरित १/२

है। दामोदर गुप्त ने अनगहर्ष का उल्लेख किया है। दामोदर गुप्त का समय ८०० ई० है। यदि दोनो व्यक्ति एक ही है तो तापसवत्सराज और उदात्तराघव के लेखक का समय ८०० ई० से पूर्व मानना चाहिए।

केरल के एक राजा **कुलशेखरवर्मन्** ने दो नाटक लिखे हैं—**सुभद्राधनजय** और **तपतीसवरण**। यह राजा ७०० ई० मे केरल मे हुए इसी नाम के राजा से भिन्न है। इसका समय ८०० ई० है।

मुरारि श्रीवर्धमानक का पुत्र था। उसने अपने आपको वाल वाल्मीकि लिखा है। रत्नाकर (८५० ई०) के हरविजय मे उसका उल्लेख है। उसने भवभूति (७०० ई०) के उत्तररामचरित से उद्धरण दिया है। अत उसका समय ८०० ई० के लगभग मानना चाहिए। उसने रामायण की कथा पर आश्रित **अनर्घराघव** नाटक लिखा है। इसमे सात अङ्क हैं। कथा के वर्णन मे उसने भवभूति के महावीरचरित का अनुसरण किया है। उसने अन्तिम अक मे राम के लौटकर आने के वर्णन मे जो भौगोलिक वर्णन किया है, वह वहुत त्रुटिपूर्ण है। लेखक मे मौलिकता का अभाव है। परवर्ती साहित्य-शास्त्रियो और वैयाकरणो ने उसकी अलकृत भाषा और परिष्कृत शैली के आधार पर वहुत प्रशसा की है। मखक ने मुरारि की प्रशसा वक्रोक्ति के एक आचार्य के रूप मे की है[1]। 'कतन्दी' नाम की एक रचना का भी उल्लेख मिलता है जो रावणकृत 'वैशेपिकसूत्र' की टीका है। मुरारि भट्टनारायण[2] और भवभूति[3] से प्रभावित था। वहुत कुछ सम्भव है कि

१ श्रीकण्ठचरित २५

२	तुलना कीजिए—	अनर्घराघव ४/४६	को	वेणीसहार	१/१२ से
	,,	,, ४/२५	,,	,,	३/२३ से
३	,,	,, १/५६	,,	उत्तररामचरित	६/१२ से
	,,	,, २/६	,,	,,	२/४ से
	,,	,, २/५८	,,	,,	१/१० से
	,,	,, ४/२६	,,	महावीरचरित	२/३६ से

उनने नाटक की रचना भवभूति की स्पर्धा में की। इनका निर्देश उन विद्वानों की प्रचलित उक्तियों द्वारा ही हो जाता है जिन्होंने माघ की भाँति भाषा पर अधिकार सम्बन्धी उनकी प्रशस्ति की है।

भवभूतिमनादृत्य निर्वाणमतिना मया।
मुरारिपदचिन्तायामिदमाधीयते मनः॥
मुरारिपदचिन्तायां भवभूतेस्तु का कथा।
भवभूतिं परित्यज्य मुरारिमुररीकुरु॥
मुरारिपदचिन्ता चेत् तदा माघे मतिं (रतिं) कुरु।
मुरारिपदचिन्ता चेत् तदा माघे मतिं कुरु॥

हनुमान ने रामायण की कथा के आधार पर महानाटक या हनुमन्नाटक लिखा है। यह माना जाता है कि रामायण के एक पात्र राम के आदर्श भक्त हनुमान ने अपने आराध्य देव राम का जीवन नाटक के रूप में लिखा है। उन्हें जब यह ज्ञात हुआ कि वाल्मीकि रामायण लिख रहे हैं, तब उनने यह सोचा कि उसका यह ग्रन्थ वाल्मीकि के ग्रन्थ के महत्त्व को नष्ट कर देगा, अतः उसने इस ग्रन्थ को समुद्र में डाल दिया। धारा के राजा भोज (१००५-१०५४ ई०) की प्रेरणा से शिलाओं पर अपूर्ण रूप में लिखा हुआ यह नाटक संग्रह करके ग्रन्थरूप में प्रकट किया गया। इस परम्परा के अनुसार इसका समय १०५० ई० के लगभग प्रतीत होता है। आनन्दवर्धन (८५० ई०) ने इस नाटक का उल्लेख किया है, अतः अपूर्ण रूप में यह नाटक ८५० ई० से पूर्व अवश्य प्राप्त रहा होगा। इस नाटक के दो सम्स्करण आजकल प्राप्त हैं—(१) मधुसूदन ने ९ अङ्कों में तैयार किया है। (२) दामोदर मिश्र ने १४ अङ्कों में तैयार किया है। इसमें प्राकृत का एक भी गद्यांश नहीं है और न विदूषक ही है। इसमें गद्यभाग बहुत थोड़ा है। यह भी वर्णनात्मक है।

राजशेखर (९०० ई०) ने भीमट को पाँच नाटकों का लेखक माना है। अतः भीमट का समय ९०० ई० से पूर्व मानना चाहिए। उनके सभी नाटक

नष्ट हो चुके हैं। उसके नाटको मे से नाम-मात्र से ज्ञात तीन नाटको **स्वप्न-दशानन, प्रतिज्ञाचाणक्य** और **मनोरमावत्सराज** मे से स्वप्नदशानन नाटक सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।

राजशेखर यायावरीय वश मे उत्पन्न हुआ था। वह प्रतिहार राजा **निर्भय** (८६५ ई०) का गुरु था। अत उसका समय ९०० ई० के लगभग मानना चाहिए। उसने चहमान वश की एक सुन्दर स्त्री अवन्तिसुन्दरी से विवाह किया था। वालरामायण की प्रस्तावना से ज्ञात होता है कि उसने ६ नाटक लिखे है। उनमे से केवल चार प्राप्त होते हैं—**कर्पूरमजरी, बालरामायण, विद्धसालभजिका** और **बालभारत**।

कर्पूरमजरी उसका सर्वप्रथम नाटक है। यह सट्टक-नाटक है। यह उसने अपनी पत्नी की प्रार्थना पर बनाया था। इसमे राजकुमार चण्डपाल और राजकुमारी कर्पूरमजरी के विवाह का वर्णन है। इसमे दोहद-वर्णन, रानी के द्वारा राजकुमार के वन्दी वनाये जाने आदि के वर्णन से ज्ञात होता है कि इस पर मालविकाग्निमित्र और रत्नावली का प्रभाव पडा है। इसके अङ्को का नाम जवनिकान्तर है। इसका दूसरा नाटक **बालरामायण** है। यह उसने राजा निर्भय के लिए लिखा था। इसके दस अङ्को मे राम-कथा का वर्णन है। इसको महानाटक कहते हैं। इसकी प्रस्तावना नाटक के एक अङ्क के वरावर है और प्रत्येक अङ्क एक नाटिका के वरावर है। रावण सीता के स्वयवर के लिए एक प्रार्थी था। स्वयवर मे निराश होकर जाते समय उसने प्रतिज्ञा की कि जो भी सीता से विवाह करेगा, उसका मैं वध करूँगा। सीता का विवाह लका मे उनके सामने अभिनय किया जाता है। वह सीता की लकडी की प्रतिमा से प्रेम करने लगता है। विक्रमोर्वशीय मे पुरूरवा की तरह वह सीता के वियोग को सहन करने मे असमर्थ होकर वन मे घूमने लगता है। इसके अन्तिम अङ्क में विमान से राम के लौटने का वर्णन है। इस अङ्क के वर्णन से ज्ञात होता है कि लेखक का भौगोलिक ज्ञान अपूर्ण है। इस नाटक मे रावण के प्रेम को महत्त्व दिया गया है। उसका तीसरा नाटक

येद्धसालभजिका है। इनमे चार अङ्क हैं। यह एक नाटिका है। इसमे र्णन किया गया है कि राजकुमार विद्याधरमल्ल ने दो राजकुमारियो मृगाका-वली और कुवलयमल से विवाह किया। यह नाटिका मालविकाग्निमित्र, रत्नावली और स्वप्नवासवदत्त के अनुकरण पर लिखी गई है। बालभारत का दूसरा नाम प्रचण्डपाण्डव है। इसमे दो अङ्क हैं। इसमे द्यूतक्रीडा तक पाण्डवो के जीवन का वर्णन है। इसका पांचवां नाटक हरविलास है। यह अप्राप्य है। बाद के साहित्यशास्त्रियो ने इसका उल्लेख किया है। इनके षष्ठ नाटक का नाम अज्ञात है।

राजशेखर ने अपने आपको वाल्मीकि का अवतार माना है। वह कथा की रचना मे विशेष निपुण नही है। वह सुन्दर और परिष्कृत शैली के प्रयोग में बहुत दक्ष है। उसने एक पूरा नाटक प्राकृत मे लिखा है। उसने अपने नाटको मे उन शब्दो का प्रयोग किया है, जो उनके समय मे बोलचाल मे प्रचलित थे।

क्षेमीश्वर ने राजशेखर के आश्रयदाता कन्नौज के राजा महीपाल (९१४ ई०) के लिए चण्डकौशिक नाम का एक नाटक लिखा है। अत. उसका समय ९०० ई० के लगभग मानना चाहिए। इनमे पांच अङ्क हैं। इसमे विश्वामित्र और हरिश्चन्द्र की कथा है। इसको नैषधानन्द नाटक का भी लेखक माना जाता है। इसके सात अङ्को मे नल का जीवन-चरित वर्णित है।

इनके अतिरिक्त चार और नाटक हैं, जो मूल रूप मे अप्राप्य हैं, किन्तु उद्धरणो के द्वारा ज्ञात हैं। ये हैं—तरगदत्त, पुष्पदूषितक, पाण्डवानन्द और ललितराम। धनिक (१००० ई०) ने अपने दशरूपावलोक मे इनके उद्धरण दिये हैं। इन नाटको का निश्चित समय अज्ञात है, तथापि इनका समय १००० ई० के पूर्व समझना चाहिए। इन चारो नाटको के लेखको का नाम भी अज्ञात है। इनमे से तरंगदत्त और पुष्पदूषितक प्रकरण नाटक हैं। तरगदत्त मे एक वेश्या नायिका है और पुष्पदूषितक मे एक कुलीन स्त्री

नायिका है। पुष्पदूषितक मे मूलदेव के मित्र समुद्रदत्त के प्रेम का वर्णन है। पाण्डवानन्द महाभारत पर आश्रित है और चलितराम रामायण पर आश्रित है।

क्षेमेन्द्र (१०५० ई०) ने बहुत से ग्रन्थ लिखे है। उनमे से कुछ नाटक है। इनमे से अधिकाश नष्ट हो चुके है। क्षेमेन्द्र ने साहित्यशास्त्र पर जो ग्रन्थ लिखे हैं, उनमे उसने इन नाटको के उदाहरण दिये हैं, उनसे इनका नामादि ज्ञात होता है। उसके नाटको मे से चित्रभारत और कनकजानकी दो मुख्य ज्ञात होते हैं। ये दोनो नाटक क्रमश महाभारत और रामायण पर आश्रित हैं। विल्हण (१०८० ई०) ने एक कर्णसुन्दरी नाम की नाटिका लिखी है। इसमे अनहिलवाद के कामदेव त्रैलोक्यमल्ल का बडी आयु मे कर्णाट की राजकुमारी मियनल्लदेवी के साथ विवाह का वर्णन है। शखधर कविराज ने १२वी शताब्दी ई० के प्रारम्भ मे एक प्रहसन लटकमेलक लिखा है। लगभग इसी समय पद्मचन्द के पुत्र यशश्चन्द्र ने मुद्रितकुमुदचन्द्र नामक नाटक लिखा है। इसमे उसने एक शास्त्रार्थ को नाटकीय रूप दिया है, जिसमे श्वेताम्बर देवसूरि ने दिगम्बर कुमुदचन्द्र को परास्त कर दिया था। यह घटना ११२४ ई० मे घटित हुई थी। इसी शताब्दी मे काचनाचार्य ने एक व्यायोग नाटक धनजय-विजय लिखा है। उसका दूसरा नाम काचनपडित था। इसमे विराट के नगर से गायो को चुराने के इच्छुक कौरवो पर अर्जुन की विजय का वर्णन है। रामचन्द्र जैन हेमचन्द्र (१०८८-११७२ ई०) का काणा शिष्य था। उसने लगभग एक सौ ग्रन्थ लिखे है। उसके नाटको मे से ये प्रसिद्ध हैं—(१) नलविलास। इसमे सात अङ्क है। इसमे नल का जीवन वर्णित है। (२) निर्भयभीम। इसमे भीम के पराक्रमो का वर्णन है। यह व्यायोग नाटक है। (३) सत्यहरिश्चन्द्र। इसमे हरिश्चन्द्र की सत्य-प्रतिज्ञा का वर्णन है। इसमे ६ अङ्क हैं। (४) कौमुदीमित्रानन्द। इसमे दस अङ्क है। यह एक कहानी पर आश्रित है। रामचन्द्र परिष्कृत और ओज-

विग्रहराजदेव विशालदेव १२वीं शताब्दी ई० में चहमान वंश का एक राजा था। उसने ११५३ ई० में हरकेलिनाटक लिखा है। इसमें किरात-वेषधारी शिव और अर्जुन के युद्ध का वर्णन है। यह अधूरा अजमेर में एक शिला पर खुदा हुआ सुरक्षित है। लगभग इसी समय सोमदेव ने ललित-विग्रहराजनाटक नामक नाटक लिखा है। वह विग्रहराजदेव का आश्रित कवि था। इसमें उसने अपने आश्रयदाता का राजकुमारी देशालदेवी के साथ प्रेम का वर्णन किया है। यह नाटक भी अजमेर में अपूर्ण रूप में एक शिला पर सुरक्षित है।

वत्सराज कालंजर के राजा परमार्दिदेव का मन्त्री था। परमार्दिदेव ने ११६३ से १२०३ ई० तक राज्य किया है। वत्सराज एक कवि था। उसने ६ नाटक लिखे हैं। उनमें से प्रत्येक रूपक के अप्रचलित भेदों पर है। (१) किरातार्जुनीय। यह भारवि के किरातार्जुनीय पर निर्भर है। यह व्यायोग नाटक है। (२) कर्पूरचरित। यह भाण नाटक है। (३) हास्यचूडामणि। यह एक प्रहसन है। (४) रुक्मिणीहरण। यह चार अङ्कों में एक ईहामृग नाटक है। इसमें कृष्ण के द्वारा रुक्मिणी के हरण का वर्णन है। (५) त्रिपुरदाह। यह चार अङ्कों में डिम नाटक है। इसमें शिव के द्वारा त्रिपुर के दाह का वर्णन है। (६) समुद्रमथन। यह तीन अङ्कों में समवकार नाटक है। इसमें समुद्र के मन्थन का वर्णन है।

जयदेव महादेव और सुमित्रा का पुत्र था। वह १३वीं शताब्दी ई० के पूर्वार्द्ध में हुआ था। वह महानैयायिक, साहित्यशास्त्री और नाटककार था। उसको 'पक्षधरमिश्र' की उपाधि न्यायशास्त्र की विद्वत्ता के कारण मिली थी और प्रसन्नराघव नाटक में सुन्दर गीतात्मक श्लोकों के कारण पीयूषवर्ष की उपाधि मिली थी। प्रसन्नराघव में सात अङ्क हैं। यह रामायण की कथा पर आश्रित है। इसमें रावण और एक दूसरा राक्षस बाण सीता से विवाह के लिए प्रतिद्वन्द्वी के रूप में हैं। यह प्रायः भवभूति के महावीरचरित के अनुकरण पर है। इसमें बहुत से सुन्दर गेय श्लोक हैं। इसके श्लोक अधिकतर अनाटकीय हैं।

मदन नाम के एक कवि ने एक नाटिका **पारिजातमंजरी** लिखी है। इसका दूसरा नाम **विजयश्री** है। इसमे चार अङ्क हैं। उसकी उपाधि वालसरस्वती थी। वह अपने एक शिष्य परमार वश के राजा अर्जुनवर्मा का आश्रित कवि था। इसमे वर्णन किया गया है कि अर्जुनवर्मा की छाती पर एक माला गिरी और वह एक स्त्री के रूप मे परिवर्तित हो गई और उसका विवाह अर्जुनवर्मा से हो गया। इस नाटक के दो अङ्क धारा मे शिला पर खुदे हुए हैं। एक श्वेताम्बर जैन **जयसिंह सूरि** ने १२३० ई० मे **हम्मीर-मदमर्दन** नामक नाटक लिखा है। इसमे पाँच अङ्क हैं। इसमे घोलक के राजा वीरधवल के द्वारा गुजरात पर आक्रमण करने वाले मुसलमानो को परास्त करने का वर्णन

प्रह्लादन परमारवशी धराधवल का भाई था। वह १३०० ई० के लगभग अपने भाई के नीचे युवराज था। उसने **पार्थपराक्रम** नामक व्यायोग लिखा है। इसमे विराट राजा के यहाँ से गायो को चुराने वाले कौरवो को अर्जुन के द्वारा हराने का वर्णन है। **मोक्षादित्य** ने एक व्यायोग **भीम-विक्रम** लिखा है। उसमे भीम के पराक्रमो का वर्णन है। इसकी सबसे प्राचीन हस्त-लिखित प्रति का समय १३२८ ई० है। अत इसका लेखक इससे पूर्ववर्ती होना चाहिए। एक जैन मुनि तथा जयप्रभसूरि के शिष्य **रामभद्रमुनि** ने १३०० ई० के लगभग ६ अङ्को मे **प्रबुद्धरौहिणेय** नामक नाटक लिखा है इसमे डाकू रौहिणेय के पराक्रमो का वर्णन है। केरल के एक राजकुमार **रविवर्मा** ने १३०० ई० के लगभग पाँच अङ्को मे **प्रद्युम्नाभ्युदय** नाटक लिखा है। इसमे पाँच अङ्क हैं। इसमे वज्रपुर के राजा वज्रनाभ के नाश का वर्णन है और राजकुमार प्रद्युम्न का राजकुमारी प्रभावती के साथ विवाह का वर्णन है। **विद्यानाथ** (१३०० ई०) ने **प्रतापरुद्रियकल्याण** नाटक पाँच अङ्को मे लिखा है। इसमे वरगल के राजा प्रतापरुद्र (१२९४–१३२५ ई०) का राजगद्दी पर बैठने का वर्णन है। वह नाटक लेखक के साहित्य-शास्त्र के एक ग्रन्थ प्रतापरुद्रियशोभूषण में ही सम्मिलित है। नाटककार ने यह

नाटक इसलिए लिखा है कि उसने साहित्यशास्त्र पर जो ग्रन्थ लिखा है, उसमें नाट्यशास्त्र के विषय में जो नियम दिये हैं, उनका उदाहरण इसमें प्रस्तुत किया जाय। नरसिंह विद्यानाथ अथवा अगस्त्य का भतीजा था। उसने १३५० ई० के लगभग आठ अङ्कों में कादम्बरीकल्याण नाम से कादम्बरी की कथा को नाटकीय रूप में प्रस्तुत किया है। नरसिंह के भाई तथा मधुराविजय की लेखिका गंगादेवी के गुरु विश्वनाथ ने १३५० ई० के लगभग सौगन्धिकाहरण नामक व्यायोग रूपक लिखा है। इसमें वर्णन किया गया है कि द्रौपदी के कथन पर भीम सौगन्धिका का फूल लाता है। ज्योतिरीश्वर ने एक प्रहसन धूर्तसमागम लिखा है। उसकी उपाधि कविशेखर थी। वह १४वीं शताब्दी ई० के पूर्वार्द्ध में हुआ था। भास्कर ने उन्मत्तराघव नाम का एक एकाकी नाटक लिखा है। उसमें सीता के वियोग में उन्मत्त राम का वर्णन है। इसके लेखक का निर्णयात्मक परिचय अज्ञात है। यदि इस नाटक में उल्लिखित विद्यारण्य विजयनगर के निवासी प्रसिद्ध विद्वान् विद्यारण्य ही हैं, तो इनका समय १३५० ई० के लगभग माना जा सकता है। सीता स्त्रियों के लिए निषिद्ध एक उपवन में प्रवेश करती है और अदृष्ट हो जाती है। अगस्त्य ऋषि ने राम पर दया की और राम को सीता प्राप्त करा दी। यह पूरा नाटक विक्रमोर्वशीय के चतुर्थ अङ्क के अनुकरण पर लिखा गया है। विजयनगर के हरिहर द्वितीय के पुत्र विरूपाक्ष ने एक एकाकी नाटक उन्मत्तराघव लिखा है। इनका समय १४वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध ज्ञात होता है। यह प्रेक्षणक नाटक है। सीता के हर्ता रावण पर लक्ष्मण ने आक्रमण किया और उसको मार दिया। राम उस समय उन्मत्तावस्था में थे। जब लक्ष्मण सीता को ले आये तब राम होश में आये। इस पर विक्रमोर्वशीय के चतुर्थ अङ्क का प्रभाव पड़ा है। विरूपाक्ष का ही दूसरा नाटक नारायणविलास है। एक नेपाली कवि मणिक ने १४वीं शताब्दी ई० के अन्तिम भाग में भैरवानन्द नामक नाटक लिखा है। इसमें भैरव का एक स्वर्गीय स्त्री मदनवती से प्रेम का वर्णन है। कोचिनदेश के लेखक उदण्ड (१४०० ई०) ने मल्लिकामारुत नामक एक दस अङ्कों में

प्रकरण नाटक लिखा है। यह मालतीमाधव के अन्धानुकरण पर लिखा गया है। काशीपति कविराज ने एक भाण नाटक मुकुन्दानन्द लिखा है। इसका समय १३वी शताब्दी ई० से पूर्व का नही है। वामनभट्ट वाण (१४२० ई०) ने तीन नाटक लिखे हैं—पार्वतीपरिणय, कनकलेखा-कल्याण और शृङ्गारभूपणभाण। पार्वतीपरिणय मे पाँच अङ्क हैं। इसमे पार्वती के शिव से विवाह का वर्णन है। यह कुमारसम्भव पर आश्रित है। कनकलेखाकल्याण एक नाटिका है। इसमे चार अक हैं। शृङ्गारभूपणभाण एक भाण नाटक है। गगाधर ने गगादासप्रतापविलास नाटक लिखा है। इसमे १४५० ई० मे हुए राजकुमार चम्पानीर और गुजरात के शाह के युद्ध का वर्णन है। हरिहर ने पांच अङ्को मे भर्तृहरिनिर्वेद नाटक लिखा है। इसमे राजा भर्तृहरि के वैराग्य का वर्णन है। इसका समय १५वी शताब्दी ई० पूर्वार्द्ध समझना चाहिए। श्रीकृष्ण चैतन्य का शिष्य रूपगोस्वामी (१५०० ई०) तीन नाटको का लेखक माना जाता है—(१) विदग्धमाधव। इसमे सात अङ्क हैं। (२) ललितमाधव। इसमे दस अङ्क है। (३) दानकेलिकौमुदी। यह भाण नाटक है। ये तीनो नाटक कृष्ण के स्तुति-रूप मे लिखे गये हैं। इसी समय गोकुलनाथ ने सात अङ्को मे मुदितमदालसा नाटक लिखा है। शेषकृष्ण (१६०० ई०) ने कसवध नाटक लिखा है। इसमे सात अङ्क हैं। इसमे कृष्ण के द्वारा कस के वध का वर्णन है और कस के पिता उग्रसेन को गद्दी पर बैठाने का वर्णन है। अप्पयदीक्षित से पूर्वोत्पन्न रत्नखेट श्रीनिवास दीक्षित (१५७० ई०) ने भैमीपरिणय नाटक लिखा है। इसमे दमयन्ती के नल से विवाह का वर्णन है। गोविन्द दीक्षित के पुत्र यज्ञनारायण दीक्षित ने रघुनाथविलास नाटक लिखा है। इसमे तजौर के राजा रघुनाथ नायक (१६१४-१६३२ ई०) का जीवन-चरित वर्णित है। इसका समय १६३० ई० के लगभग है। इसी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे नैपाल के एक आश्रित राजा जगज्ज्योतिर्मल्ल ने हरगौरीविवाह नाटक लिखा है। इसे एक सगीत-प्रधान नाटक कह सकते हैं। गुरुराम (१६३० ई०) तीन नाटको का

लेखक माना जाता है। (१) मदनगोपालविलास—यह भाण नाटक है। सुभद्राधनजय—इसमे पांच अङ्क हैं। (३) रत्नेश्वरप्रसादन—इसमे पांच अङ्क हैं। लगभग इसी समय राजचूडामणि दीक्षित ने तीन नाटक लिखे हैं—आनन्दराघव नाटक, कमलिनीकलहंस नाटक और शृंगारसर्वस्वभाण। शिवलीलार्णव के लेखक नीलकण्ठ दीक्षित (१६५० ई०) ने नल की कथा पर आश्रित नलचरित लिखा है। इसमें ६ अङ्क हैं, परन्तु यह अपूर्ण ज्ञात होता है। विश्वगुणादर्श के लेखक वेंकटाध्वरी (१६५० ई०) ने प्रद्युम्नानन्द नाटक लिखा है। इसमे ६ अङ्क हैं। इसमे प्रद्युम्न का रति के साथ विवाह का वर्णन है। इसी समय रुद्रदास ने चन्द्रलेखा नामक एक सट्टक नाटक लिखा है। इसमे चन्द्रलेखा और मानवेदराज के विवाह का वर्णन है। महादेव (१६५० ई०) ने राम की कथा पर आश्रित दस अङ्कों मे अद्भुतदर्पण नाटक लिखा है। इसमे लंका की घटनाएं एक अद्भुत दर्पण के द्वारा दिखाई गई हैं। इसमे विदूषक है। रामभद्र दीक्षित (१७०० ई०) ने जानकीपरिणय नाटक लिखा है। इसमे कई अवास्तविक पात्र भी दिये गये हैं। लंका का एक राक्षस विद्युज्जिह्व, रावण, सारण और ताड़का क्रमश विश्वामित्र, राम, लक्ष्मण और सीता का वेष धारण करते हैं। वे इस वेष मे राम, लक्ष्मण और सीता को धोखा देने के लिए विश्वामित्र के आश्रम पर आते हैं। शूर्पणखा एक संन्यासिनी के वेष मे भरत के पास जाती है और प्रयत्न करती है कि राम की मृत्यु का असत्य समाचार सुनाकर भरत को भी मरणोन्मुख कर दे। राम विमान से अयोध्या पहुँचते हैं और राक्षसों का यह प्रपंच प्रकट हो जाता है। इस प्रकार उनका प्रयत्न निष्फल रहा। तब राम का राज्याभिषेक होता है। इनका ही एक भाण नाटक शृंगारतिलक है। इस नाटक का दूसरा नाम अय्याभाण है, क्योंकि लेखक का दूसरा नाम अय्य था। नल्लाकवि (१७०० ई०) सुभद्रापरिणय नाटक और शृंगारसर्वस्व नामक भाण का लेखक माना जाता है। लगभग इसी समय ये नाटक भी लिखे गये हैं—(१) सर्वविनायक का कौतुकरत्नाकर नामक प्रहसन, (२) सामराज दीक्षित का एक प्रहसन

स्वीकार करने का वर्णन है । वेदान्तदेशिक ने १४वी शताब्दी ई० के पूर्वार्द्ध एक रूपकात्मक नाटक संकल्पसूर्योदय लिखा है । इसमे संकल्परूपी सूर्य के उदय का वर्णन है । इसमे दस अङ्क हैं । इसमे वेदान्त के विशिष्टाद्वैत मत का समर्थन किया गया है । इसमें लेखक ने यह मत प्रस्तुत किया है कि शान्त को भी एक मुख्य रस मानना चाहिए[1] । इसमे छली और अहंकारी व्यक्तियो का जीवन तथा उनकी कमियो का बहुत विस्तार के साथ वर्णन किया गया है । तुम्बुरु और नारद आदि मुनि रंगमंच पर आते हैं । विष्णुभक्ति के द्वारा सुखद अन्त होता है । गोकुलनाथ ने १६वी शताब्दी मे अमृतोदय नाटक लिखा है । इसमे सांसारिक विपत्तियो और कष्टो का वर्णन है तथा उनके निवारण का उपाय बताया गया है । इसके पात्र आन्वीक्षिकी, मीमांसा और श्रुति आदि है । रत्नखेट श्रीनिवास दीक्षित (१५७० ई०) ने भावनापुरुषोत्तम नाटक लिखा है । लगभग इसी समय कविकर्णपूर ने चैतन्य सम्प्रदाय की धार्मिक परम्पराओ के आधार पर चैतन्यचन्द्रोदय नाटक । वेदकवि (१६८४-१७२८ ई०) ने सात अङ्कों मे एक नाटक विद्याप ा है । विद्या का जीवात्मा से विवाह का वर्णन किया गया ने अङ्को मे जीवानन्दनम् नाटक लिखा है । इसमे ाहत्त्व वर्णन किया गया है । कुछ विद्वानो के तन्जौर के मराठा राजा शाहजी (१६८ खिन की रचना है । भूदेव शुक्ल का गया है । इसमे उस समय की धार्मि

छायानाटक में नही है । छाया और धागे की स

१.

पर्दे के पीछे खडे हुए व्यक्ति बोलते है। यह वर्तमान सिनेमा का प्रारम्भिक रूप समझना चाहिए। प्राचीन नाटको मे इस प्रकार के नाटको के अभाव से ज्ञात होता है कि इस प्रकार के नाटक बाद की रचना है। इस प्रकार के नाटक भारतवर्ष मे कब से प्रचलित हुए यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता है। अभिनव गुप्त (१००० ई०) की अभिनवभारती मे इस प्रकार के नाटको का अस्पष्ट उल्लेख है।

मेघप्रभाचार्य के धर्माभ्युदय नाटक की प्रस्तावना मे इस नाटक को छाया-नाटक कहा गया है। इस ग्रन्थ का समय अज्ञात है। सुभट का दूतागद नाटक १२४३ ई० मे रगमच पर दिखाया गया था। इसमे वर्णन किया गया है कि अगद दूत के रूप मे रावण के पास जाता है। सुभट १२०० ई० के लगभग जीवित रहा होगा। व्यास श्रीरामदेव ने तीन छाया नाटक लिखे है—सुभद्रा-परिणय, रामाभ्युदय और पाण्डवाभ्युदय। यह १५वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे हुआ था। अन्य छाया नाटक अगण्य से हैं।

संस्कृत नाटको का ह्रास

संस्कृत नाटको के ह्रास के कई कारण हैं। रामायण और महाभारत के प्रभाव ने प्रतिभाशाली नाटककारो को यह अवसर नही दिया कि वे अपनी इच्छा के अनुसार नाटको की कथा रचते। इसका प्रभाव यह हुआ कि कई नाटक एक ही नाम के लिखे गये और कई नाटको की कथा प्राय एक ही रही। ज्यो-ज्यो नाटको की संख्या बढती गयी, त्यो-त्यो नाट्यशास्त्रीय नियम और कठोर होते गये। नाटककारो ने यह कठिनाई अनुभव की कि सभी नाटकीय नियमो का पालन करना बहुत कठिन है, अत वे एक प्रकार के ही नाटक बनाते रहे। कवियो और नाटककारो ने अपनी भाषा मे अप्रचलित शब्दो और भावो को स्थान देना प्रारम्भ किया। परिणामस्वरूप उनकी भाषा क्लिष्ट हो गयी और जनसामान्य की समझ मे नही आती थी। बाद के नाटको मे जो कृत्रिमता दृष्टिगोचर होती है, उसका उत्तरदायित्व उस सुशिक्षित जनता पर है जो कि इस प्रकार की कृत्रिम शैली और सामासि-

स्वीकार करने का वर्णन है । **वेदान्तदेशिक** ने १४वी शताब्दी ई० के पूर्वार्द्ध एक रूपकात्मक नाटक **सकल्पसूर्योदय** लिखा है। इसमे सकल्परूपी सूर्य के उदय का वर्णन है। इसमे दस अङ्क हैं। इसमे वेदान्त के विशिष्टाद्वैत मत का समर्थन किया गया है। इसमें लेखक ने यह मत प्रस्तुत किया है कि शान्त को भी एक मुख्य रस मानना चाहिए[1]। इसमे छली और अहकारी व्यक्तियो का जीवन तथा उनकी कमियो का वहुत विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। तुम्बुरु और नारद आदि मुनि रगमच पर आते हैं। विष्णुभक्ति के द्वारा सुखद अन्त होता है। **गोकुलनाथ** ने १६वी शताव्दी मे **अमृतोदय** नाटक लिखा है। इसमे सासारिक विपत्तियो और कष्टो का वर्णन है तथा उनके निवारण का उपाय बताया गया है। इसके पात्र आन्वीक्षिकी, मीमासा और श्रुति आदि हैं। **रत्नखेट श्रीनिवास दीक्षित** (१५७० ई०) ने **भावनापुरुषोत्तम** नाटक लिखा है। लगभग इसी समय **कविकर्णपूर** ने चैतन्य सम्प्रदाय की धार्मिक परम्पराओ के आधार पर **चैतन्यचन्द्रोदय** नाटक लिखा है। **वेदकवि** (१६८४-१७२८ ई०) ने सात अङ्को मे एक नाटक **विद्यापरिणय** लिखा है। इसमे विद्या का जीवात्मा से विवाह का वर्णन किया गया है। वेदकवि ने ही सात अङ्को मे **जीवानन्दनम्** नाटक लिखा है। इसमे आयुर्वेद और वेदान्तदर्शन का महत्त्व वर्णन किया गया है। कुछ विद्वानो के अनुसार वेदकवि के ये दोनो नाटक तन्जौर के मराठा राजा शाहजी (१६८४-१७१० ई०) के मन्त्री आनन्दरायमखिन की रचना है। **भूदेव शुक्ल** का **धर्मविजयनाटक** १७३७ ई० मे लिखा गया है। इसमे उस समय की धार्मिक विधियो का विस्तृत वर्णन है।

छाया नाटक

छायानाटक आधुनिक देन है। प्राचीन नाट्यशास्त्रो मे इसका उल्लेख नही है। छाया नाटक मे गत्ते के वने हुए चित्र पर्दे पर टाँग दिये जाते हैं और धागे की सहायता से उनको चलाया जाता है। उनके वीच का सवाद

---

१. सकल्पसूर्योदय १ १६।

पर्दे के पीछे खड़े हुए व्यक्ति बोलते है। यह वर्तमान सिनेमा का प्रारम्भिक रूप समझना चाहिए। प्राचीन नाटकों मे इस प्रकार के नाटकों के अभाव से ज्ञात होता है कि इस प्रकार के नाटक बाद की रचना हैं । इस प्रकार के नाटक भारतवर्ष मे कब से प्रचलित हुए यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता है। अभिनव गुप्त (१००० ई०) की अभिनवभारती मे इस प्रकार के नाटकों का अस्पष्ट उल्लेख है।

मेघप्रभाचार्य के धर्माभ्युदय नाटक की प्रस्तावना मे इस नाटक को छाया-नाटक कहा गया है। इस ग्रन्थ का समय अज्ञात है। सुभट का दूतांगद नाटक १२४३ ई० मे रगमच पर दिखाया गया था। इसमे वर्णन किया गया है कि अगद दूत के रूप मे रावण के पास जाता है। सुभट १२०० ई० के लगभग जीवित रहा होगा। व्यास श्रीरामदेव ने तीन छाया नाटक लिखे हैं—सुभद्रा-परिणय, रामाभ्युदय और पाण्डवाभ्युदय। वह १५वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे हुआ था। अन्य छाया नाटक अगण्य से है।

संस्कृत नाटकों का ह्रास

संस्कृत नाटकों के ह्रास के कई कारण है। रामायण और महाभारत के प्रभाव ने प्रतिभाशाली नाटककारों को यह अवसर नही दिया कि वे अपनी इच्छा के अनुसार नाटकों की कथा रखते। इसका प्रभाव यह हुआ कि कई नाटक एक ही नाम के लिखे गये और कई नाटकों की कथा प्राय. एक ही रही। ज्यों-ज्यों नाटकों की संख्या बढ़ती गयी, त्यों-त्यों नाट्यशास्त्रीय नियम और कठोर होते गये। नाटककारों ने यह कठिनाई अनुभव की कि सभी नाटकीय नियमों का पालन करना बहुत कठिन है, अत वे एक प्रकार से ही नाटक बनाते रहे। कवियों और नाटककारों ने अपनी भाषा मे अप्रचलित शब्दों और भावों को स्थान देना प्रारम्भ किया। परिणामस्वरूप उनकी भाषा कृत्रिम हो गयी और जनसामान्य की समझ मे नही आती थी। बाद के नाटकों मे जो कृत्रिमता दृष्टिगोचर होती है, उसका उत्तरदायित्व उस सुशिक्षित जनता पर है जो कि इस प्रकार की कृत्रिम शैली और भावाभि-

एक इतिहास सम्बन्धी प्रयत्न समझना चाहिए। उनके मतानुसार वह भी देवी घटनाओ पर पूर्ण विश्वास रखता था, अतएव ऐतिहासिक घटनाओ का पूर्ण तत्त्व ठीक नही समझ सकता था। इसीलिये उसने ऐतिहासिक महत्त्व की घटनाओ का जो अपने ग्रन्थ मे उल्लेख किया है, उसे अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन समझना चाहिए।

सत्य कहा जाय तो भारतीयो ने कोई इतिहास का ग्रन्थ नही लिखा है। पाश्चात्य विद्वान् ऐतिहासिक बुद्धि से जो अर्थ समझते हैं, उसका भारत मे अभाव था। भारतीय विचारधारा इतिहास लिखने के विरुद्ध है, यह सत्य है। तथापि इस प्रकार के प्रयत्न अवश्य किए जाते रहे हैं कि इतिहास लिखा जाय और समकालीन घटनाओ का उल्लेख किया जाय, परन्तु ये सब कार्य भारतीय विचारधारा के अनुसार ही किये गये हैं। पाश्चात्य विद्वानो ने जो ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखे हैं, उनमे ऐतिहासिक तथ्यो को विशेष मुख्यता दी गई है, भाषा को नही, परन्तु भारतीयो ने जो ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखे हैं, उनमें भाषा ही को प्रधानता दी गई है, ऐतिहासिक तथ्यो को उतनी प्रधानता नही। उन्होने जो कुछ भी लिखा है, वह गद्यकाव्य, पद्यकाव्य, चम्पू या नाटक के रूप मे लिखा है। काव्य नाटक आदि के सभी नियमो का इनमे पालन किया गया है। इतिहास-सम्बन्धी ग्रन्थो के लेखक कवि थे। वे किसी राजा के आश्रित थे। अत वे अपने काव्यो मे उतना ही ऐतिहासिक तथ्य रख सकते थे, जितना उनके आश्रयदाताओ को रुचिकर होता था। वह अंश भी राजाओ की रुचि के अनुकूल रखा जाता था। अत यह स्वाभाविक है कि ऐसे ग्रन्थो से निष्पक्ष ऐतिहासिक तथ्य की प्राप्ति की आशा नही की जा सकती है। तथापि कुछ लेखको ने ऐतिहासिक तथ्यो का सत्यता के साथ उल्लेख किया है। इन लेखको को इस आधार पर तुच्छ नही कहा जा सकता है कि वे कुछ बातो पर विश्वास करते थे। उनके ये विश्वास शताब्दियो के अनुभव पर आश्रित हैं। अत उनको ऐतिहासिक-चेतना से हीन नही कह सकते हैं। अत यह कहा जा सकता है कि भारतीयो ने इतिहास लिखा है, परन्तु वैसा नही जैसा पाश्चात्य विद्वान् चाहते हैं।

इतिहास सम्बन्धी ग्रन्थों के विषय में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि उनमें एक प्रकार के वर्ष नहीं दिए हुए हैं। भारतवर्ष में कई प्रकार के वर्ष चालू थे, जो कि किसी वंश के द्वारा वंश-नाम से चलाये गये थे। प्राय तिथियाँ उस अर्थ के बोधक शब्दों के द्वारा बनायी गयी हैं।

इतिहास का व्यापक अर्थ लेने पर संस्कृत साहित्य में इतिहास कई रूपों में प्राप्त होता है। रामायण, महाभारत और पुराणों में ऐतिहासिक महत्त्व की सामग्री विद्यमान है। अश्वघोष, हेमचन्द्र आदि ने बुद्ध और जैन सन्तों के विषय में महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री प्रस्तुत की है। ये ग्रन्थ, पुराण तथा रुद्रदामन् आदि के शिलालेख ऐतिहासिक सामग्री प्रस्तुत करते हैं।

सब से प्राचीन ग्रन्थ, जिनको ऐतिहासिक ग्रन्थ कह सकते हैं, कौमुदी-महोत्सव है। यह गुप्त काल के राजनीतिक कुचक्रों पर प्रकाश डालता है। कांची के महेन्द्रविक्रमन् के मत्तविलासप्रहसन से ज्ञात होता है कि विभिन्न धर्मों के अनुयायियों में किस प्रकार की नाना त्रुटियाँ आ गयी थीं और उनका पतन प्रारम्भ हो गया था। बाण के हर्षचरित में बाण की आत्मकथा विद्यमान है और हर्ष का जीवन-चरित वर्णित है। यह ऐतिहासिक ग्रन्थ की अपेक्षा ऐतिहासिक काव्य अधिक है। इसमें उसने जो ऐतिहासिक तथ्य वर्णन किये हैं, उनको पूर्णतया स्पष्ट नहीं किया है। राज्यश्री के पति ग्रहवर्मा का वध क्यों हुआ? गौड़ राजा ने वस्तुतः क्या छल किया था? हर्ष के आश्रित और कौन से कवि थे? बाण ने इन विषयों पर कोई सूचना नहीं दी है। उसके प्रारम्भिक श्लोकों से अवश्य यह ज्ञात होता है कि उससे पूर्व कौन-कौन विशेष कवि हुए थे। उसने अन्य ऐतिहासिक तथ्यों को भी काव्यात्मक अलंकृत भाषा में प्रस्तुत किया है। तथापि हर्षचरित इस दृष्टि से अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण ग्रन्थ है कि इसके द्वारा ७वीं शताब्दी के भारतीयों के रीति-रिवाज का स्पष्ट ज्ञान होता है। 'बाण ने इतिहास की यह सामग्री प्रदान की है [illegible] सेना का विशद चित्रण, राजदरबार का विस्तृत परिचय, विविध [illegible] स्त्रियों और उनका बोलों के साथ व्यवहार का [illegible], [illegible] से निर्भय भाव

एक इतिहास सम्बन्धी प्रयत्न समझना चाहिए। उनके मतानुसार वह भी देवी घटनाओं पर पूर्ण विश्वास रखता था, अतएव ऐतिहासिक घटनाओं का पूर्ण तत्त्व ठीक नहीं समझ सकता था। इसीलिये उसने ऐतिहासिक महत्त्व की घटनाओं का जो अपने ग्रन्थ में उल्लेख किया है, उसे अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन समझना चाहिए।

सत्य कहा जाय तो भारतीयों ने कोई इतिहास का ग्रन्थ नहीं लिखा है। पाश्चात्य विद्वान् ऐतिहासिक बुद्धि से जो अर्थ समझते हैं, उसका भारत मे अभाव था। भारतीय विचारधारा इतिहास लिखने के विरुद्ध है, यह सत्य है। तथापि इस प्रकार के प्रयत्न अवश्य किए जाते रहे हैं कि इतिहास लिखा जाय और समकालीन घटनाओं का उल्लेख किया जाय, परन्तु ये सब कार्य भारतीय विचारधारा के अनुसार ही किये गये हैं। पाश्चात्य विद्वानों ने जो ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखे हैं, उनमे ऐतिहासिक तथ्यों को विशेष मुख्यता दी गई है, भाषा को नहीं, परन्तु भारतीयों ने जो ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखे हैं, उनमे भाषा ही को प्रधानता दी गई है, ऐतिहासिक तथ्यों को उतनी प्रधानता नहीं। उन्होंने जो कुछ भी लिखा है, वह गद्यकाव्य, पद्यकाव्य, चम्पू या नाटक के रूप मे लिखा है। काव्य नाटक आदि के सभी नियमों का इनमे पालन किया गया है। इतिहास-सम्बन्धी ग्रन्थों के लेखक कवि थे। वे किसी राजा के आश्रित थे। अत वे अपने काव्यों मे उतना ही ऐतिहासिक तथ्य रख सकते थे, जितना उनके आश्रयदाताओं को रुचिकर होता था। वह अंश भी राजाओं की रुचि के अनुकूल रखा जाता था। अत. यह स्वाभाविक है कि ऐसे ग्रन्थों से निष्पक्ष ऐतिहासिक तथ्य की प्राप्ति की आशा नहीं की जा सकती है। तथापि कुछ लेखकों ने ऐतिहासिक तथ्यों का सत्यता के साथ उल्लेख किया है। इन लेखकों को इस आधार पर तुच्छ नहीं कहा जा सकता है कि वे कुछ बातों पर विश्वास करते थे। उनके ये विश्वास शताब्दियों के अनुभव पर आश्रित हैं। अत उनको ऐतिहासिक-चेतना मे हीन नहीं कह सकते हैं। अत यह कहा जा सकता है कि भारतीयों ने इतिहास लिखा है, परन्तु वैसा नहीं जैसा पाश्चात्य विद्वान् चाहते हैं।

इतिहास सम्बन्धी ग्रन्थों के विषय में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि उनमें एक प्रकार के वर्ष नहीं दिए हुए हैं। भारतवर्ष में कई प्रकार के वर्ष चालू थे, जो कि किसी वंश के द्वारा वंश-नाम से चलाये गये थे। प्रायः तिथियाँ उस अर्थ के बोधक शब्दों के द्वारा बतायी गयी हैं।

इतिहास का व्यापक अर्थ लेने पर संस्कृत साहित्य में इतिहास कई रूपों में प्राप्त होता है। रामायण, महाभारत और पुराणों में ऐतिहासिक महत्त्व की सामग्री विद्यमान है। अश्वघोष, हेमचन्द्र आदि ने बुद्ध और जैन सन्तों के विषय में महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री प्रस्तुत की है। ये ग्रन्थ, पुराण तथा रुद्रदामन् आदि के शिलालेख ऐतिहासिक सामग्री प्रस्तुत करते हैं।

सब से प्राचीन ग्रन्थ, जिसको ऐतिहासिक ग्रन्थ कह सकते हैं, कौमुदी-महोत्सव है। यह गुप्त काल के राजनीतिक कुचक्रों पर प्रकाश डालता है। कांची के महेन्द्रविक्रमन् के मत्तविलासप्रहसन से ज्ञात होता है कि विभिन्न धर्मों के अनुयायियों में किस प्रकार की नाना त्रुटियाँ आ गयी थीं और उनका पतन प्रारम्भ हो गया था। बाण के हर्षचरित में बाण की आत्मकथा विद्यमान है और हर्ष का जीवन-चरित वर्णित है। यह ऐतिहासिक ग्रन्थ की अपेक्षा ऐतिहासिक काव्य अधिक है। इसमें उसने जो ऐतिहासिक तथ्य वर्णन किये हैं, उनको पूर्णतया स्पष्ट नहीं किया है। राज्यश्री के पति ग्रहवर्मा का वध क्यों हुआ ? गौड़ राजा ने वस्तुतः क्या छल किया था ? हर्ष के आश्रित और कौन से कवि थे ? बाण ने इन विषयों पर कोई सूचना नहीं दी है। उसके प्रारम्भिक श्लोकों से अवश्य यह ज्ञात होता है कि उससे पूर्व कौन-कौन विशेष कवि हुए थे। उसने अन्य ऐतिहासिक तथ्यों को भी काव्यात्मक अलंकृत भाषा में प्रस्तुत किया है। तथापि हर्षचरित इस दृष्टि से बहुत महत्त्व-पूर्ण ग्रन्थ है कि उसके द्वारा ७वीं शताब्दी के भारतीयों के रीति-रिवाज का अच्छा ज्ञान होता है। "बाण ने इतिहास की यह सामग्री प्रदान की है : सेना का विस्तृत विवरण, राजदरबार का विस्तृत परिचय, विविध सम्प्रदायों के अनुयायियों और उनका बौद्धों के साथ व्यवहार का वर्णन, ब्राह्मणों के विविध कार्य

और अपने मित्रो का परिचय।" वाक्पति का गौडवहो भी ऐतिहासिक ग्रन्थ है। इसमे यशोवर्मन् की पराजय का वर्ष नही दिया है। कनकसेनवादिराज-का यशोधरचरित ऐतिहासिक और धार्मिक दोनो दृष्टि से महत्त्व का है। कल्हण के ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि शकुक ने एक काव्य भुवनाभ्युदय लिखा है और इसमे उसने ८५० ई० मे हुए मम्म और उत्पल के युद्ध का वर्णन किया है। यह ग्रन्थ नष्ट हो गया है। पद्मगुप्त के नवसाहसांकचरित मे कुछ ऐतिहासिक महत्त्व के तथ्यो का उल्लेख है। बिल्हण का विक्रमांकदेवचरित ऐतिहासिक महत्त्व का ग्रन्थ है। उसका आश्रयदाता विक्रमांक या विक्रमादित्य शिव के आदेशानुसार राजा हुआ। उसका राज्य पर अधिकार सिद्ध करने के लिए शिव तीन बार प्रकट हुए उसको अपने बडे भाई सोमेश्वर और छोटे भाई जयसिह से निरन्तर युद्ध करना पडा। उसने चोलो के विरुद्ध विजय-यात्रा की थी। इसका अन्तिम सर्ग आत्मकथा के रूप मे महत्त्वपूर्ण है। इसमे उसने घटनाओ के साथ वर्ष नही दिए हैं। बिल्हण की लिखी एक नाटिका कर्णसुन्दरी है। यद्यपि वह ऐतिहासिक दृष्टिकोण से नही लिखी गई है तथापि उसमे ऐतिहासिक सामग्री है। उसमे अनहिलवाद के राजा कर्णदेव त्रैलोक्यमल्ल का बडी आयु मे कर्णाटक की राजकुमारी मियानल्लदेवी से विवाह का उल्लेख है। हेमचन्द्र का द्व्याश्रयकाव्य भी इसी प्रकार का है यशश्चन्द्र का मुद्रितकुमुदचन्द्र धार्मिक दृष्टिकोण से ऐतिहासिक है। श्रीकण्ठ-चरित के अन्तिम सर्ग मे कश्मीर के राजा जयसिह के मन्त्री अलकार के दरबार मे रहने वाले कवियो का वर्णन है। जल्हण के सोमपालविलास मे उसके आश्रयदाता राजपुरी के राजा सोमपाल का इतिहास वर्णित है।

कल्हण को भारतवर्ष का सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक विद्वान् कह सकते हैं। उसने लिखा है कि राजतरगिणी को लिखने से पूर्व उसने ११ ऐतिहासिक ग्रन्थो और नीलमतपुराण को देखकर ग्रन्थ लिखा है। उसने राजा गोनन्द से लेकर राजा जयसिह के गद्दी पर बैठने तक का कश्मीर के राजाओ का वर्णन किया है। उसने अपना ग्रन्थ अपूर्ण ही छोड दिया है। कश्मीरी

होते हुए भी उसने कश्मीर के राजनीतिक कुचक्रों का विस्तृत वर्णन किया है। उसने निरर्थक बातों का त्याग किया है। उसने कतिपय राजाओं को दोषी बताया है कि उन्होंने अपने शत्रुओं के षड्यन्त्रों के विरुद्ध सावधानी से काम नहीं लिया। उसके समय में सैनिक और भृत्य राजभक्त नहीं रहे थे। वे अपने राजाओं को धोखा देते थे और शत्रुपक्ष में मिल जाते थे। कल्हण ने यह अन्तर दिखाया है कि किस प्रकार राजपूत और विदेशी अपने राजाओं को धोखा नहीं देते हैं, किन्तु कश्मीरी धोखा देते हैं। राज्य के कर्मचारी भी लोभी, जनपीडक और अराजभक्त थे। उसने दिखाया है कि राज्य की स्थिति यह थी कि मन्त्रियों में विरोध था, सैनिक लोभी थे, पुरोहित षड्यन्त्र करते थे, सेनाओं के अध्यक्ष राजा के नियन्त्रण में नहीं थे, और प्रजा भी विलासप्रिय हो गई थी। उस समय कश्मीर में छल-प्रपंच, षड्यन्त्र, वध करना, आत्महत्या पारिवारिक विवाद ये मुख्य उल्लेखनीय जीवन की घटनाएँ थीं। कल्हण ने कश्मीर की घटनाओं का एक निष्पक्ष अध्ययन किया है। उसने जो कुछ लिखा है, वह ऐतिहासिक सामग्री से भी सतुष्ट होता है।

श्लाघ्यः स एव गुणवान् रागद्वेषबहिष्कृता
भूतार्थकथने यस्य स्थेयस्येव सरस्वती ॥

—राजतरङ्गिणी १-७

उसने इस बात पर बल दिया है कि यह संसार अस्थिर है। ऐतिहासिक ग्रन्थ के रूप में राजतरंगिणी का स्थान बहुत ऊँचा है। तथापि कश्मीर का प्रारम्भिक इतिहास अन्धकार में ही है। उसने अपने ग्रन्थ को जो अपूर्ण छोड़ा था, उसको जोनराज, श्रीवर, प्राज्यभट्ट और शुक ने चालू रखा। सन्ध्याकरनन्दी के रामपालचरित में बंगाल के रामपाल (११०८-११५० ई०) का इतिहास वर्णित है। पृथ्वीराजविजय, जयन्तविजय, सुकृतसंकीर्तन, हम्मीरमदमर्दन, वसन्तविलास, सुरथोत्सव, कीर्तिकौमुदी, मोहपराजय, चन्द्रप्रभचरित, जगडूचरित, इत्यादि में ऐतिहासिक महत्त्व की सामग्री प्राप्त होती है। गङ्गादेवी के मधुरा-विजय, राजनाथ द्वितीय के साळुवाभ्युदय, और राजनाथ तृतीय के अच्युतराय-

याभ्युदय मे प्रामाणिक ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त होती है। इन तीनो ग्रन्थो मे विजय नगर के राजवश के कार्यों का पर्याप्त विवरण प्राप्त होता है। वासुदेवरथ ने गगावशानुचरित मे और गगाधर ने गगादासप्रतापविलास मे गगा वश का वर्णन किया है। तिरुमलाम्बा के वरदाम्बिकापरिणयचम्पू और वामनभट्टबाण के वेमभूपालचरित का सम्बन्ध ऐतिहासिक व्यक्तियो से है। यज्ञनारायण के साहित्य-रत्नाकर और रघुनाथविलास मे तथा रामभद्राम्बा के रघुनाथाभ्युदय में तन्जोर के राजा रघुनाथ नायक (१६१४-१६३२ ई०) के पराक्रमो का वर्णन है। इसी प्रकार के महत्त्व के ये ग्रन्थ भी है—रुद्रकवि का राष्ट्रौढ-वशमहाकाव्य, देवविमलमणि का हीर-सौभाग्य, देवराज का बालमार्तण्डविजय और बाणेश्वर का चित्रचम्पू।

मेरुतुग ने १३०६ ई० मे प्रबधचिन्तामणि लिखा है। इसमे जैन सन्तो, जैन कवियो और जैन धर्म के आश्रयदाताओ की आत्मकथाएँ है। राजशेखर का १३४९ ई० मे लिखा हुआ प्रबन्धकोश भी इसी प्रकार का ग्रन्थ है। विश्वगुणादर्श मे १७वी शताब्दी के मध्य के दक्षिण भारत की जनता के जीवन का वर्णन है। आनन्दरङ्गचम्पू मे ब्रिटिश साम्राज्य के भारत मे श्रीगणेश होने का उल्लेख है। मद्रास नगर का चित्र सर्वदेवविलास में खीचा गया है। इनके अतिरिक्त, प्रबोधचन्द्रोदय जैसे रूपकात्मक नाटक एक विशेष काल के लोगो के धार्मिक जीवन पर प्रकाश डालते हैं, जिनकी रचना उस समय हुई।

अध्याय २५

काव्य और नाट्य शास्त्र के सिद्धान्त

काव्य और नाटकों की उत्पत्ति और विकास के साथ कवियों और आलोचकों को आवश्यकता प्रतीत हुई कि नवाख्यानियों के पथप्रदर्शन के लिए तथा परकाल में रचनाओं को दुर्बोध होने से बचाने के लिए कतिपय नियमों का निर्माण किया जाय। काव्यशास्त्र के नियमों से पूर्व नाट्यशास्त्र के नियम बने। रसोत्कर्ष में सहायक समझकर अलंकारों को भी कुछ महत्त्व दिया गया। अलंकारों को महत्त्व देने के कारण इस विभाग को अलंकारशास्त्र नाम दिया गया। इसको साहित्य का एक विभाग भी माना जाता है, क्योंकि इसमें शब्दार्थ-सम्बन्धों की अविच्छिन्नता पर बल दिया गया है। साधारणतया साहित्यशास्त्र में निम्नलिखित विषयों पर विचार होता है—काव्य के लक्षण और उनके सिद्धान्त, शब्दशक्ति का विवेचन, नायक-नायिका आदि पात्रों के गुण और भेद, रस-निरूपण, गुण और दोषों का विवेचन, नाट्यशास्त्र के तत्त्व और अलंकार-निरूपण।

साहित्यशास्त्र के विकास के विभिन्न कालों में यह प्रयत्न होता रहा है कि यह निश्चय किया जाय कि काव्य के मूल तत्त्व क्या हैं और इनको कैसे प्राप्त किया जा सकता है। विभिन्न दृष्टिकोण से काव्य और नाटकों की विशेषताओं को देखा गया और इसका परिणाम भी विभिन्न प्रकार का प्राप्त हुआ। काव्य और नाटकों पर इस प्रकार के अनुसन्धान का जो परिणाम निकला, उसके आधार पर इनके विषय में विभिन्न वाद प्रारम्भ हुए। इस प्रकार के आठ वाद मुख्य रूप से प्रचलित हैं—प्रत्येक इस तत्त्व को ही मुख्यता देते हैं। उनके नाम हैं—रीति, रस, अलंकार, वक्रोक्ति, ध्वनि, गुण, अनुमान और औचित्य।

रीतिवाद के आचार्यों का मत है कि काव्य की आत्मा रीति (शैली) है। प्रारम्भ में दो शैलियाँ प्रचलित थीं—वैदर्भी और गौडी। वैदर्भी रीति के पक्ष-

सकता है। दर्शक मे यह योग्यता होती है कि वह विशेष उदाहरण समझता है और जनसामान्य उसका आनन्द लेता है। अभिनवगुप्त का मत है कि दर्शक व्यजना के द्वारा आनन्द का अनुभव करता है। रस-सिद्धान्त के समर्थक उपर्युक्त लेखक हैं। इनके अतिरिक्त रस सिद्धान्त के समर्थक रुद्रभट्ट, भोज, शारदातनय आदि हैं।

अलकारवाद के समर्थक काव्य मे सौन्दर्य के आधार तत्त्वो का विशेष रूप से विवेचन करते है, वे काव्य से रस के महत्त्व को स्वीकार करते हैं परन्तु उसे अलकार से गौण मानते हैं। ये अलकार शब्द और अर्थ पर आश्रित हैं, इनको शब्दालङ्कार, अर्थालङ्कार कहते हैं। भामह और दण्डी ही सबसे प्राचीन लेखक है जिन्होने अलङ्कारो का विवेचन किया है। अलङ्कारो की सख्या क्रमश बढती चली गई और बाद के लेखको ने उनकी सख्या दो सौ से अधिक बताई है।

वक्रोक्तिवाद अलङ्कारवाद की ही एक शाखा है। वक्रोक्ति का अर्थ है किसी बात को घुमा फिराकर कहना। इस मत के मानने वालो का कथन है कि अलङ्कार वक्रोक्ति के द्वारा ही पूर्णता को प्राप्त होते हैं। वक्रोक्ति को पृथक् अलङ्कार माना जाने लगा। इस सिद्धान्त के समर्थको मे मुख्य भामह और कुन्तक हैं।

ध्वनिवाद के समर्थक ध्वनित अर्थ अर्थात् व्यग्य अर्थ को मुख्यता प्रदान करते हैं। यह सिद्धान्त शब्द और अर्थ के विवेचन पर आश्रित है। शब्दो के तीन प्रकार के अर्थ होते हैं—वाच्य, लक्ष्य और व्यग्य। जिन शक्तिअश के द्वारा ये तीनो अर्थ बताए जाते हैं, उनको क्रमश अभिधा, लक्षणा और व्यजना कहते हैं। अभिधा शक्ति के द्वारा शब्द का मुख्य अर्थ बताया जाता है। लक्षणा शक्ति द्वारा गौण अर्थ बताया जाता है। जहां पर शब्द का मुख्य अर्थ लेने से काम नही चलता है वहां पर उस अर्थ से सम्बन्धित अन्य अर्थ लिया जाता है। जैसे—गङ्गाया घोष, गङ्गा नदी मे कुटिया, यह मुख्यार्थ सङ्गत नही होता है, क्योकि नदी मे

कुटी नहीं हो सकती है। अतः यहां नदी से सम्बद्ध नदी का तट गङ्गा शब्द का अर्थ पर लिया जाता है, अर्थात् 'गङ्गा नदी के तट पर कुटिया।' जहां पर अभिधा और लक्षणा शक्ति से काम नहीं चलता है, वहां पर व्यंजना शक्ति से काम चलाया जाता है। व्यंजना शक्ति वहीं पर विशेष रूप से काम में लाई जाती है जहां शब्द के मुख्य अर्थ के अतिरिक्त अन्य अर्थ भी बताया जाता है। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि मुख्य अर्थ के साथ ही और अर्थ भी व्यंजना शक्ति के द्वारा बताया जाता है। यह अर्थ शब्द तथा मुख्यार्थ के द्वारा नहीं बता सकता है। इस अर्थ में यह ध्वनि-सिद्धान्त वैयाकरणों के स्फोट सिद्धान्त से बहुत अधिक सम्बन्धित है और इस पर उसका बहुत अधिक प्रभाव है। ध्वनि या व्यंजना के सिद्धान्त के समर्थकों का मत है कि ध्वनि ही काव्य की आत्मा है। उनका मत है कि ध्वनि के बिना कोई भी काव्य निर्जीव समझना चाहिए। व्यंजना के द्वारा जो कुछ बताया जाता है, वह रस या अलङ्कार हो सकता है। यह अर्थ शब्द के अर्थ के द्वारा नहीं बताया जा सकता है। इसका अनुभव व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर ही होता है। अतएव इसका अनुभव प्रत्येक को नहीं हो सकता है। यह उन्हीं व्यक्तियों तक सीमित है, जिनका पूर्व जन्मों में अनुभव समान होता है। अतएव वे बातें जब इस जन्म में दुहराई जाती हैं तो वे उनका स्वाद लेते हैं। इस प्रकार के अनुभव जब रङ्गमंच पर अभिनय के द्वारा होते हैं, तब वे व्यक्ति उस अनुभव को अभिनेताओं का या अपना नहीं समझते, अपितु उनको सार्वभौम अनुभव मानते हैं। ऐसे सहृदय व्यक्ति अभिनयों को देखने या काव्यों को पढ़ने से जो अनुभव प्राप्त करते हैं, वह ब्रह्मानन्द के सुख के तुल्य होता है। अतः नाटक काव्य आदि के देखने या पढ़ने से जो अनुभव होता है, वह दुःख होने पर भी अनुपम आनन्द प्रदान करता है। आनन्दवर्धन और अभिनवगुप्त इस ध्वनि मत के मुख्य समर्थक हैं। अभिनवगुप्त ने इस मत को ध्वनि तक ही सीमित करके उन्नत बनाया है। अलङ्कारों और अर्थ

क्योंकि इस वर्ष राष्ट्रकूट राजा अमोघवर्ष नृपतुङ्ग ने दण्डी के काव्यादर्श का कन्नड भाषा मे अनुवाद किया है ।

दण्डी ने अपने पूर्ववर्ती लेखकों का उल्लेख नहीं किया है । उसने उनके नामोल्लेख के बिना उनके ग्रन्थो का उल्लेख किया है । उसने सेतुबन्ध और बृहत्कथा का उल्लेख किया है । उसका काव्यादर्श तीन परिच्छेदो में है । उसने प्रथम परिच्छेद मे निम्नलिखित विषयो का विवेचन किया है— भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन की आवश्यकता, भाव और भाषा की दृष्टि से काव्य के भेद, अपने पूर्वाचार्यों के द्वारा स्वीकृत गद्य-काव्य को कथा और आख्यायिका के रूप मे विभाजन का उग्ररूप से खण्डन, वैदर्भी और गौडी रीतियो की विशेषताओ का विस्तृत विवेचन । उसने वैदर्भी रीति को विशेषता दी है । उसने द्वितीय परिच्छेद मे अर्थालङ्कारो का विवेचन किया है और तृतीय परिच्छेद मे शब्दालङ्कारो तथा यमक अलङ्कार का विशेष रूप मे विवेचन किया है । उसने अलङ्कारो और रीतियो के महत्त्व पर बहुत प्रशंसनीय कार्य किया है । उसने गुणो और अलकारो मे विशेष अन्तर नहीं किया है । दण्डी की शैली मनोहर और परिष्कृत है । उसका विषय-विवेचन पूर्णतया मौलिक है ।

वामन दण्डी के मन्तव्यो का बहुत घनिष्ठ अनुयायी था । वह कश्मीर के राजा जयापीड (७७६-८१६ ई०) का आश्रित कवि था । उसने भवभूति के ग्रन्थो से उद्धरण दिए हैं । अत उसका समय ८००ई० के लगभग मानना चाहिए । वह काव्यालङ्कारसूत्र का लेखक माना जाता है । इस ग्रन्थ मे पाँच अध्याय, १२ अधिकरण और ३१६ सूत्र हैं । इनमे उसने काव्यशास्त्र-सम्बन्धी विषयो पर सूत्ररूप मे नियम लिखे हैं । सूत्रो के बाद उनकी टीका के रूप मे स्वलिखित वृत्ति है और उन नियमो के उदाहरण-स्वरूप स्वनिर्मित तथा अन्य लेखको से सकलित श्लोक आदि हैं । नियमों के सूत्ररूप मे ज्ञात होता है कि अलङ्कारो के विषय मे नियम सूत्ररूप मे वामन से पूर्व भी विद्यमान थे । वामन का मत है कि काव्य की आत्मा रीति है । उसने रीतियो को तीन भागो में

विभक्त किया है—वैदर्भी, गौडी और पाञ्चाली। दण्डी के तुल्य उसने भी शब्दालङ्कारों और अर्थालङ्कारों का विवेचन किया है। दण्डी और वामन दोनों ने रस और नाट्यशास्त्र पर विवेचन नहीं किया है। वामन के बाद रीतिवाद का समर्थक और कोई नहीं हुआ है। दण्डी और वामन ने जिन विषयों का विवेचन किया है, बाद के लेखकों ने उन विषयों को अपने ग्रन्थों में सम्मिलित किया है।

भामह रक्रिल गोमी का पुत्र था। उसने काव्यशास्त्र पर अलङ्कार नाम का ग्रन्थ लिखा है। बाद में इस ग्रन्थ का नाम लेखक के नाम से ही भामहालङ्कार कहा जाने लगा। उसने निम्नलिखित लेखकों के ग्रन्थों या उल्लिखित ग्रन्थों से उद्धरण दिए हैं या उनका नामोल्लेख किया है—न्यासकार, मेधावी, शाकवर्धन, रत्नाहरण, रामशर्मा का अच्युतोत्तर अलङ्कारवंश और राजमित्र। न्यासकार जिनेन्द्रबुद्धि (७०० ई०) था। उसने पाणिनि की अष्टाध्यायी पर वामन और जयादित्य की जो काशिका नाम की टीका है, उस पर न्यास नाम की टीका लिखी है। यह ज्ञात नहीं है कि भामह ने जिनेन्द्रबुद्धि का उल्लेख किया है या अन्य किसी पूर्ववर्ती न्यासकार का। अवन्तिसुन्दरी कथा में रामशर्मा एक कवि तथा दण्डी का मित्र उल्लिखित है। भामह ने उसी का उल्लेख किया है। दण्डी और रामशर्मा समकालीन थे। दोनों ७वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुए हैं। भामह ने अन्य लेखकों या ग्रन्थों का जो उल्लेख किया है, उनका परिचय प्राप्त नहीं हुआ है। कुछ विद्वानों का यह मत है कि दण्डी भामह के बाद हुआ है और उसने भामह के मन्तव्यों का उल्लेख किया है। ऐसा ज्ञात होता है कि दण्डी को अपने पूर्ववर्ती आचार्यों से काव्यशास्त्र के विषय में जो कुछ प्राप्त हुआ था, उसने उसी बात को अपने लक्षण और अपनी शैली में लिख दिया है। उसने अपनी ओर से उसमें कुछ नहीं मिलाया है और न अपना विशेष मन्तव्य ही प्रकाशित किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि दण्डी और भामह जिस मत के अनुयायी थे, वे उस मत के अनुयायी पूर्वाचार्यों के मतों से पूर्णतया परिचित थे। यहाँ यह

स्मरण रखना चाहिए कि काव्यशास्त्र जैसे विषय मे कुछ पारिभाषिक शब्दावलो और भाव होते हैं, जिनको बार-बार आवृत्ति होती है और उनके आधार पर यह निर्णय नही किया जा सकता है कि अमुक लेखक ने यह शब्द अमुक से लिया है, अत वह उससे बाद का है। अत यह मानना अधिक उचित है कि भामह दण्डी के बाद का समकालोन लेखक है। उसका समय ७०० ई० के बाद और ७५० ई० से पूर्व मानना चाहिए।

भामहालङ्कार अव्यवस्थित शैली मे लिखा गया है। इसमे ६ परिच्छेद हैं। वर्णन की दृष्टि से यह काव्यादर्श के तुल्य है। भामह ने गद्य का कथा और आख्यायिका के रूप मे विभाजन स्वीकार किया है और वैदर्भी की अपेक्षा गौडी रीति को विशेष महत्त्व दिया है। उसने भरत और दण्डी के द्वारा स्वीकृत दस गुणो के स्थान पर केवल तीन गुण स्वीकार किए हैं। उसने काव्य के दोषो का भी विवेचन किया है। काव्यादर्श को उसकी मुख्य देन वक्रोक्ति को महत्त्व देना है। सभी अलङ्कारो के मूल मे अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन है। उसमे रसो को जो महत्त्व दिया जाता है, उसकी उपेक्षा की है। उसने अलङ्कारो पर जो बल दिया है, उसके कारण ही वह बाद के साहित्य शास्त्रियो के द्वारा विशेष आदृत हुआ। उन्होने इसके ग्रन्थो से उद्धरण भी दिए हैं। वह वररुचि के प्राकृतप्रकाश पर एक टीका का लेखक भी माना जाता है।

उद्भट कश्मीर के राजा जयापीड (७७९-८१९ ई०) का आश्रित कवि था। उसने भामहालङ्कारविवरण नामक अपने ग्रन्थ में भामह के अलङ्कार पर टीका की है। यह ग्रन्थ नष्ट हो गया है। उसका दूसरा ग्रन्थ जो प्राप्य है, उसका नाम अलङ्कारसारसग्रह है। इस ग्रन्थ का दूसरा नाम उद्भटालङ्कार भी है। इस ग्रन्थ के नाम से ज्ञात होता है कि यह भामहालङ्कारविवरण का ही सक्षिप्त रूप है। इसमे ६ अध्यायो में मुख्यतया अलङ्कारो का ही वर्णन है। इसका वर्णन भामह के वर्णन से बहुत अधिक मिलता है। उसके अनुसार रीतियाँ तीन हैं—(१) उपनागरिका अर्थात् परिष्कृत, (२) ग्राम्या अर्थात् साधारण,

(३) परुषा अर्थात् कठोर। उनका यह विभाजन केवल शब्दों के आधार पर ही था। भरत के बाद यही सबसे पहला लेखक है, जिसने रस पर बहुत महत्त्व दिया है। यह पहला लेखक है, जिसने शान्त को नवम रस माना है। ९५०-ई० के लगभग प्रतिहारेन्दुराज ने काव्यालङ्कार पर टीका लिखी है, परन्तु उसने उद्भट से अधिक कोई बात महत्त्व की नहीं लिखी है।

ध्वनि का सिद्धान्त ८२० ई० के लगभग १२० स्मरणीय कारिकाओं में प्रकट किया गया। इन कारिकाओं के लेखक का नाम ज्ञात नहीं है, किन्तु बाद के लेखकों के उल्लेख से ज्ञात होता है कि इन कारिकाओं के लेखक को सहृदय की उपाधि प्रदान की गई थी। ८५० ई० के लगभग आनन्दवर्धन ने इन कारिकाओं पर टीका की और ग्रन्थ का नाम ध्वन्यालोक रखा। इसमें कारिकाएँ हैं तथा उन पर आनन्दवर्धन की वृत्ति है और उनके उदाहरण-स्वरूप विभिन्न लेखकों से उद्धृत तथा अपने श्लोक हैं। इसमें १२६ कारिकाएँ हैं। ये चार उद्योत (अध्यायों) में विभक्त हैं। बाद के लेखक इन कारिकाओं के लेखक के विषय में भ्रम में रहे हैं और उन्होंने आनन्दवर्धन को ही इन कारिकाओं में से कुछ का लेखक माना है। उसकी शैली सरल और व्याख्यात्मक है। उसने अपने निम्नलिखित ग्रन्थों से भी उद्धरण दिए हैं—देवीशतक, अर्जुनचरितमहाकाव्य, विषमबाणलीला और हरविजय। अन्तिम दो प्राकृत में लिखे गये हैं। प्रथम को छोड़कर शेष सभी नष्ट हो गये हैं।

अभिनवगुप्त ने १००० ई० के लगभग अपने ग्रन्थ ध्वन्यालोकलोचन में ध्वन्यालोक की टीका की है। ऐसा माना जाता है कि उसने १९ गुरुओं से विद्याध्ययन किया था।[1] उसने इन्दुराज से ध्वनि की शिक्षा ली थी और भट्टतौत से नाट्यशास्त्र की। अभिनवगुप्त ध्वनि और नाट्यशास्त्र पर प्रामाणिक आचार्य होने के अतिरिक्त शैव दर्शन में प्रत्यभिज्ञावाद का मुख्य आचार्य

१. Abhinavagupta, Historical and philosophical study by K. C. Pande,—पृष्ठ ११

है। यह माना जाता है कि उसने ध्वनि, नाट्यशास्त्र और शैव मत पर ४१ ग्रन्थ लिखे हैं। इनके अतिरिक्त उसने शैव आगमो और कुछ स्तोत्र-ग्रन्थो पर भी टीकाएँ लिखी है, ऐसा माना जाता है। ध्वनि पर उसने ध्वन्यालोक-लोचन लिखा है जो कि ध्वन्यालोक की टीका है। भरत के नाट्यशास्त्र पर उसने अभिनवभारती नामक टीका लिखी है। भट्टतौत के काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ काव्यकौतुक पर उसने काव्यकौतुकविवरण नामक टीका लिखी है। अभिनवगुप्त का काव्यकौतुकविवरण केवल उद्धरणो से ही ज्ञात होता है। यह माना जाता है कि अभिनवगुप्त ने घटकर्पर पर घटकर्परकुलकविवृति नामक टीका लिखी है। ध्वन्यालोकलोचन के दूसरे नाम हैं—सहृदयालोकलोचन या काव्यालोकलोचन। उसने उदाहरण के लिए श्लोक अपने तथा अन्य लेखकों के ग्रन्थो से दिये हैं। अभिनवगुप्त ने ध्वन्यालोक पर चन्द्रिका नामक एक टीका का उल्लेख किया है। उसने इसके लेखक का नाम नही दिया है। नाट्य-शास्त्र पर उसकी अभिनवभारती एक महत्त्वपूर्ण टीका है। ध्वनि विषय पर आनन्दवर्धन और अभिनवगुप्त सबसे प्रामाणिक आचार्य हैं। महिमभट्ट और कुन्तक ने ध्वनिवाद का उग्रता के साथ खण्डन किया है और उनका विचार आगे माना भी गया है, परन्तु ध्वनिवाद का जो महत्त्व आनन्दवर्धन और अभि-नवगुप्त के कारण माना जाता रहा है, वह कदापि कम नही हुआ है। ध्वनि-वाद ने काव्यशास्त्र के अन्य वादो रसवाद और अलकारवाद आदि को बहुत अधिक प्रभावित किया है। बाद मे रीतिवाद और वक्रोक्तिवाद का महत्त्व प्राय समाप्त हो गया।

जिस समय ध्वनिवाद का उद्भव और विकास हुआ, उस समय ध्वनिवाद के सिद्धान्तो के प्रचार के होने हुए भी रसवाद के प्रबल समर्थक विद्यमान थे। रस के विषय मे इन आचार्यो के स्वतन्त्र और वैयक्तिक विचार थे। इनके अनुयायी बहुत कम हुए हैं। इनमे से कुछ ने ध्वनिवाद के प्रभाव की उपेक्षा की है और कुछ ने ध्वनिवाद का खण्डन भी किया है। लोल्लट (७००-८०० ई०) रसवाद का प्रबल समर्थक है। उसने नाट्यशास्त्र की टीका की थी। वह

और रस मे नही। भट्टतौत १०म शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे हुआ था। उसने काव्यकौतुक नामक ग्रन्थ लिखा था। वह नष्ट हो गया है। उसका मत था कि रस का अनुभव नायक, लेखक और श्रोता समानरूप मे करते हैं। वह शान्त रस को सब रसो मे मुख्य मानता था। महिमभट्ट (लगभग १०५० ई०) ने शकुक का अनुसरण किया है और ध्वनिवाद का खण्डन किया है। उसका मत था कि रस का अनुभव अनुमान के द्वारा होता है। उसने अभिनवगुप्त और कुन्तक के मतो का खण्डन किया है। उसने तीन अध्यायो मे व्यक्तिविवेक नामक ग्रन्थ लिखा है। इसी मे उसने अपने विचार व्यक्त किये हैं। इस ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि वह उच्चकोटि का विद्वान् और आलोचक था। उसकी आलोचना मे पूर्ण सूक्ष्मता और गम्भीरता है। उसका दूसरा ग्रन्थ काव्यशास्त्र पर तत्त्वोक्तिकोश था। वह नष्ट हो गया है।

इस काल मे कुछ ऐसे भी विद्वान् हुए है, जिन्होने इस विवाद मे भाग नही लिया, किन्तु काव्यशास्त्र पर कार्य किया है। उनके विचारो पर रसवाद और ध्वनिवाद का प्रभाव अवश्य पडता है। रुद्रट (८००-८५० ई०) सबसे प्रथम विद्वान् है, जिसने अलकारो को वैज्ञानिक पद्धति से विभाजित करने का प्रयत्न किया है। उसने १६ अध्यायो मे काव्यालकार ग्रन्थ लिखा है। उसने शब्दालकारो, अर्थालकारो, वक्रोक्ति और यमक का विस्तृत विवेचन किया है। वामन और दण्डी के द्वारा स्वीकृत तीनो रीतियो का भी वर्णन किया है और उनके साथ ही चौथी लाटी रीति का भी उल्लेख किया है। उसने रससिद्धान्त का भी विवेचन किया है। लेखक ने छ भाषाओ का उल्लेख किया है—प्राकृत, संस्कृत, मागधी, पैशाची, शौरसेनी और अपभ्रश। उसने 'शान्त' को नवाँ तथा 'प्रेय' को दसवाँ रस माना है। उसका दूसरा नाम शतानन्द है। नाटककार राजशेखर (९०० ई०) ने काव्यमीमासा १८ अध्यायो मे लिखी है। उसने काव्यशास्त्रीय विषयो का विश्लेषण नही किया है। उसकी पुस्तक कवियो के लिए एक सग्रह-पुस्तिका है। इसमे ज्ञातव्य सभी बातो का समावेश है। इसमे कवि और भाषा आदि के विषय मे आवश्यक बातो का उल्लेख है।

के कई अगो पर ग्रन्थ लिखकर अपनी विशेष योग्यता का परिचय दिया है। उसने काव्यशास्त्र पर दो उच्च कोटि के ग्रन्थ लिखे हैं—**सरस्वतीकण्ठाभरण** और **शृङ्गारप्रकाश**। **सरस्वतीकण्ठाभरण** एक विशाल ग्रन्थ है। इसमे पाँच प्रकाश (अध्याय) हैं। इसमे काव्य के गुणो और दोषो, अलकारो और रसो का विवेचन है। तीन रीतियो मे एक **लाटी** रीति का समावेश रुद्रट ने किया था, उन चार मे **अवन्ती** और **मागधी** दो और रीतियो का समावेश करके उनको ६ कर दिया है। उसने अपने से प्राचीन लेखको के बहुत उद्धरण दिए हैं। अत उसका ग्रन्थ कवियो के काल-निर्णय मे बहुत अधिक सहायक होने से महत्त्वपूर्ण है। **शृङ्गारप्रकाश** मे ३६ अध्याय हैं। इसके प्रारम्भिक १२ अध्यायो मे महाकाव्य और नाटक के लक्षण, काव्य के गुणो और दोषो का विवेचन है। शेष २४ अध्यायो मे रसो का विवेचन है और उनमे **शृङ्गार** को मुख्यता दी गई है।

क्षेमेन्द्र (१०५० ई०) **अभिनवगुप्त** का शिष्य था। उसने दो ग्रन्थ लिखे हैं—**औचित्यविचारचर्चा** और **कविकण्ठाभरण**। **औचित्यविचारचर्चा** मे लेखक ने अपना मत प्रदर्शित किया है कि रस के परिष्कार मे औचित्य मुख्य सहायक है। उसका कथन है कि रस की आत्मा औचित्य है। वह शब्दो, उनके अर्थो, गुणो, अलकारो, रस तथा काव्य के सभी आश्रयो के औचित्य पर आश्रित है। उसने उदाहरण अपने ग्रन्थो तथा अन्य लेखको के ग्रन्थो से दिए हैं। उसके विवेचन पर ध्वनि-मत का बहुत अधिक प्रभाव पडा है। वह अपने विवेचन मे सर्वथा निष्पक्ष है। वह बडे से बडे प्रसिद्ध कवि के काव्यगत दोषो को प्रकट करने मे सकोच नही करता है और न उसका कोई विशेष प्रिय कवि है। **कवि-कण्ठाभरण** मे पाँच अध्यायो मे इन विषयो पर विचार किया है—कोई व्यक्ति कवि कैसे हो सकता है, कवि ने जो स्थान प्राप्त कर लिया है उसको स्थिर कैसे रखे तथा कवि और उनके कार्यसम्बन्धी अन्य सभी बातो पर उपयोगी सूचनाएँ दी हैं। उसने जिन कवियो और ग्रन्थो के उद्धरण दिये हैं, उनमे से बहुत से कवि और ग्रन्थ केवल नाम मात्र ही शेष हैं। उसके अपने लिखे हुए कई

ने इस ग्रन्थ के अतिरिक्त ये ग्रन्थ और लिखे हैं—काव्यप्रकाश की टीका महिमभट्ट के व्यक्तिविवेक की टीका, साहित्यमीमासा, नाटकमीमासा, बाण के हर्षचरित की टीका हर्षचरितटीका, अलंकारानुसारिणी और सहृदयलीला। हर्षचरितटीका के अतिरिक्त अन्य सभी ग्रन्थ काव्यशास्त्र विषयक हैं। सहृदयलीला मे इस बात का वर्णन है कि एक सहृदय व्यक्ति को किस प्रकार का जीवन व्यतीत करना चाहिए।

सोम के पुत्र एक जैन विद्वान् वाग्भट्ट ने अलङ्कारो पर एक ग्रन्थ वाग्भटालङ्कार लिखा है। इसके पाँच अध्यायो मे उसने काव्य, काव्य का स्वरूप, भाषा, गुण, अलङ्कार, रस और साहित्यिक परम्पराओ का वर्णन किया है। यह लेखक १३वी शताब्दी ई० के प्रारम्भ का है। उसी समय अल्लराज ने रस विषय पर रसरत्नप्रदीपिका नामक ग्रन्थ की रचना की थी। जयदेव ने चन्द्रालोक लिखा है। वह एक प्रसिद्ध नैयायिक, नाट्यकार और साहित्यशास्त्री था। वह १२५० ई० के लगभग हुआ था। उसने नाट्यशास्त्र को छोडकर शेष सभी काव्यशास्त्रीय विषयो का विवेचन सरल और रोचक ढग से किया है। शारदातनय लगभग (१२५० ई०) ने दस अध्यायो मे भावप्रकाशन ग्रन्थ लिखा है। उसने काव्यशास्त्रीय विषयो के वर्णन मे भरत का अनुसरण किया है और भरत से भिन्न विचारो का भी उल्लेख किया है। उसने रस को काव्य की आत्मा माना है। उसने शान्त को रस नही माना है। उसने भोज के अनुसार ही शृगार रस को विकसित किया है। नेमिकुमार का पुत्र एक जैन विद्वान् वाग्भट्ट और हुआ है। वह वाग्भट्टालङ्कार के लेखक वाग्भट्ट से भिन्न है। वह १३वी शताब्दी के अन्त मे हुआ था। उसने पाँच अध्यायो मे काव्यानुशासन ग्रन्थ लिखा है। यह सूत्ररूप मे है और इस पर लेखक ने स्वय अलंकारतिलक नाम की टीका भी लिखी है। विषय की दृष्टि से यह वाग्भट्टालङ्कार के तुल्य ही है। लगभग इसी समय अमृतानन्दयोगी ने अलकारसारसग्रह ग्रन्थ लिखा है। इसमे काव्यशास्त्रीय सभी विषयो का वर्णन है।

एक रेड्डी राजकुमार सिंगभूपाल १४०० ई० के लगभग हुआ था। वह स्वयं विद्वान् था और विद्वानों का आश्रयदाता था। उसने रसार्णवसुधाकर ग्रन्थ लिखा है। इसमें तीन अध्याय हैं। इसमें उसने रसों और नाट्यशास्त्र का वर्णन किया है। कुछ विद्वानों का मत है कि यह ग्रन्थ सिंगभूपाल के आश्रित विश्वेश्वर नामक विद्वान् की रचना है। भानुदत्त १४०० ई० के लगभग हुआ था। उसने रसमञ्जरी और रसतरंगिणी नामक दो ग्रन्थ लिखे हैं। दोनों में रस का विवेचन है, विशेषरूप से शृंगार का। विश्वनाथ १४वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुआ था। वह उड़ीसा का निवासी था। उसने दस अध्यायों में साहित्यदर्पण ग्रन्थ लिखा है। इसमें उसने काव्यशास्त्रीय तथा नाट्यशास्त्रीय सभी विषयों का विवेचन किया है। उसने अन्य कवियों के ग्रन्थों से उद्धरण देने के अतिरिक्त अपने ग्रन्थों से भी उद्धरण दिए हैं। उनके नाम हैं—रघुविलासमहाकाव्य, एक प्राकृत में लिखित कुवलयाश्वचरित, एक नाटिका प्रभावती, चन्द्रकलानाटिका और एक ऐतिहासिक काव्य नरसिंहराजविजय। ये सभी ग्रन्थ नष्ट हो गए हैं। एक रेड्डी राजकुमार वेमभूपाल (लगभग १४२० ई०) ने १३ अध्यायों में साहित्यचिन्तामणि ग्रन्थ लिखा है। इसमें उसने शब्दालङ्कारों और अर्थालङ्कारों का वर्णन किया है। वह कोण्डवीडु वंश का राजा था। वामनभट्ट बाण उसका आश्रित कवि था। विद्याभूषण की साहित्यकौमुदी उसी समय की रचना है। रूपगोस्वामी ने १५३३ ई० में उज्ज्वलनीलमणि नामक ग्रन्थ लिखा है। इसमें कृष्ण के प्रेमात्मक श्लोक उदाहरण के रूप में दिये गये हैं। जीवगोस्वामी ने इसकी टीका लिखी है। अप्पय दीक्षित १५५४ ई० में हुआ था। उसने कुवलयानन्द, चित्रमीमांसा और वृत्तिवार्तिक लिखे हैं। उसने जयदेव के चन्द्रालोक के पाँचवें अध्याय पर कुवलयानन्द में टीका की है और चन्द्रालोक में यथास्थान परिवर्तन भी किये हैं। कुवलयानन्द चन्द्रालोक के पाँचवें अध्याय पर आधारित है, पर इसमें अर्थालङ्कारों का ही वर्णन है। यह ग्रन्थ दक्षिण भारत में बहुत प्रचलित है। चित्रमीमांसा में अलङ्कारों

का वैज्ञानिक विधि से विवेचन है। यह ग्रन्थ अपूर्ण है। **वृत्तिवार्तिक** मे शब्दशक्ति का वर्णन है। **केशवमिश्र** ने १६वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे **अलकारशेखर** ग्रन्थ लिखा है। इसमें उसने शब्दालङ्कारो और अर्थालङ्कारो का ही मुख्यतया विवेचन किया है। उसने साथ ही साथ कवियो के लिए कुछ आवश्यक निर्देश भी दिये हैं। जिन **श्रीपाद** के विचारो का इस ग्रन्थ मे उल्लेख किया गया है उन्ही के मतानुसार मैथली शैली की भी चर्चा की गयी है। **कविकर्णपुत्र** की रचना **अलकारकौस्तुभ** इसी समय की कृति है। **जगन्नाथ** (१५९०-१६६५ ई०) ने दो ग्रन्थ लिखे हैं—**रसगगाधर** और **चित्रमीमासाखण्डन**। रसगगाधर अलङ्कारो के विषय मे अत्यन्त प्रामाणिक ग्रन्थ है। इसमे उसने अलङ्कारो के लक्षण दिये हैं। अपने उदाहरण देकर उसने इन लक्षणो का विवेचन किया है और अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के मन्तव्यो का उल्लेख किया है। वह अपने विचारो मे पूर्णतया स्वतन्त्र है। जहां पर वह अन्य सुप्रसिद्ध लेखको के साथ मतभेद रखता है, वहाँ पर बहुत निर्भीकता के साथ उनके मन्तव्यो का खण्डन करता है। उसने ध्वनि-मत का उग्रता के साथ खण्डन किया है और रस-सिद्धान्त को परिपुष्टि की है। उसके निर्णय का भाव उसकी काव्य-परिभाषा से ही स्पष्ट हो जाता है जिसे उसने एक पक्ति मे ही व्यक्त की है—'रमणीयार्थप्रतिपादक शब्द काव्यम्'। उसका **चित्रमीमासाखण्डन** ग्रन्थ **अप्पय दीक्षित** के **चित्रमीमासा** ग्रन्थ का खण्डन है। **राजचूडामणि दीक्षित** (लगभग १६०० ई०) ने **काव्यदर्पण** ग्रन्थ लिखा है। इस पर उसने अपनी ही टीका **अलकार चूडामणि** लिखी है। **विश्वेश्वर** १८वी शताब्दी के प्रारम्भ मे हुआ था। उसने अलङ्कारो पर दो ग्रन्थ **अलकारकौस्तुभ** और **अलकारकर्णाभरण** लिखे हैं।

कतिपय लेखको ने अपने आश्रयदाताओ की प्रशसा के रूप मे काव्य-शास्त्रीय ग्रन्थ लिखे हैं। इन ग्रन्थो मे उदाहरण के रूप मे जो श्लोक दिये गये हैं, वे अधिकाश मे अपने आश्रयदाताओ के प्रशसात्मक हैं।

इस प्रकार के ग्रन्थों में विद्याधर (लगभग १३०० ई०) का एकावलि ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ उसने अपने आश्रयदाता उत्कल और कलिंग के राजा नरसिंह की प्रशंसा में लिखा है। यह काव्यप्रकाश के अनुकरण पर लिखा गया है। विद्यानाथ के प्रतापरुद्रियशोभूषण ग्रन्थ से इस प्रकार के काव्य की विशिष्टता ज्ञात होती है। ग्रन्थ का नाम ही आश्रयदाता के नाम से है। वह विद्यानाथ और अगस्त्य एक ही व्यक्ति है। यह वारंगल के राजा प्रतापरुद्र (लगभग १३०० ई०) की प्रशंसा में लिखा गया है। विश्वेश्वर का चमत्कारचन्द्रिका ग्रन्थ शिंगभूपाल (लगभग १४०० ई०) की प्रशंसा में लिखा गया है। यज्ञनारायण ने अलंकाररत्नाकर ग्रन्थ तन्जोर के राजा रघुनाथ नायक (१६१४-१६३२ ई०) की प्रशंसा में लिखा है। नरसिंह कवि, जिनकी उपाधि अभिनवकालिदास थी, ने नजराज (१८ वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध) की प्रशंसा में नजराजयशोभूषण ग्रन्थ लिखा है। सदाशिवमखिन् ने १८वीं शताब्दी के अन्त में ट्रावनकोर के राजा रामवर्मा की प्रशंसा में रामवर्मयशोभूषण ग्रन्थ लिखा है।

काव्य यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्य परनिर्वृतये कान्तासमिततयोपदेशयुजे ॥[1]

उसने साथ ही यह भी उल्लेख किया है कि कालिदास को काव्यलेखन से यश मिला, बाण को धन और मयूर को रोग से मुक्ति मिली।

काव्यलेखन मे सफलता-प्राप्ति के लिए तीन साधन बताये गये हैं—प्रतिभा, सुसस्कृत विद्याध्ययन और उसका उपयोग।[2] प्रतिभा के अभाव मे अन्य दो साधनो से कोई भी व्यक्ति कवि हो सकता है। हेमचन्द्र ने नवाभ्यासी के लिए उपदेश दिया है कि वह प्रारम्भिक अभ्यास के लिए किसी कवि के बने हुए श्लोक के तीन चरणो को ले और चतुर्थ चरण स्वय बनावे। क्षेमेन्द्र ने अपने ग्रन्थ **कविकण्ठाभरण** मे इस विषय पर विचार किया है कि काव्य जगत् मे कौन व्यक्ति किस सीमा तक पहुँच सकता है। उसने अपने ग्रन्थ **औचित्यविचारचर्चा** मे यह विवेचन किया है कि रस के परिपाक के लिए औचित्य का ध्यान रखना अनिवार्य है। इन लेखको ने नवाभ्यासियो के लिए जो उपदेश दिए हैं, वे उपयोगी हैं, परन्तु इसका परिणाम यह हुआ है कि बाद के सामान्य कवियो ने पूर्ववर्ती कवियो के भावो और शब्दावली की ही पुनरावृत्ति की है।

कवि अपनी योग्यता का प्रदर्शन विद्वत्सभा मे करते थे और विद्वानो की स्वीकृति पर वह वस्तुत कवि माने जाते थे। राजशेखर ने अपने ग्रन्थ **काव्यमीमासा** मे उल्लेख किया है कि कालिदास हरिचन्द्र आदि की परीक्षा उज्जैन में हुई थी और उपवर्ष, पाणिनि, वररुचि, पतजलि आदि की परीक्षा पटना मे हुई थी।[3] कई बार कवि की योग्यता की परीक्षा इस प्रकार भी की जाती थी कि उसे यह कहा जाता था कि वह किसी बताये हुए

१ काव्यप्रकाश १ १०३-१४।

२ दण्डी का काव्यादर्श १ १०३।

३ राजशेखरकृत काव्यमीमासा, अध्याय १०।

विषय पर उसी समय कविता बनावे, किसी अन्य कवि के द्वारा बनाये हुए अपूर्ण श्लोक को पूर्ण करे या किसी समस्या को पूर्ण करे। इस प्रकार की घटनाओं का उल्लेख बल्लालसेन के भोजप्रबन्ध, मेरुतुंग के प्रबन्धचिन्तामणि और मंख के श्रीकण्ठचरित में है। एक बौद्ध भिक्षुक धर्मदास ने चार भागों में विदग्धमुखमण्डन लिखा है। इसमें समस्याओं का वर्णन है। यह १२वीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुआ था। अतएव जो कवि राजद्वार में आश्रय चाहता था, उसको विभिन्न प्रकार की रुचि वाले विद्वानों को प्रसन्न करने के लिए अनेक विषयों में परिचित होना पड़ता था। कामसूत्र ने इस विषय में कतिपय उपयोगी निर्देश दिये हैं कि कवि को किस प्रकार परिपूर्ण होना चाहिए।

अध्याय २६

शास्त्रीय ग्रन्थ

शास्त्रीय ग्रन्थो की विशेषताएँ और व्याकरण

शास्त्र शब्द का प्रयोग साहित्य के उस विभाग के लिए होता है, जिसका विवेचन वैज्ञानिक पद्धति से होता है । शास्त्र शब्द का अर्थ है--जिसके द्वारा किसी वात की शिक्षा दी जाती है ।

शिष्यतेऽनेनेति शास्त्रम् ।

प्रारम्भ मे इस शब्द का प्रयोग उन विषयो के लिए ही होता था, जिनका सम्बन्ध वैदिक ग्रन्थो से था । वाद मे इस शब्द का प्रयोग उन सभी विषयो के लिए होने लगा, जिनका विवेचन वैदिक विषयो के तुल्य वैज्ञानिक विधि से होने लगा । शास्त्र नाम से निर्दिष्ट विषयो की उत्पत्ति कारण यह ज्ञात होता है कि सभी विषयो का विवेचन वैदिक शीर्षक के अन्दर करने में कतिपय कठिनाइयाँ अनुभव हुई होगी । धीरे-धीरे प्रत्येक विषय का अपना स्वतन्त्र महत्त्व होने लगा और उसका विशेष रूप से अध्ययन होने लगा । इन विशेष अध्ययनो मे भी अन्य विषयो के सामान्य सिद्धान्तो का प्रतिपादन होता था । इस प्रकार व्याकरण, निरुक्त और यज्ञ आदि के विवेचन के आधार पर वैयाकरण, नैरुक्त, याज्ञिक आदि की शास्त्रीय शाखाएँ वन गयी ।

शास्त्रो की विशेषताएँ

शास्त्रो के मौलिक सिद्धान्त साधारणतया सूत्र रूप मे लिखे गये हैं । सूत्र सक्षेप मे सिद्धान्त का निर्देश करते हैं । सूत्रो की विधि इसलिए अपनायी गयी कि विद्यार्थी को स्मरण करने मे कठिनाई न पडे । ये सूत्र केवल गुरुओ की व्याख्या के द्वारा ही समझे जा सकते थे । ये गुरु ही उन सूत्रो की व्याख्या

व्याकरण

वेदागो मे व्याकरण का प्रमुख स्थान है। अन्य भाषाओ में व्याकरण साहित्य का एक अग माना जाता है, परन्तु सस्कृत के अध्ययन के विषय मे एक स्वतत्र विषय है। इसकी उत्पत्ति वैदिक काल से है। इसके विकास पर दो अन्य वेदागो निरुक्त और शिक्षा का बहुत अधिक प्रभाव पडा है।

वैदिकोत्तर काल मे कई ऐसे वैयाकरण हुए हैं, जिन्होने यह प्रयत्न किया है कि भाषा के लिए नियमो को बनाया जाय और उन्होने इसके लिए अपने ग्रन्थ भी बनाए। पाणिनि के अतिरिक्त अन्य सभी के ग्रन्थ नष्ट हो गये हैं। वह अटक के समीप शालातुर स्थान पर उत्पन्न हुआ था। वह दाक्षि का पुत्र था। उसका समय ७०० ई० पू० और ६०० ई० पू० के बीच का माना जाता है। कथासरित्सागर के अनुसार वह वर्ष का शिष्य था। उसके सहपाठी थे—कात्यायन, व्याडि, और इन्द्रदत्त। उसे आचार्य वर्ष से जो शिक्षा प्राप्त हुई उससे वह सन्तुष्ट नही हुआ। उसने भगवान् शिव की उपासना की और उन्होने प्रसन्न होकर उसको १४ माहेश्वर सूत्र [प्रत्याहार सूत्र] प्रदान किए। उसने उन १४ सूत्रो को विकसित किया। पाणिनि से पूर्ववर्ती कितने ही आचार्य हो चुके हैं। उनके ग्रन्थ पाणिनि को प्राप्त थे। उसने नये पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ की व्याख्या के नये नियम तथा प्रत्ययो आदि का आविष्कार किया। उसने आठ अध्यायो में अष्टाध्यायी नामक ग्रन्थ की रचना की। इसमें लगभग ४ सहस्र सूत्र हैं। पाणिनि ने बहुत छोटे पारिभाषिक शब्द रक्खे हैं, प्रत्याहारो का उपयोग किया है तथा सूत्रो में उन शब्दो को नहीं रक्खा है जो पूर्व सूत्र मे अनुवृत्ति के द्वारा प्राप्त हो सकते हैं। इस प्रकार उसके सूत्रो मे अति सक्षेप हो सका है। उसने शब्दरूपो और धातुरूपो का अति सूक्ष्मता के साथ प्रकृति और प्रत्यय के रूप मे विश्लेषण किया है। पाणिनि की अष्टाध्यायी विश्व का एक आदर्श ग्रन्थ है। इसमें सर्वाङ्गपूर्ण अनुसन्धान तथा पारिभाषिक पूर्णता है। पाणिनि ने धातुपाठ

कहा जाता है। इसीलिए यह कहावत प्रचलित है—"महाभाष्य वा पठनीयम्, महाराज्य वा शासनीयम्"। पतजलि को आदिशेष का अवतार माना जाता है उसका जन्म **गौनर्द** (गोडा) मे हुआ था। वह **पातजलयोगदर्शन** और **चरकसहिता** का भी लेखक माना जाता है।

पतजलि के बाद चौथी शताब्दी ई० तक व्याकरण का कोई मौलिक ग्रन्थ नही लिखा गया। ऐसा ज्ञात होता है कि इस बीच में महाभाष्य का ही अध्ययन होता रहा। भर्तृहरि चौथी शताब्दी ई० मे हुआ था। उसने महाभाष्य की टीका **महाभाष्यदीपिका** नामक ग्रन्थ में की है। वह अपूर्ण उपलब्ध है। वह चीनी यात्री ईत्सिग (६७२-६७५ ई०) की भारतयात्रा के समय महावैयाकरण के रूप मे सुप्रसिद्ध था। उसने एक दूसरा ग्रथ **वाक्यपदीय** नामक लिखा है। इसमें तीन काण्ड (अध्याय) हैं। उनके नाम है—आगमकाण्ड, वाक्यकाण्ड और पदकाण्ड। इनमे क्रमश स्फोट, वाक्य और शब्द का वर्णन है। इसमे उसने व्याकरण का दार्शनिक विवेचन किया है। उसने स्फोटवाद को स्वीकार किया है और शब्दब्रह्म के रूप मे अद्वैतवाद को स्वीकार किया है। वह बौद्ध दार्शनिक वसुबन्धु (३५० ई०) के समकालीन तथा विरोधी विद्वान् वसुरात का शिष्य था।

वामन और **जयादित्य** ने पाणिनि की अष्टाध्यायी के ऊपर काशिका नाम की टीका लिखी है। ईत्सिग (६७२-६७५ ई०) ने अपनी यात्रा के समय इस ग्रन्थ की प्रसिद्धि का उल्लेख किया है। उस समय चीनी लोग सस्कृत जानने के लिए इस ग्रन्थ को पढते थे। यह ग्रन्थ ६०० ई० के लगभग अवश्य लिखा जा चुका होगा। यह माना जाता है कि अष्टाध्यायी के प्रारम्भिक पांच अध्यायो की टीका जयादित्य ने की और शेष तीन अध्यायो की टीका वामन ने की। इसकी टीका एक जैन विद्वान् जिनेन्द्रबुद्धि, जिनका दूसरा नाम पूज्यपाद देवनन्दी है, ने **काशिकाविवरणपजिका** नाम मे की है। यह टीका न्यास नाम से विशेष प्रसिद्ध है। जिनेन्द्रबुद्धि ७वी शताब्दी ई० के उत्तरार्ध मे हुआ था। काशिका और न्यास मे कतिपय पूर्ववर्ती लेखको और उनके ग्रन्थो का उल्लेख

भट्टोजिदीक्षित १७वी शताब्दी ई० मे सर्वश्रेष्ठ वैयाकरण था। यह कहा जाता है कि वह **अप्पयदीक्षित** का शिष्य था और उसने वेदान्त पढा था। भट्टोजिदीक्षित, उसके परिवार के व्यक्तियो और उसके शिष्यो ने व्याकरण-शास्त्र को वहुत वडी देन दी है। उसने १६३० ई० मे रामचन्द्र की प्रक्रिया-कौमुदी के अनुकरण पर **सिद्धान्तकौमुदी** लिखी है। उसके ग्रन्थ पर रामचन्द्र का प्रभाव पडा है। इस ग्रन्थ का वहुत व्यापक प्रभाव पडा है। जव मे यह ग्रन्थ लिखा गया है, तव मे इसने इतना प्रभाव डाला है कि इससे पहले के सभी ग्रन्थ इसके सामने तुच्छ पड गये। काशिका का भी महत्त्व जाता रहा। यह संस्कृत के प्रारम्भिक विद्यार्थियो के लिए व्याकरण का सर्वश्रेष्ठ प्रामाणिक ग्रन्थ हो गया है। भट्टोजिदीक्षित ने सिद्धान्तकौमुदी पर अपनी टीका **प्रौढमनोरमा** ग्रन्थ के रूप मे लिखी है। उसके अन्य ग्रन्थ ये है—(१) **शब्दकौस्तुभ**। यह पाणिनि के सूत्रो पर अष्टाध्यायी के क्रम से ही टीका है। (२) **लिगानुशासनवृत्ति**। यह पाणिनि के द्वारा शब्दो के लिगो के विषय मे लिखित लिगानुशासन पर टीका है। (३) **वैयाकरणमतोन्मज्जन**। यह पद्यात्मक ग्रन्थ है। इसमें वैयाकरणो के दार्शनिक सिद्धान्तो को सक्षेप मे वर्णन किया गया है।

भट्टोजिदीक्षित के शिष्य **वरदराज** (लगभग १६५० ई०) ने **मध्य-सिद्धान्कौमुदी** और **लघुसिद्धान्तकौमुदी** ग्रन्थ लिखे हैं। ये दोनो ग्रन्थ सिद्धान्तकौमुदी के सक्षेप है। इसी समय भट्टोजिदीक्षित के भतीजे **कौण्ड भट्ट** ने **वैयाकरणभूषणसार** ग्रन्थ लिखा है। यह भट्टोजिदीक्षित के वैया-करणमतोन्मज्जन की टीका है।

नागेशभट्ट भट्टोजिदीक्षित के पौत्र **हरिदीक्षित** का शिष्य था। उसका समय १७वी शताब्दी का अन्त माना जाता है। उसने व्याकरण, योग धर्मशास्त्र और काव्यशास्त्र पर अनेक ग्रन्थ लिखे है। उसने **जगन्नाथ** के रसगगाधर की टीका लिखी है। उसने सिद्धान्तकौमुदी की टीका के रूप मे **वृहच्छब्देन्दुशेखर** और **लघुशब्देन्दुशेखर** दो ग्रन्थ लिखे है ये दोनो क्रमश

वैयाकरणो का स्फोटवाद

वैयाकरणो ने व्याकरण को शास्त्र की कोटि से ऊपर उठाकर दर्शन की कोटि मे लाने के लिए स्फोट-सिद्धान्त की स्थापना की। स्फोट-सिद्धान्त को सक्षेप मे इस प्रकार रख सकते है—शब्द के प्रत्येक वर्ण पृथक्-पृथक् और सम्मिलित दोनो रूपो मे अर्थ का बोध कराने मे असमर्थ है, क्योकि ज्योही एक वर्ण का उच्चारण किया जाता है, वह नष्ट हो जाता है और जिस समय तक अन्तिम वर्ण का उच्चारण किया जाता है, उस समय तक पहले का कोई वर्ण शेष नही रहता है। अत वर्ण स्वय किसी अर्थ का बोध कराने मे असमर्थ है। अत वर्णो के अतिरिक्त अन्य किसी को अर्थबोधन के लिए सत्ता स्वीकार करनी चाहिए। अत अर्थबोधन के लिए स्फोट की सत्ता स्वीकार की जाती है। स्फोट शब्द का अर्थ है कि जिसके द्वारा अर्थ प्रस्फुटित होता है।—"स्फुटत्यर्थोऽस्मादिति स्फोट" (नागेशभट्ट का स्फोटवाद)। अत वर्णो के द्वारा जो अर्थ प्रकट नही होता है, उसको स्फोट प्रकट करता है। स्फोट एक है, अविनाशी है और सर्वव्यापक है। जब वर्णो का उच्चारण होता है, तब स्फोट की उच्चारण-सम्बन्धी चार अवस्थाएँ होती हैं—**वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती और परा**।

पतजलि ने स्फोट-सिद्धान्त का उल्लेख किया है। **नागेश** के मतानुसार स्फोट-सिद्धात का प्रवर्तक **स्फोटायन** ऋषि था। **भर्तृहरि** ही सर्वप्रथम लेखक है जिसने स्फोट-सिद्धान्त का सर्वाङ्गपूर्ण विवेचन **वाक्यपदीय** मे किया है। उच्चरित शब्दो के विनश्वर रूप मे और शब्दब्रह्म के मायारूप मे समता है। देखिए —

अनादिनिधन ब्रह्म शब्दतत्त्व यदक्षरम् ।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यत ॥

वाक्यपदीय १—१

अनादि इसको ध्वनि कहते है। जिसके द्वारा अर्थ का बोध होता है, वह शब्द का स्फोट रूप है। शब्दो के उच्चारण के साथ चैतन्य का प्रका-

प्रचार हुआ और वहाँ १३वी शताब्दी मे एक बौद्धपुरोहित **काश्यप** ने **बालावबोध** नामक ग्रन्थ लिखकर इस शाखा को नवीन रूप दिया ।

जैनेन्द्र शाखा के अनुयायी अपनी शाखा की उत्पत्ति **जिन महावीर** से मानते हैं । उनका कथन है कि जिन महावीर ने इन्द्र के प्रश्नो के उत्तर दिये थे । इन उत्तरो के आधार पर ही यह नवीन शाखा प्रचलित हुई थी । यह शाखा जिन और इन्द्र के प्रश्नोत्तर से चली, अत· इसका नाम दोनो के नाम से जिनेन्द्र शाखा के रूप मे प्रचलित हुआ । इसका मूल ग्रन्थ दो रूपो मे प्राप्त हुआ है । एक मे ७०० सूत्र हैं और दूसरे में ३०० सूत्र हैं । इसकी पारिभाषिक शब्दावली पाणिनि की पारिभाषिक शब्दावली से अधिक कठिन है, अतएव यह व्याकरण पाणिनीय व्याकरण से अधिक कठिन है । **देवनन्दी** इन सूत्रो का रचयिता माना जाता है । इसकी उपाधि पूज्यपाद थी । यह और जिनेन्द्र-वुद्धि एक ही व्यक्ति माने जाते हैं । इन सूत्रो पर केवल दो टीकाएँ लिखी गई हैं । एक **अभयनन्दी** (७५० ई०) की और दूसरी **सोमदेव** (११वी शताब्दी ई०) की । इसके अतिरिक्त इस शाखा पर और कोई ग्रन्थ नही लिखा गया है । एक नवीन ग्रन्थ **पचवस्तु** इन सूत्रो का नवीन रूप है । इसका समय और लेखक अज्ञात है । यह आधुनिक रचना है । यह शाखा दिगम्बर जैनो मे प्रचलित थी ।

एक श्वेताम्बर जैन **शाकटायन** ने ९वी शताब्दी ई० मे **शाकटायन** शाखा की स्थापना की । शाकटायन ने **शब्दानुशासन** नामक ग्रन्थ लिखा है और उस पर **अमोघवृत्ति** नामक टीका भी स्वय लिखी है । यह ग्रन्थ पाणिनि चान्द्र और जैनेन्द्र व्याकरणो के अनुकरण पर लिखा गया है । इसमे चार अध्याय हैं और ३२०० सूत्र हैं । इसकी पद्धति **सिद्धान्तकौमुदी** के तुल्य है । इस पद्धति को ११वी शताब्दी मे **दयापाल** ने नवीन रूप दिया और **रूपसिद्ध** नामक ग्रन्थ लिखा । १४वी शताब्दी मे **अभयचन्द्र** ने **प्रक्रियासंग्रह** ग्रन्थ लिखकर इसको नवीन रूप मे प्रस्तुत किया है ।

धारानरेश **भोज** (१००५–१०५४ ई०) ने **सरस्वतीकण्ठाभरण** नामक ग्रन्थ की रचना की है । इसमें ६००० सूत्र है । पाणिनि की अष्टाध्यायी के प्रतिरूप

इसमें ८ अध्याय हैं। अध्ययन के लिए इस पद्धति को सरल बनाने के लिए लेखक ने ग्रन्थ के कलेवर मे वार्तिक, उणादिसूत्र और परिभाषाओ को एकत्र कर दिया है। वैदिक धर्म का अनुयायी होने के कारण उसका प्रयास पणिनि-विरुद्ध नही है। संस्कृत के अध्ययन को सरल करने के लिए उसने सूत्रो की रचना स्वत की थी।

हेमचन्द्र शाखा का संस्थापक जैन **हेमचन्द्र** (१०८८-११७२ ई०) था। उसने **शब्दानुशासन ग्रन्थ** लिखा हैं। इसमे आठ अध्यायो में ४५०० सूत्र ह। इसके अन्तिम अध्याय मे प्राकृत व्याकरण है। इन पर हेमचन्द्र ने ही **बृहद्-वृत्ति** नामक टीका लिखी है। हेमचन्द्र के शब्दानुशासन पर **मेघविजय** (१७वी शताब्दी ई०) ने **शब्दचन्द्रिका** नामक टीका लिखी है। हेमचन्द्र की **बृहद्वृत्ति** पर **देवेन्द्र सूरि** (समय अज्ञात) ने **हेमलघुन्यास** नामक टीका लिखी है।

कातन्त्र शाखा की स्थापना पाणिनीय व्याकरण के संक्षेप के रूप मे हुई। **शरवर्मा,** जिसका दूसरा नाम **शर्ववर्मा** है, **गुणाढ्य** का प्रतिद्वन्द्वी था। उसने राजा सातवाहन ने प्रतिज्ञा की कि वह उसे ६ मास मे संस्कृत भाषा सिखा देगा। उसने सुब्रह्मण्य की उपासना की और उसने प्रसन्न होकर उसको सरल व्याकरण प्रकट किया। उसका ही नाम **कातन्त्र, कलाप** या **कौमार** व्याकरण है। इस ग्रन्थ का समय प्रथम शताब्दी ई० पू० या ई० मे मानना चाहिए। यह पाणिनि की अष्टाध्यायी से कुछ संक्षिप्त है। इस **कातन्त्र व्याकरण** मे चार अध्याय हैं और १४०० सूत्र हैं। इसमे प्रत्याहारो को हटाकर उनका पूरा रूप दिया गया है। इसमे सूत्रो को सिद्धान्तकौमुदी के तुल्य ही विषयानुसार रक्खा गया है। इस पर ८वी शताब्दी मे **दुर्गसिंह** ने टीका लिखी है। यह ग्रन्थ कश्मीर और लङ्का मे बहुत प्रचलित हुआ है। कश्मीर मे **भट्ट जय-धर** ने इसी शाखा पर **बालबोधिनी** नामक ग्रन्थ लिखा है। इस पर **उग्रभूति** ने **न्यास** नाम की टीका लिखी है।

सारस्वत शाखा की उत्पत्ति मुस्लिम राजाओ की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए हुई थी। इस व्याकरण मे केवल ७०० सूत्र हैं। इस व्याकरण

की विशेषता यह है कि यह संक्षिप्त है। इसका विषय-विवेचन सरल है और इसमे कठिन तथा अप्रचलित रूपो को हटा दिया गया है। इसका नाम सारस्वत इसलिए पडा कि इसके सूत्रो को देवी सरस्वती ने प्रगट किया था। यह शाखा १२५० ई० के लगभग प्रारम्भ हुई। इन सूत्रो का कर्ता एक **नरेन्द्र** नामक व्यक्ति माना जाता है। ऐसा माना जाता है कि **अनुभूतिस्वरूपाचार्य** ने इन सूत्रो को क्रमबद्ध किया है और इन पर **सारस्वतप्रक्रिया** नामक टीका लिखी है। वह १३वी शताब्दी के उत्तरार्ध मे हुआ था। इस सारस्वतप्रक्रिया पर १५ टीकाएँ लिखी गई है। उनमे से कुछ टीकाएँ ये हैं—**मण्डन** का **मण्डनभाष्य** तथा **रामचन्द्राश्रम** की **सिद्धान्तचन्द्रिका**। रामचन्द्राश्रम का समय १५५० ई० माना जाता है। इस शाखा के लिए **हर्षकीर्ति** (१५५० ई०) ने धातुपाठ तैयार किया। यह पद्धति भट्टोजि-दीक्षित के समय तक प्रचलित थी।

वोपदेव शाखा का ग्रन्थ **वोपदेव** कृत **मुग्धबोध** है। वोपदेव १३वी शताब्दी ई० मे हुआ था। यह शाखा पाणिनीय व्याकरण को सरल बनाने के लिए प्रारम्भ हुई थी। इस पद्धति की ये विशेषताएँ हैं—विषय-विवेचन की सरलता, संक्षेप तथा धार्मिक भावो का सम्मिश्रण। इस शाखा मे जो पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग किया गया है, वह कठिनता से समझ मे आता है, अतएव यह व्याकरण कठिन हो गया है। **रामतर्कवागीश** ने **मुग्धबोध** की टीका की है। वोपदेव **कविकल्पद्रुम** का भी लेखक माना जाता है। इसमें धातुओ को अन्त्याक्षर के अनुसार क्रमबद्ध किया गया है। इस पर वोपदेव ने ही **कामधेनु** नाम की टीका भी लिखी है।

जौमरशाखा का संस्थापक **क्रमदीश्वर** था। उसने पाणिनीय अष्टाध्यायी का संक्षिप्त रूप **संक्षिप्तसार** ग्रन्थ लिखा है। लेखक का समय ११वी शताब्दी के बाद और १४वीं शताब्दी के पूर्व का है। **जूमरनन्दी** ने इस शाखा को नवीन रूप दिया है, अतः इस शाखा का नाम उसी के नाम पर पडा है। जूमरनन्दी ने संक्षिप्तसार पर **रसवती** नाम की एक टीका लिखी है।

१२वी शताब्दी मे सक्षिप्तसार पर एक दूसरी टीका **गोयीचन्द्र** की लिखी हुई **गोयीचन्द्रिका** है।

सौपद्म शाखा की स्थापना **पद्मनाभभट्ट** ने की थी। वह १४वी शताब्दी मे हुआ था। उसने पाणिनीय व्याकरण के अधिकाश भाग को **सौपद्म-व्याकरण** लिखकर नवीन रूप दिया है। इस पर उसने स्वय **सौपद्म-पजिका** नाम की टीका लिखी है।

चैतन्य के एक शिष्य **रूपगोस्वामी** ने **हरिनामामृत** नामक व्याकरण का एक ग्रन्थ लिखा है। इससे ज्ञात होता है कि उसने व्याकरण को साम्प्रदायिक रूप मे प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार के और दो ग्रन्थ हैं—**जीवगोस्वामी** का **हरिनामामृत** और एक अज्ञात लेखक का **चैतन्यामृत**। इन ग्रन्थो मे कृष्ण की प्रशसा की गई है, परन्तु इसके विपरीत **बालरामपचानन** की **प्रबोधचन्द्रिका** मे शिव की प्रशसा की गई है।

सस्कृत व्याकरण के साथ ही साथ प्राकृत व्याकरण का भी स्वतन्त्र रूप मे विकास हुआ। इसका सबसे प्राचीन ग्रन्थ **वररुचि** का **प्राकृतप्रकाश** है। इसमे प्रथम ६ अध्यायो मे **महाराष्ट्री** प्राकृत का वर्णन है और बाद के तीन अध्यायो मे क्रमश **पैशाची, मागधी** और **शौरसेनी** प्राकृत का वर्णन है। इसमे अपभ्रश का वर्णन नही है। वररुचि का समय ५०० ई० के पूर्व का मानना चाहिए, क्योकि ५०० ई० मे अपभ्रश विभाषा के रूप मे विकसित हुआ है। भारतीय परम्परा वररुचि और **वार्तिककार कात्यायन** को एक ही व्यक्ति मानती है। अत उसका समय कात्यायन का ही समय मानना चाहिए। प्रसिद्ध साहित्यशास्त्री **भामह** (लगभग ७०० ई०) ने केवल अन्तिम अध्याय को छोडकर शेष सभी अध्यायो पर **मनोरमा** नाम की टीका लिखी है। १०वी शताब्दी मे **रामपाणिवाद** ने प्रथम ६ अध्यायो पर **प्राकृत-प्रकाशवृत्ति** नाम की टीका लिखी है। **कृष्णलीलाशुक** (लगभग ११५० ई०) ने **श्रीचिह्नकाव्य** लिखा है। इसमे उसने वररुचि के प्राकृतप्रकाश के नियमो के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं।

प्राकृतसूत्रो के रचयिता रामायण के लेखक **वाल्मीकि** ऋषि माने जाते हैं। उनको **वाल्मीकिसूत्र** भी कहते हैं। इन सूत्रो का समय इतना प्राचीन नही हो सकता है, क्योकि जिस रूप मे यह अब प्राप्त होता है, उसमे महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी, पैशाची, चूलिका और अपभ्रश इन सबका वर्णन है। **त्रिविक्रम** ने १४वी शताब्दी मे इन सूत्रो पर **प्राकृतसूत्रवृत्ति** नाम की टीका लिखी है। सम्भवत यही इन सूत्रो का रचयिता है। हेमचन्द्र ने अपने **शब्दानुशासन** मे स्वरचित प्राकृतसूत्रो को आठवे अध्याय मे रक्खा है। उसने स्वय उन पर टीका लिखी है। उसने इस ग्रन्थ मे **प्राकृत भाषा, जैन महाराष्ट्री** और **आर्ष प्राकृत** का वर्णन किया है।

त्रिविक्रम ने १४वी शताब्दी मे प्राकृतसूत्रो पर टीका के अतिरिक्त **प्राकृतशब्दानुशासन** ग्रन्थ लिखा है। १४वी शताब्दी के ही एक लेखक सिंहराज ने **प्राकृतरूपावतार** ग्रन्थ लिखा है। १६वी शताब्दी के अन्तिम भाग मे **लक्ष्मीधर** ने **षड्भाषाचन्द्रिका** नामक ग्रन्थ लिखा था। इसमे उसने प्राकृत को ६ विभाषाओ अर्थात् **महाराष्ट्री, मागधी, शौरसेनी, पैशाची चूलिका, पैशाची** और **अपभ्रश** का वर्णन किया है। एक **चन्द्र** नामक लेखक (समय अज्ञात) ने **प्राकृतलक्षण** ग्रन्थ लिखा है। इसका समय अनिश्चित है। एक **लकेश्वर** ने **शेषनाग** के **प्राकृतव्याकरणसूत्र** पर **प्राकृतकामधेनु** नामक टीका लिखी है। इस **लकेश्वर** का दूसरा नाम **रावण** था। १७वी शताब्दी मे **रामतर्कवागीश** ने **प्राकृतकल्पतरु** ग्रन्थ लिखा है। इस पर प्राकृतकामधेनु का प्रभाव पडा है। प्राकृतकल्पतरु ने १७वी शताब्दी के एक लेखक **मार्कण्डेय** को **प्राकृतसर्वस्व** लिखने के लिए प्रेरित किया।

अध्याय २७

छन्दःशास्त्र और कोशग्रन्थ

छन्द.शास्त्र

शाख्यायनश्रौतसूत्र, निदानसूत्र, ऋक्प्रातिशाख्य और कात्यायन की अनुक्रमणियो आदि मे वैदिक छन्दो का विवेचन किया गया है। श्रेण्यकाल मे छन्द शास्त्र का निरन्तर विकास होता रहा है। इस काल मे छन्द को दो भागो मे विभक्त किया गया था—वृत्त और जाति। वृत्त का नियमन गणो के द्वारा होता है। प्रत्येक गण मे तीन वर्ण होते है। इन तीनो वर्णो मे ह्रस्व और दीर्घ के स्थान का अन्तर होने से आठ विभिन्न गण हो जाते हैं। इसमे प्रत्येक वर्ण मे प्राप्त ह्रस्व या दीर्घ मात्राओ की गणना की जाती हैं। तदनुसार ही छन्दो मे अन्तर होता है। ये छन्द दो प्रकार के होते हैं—सम और विषम। प्रत्येक श्लोक मे चार पाद होते हैं। समवृत्तो मे प्रत्येक पाद मे वर्णो की सख्या समान ही होती है और विषम वृत्तो में प्रत्येक पाद मे वर्णो की सख्या समान नही होती है। जाति छदो मे वर्णो की सख्या नही गिनी जाती है, अपितु मात्राओ की सख्या गिनी जाती है। प्रत्येक पाद मे निश्चित मात्राओ की सख्या होनी चाहिए। इन छन्दो मे निश्चित स्थान पर यति (विराम) होना चाहिए। महाभारत मे भी वैदिक छन्द प्राप्त होते हैं। वैदिक काल का अनुष्टुप् छन्द ही श्रेण्यकाल मे श्लोक हो गया है। वैदिक छन्दो मे से बहुत से छन्द श्रेण्यकाल मे लुप्त हो गये हैं और उनके स्थान पर कितने ही नये छन्द आ गये है।

वैदिक काल के पश्चात् इस विषय के सबसे प्राचीन ग्रन्थ है पिंगल या पिंगलनाग का छन्द सूत्र तथा जयदेव का जयदेवछन्द। इसकी शैली वैदिक

ग्रन्थो के तुल्य है, परन्तु इसमे वैदिक छन्दो का विवेचन नही है। जिस प्रकार पाणिनि ने सक्षेप के लिए प्रत्याहारो का उपयोग किया है, उसी प्रकार पिंगल ने सक्षेप के लिए छन्दो के लक्षण मे गणो का उपयोग किया है। ये ग्रन्थ श्रेण्यकालीन छन्दो का वर्णन नही करते। **प्राकृतछन्द सूत्र** का लेखक भी वही माना जाता है। वह कालिदास से बहुत पूर्व हुआ होगा।

वृत्तरत्नावली और **श्रुतबोध** ये दोनो कालिदास की रचनाएँ मानी जाती हैं। किन्तु यह गलत है। दोनो मे श्रेण्यकाल के छन्दो का विवेचन है। **जनाश्रय** (लगभग ८०० ई०) ने **छन्दोविचिति** ग्रन्थ लिखा है। उसने उसमे छन्दो के उदाहरण अपने पूर्ववर्ती लेखको के ग्रन्थो से दिये हैं। **वराहमिहिर** (५८७ ई०) ने अपनी **बृहत्संहिता** में ग्रहो आदि की गति का वर्णन किया हैं। साथ ही उसने छन्दो के विषय मे एक अध्याय दिया है। **क्षेमेन्द्र** (१०५० ई०) ने अपने **सुवृत्ततिलक** मे अपने पूर्ववर्ती लेखको के ग्रन्थो का उल्लेख किया है। **हेमचन्द्र** (१०८८-११७२ ई०) ने छन्दो के विषय मे **छन्दोऽनुशासन** ग्रन्थ लिखा है। **केदारभट्ट** ने **वृत्तरत्नाकर** ग्रन्थ लिखा है। यह ग्रन्थ जब से लिखा गया है, तभी से बहुत प्रसिद्ध हो गया है। केदारभट्ट १५वी शताब्दी के प्रारम्भ मे हुआ था। **प्राकृतछन्द सूत्र** मे प्राकृत भाषा के छन्दो का वर्णन किया गया है। कुछ लोगो का मत है कि इस ग्रन्थ का लेखक **पिंगल** है। किन्तु यह मत ठीक नही जान पडता। इसका लेखक अज्ञात है। ऐसा निरूपण किया जाता है कि वह १५वी शताब्दी के पूर्व लगभग १४२५ ई० मे रहा होगा। छन्द विषय पर अन्य ग्रन्थ ये हैं--**गंगादास** (१५वी शताब्दी ई०) की **छन्दोमंजरी**, **दामोदर मिश्र** (१६वी शताब्दी ई०) का **वाणी-भूषण** और **दुःखभंजन कवि** का **वाग्वल्लभ**।

श्रेण्यकाल के छन्दो मे ये छन्द अधिक प्रचलित हैं--मन्दाक्रान्ता, वसन्ततिलक, शार्दूलविक्रीडित, शिखरिणी, अनुष्टुभ्, आर्या और उपजाति।

कोशग्रन्थ

कोशग्रन्थ निघण्टु-परम्परा के ही अविच्छिन्न रूप हैं। निघण्टु मे वैदिक शब्दो का सग्रह है। इसकी व्याख्या निरुक्त नाम से यास्क ने की है। कोशग्रन्थो मे प्रयुक्त शब्दो का सग्रह होता था और कवियो आदि को सुविधा प्राप्त होती थी कि वे उन शब्दो मे से उचित शब्दो को छाँट लें। इनमे किसी विशेष ग्रन्थ के ही शब्दो का सग्रह नही होता था। निरुक्त मे सज्ञाशब्दो और धातुओ दोनो का ही वर्णन है। अन्य कोशग्रन्थो मे सज्ञाशब्दो और अव्ययो का अधिक वर्णन है, धातुओ का कम। इन कोशग्रन्थो मे शब्दो को अकारादि क्रम से नही रक्खा गया है। उनको पद्य का रूप दिया गया है। उनके श्लोको को स्मरण किया जाता था। कोशग्रन्थो मे दो प्रकार के शब्दो को स्थान दिया जाता था—समानार्थक और नानार्थक। समानार्थक शब्दो मे शब्दो को अर्थ के अनुसार रक्खा जाता है। कही पर शब्दो को प्रारम्भिक अक्षरो के अनुसार और कही पर अन्तिम अक्षर के अनुसार और कही पर दोनो के मिश्रित रूप मे रक्खा गया है। कही पर शब्दो को अक्षरो की सख्या के अनुसार भी रक्खा गया है। कही-कही पर लिगनिर्देश किया गया है। सज्ञाशब्द प्रथमा विभक्ति मे दिये गये है। कतिपय कोशग्रन्थो मे केवल नानार्थक शब्दो को ही रक्खा गया है। जिसमे समानार्थक शब्द रक्खे गये है, उनमे भी नानार्थक शब्दो के लिए एक अध्याय दिया गया है।

सबसे प्राचीन शब्दकोश ये है—कात्यायन कृत, नाममाला, वाचस्पति का शब्दकोश, विक्रमादित्य का शब्दकोश, शब्दार्णव ग्रन्थ, ससारावर्त तथा व्यडि कृत उत्पलिनी। ये सभी ग्रन्थ अब नष्ट हो चुके हैं। नानार्थक शब्दो पर एक ग्रन्थ है नानार्थशब्दरत्न। इसका रचयिता कालिदास को माना जाता है। महाराज भोज से प्रेरित होकर निचुल कवि ने इन पर तरला नाम की एक टीका लिखी है। इस विषय मे कोई प्रमाण नही मिलता कि कालिदास ने नानार्थशब्दरत्न की रचना की थी। निचुल कवि की

ग्रन्थो के तुल्य है, परन्तु इसमे वैदिक छन्दो का विवेचन नही है। जिस प्रकार पाणिनि ने सक्षेप के लिए प्रत्याहारो का उपयोग किया है, उसी प्रकार पिंगल ने सक्षेप के लिए छन्दो के लक्षण मे गणो का उपयोग किया है। ये ग्रन्थ श्रेण्यकालीन छन्दो का वर्णन नही करते। **प्राकृतछन्द सूत्र** का लेखक भी वही माना जाता है। वह कालिदास से बहुत पूर्व हुआ होगा।

वृत्तरत्नावली और **श्रुतबोध** ये दोनो कालिदास की रचनाएँ मानी जाती हैं। किन्तु यह गलत है। दोनो मे श्रेण्यकाल के छन्दो का विवेचन है। **जनाश्रय** (लगभग ८०० ई०) ने **छन्दोविचिति** ग्रन्थ लिखा है। उसने उसमे छन्दो के उदाहरण अपने पूर्ववर्ती लेखको के ग्रन्थो से दिये हैं। **वराहमिहिर** (५८७ ई०) ने अपनी **बृहत्सहिता** में ग्रहो आदि की गति का वर्णन किया है। साथ ही उसने छन्दो के विषय मे एक अध्याय दिया है। **क्षेमेन्द्र** (१०५० ई०) ने अपने **सुवृत्ततिलक** मे अपने पूर्ववर्ती लेखको के गन्थो का उल्लेख किया है। **हेमचन्द्र** (१०८८-११७२ ई०) ने छन्दो के विषय मे **छन्दोऽनुशासन** ग्रन्थ लिखा है। **केदारभट्ट** ने **वृत्तरत्नाकर** ग्रन्थ लिखा है। यह ग्रन्थ जब से लिखा गया है, तभी से बहुत प्रसिद्ध हो गया है। केदारभट्ट १५वी शताब्दी के प्रारम्भ मे हुआ था। प्राकृतछन्द सूत्र मे प्राकृत भाषा के छन्दो का वर्णन किया गया है। कुछ लोगो का मत है कि इस ग्रन्थ का लेखक पिंगल है। किन्तु यह मत ठीक नही जान पडता। इसका लेखक अज्ञात है। ऐसा निरूपण किया जाता है कि वह १५वी शताब्दी के पूर्व लगभग १४२५ ई० मे रहा होगा। छन्द विषय पर अन्य ग्रन्थ ये हैं--**गगादास** (१५वी शताब्दी ई०) की **छन्दोमजरी**, **दामोदर मिश्र** (१६वी शताब्दी ई०) का **वाणी-भूषण** और **दु खभजन** कवि का **वाग्वल्लभ**।

श्रेण्यकाल के छन्दो मे ये छन्द अधिक प्रचलित है--मन्दाक्रान्ता, वसन्ततिलक, शार्दूलविक्रीडित, शिखरिणी, अनुष्टुभ्, आर्या और उपजाति।

कोशग्रन्थ

कोशग्रन्थ निघण्टु-परम्परा के ही अविच्छिन्न रूप है। निघण्टु मे वैदिक शब्दो का सग्रह है। इसकी व्याख्या निरुक्त नाम से यास्क ने की है। कोशग्रन्थो मे प्रयुक्त शब्दो का सग्रह होता था और कवियो आदि को सुविधा प्राप्त होती थी कि वे उन शब्दो मे से उचित शब्दो को छाँट लें। इनमे किसी विशेष ग्रन्थ के ही शब्दो का सग्रह नही होता था। निरुक्त मे सज्ञाशब्दो और धातुओ दोनो का ही वर्णन है। अन्य कोशग्रन्थो मे सज्ञाशब्दो और अव्ययो का अधिक वर्णन है, धातुओ का कम। इन कोशग्रन्थो मे शब्दो को अकारादि क्रम से नही रक्खा गया है। उनको पद्य का रूप दिया गया है। उनके श्लोको को स्मरण किया जाता था। कोशग्रन्थो मे दो प्रकार के शब्दो को स्थान दिया जाता था—समानार्थक और नानार्थक। समानार्थक शब्दो मे शब्दो को अर्थ के अनुसार रक्खा जाता है। कही पर शब्दो को प्रारम्भिक अक्षरो के अनुसार और कही पर अन्तिम अक्षर के अनुसार और कही पर दोनो के मिश्रित रूप मे रक्खा गया है। कही पर शब्दो को अक्षरो की सख्या के अनुसार भी रक्खा गया है। कही-कही पर लिगनिर्देश किया गया है। सज्ञाशब्द प्रथमा विभक्ति मे दिये गये हैं। कतिपय कोशग्रन्थो मे केवल नानार्थक शब्दो को ही रक्खा गया है। जिसमे समानार्थक शब्द रक्खे गये है, उनमे भी नानार्थक शब्दो के लिए एक अध्याय दिया गया है।

सबसे प्राचीन शब्दकोश ये हैं—कात्यायन कृत, नाममाला, वाचस्पति का शब्दकोश, विक्रमादित्य का शब्दकोश, शब्दार्णव ग्रन्थ, ससारावर्त तथा व्याडि कृत उत्पलिनी। ये सभी ग्रन्थ अब नष्ट हो चुके हैं। नानार्थक शब्दो पर एक ग्रन्थ है नानार्थशब्दरत्न। इसका रचयिता कालिदास को माना जाता है। महाराज भोज से प्रेरित होकर निचुल कवि ने इस पर तरला नाम की एक टीका लिखी है। इस विषय मे कोई प्रमाण नही मिलता कि कालिदास ने नानार्थशब्दरत्न की रचना की थी। निचुल कवि की

एकरूपता भी अज्ञात है। आजकल सबसे प्राचीन जो शब्दकोश प्राप्त होता है, वह है **अमरसिंहकृत अमरकोश**। अमरसिंह एक बौद्ध लेखक था। वह राजा विक्रमादित्य के नवरत्नो मे से एक माना जाता है। उसका समय ४०० ई० और ६०० ई० के बीच का माना जाता है। इस कोश का दूसरा नाम **नामलिंगानुशासन** है। इसमे प्रथम तीन काण्डो मे समानार्थक शब्दो का वर्णन है। अन्त मे नानार्थक शब्दो, अव्ययो तथा लिंगो का वर्णन है। अमरसिंह के समकालीन एक लेखक **शाश्वत** ने **अनेकार्थसमुच्चय** ग्रन्थ लिखा है। **हलायुध** ने ६५० ई० के लगभग **अभिधानरत्नमाला** ग्रन्थ लिखा है। **नाममालिका** धारानरेश **भोज** (१००५-१०५४ ई०) की रचना है। **यादवप्रकाश** ने ११ वी शताब्दी के मध्य मे **वैजयन्ती** ग्रन्थ लिखा है। इसमे समानार्थक और नानार्थक दोनो शब्दो का संग्रह है। यादवप्रकाश पहले अद्वैतवादी था, परन्तु बाद मे रामानुज के प्रभाव के कारण वह विशिष्टाद्वैतवादी हो गया था। **अजयपाल** (१०७५-११४० ई०) **नानार्थरत्नमाला** ग्रन्थ का लेखक माना जाता है। इसमे अनेकार्थक शब्दो का वर्णन है। १२ वी शताब्दी के प्रारम्भ मे ये ग्रन्थ लिखे गये—(१) **केशवस्वामी** ने **नानार्थार्णवसंक्षेप** ग्रन्थ लिखा है। इसमे उसने नानार्थक शब्दो के अर्थ और उनके लिंग लिखे है। (२) **महेश्वर** ने **विश्वप्रकाश** ग्रन्थ लिखा है। इसमे उसने समानार्थक और नानार्थक शब्दो का वर्णन किया है। इसी समय दूसरे **महेश्वर** ने शब्द-विन्यास का वर्णन करते हुए **शब्दभेदप्रकाश** नामक ग्रन्थ लिखा है। (३) **हेमचन्द्र** ने **अभिधानचिन्तामणि** ग्रन्थ लिखा है। इसमे उसने समानार्थक शब्दो का वर्णन किया है। साथ ही जैन देवताओ का भी वर्णन किया है। उसने इस ग्रन्थ का एक परिशिष्ट **निघण्टुशेष** लिखा है। इसमे उसने ओषधियो और वनस्पतियो का वर्णन किया है। उसने एक दूसरा परिशिष्ट **अनेकार्थसंग्रह** लिखा है। इसमे उसने अनेकार्थ शब्दो का वर्णन किया है। इसमे एक अक्षर वाले शब्दो से लेकर ६ अक्षर वाले अनेकार्थक शब्दो के अर्थ दिए गए है। **श्रीकण्ठचरित** के लेखक **मख** ने **अनेकार्थकोश** ग्रन्थ लिखा है। **राघवपाण्डवीय** का लेखक जैन कवि **धनंजय नाममाला** और **निघण्टुसमय**

का लेखक माना जाता है । १२०० ई० के लगभग **पुरुषोत्तमदेव** ने अमरकोश का परिशिष्ट **त्रिकाण्डशेष** लिखा है। इसमे अधिकतर बौद्ध धर्म से सम्बद्ध शब्द हैं। ये शब्द प्रयोग में कम आते हैं । उसने अमरकोश के समानार्थक और नानार्थक शब्दो पर **हारावली** व्याख्या लिखी है । **भट्टमल** ने समानार्थक धातुओ पर **आख्यातचन्द्रिका** ग्रन्थ लिखा है । वह १४वी शताब्दी से पूर्व हुआ था । हरिहर द्वितीय के मन्त्री **इरुगप्पदण्डनाथ** ने १४वी शताब्दी के उत्तरार्ध मे **नानार्थरत्नमाला** ग्रन्थ लिखा है । **वामनभट्टबाण** (लगभग १४२० ई०) ने दो कोशग्रन्थ लिखे हैं—**शब्दचन्द्रिका** और **शब्दरत्नाकर** । **मेदिनीकर** ने १४वी शताब्दी ई० मे नानार्थक शब्दो के विषय मे **अनेकार्थशब्दकोश** ग्रन्थ लिखा है । **केशवदैवज्ञ** ने समानार्थक शब्दो के विषय मे **कल्पद्रु** नामक कोश लिखा है। वह १७वी शताब्दी ई० के प्रारम्भ मे हुआ था । समानार्थक शब्दो के विषय मे लिखे गये **नामसग्रहमाला** ग्रन्थ का लेखक **अप्पयदीक्षित** माना जाता है । इसके अतिरिक्त कुछ छोटे कोशग्रन्थ हैं—**एकाक्षरकोश**, इसमे एक अक्षर वाले शब्दो का वर्णन है। **द्विरूपकोश**, इसमे दो वर्ण वाले शब्दो का वर्णन है । इनके अतिरिक्त गणित ज्योतिष, फलित ज्योतिप और वैद्यक सम्बन्धी कोष हैं । उनका समय अज्ञात है । सस्कृत और फारसी के शब्दो का कोश **पारसीप्रकाश** है । गणित ज्योतिप और फलित ज्योतिप के पारिभाषिक शब्दो को लेकर **वेदागराय** ने १६४३ ई० मे **पारसीप्रकाश** ग्रन्थ लिखा है । **महादेव वेदान्ती** ने उसी समय **उणादिकोश** लिखा है। **धनपाल** (१००० ई०) लिखित **पैयालच्छि** ग्रन्थ प्राकृत शब्दो का कोश है । **हेमचन्द्र** (१०८८-११७२ ई०) लिखित **देशीनाममाला** प्राकृत शब्दो का ही कोश है । **तारानाथ तर्कवाचस्पति**-लिखित **वाचस्पत्य** और **राधाकान्तदेव**-लिखित **शब्दकल्पद्रुम**, ये दोनों ग्रन्थ विश्वकोश के तुल्य हैं । ये दोनो ग्रन्थ आधुनिक कृति हैं ।

अध्याय २८

ज्योतिष

श्रेण्यकालीन ज्योतिष का सम्बन्ध वैदिक काल के ज्योतिष के साथ है। इस विषय की मुख्य शाखाए गणित-ज्योतिष, फलित ज्योतिष और गणित हैं। इसमें दिनो की गणना की जाती थी और नक्षत्रो का ग्रहो के साथ गति आदि का निरीक्षण किया जाता था। वैदिक पचाग चान्द्र और सौर दोनो प्रकार का था। उत्तरायण और दक्षिणायन का निरीक्षण किया जाता था। चन्द्रग्रहण का कारण चन्द्रमा पर पृथ्वी की छाया माना गया है। बहुत प्राचीन समय से ग्रहो और नक्षत्रो की गतिविधि तथा उनका मनुष्यो पर प्रभाव स्वीकार किया गया है और उसका अध्ययन किया गया है। इस विषय का विशेष विवेचन फलित ज्योतिष में किया जाता था। फलित ज्योतिष का सम्बन्ध गणित ज्योतिष से है और यह गणित ज्योतिष पर आश्रित है। गणित ज्योतिष में ग्रहो की गति का विशेष विवेचन होता है। फलित ज्योतिर्विद् मनुष्यो के भावी जीवन के विषय में भविष्यवाणी करते थे। राजाओ के लिए शान्ति और युद्ध दोनो समयो मे ज्योतिषी की सहायता लेना अनिवार्य होता था। तथापि ज्योतिषी को समाज मे उच्च स्थान नही प्राप्त था, क्योकि वह वैदिक कर्म-काण्ड में भाग न लेने के कारण अपवित्र माना जाता था। ग्रहो की गति की गणना तथा उनकी स्थिति का निर्णय करना, इन दोनो कारणो ने गणितशास्त्र को जन्म दिया। भारतवर्ष को ही यह श्रेय प्राप्त है कि उसने बीजगणित और सकेतचिह्नात्मक विधि की स्थापना की। भारतवर्ष मे ज्यामिति और त्रिकोण-मिति मे बहुत प्रगति की जा चुकी थी। ज्योतिष-विषय के जो ग्रन्थ प्राप्त होते हैं, उनमे इन विषयो का विवेचन है। किसी में एक और किसी में दो विषयो का वर्णन है।

गणित ज्योतिप के जो प्राचीन ग्रन्थ प्राप्त होते हैं, वे अपूर्ण ही प्राप्य हैं। प्राचोन लेखको के ये ग्रन्थ प्राप्त होते हैं—**गार्गीसहिता**, **वृद्धगार्गीसहिता** (३००० ई० पू० से प्राचीन), **पौष्करसादि** के ग्रन्थो के कुछ अपूर्ण अश, नक्षत्रो के विषय मे **अथर्ववेद** के **परिशिष्ट** और **पैतामहसिद्धान्त**। वराहमिहिर ने उल्लेख किया है कि ज्योतिप के इन प्राचीन आचार्यों के ग्रन्थ उसे अपूर्ण रूप मे प्राप्त थे—**असितदेवल, गर्ग, वृद्धगर्ग,** नारद और **पराशर**। वराहमिहिर का स्वर्गवास ५८७ ई० मे हुआ था। भारतवर्ष के विषय मे जो यूनानी ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त होती है, उससे ज्ञात होता है कि गर्गसहिता और वृद्धगर्गसहिता ईसवीय सन् से बहुत पूर्व विद्यमान् थे। इस समय भारतीयो को गणित ज्योतिप के सिद्धान्तो का पूर्ण ज्ञान था, यह उस समय के ज्योतिप के ग्रन्थो तथा अन्य विपय के ग्रन्थो से ज्ञात होता है। चन्द्रमा जलोय ग्रह माना जाता था।[1] इन्द्रधनुप जलयुक्त वादलो पर सूर्य की किरणो के प्रतिविम्बित होने मे वनता है।[2] सूर्य और चन्द्रमा का स्थिति-स्थान तथा उनकी गति का वस्तुत निरीक्षण किया गया था। सूर्य-विम्व की वास्तविकता को ठीक ढग मे समझा गया था। जो नक्षत्र सूर्य के मार्ग मे हैं तथा जो नक्षत्र और ग्रह सूर्य-मण्डल के समीप हैं, उनके ही स्थान का अध्ययन और निरीक्षण किया गया। पृथिवी के आकर्षण के नियम को विद्वान् जानते थे। गोले **और** घटिका (आधे घडे के वरावर आकृति के तांवे के वर्तन) निरीक्षण के काम मे आते थे। इनमे समय का भी निर्धारण किया जाता था।

वराहमिहिर के ग्रन्थ **पचसिद्धान्तिका** से ज्ञात होता है कि ज्योतिप की पाँच शाखाएँ थी। उनके नाम हैं—**पैतामह, रोमक, पोलिश, सूर्य** और **वसिष्ठ**। **पैतामहसिद्धान्त** सौर और चान्द्र दोनो गणनाओ को मानता है। **रोमकसिद्धान्त** मे गणित ज्योतिष के यूनानी सिद्धान्तो का वर्णन किया गया है, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है। इसमे भारतीय युगो की पद्धति को स्वीकार नही किया गया है। इसमे ग्रहणो का वहुत थोडा विवेचन है। मध्याह्न रेखा की

१ कुमारसभव ५-२२। २ कुमारसभव ८-३१।

गणना यूनानियो के नगर से की गई है। सूर्य और चन्द्रमा के अयनवृत्त सवधी सक्रमणो की गणना की गई है। **पौलिशसिद्धान्त** का वर्णन शुद्ध है। इसमे ग्रहणो का सक्षिप्त विवेचन है। यूनानियो के नगर और उज्जैन के मध्य देशान्तरो की दूरी का उल्लेख किया गया है। इसमे भूमध्यरेखाओ के विस्तृत चित्र दिए गए हैं। इसने मण्डलात्मक गणित ज्योतिष को विशेष देन दी है। नक्षत्रो के भ्रमण तथा ग्रहो की गति मे वैषम्य का निरीक्षण किया गया। इन सभी शाखाओ मे **सूर्यसिद्धान्त** सबसे अधिक शुद्ध और मान्य है। इसने केन्द्र के समीकरण के लिए सामान्य नियम दिए हैं। इसमे ग्रहणो का विस्तृत विवेचन किया गया है। **वसिष्ठ शाखा** वालो ने ग्रहो की गति और स्थिति को विषमता का विवेचन किया है।

भारतीय गणित ज्योतिष का सबसे प्राचीन और प्रामाणिक आचार्य **वराहमिहिर** है। उसका ५८७ ई० में स्वर्गवास हुआ था। उसने अपनी **पचसिद्धान्तिका** मे पूर्वोक्त पाँचो ज्योतिष की शाखाओ का वर्णन किया है। लल्ल ने ७४८ ई० के लगभग **शिष्यधीवृद्धितन्त्र** ग्रन्थ लिखा है। इसमे उसने ज्योतिष की ओर छात्रो की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित किया है। इस पर **भास्कर** ने १२वी शताब्दी मे टीका लिखी है। **आर्यभट्ट** ने ९५० ई० के लगभग **आर्यसिद्धान्त** ग्रन्थ लिखा है। **आदित्यप्रतापसिद्धान्त** महाराज **भोज** (१००५-१०५४ ई०) की रचना है। एक अज्ञात लेखक का १३५० ई० से पूर्व का लिखा हुआ **विद्यामाधवीय** ग्रन्थ प्राप्त होता है। इसमे लेखक ने वसिष्ठ, बृहस्पति और गार्ग्य आदि प्राचीन लेखको की उक्तियो का विशद विवेचन किया है। एक **वृद्धवासिष्ठसहिता** प्राप्त होती है। इसका समय अज्ञात है, किन्तु यह एक प्राचीन ग्रन्थ है। **ज्योतिर्विदाभरण** ग्रन्थ का लेखक **कालिदास** माना जाता है। इसमे ज्योतिष सम्बन्धी विषयो का विवेचन किया गया है। यह नवीन रचना है।

फलित ज्योतिष पर सबसे प्राचीन ग्रन्थ **यवनजातक** है। वह नेपाली हस्तलिखित प्रति के रूप मे सुरक्षित है। उस ग्रन्थ मे यह लिखा हुआ है कि

९१ ई० मे एक यवनेश्वर ने अपने कथनो को सस्कृत मे अनूदित किया। यही यवन-जातक के नाम से प्रचलित हुआ। भट्टोत्पल (लगभग १००० ई०) के कथनानुसार उस ग्रन्थ मे दिया हुआ सवत् शक सवत् है। यदि इस साक्ष्य को प्रामाणिक माना जाय तो इस ग्रन्थ का समय १६९ ई० होता है। यवनजातक नाम का एक दूसरा ग्रन्थ १९१ वें वर्ष (२६८ ई०) मे स्फूर्जिध्वज के द्वारा लिखा गया है। इसमे ४ सहस्र श्लोक हैं। यवनजातक नाम के अन्य दो ग्रन्थ और हैं। इनके लेखक का नाम और समय अज्ञात हैं। इसमे से एक का नाम वृद्धयवनजातक है। इसमे ८ सहस्र श्लोक हैं। कुछ विद्वान् दूसरे ग्रन्थ का लेखक मीनराज को यवनाचार्य मानते हैं, जैसा कि इन ग्रन्थो के नामो से ज्ञात होता है। ये यवनजातक यूनानी उद्भव वाली फलित ज्योतिष की समस्यायो का विवेचन करते हैं।

वराहमिहिर ने ज्योतिष को तीन भागो मे विभक्त किया है—(१) तन्त्र। इसमे गणित ज्योतिष और गणित का विवेचन होता है। (२) होरा। इसमे जन्मकुण्डली का वर्णन होता है। (३) सहिता। इसमे फलित ज्योतिष का वर्णन होता है। उसने बृहत्सहिता ग्रन्थ लिखा है। इसमे १०६ अध्याय हैं। इस ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि वह अनेक विषयों का विद्वान् था। इसमे उसने ग्रहो और नक्षत्रो का वर्णन किया है, उनकी गति तथा उनका मनुष्य के जीवन पर प्रभाव का भी वर्णन किया है। इन विषयो के अतिरिक्त उसने इस ग्रन्थ मे इन विषयो का भी वर्णन किया है—भारतीय भूगोल का सक्षिप्त वर्णन, ऋतु-चिह्न आदि, पुरुष स्त्री और पशु-पक्षियो के विशेष चिह्न तथा रेखाएँ, शकुन-वर्णन और विवाह का महत्त्व। उसने कामशास्त्र और राजनीतिशास्त्र मे भी अपनी योग्यता प्रदर्शित की है। उसने बृहद्विवाहफल और स्वल्पविवाहफल नामक दो ग्रन्थो मे विवाह सम्बन्धी प्रश्नो पर विचार किया है। ये दोनो ग्रन्थ एक ही ग्रन्थ के विशाल और लघु रूप हैं। उसने योगयात्रा ग्रन्थ मे अन्य राजाओ के साथ युद्ध का वर्णन किया है। उसके बृहज्जातक और लघुजातक ग्रन्थ फलितज्योतिष के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं।

बृहज्जातक मे उसने प्राय यवनाचार्य के विचारो का उल्लेख किया है और उनकी समालोचना की है।

वराहमिहिर के पुत्र **पृथुयशा** (लगभग ६०० ई०) ने **होराषट्पचाशिका** ग्रन्थ लिखा है। इसमे उसने जन्म-सम्बन्धी बातो का विवेचन किया है। **भट्टोत्पल** ने वराहमिहिर और उसके पुत्र पृथुयशा के ग्रन्थो की टीका लिखी है। वह ९९६ ई० के लगभग हुआ था। उसने **होराशास्त्र** ग्रन्थ भी लिखा है। **विद्वज्जनवल्लभ** तथा **राजमार्तण्ड** ग्रन्थ का लेखक धारा का राजा भोज (१००५-१०५४ ई०) माना जाता है। इस काल के बाद लिखे गए विवाह और अन्य सस्कार सम्बन्धी छोटे ग्रन्थो मे ताजिको का स्थान महत्त्वपूर्ण है। इन पर अरबी और फारसी साहित्य का भी प्रभाव पडा है। ताजिको मे सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान **नीलकण्ठ** के **ताजिका** का है। वह १५८७ ई० मे लिखा गया था। **हर्षकीर्ति-सूरि-लिखित ज्योतिषसारोद्धार** ग्रन्थ का समय अज्ञात है।

हस्तरेखाशास्त्र (सामुद्रिकशास्त्र) का विवेचन **सामुद्रिकतिलक** ग्रन्थ मे हुआ है। इस ग्रन्थ को **दुर्लभराज** ने ११६० ई० मे प्रारम्भ किया था और उसके पुत्र **जगद्देव** ने इसको पूर्ण किया था। **स्वप्नचिन्तामणि** ग्रन्थ का लेखक भी जगद्देव माना जाता है। इस ग्रन्थ मे स्वप्नसम्बन्धी बातो का वर्णन है। नरहरि ने ११७६ ई० मे **नरपतिजयचर्यास्वरोदय** ग्रन्थ लिखा है। इसमे चामत्कारिक रेखाचित्र दिए गए हैं और उनमे रहस्यात्मक अक्षर रक्खे गए हैं। **अद्भुतसागर** ग्रन्थ को बगाल के राजा **बल्लालसेन** ने ११६८ ई० मे प्रारम्भ किया था और उसके पुत्र राजा **लक्ष्मणसेन** ने इसको पूर्ण किया था। इसमे शकुनो तथा भविष्यवाणियो का विवेचन है। **भयभजन** ने **रमल-रहस्य** मे रेखाओ मे भविष्यवाणी का वर्णन किया है तथा **पाचककेवली** मे पास रेखाओ मे भविष्यवाणी का वर्णन किया है। उसका समय अज्ञात है।

फलित ज्योतिष-विषयक समस्याओ का वर्णन प्राकृत भाषा के लेखको ने किया है। **अङ्गविज्जा** इस प्रकार का एक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है। शरीर के

चिह्नो के आधार पर इसमें शकुनो का वर्णन किया गया है। यह किसी अज्ञात लेखक की रचना है जो ४थी शताब्दी ई० म रखा जाता है।

प्रभाशकर का पुत्र कानजित वायुशास्त्र का लेखक है। वह कच्छ मे स्थित भुजङ्गपुर का निवासी था। वह गन्थ की तिथि १८२२ शक सम्वत् देता है जो १९०० ई० के सदृश है। इसमे दस अध्याय हैं। यह ग्रन्थ अन्तरिक्ष-विद्या सम्बन्धी विषयो का वर्णन करता है। इसमे प्रमुख रूप मे वर्षा का वर्णन है। इस ग्रन्थ मे असामयिक और सहसा होने वाली वर्षा के प्रभावो और भविष्यवाणियो की चर्चा की गई है। लेखक के अनुसार वराह, कश्यप, भद्रबाहु और वशिष्ठ की सहिताएँ तथा पराशरसूत्र इस ग्रन्थ के आधार हैं।

ज्योतिष मे गणित का भी विवेचन होता है। गणित मे गणित ज्योतिष, अकगणित और बीजगणित इन तीनो का वर्णन होता है। इसमे रेखागणित का भी वर्णन है। रेखागणित का प्रारम्भ शुल्वसूत्रो से हुआ था। भारतीय गणितज्ञो ने परार्ध (१०,१४) तक की गणना करके गणित मे पूर्णता प्राप्त की थी। शुद्धता भारतीय गणित की प्रमुख विशेषता है। घटाने के सिद्धान्त का ज्ञान वैदिक काल मे था। अको का सम और विषम दो रूपो मे वर्णन किया गया है। भारतीय गणितज्ञो ने ही दशमलव की विधि तथा बीजगणित की पद्धति का आविष्कार किया था। इन दोनो विधियो की पूर्णता छन्द-शास्त्र और व्याकरण मे दृष्टिगोचर होती है। सरल रेखात्मक क्षेत्रो का बनाना, क्षेत्रफल और घनफल तथा पैथागोरस के प्रमेयो का वर्णन प्राचीन भारतीय गणितज्ञो ने किया है। बोधायन श्रौतसूत्र (५०० ई० पू०) तथा शतपथ-ब्राह्मण मे पैथागोरस के प्रमेयो के सिद्धान्त के प्रयोग का वर्णन है।

आर्यभट्ट का जन्म ४७६ ई० में कुसुमपुर मे हुआ था। वही सबसे प्रथम भारतीय ज्योतिषी है, जिसने गणित ज्योतिष के आधार पर गणित लिखा है। उसने ४९९ ई० मे आर्यभटीय ग्रन्थ लिखा है। इसमें आर्या छन्द मे दस श्लोक है। उसने दूसरा ग्रन्थ दशगीतिकासूत्र लिखा है। इसमे १०८ श्लोक हैं। इन श्लोको मे से ३३ श्लोक गणित के विषय मे हैं, २५

विपयक ग्रन्थो के साथ जो यवन नाम मिलता है, उससे ज्ञात होता है कि भारतीय ज्योतिप का सम्बन्ध यूनानी ज्योतिष से था । दोनों मे अन्य समानताएँ ये हैं—गणना की पद्धति मे समानता, सूर्य के उदय और अस्त, नक्षत्रो आदि का उदय और अस्त होना, दिन और रात्रि का ठीक-ठीक माप तथा सप्ताह के दिनो का नाम ग्रहो के नाम पर रखना । इन घटना-साहचर्यों के आधार पर पाश्चात्य विद्वान् यह सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं कि भारतीय ज्योतिप की उत्पत्ति और उसका विकास यूनानी ज्योतिष से हुआ । यह मन्तव्य सर्वथा अशुद्ध है । **बौधायन** के धर्मसूत्रो से ज्ञात होता है कि ५०० ई० पू० से पूर्व भारतीय ज्योतिष को ये विशेषताएँ विद्यमान थी, जिनको यूनानी विशेषताओ के समान मानते हैं । सिकन्दर के साथ यूनान को लौटते समय यूनानी भारत से बहुत से बहुमूल्य ग्रन्थ अपने साथ लेते गए थे । सम्भवत इन ग्रन्थो से उनको अपने ज्योतिष-विषयक ज्ञान की वृद्धि मे विशेप महायता प्राप्त हुई । अतएव उनके ज्योतिष मे भारतीय ज्योतिष के समान विपय आदि प्राप्त होते हैं । यहां पर यह मानना उचित है कि भारतीय ज्योतिपियो के यूनानियो के साथ सम्पर्क के कारण भारतीय ज्योतिष के विकास पर कुछ प्रभाव अवश्य पडा है । अत यह मानना उचित है कि भारतीय ज्योतिप का जन्म और विकास स्वतन्त्र रूप से हुआ है । ज्योतिप केवल कल्पना का विपय नहो है । इसके लिए आवश्यक है कि बहुत समय तक ग्रहो की स्थिति तथा उनको गति आदि का निरीक्षण किया जाय और सूक्ष्मता के साथ उनको गणना की जाय ।

अध्याय २६

धर्मशास्त्र

भाव और अनुमान की दृष्टि मे 'धर्म' शब्द विस्तृत है। प्राथमिक अर्थ तो यह है कि जो ससार को स्थिर करता है वही धर्म है। यह आचार, कर्तव्य, विधान, धर्म, न्याय, नैतिकता तथा अन्य अर्थों को सूचित करता है। मीमासक इसे इस अर्थ मे स्वीकार करते हैं कि यह एक ऐसा कार्य है जो आत्मा मे 'अपूर्व' नामक फल उत्पन्न करता है। धर्मशास्त्र इसका प्रयोग कर्तव्य के अर्थ मे करते हैं। वे कर्तव्य पाँच प्रकार के कहे गए हैं—वर्णधर्म, आश्रमधर्म, वर्णाश्रमधर्म, नैमित्तिकधर्म तथा गुणधर्म। इनके आधार हैं—वेद, स्मृति और धर्म तथा अपने आचार जानने वालो की परम्पराएँ तथा व्यक्तिगत सन्तोष। धर्मशास्त्रों को स्मृति कहा जाता है। देखिए —

श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्र तु वै स्मृति ॥

मनुस्मृति २–१०

'स्मृति' शब्द की निरुक्ति इस प्रकार की जा सकती है—स्मर्यंते वेदधर्मोऽनेनेति।

कल्पसूत्र वेदो के आवश्यक अङ्ग हैं। बाद मे धर्मशास्त्रो मे जिन विषयो का वर्णन किया गया है, उनके मूलभूत नियम इन कल्पसूत्रो मे प्राप्त होते है। अतएव ये कल्पसूत्र धर्मशास्त्र के आधार हैं। कल्पसूत्रो की शाखा धर्मसूत्र हैं। इनमे धार्मिक और लौकिक कर्तव्यो का विवेचन किया गया है। धर्मसूत्रो मे मनुष्य के दैनिक जीवन के लिए नियम बताए गए हैं। ये नियम क्रमश विस्तृत होकर और अन्य सामग्री के साथ सम्मिलित होकर धर्मशास्त्र के रूप मे परिणत हुए। इन ग्रन्थो के लेखन मे रामायण, महाभारत और पुराणों से विशेष सहायता मिली है। इनमे से महाभारत मे

विशेप रूप से इन विषयो पर विस्तृत विवेचन है। इन ग्रन्थो से तथा अन्य ग्रन्थो से इन धर्मशास्त्रो मे श्लोकादि लिए गए है। यही कारण है कि इन ग्रन्थो मे उपदेशात्मक श्लोकादि प्राप्त होते हैं। इन ग्रन्थो मे कुछ ऐसे भी श्लोकादि हैं, जो कि कई धर्मग्रन्थो में एक ही प्रकार से प्राप्त होते हैं। इसका कारण यह है कि ये श्लोक एक ही मूलग्रन्थ महाभारत आदि से लिए गए हैं, अत समान हैं। अतएव यह नही कहा जा सकता है कि इस धर्मशास्त्र ने उस धर्मशास्त्र से श्लोक उद्धृत किया है। साधारणतया ये धर्मशास्त्र पद्य और गद्य मे हैं। गद्यभाग का व्यवहार वहाँ किया गया है, जहाँ उस विषय पर कुछ विवेचन किया गया है।

धर्म का अर्थ कर्तव्य है। यह मनुष्य के विचार का स्वरूप है। इसमे नीतिशास्त्र का भी विवेचन होता है और इसमे प्रायश्चित्त के साधन भी दिये जाते हैं। धर्म का एक अङ्ग व्यवहार है। मुख्य रूप से धर्मशास्त्रो मे चार बातो का वर्णन होता है। वे ये हैं—(१) आचार। इसमे मनुष्य के आचार-सम्बन्धी विषयो का वर्णन होता है। (२) व्यवहार। इसमें वैध और राजकीय कर्तव्यो का वर्णन होता है। (३) प्रायश्चित्त। इसमे प्रायश्चित्तो का वर्णन होता है। (४) कर्मफल। इसमे पूर्वकृत कर्मों के फल का वर्णन होता है। इन धर्मशास्त्रो मे चारो वर्णो और चारो आश्रमो के लिए प्रत्येक पुरुष और स्त्री के लिए अपने-अपने आश्रमादि के अनुसार जीवनपर्यन्त क्या काम करने चाहिए और किन कर्मो का परित्याग करना चाहिए, इसका विस्तृत विवेचन होता है।

वैदिक ग्रन्थो के द्वारा जनता की लौकिक आवश्यकताओ की पूर्ति नही होती थी, अत विभिन्न धर्मशास्त्रो का प्रादुर्भाव हुआ। धर्मशास्त्र पर प्राचीन ग्रन्थ ये हैं गौतम (६००-४०० ई० पू०) का धर्मसूत्र, बौधायनधर्मसूत्र (५००-२०० ई० पू०), आपस्तम्बधर्मसूत्र (६००-३०० ई० पू०), वासिष्ठ धर्मसूत्र, विष्णुधर्मसूत्र (३००-१०० ई० पू०), हारीतधर्मसूत्र, शङ्ख और लिखित (३००-१०० ई० पू०) के धर्मसूत्र, विखानस्, पैठीनसी, उशान

काश्यप और बृहस्पति के धर्मसूत्र । इस धर्मशास्त्रश्रेणी का समय ६०० ई० पू० से ४०० ई० तक है ।

मनुस्मृति ही सबसे प्राचीन स्मृति-ग्रन्थ है । इसमे अनेक विपयो का वर्णन है । इसमे सृष्टि की उत्पत्ति से लेकर वेदान्त के सदृश दार्शनिक विपयो का वर्णन है । इसका दूसरा नाम मानवधर्मशास्त्र है । जो ग्रन्थ आजकल प्राप्त है, उसमे १२ अध्याय हैं । इसमे यह कहा गया है कि यह भृगु ने कहा है । इससे यह ज्ञात होता है कि भृगु ने मनु के वक्तव्यो को प्रकाशित और प्रचारित किया है । इसमे बहुत से स्थलो पर मनु की सम्मति का उल्लेख है । सम्भवत. वह मनु कोई अन्य है । यास्क के निरुक्त मे और महाभारत मे मनु का उल्लेख है । मनु ही धर्मशास्त्र पर सबसे प्राचीन और प्रामाणिक लेखक है । किन्तु इतने से उसके समय-निर्धारण मे कोई विशेप सहायता नही मिलती है । यह ग्रन्थ बर्मा, श्याम और जावा मे भी पहुँचा है और वहाँ के विधानो को सने बहुत अधिक प्रभावित किया है । इसके ही अनुकरण पर वहाँ के विधान बने हैं । इसकी टीकाओ मे अधिक प्रसिद्ध टीकाएँ मेधातिथि (८२५-६०० ई०) और कुल्लूक भट्ट (लगभग १२०० ई०) की हैं ।

मनुस्मृति के बाद महत्त्व की दृष्टि से दूसरा स्थान याज्ञवल्क्यस्मृति का है । इसका समय १०० ई० पू० मे लेकर २०० ई० के मध्य मे माना जाता है । इसमे तीन अध्याय हैं । इनमे क्रमश एक एक अध्याय में आचार, व्यवहार और प्रायश्चित्त का वर्णन है । मनुस्मृति के तुल्य इसमे भी वेदान्त के सिद्धान्तो का वर्णन है । इसकी कई टीकाओ मे से तीन टीकाएं प्रमुख हैं, जिनसे इसकी प्रसिद्धि और प्रामाणिकता का ज्ञान होता है । इन टीकाओ की भी बहुत प्रसिद्धि हुई है । वे टीकाएं ये हैं—(१) विश्वरूप (८००-८२५ ई०)[1] कृत बालक्रीडा टीका । (२) चालुक्य राजा विक्रमादित्य षष्ठ के निरीक्षण मे ११२० ई० मे विज्ञानेश्वर के द्वारा लिखी गई मिताक्षरा टीका । (३)

---

१ A History of Dharmasastra by P V Kane भाग १ पृष्ठ २६३ ।

१२वी शताब्दी के पूर्वार्ध मे अपरार्क द्वारा लिखित अपरार्कयाज्ञवल्कीयधर्मशास्त्रनिबन्ध नाम की टीका। इनमे से मिताक्षरा टीका व्यवहार के विषय मे एक स्वतन्त्र प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। इस पर बालभट्ट ने टीका की है। उसका दूसरा नाम बालकृष्ण था। वह नागेशभट्ट के शिष्य वैयाकरण वैद्यनाथ पायगुण्ड (१७५० ई०) का पुत्र था। कुछ विद्वान् यह भी मानते हैं कि इस टीका का लेखक वैद्यनाथ स्वय है। इस टीका का नाम लक्ष्मीव्याख्यान या बालभट्टि है। यह माना जाता है कि इस टीका के लेखक, वैद्यनाथ या उसके पुत्र ने, यह टीका वैद्यनाथ की पत्नी लक्ष्मीदेवी के नाम से लिखी है। इसमे पैतृक सम्पत्ति पर स्त्रियो के अधिकार पर बहुत बल दिया गया है।

नारदस्मृति (१००-३०० ई०)।[1] बृहत् और लघु दो सस्करणो के रूप मे प्राप्त होती है। बाण को इस स्मृति के अस्तित्व का ज्ञान था। यह माना जाता है कि पराशरस्मृति का बृहत् सस्करण नष्ट हो गया है। पराशरस्मृति का लघु सस्करण प्राप्य है। इस पर विजयनगर के माधव (१२९७-१३८६ ई०) ने टीका लिखी है। इसके मूलग्रन्थ का समय १०० ई० और ५०० ई०[2] के बीच मे माना जाता है। बृहस्पतिस्मृति (२००-४०० ई०) अपूर्ण रूप मे प्राप्त होती है। यह मनुस्मृति की आलोचनामात्र ज्ञात होती है। इनके अतिरिक्त बहुत सी स्मृतियाँ हैं। इनकी सख्या १५२ मानी जाती है।

स्मृति-ग्रन्थो पर लिखे गए छोटे ग्रन्थ बहुत महत्त्व के हैं। वे अनेक हैं। वे प्रामाणिक ग्रन्थ के तुल्य माने जाते हैं। जीमूतवाहन ने १२वी शताब्दी ई० मे धर्मरत्न नामक एक ग्रन्थ लिखा है इसमे विधान-सम्बन्धी बातो का विवेचन किया गया है। इसके तीन भाग हैं—कालविवेक, व्यवहारमातृका और दायभाग। इसी समय लक्ष्मीधर ने स्मृतिकल्पतरु ग्रन्थ लिखा है। बङ्गाल के राजा लक्ष्मणसेन के लिए १२०० ई० के लगभग हलायुध ने

---

१ A History of Dharmasastaa by P V Kane पृष्ठ (भूमिका) २९।

२ " " " पृष्ठ (भूमिका) ३०।

ब्राह्मणसर्वस्व ग्रन्थ लिखा था। देवण्णभट्ट ने १२२५ ई० के लगभग स्मृतिचन्द्रिका ग्रन्थ को रचना की। वरदराज ने १३वी शताब्दी ई० मे एक विशाल ग्रन्थ स्मृतिसग्रह लिखा था। उसका केवल एक भाग व्यवहारनिर्णय आजकल प्राप्त है। हेमाद्रि ने १२७० ई० के लगभग चतुर्वर्गचिन्तामणि ग्रन्थ लिखा है। इसमे उसने व्रत, दान, तीर्थ और मोक्ष इन चारो विषयो का सकलन किया है और साथ ही एक परिशिष्ट भी दिया है। इसमे अनेक लेखकों के ग्रन्थो से उद्धरण दिए गए हैं, अत यह ग्रन्थ बहुमूल्य है। विश्वेश्वर (लगभग १४०० ई०) को मदनपारिजात ग्रन्थ का लेखक माना जाता है। इसमें धार्मिक कर्तव्यो और उत्तराधिकार के नियमो का वर्णन है। इसी समय की अन्य दो रचनाएँ है—चण्डेश्वर का स्मृतिरत्नाकर और पराशरस्मृति के टीकाकार माधव का कालमाधवीय। १५वी शताब्दी ई० मे वाचस्पति ने चिन्तामणि नाम से कई छोटे ग्रन्थ लिखे हैं। १६वी शताब्दी ई० मे ये ग्रन्थ लिखे गए—उत्कल के प्रतापरुद्रदेव ने सरस्वतीविलास ग्रन्थ लिखा। रघुनन्दन ने अग्निपरीक्षा और पद्धति विषय पर तत्त्व नामक कई छोटे ग्रन्थ लिखे हैं। वैद्यनाथ दीक्षित ने स्मृतिमुक्ताफल ग्रन्थ लिखा है। १७वी शताब्दी ई० मे ये ग्रन्थ लिखे गए—भट्टोजिदीक्षित ने तिथिनिर्णय ग्रन्थ लिखा। कमलाकर भट्ट (१६१२ ई०) ने निर्णयसिन्धु ग्रन्थ लिखा। नीलकण्ठ (१६३० ई०) ने भगवन्तभास्कर ग्रन्थ लिखा और मित्रमिश्र ने विश्वकोश के तुल्य एक वीरमित्रोदय ग्रन्थ लिखा।

अध्याय ३०

उपवेद

आयुर्वेद, गान्धर्ववेद, धनुर्वेद, अर्थशास्त्र और सहायक शास्त्र

चारो वेदो और वेदागो के अतिरिक्त चार उपवेद है। उनके नाम है— **आयुर्वेद, गान्धर्ववेद, धनुर्वेद और अर्थशास्त्र**। ये क्रमश आधुनिक **आयुर्वेद, सगीत, धनुर्विद्या और राजनीति-विज्ञानो** का प्रतिनिधित्व करते है। **कामशास्त्र आयुर्वेद** के अन्दर ही आता है।

आयुर्वेद

आयुर्वेद उपवेद माना जाता है। आयुर्वेद का अर्थ है कि जिस वेद की सहायता से आयु-वृद्धि होती है। जीवन मे जो कुछ भी लक्ष्य है, उसे प्राप्त करने के लिए मूल कारण स्वास्थ्य है। इसके विपरीत यदि मनुष्य रोग का शिकार हो जाता है तो उसके जीवन का लक्ष्य पूरा नही होता। देखिए—

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्य मूलमुत्तमम् ।
रोगास्तस्यापहर्तार श्रेयसो जीवितस्य च ।।

चरकसहिता-सूत्रस्थान १ १४

आयुर्वेद का प्रयोजन न केवल रोग को ठीक कर देना है बल्कि मनुष्य के स्वास्थ्य की रक्षा करना है जिससे वह कही रोगो से ग्रस्त न हो जाय। देखिए—

आयुर्वेदप्रयोजन व्याध्युपसृष्टाना व्याधिपरिमोक्ष,
स्वस्थस्य स्वास्थ्यस्य रक्षणञ्च ।।

सुश्रुतसहिता-सूत्रस्थान १

इस वेद का आरम्भ अथर्ववेद से हुआ है। वैदिक ग्रन्थो मे गर्भ-विज्ञान, स्वास्थ्य-विज्ञान और शल्य-चिकित्सा का उल्लेख है। आयुर्वेद के जो ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं, उनमे आत्रेय, काश्यप, हारीत, अग्निवेश और भेल के नाम का उल्लेख है। ऐसा माना जाता है कि इनमें से प्रत्येक ने आयुर्वेद का कोई ग्रन्थ लिखा है या आयुर्वेद की किसी शाखा की स्थापना की है।

आयुर्वेद के विकास का **धर्मशास्त्र** के विकास के साथ बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। पुराणो और स्मृति-ग्रन्थो मे वैद्यक का कुछ अश वर्णन किया गया है। स्मृतियो और पुराणो मे मनुष्य के कर्तव्य का जो वर्णन किया गया है, उसमे स्वास्थ्य के सिद्धान्तो का भी वर्णन विद्यमान है। उनका आयुर्वेद पर प्रभाव पडा है, क्योकि आयुर्वेद धर्मशास्त्रो मे वर्णित विधि के साथ मनुष्य जीवन के यापन को ध्यान मे रखकर विभिन्न विषयो का वर्णन करता है। सास्य और योग दर्शनो ने आयुर्वेद के बौद्धिक पक्ष को प्रभावित किया है और वेदान्त दर्शन ने आध्यात्मिक पक्ष को प्रभावित किया है। अपने सिद्धान्तो के अनुसार ही रोगो की चिकित्सा का वर्णन किया गया है। कई धार्मिक कार्यो ने आयुर्वेद को बहुत अश तक प्रभावित किया है। हिन्दू धर्म के अनुयायी उपवास को विशेष अवसरो पर आवश्यक समझते हैं। स्वस्थ शरीर मे आत्मा को स्वस्थ रखने के लिए आयुर्वेद उपवास को आवश्यक कार्य मानता है। शरीर और मन की रचना के विकास के लिए यह आवश्यक है कि इस बात का ध्यान रक्खा जाए कि किस प्रकार का भोजन करना चाहिए, किस समय और किस स्थान पर तथा किस विधि से किया जाय। प्रकृति के तीन गुण सत्व, रजस् और तमस् का शरीर के त्रिदोष कफ, वात और पित्त के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है तथा इन त्रिदोषो का उन पर बहुत प्रभाव पडता है। भोजन केवल क्षुधा की शान्ति और शरीर की पुष्टि के लिए ही नही खाया जाता है। भोज्य-पदार्थ के गुणो के द्वारा यह निर्णय किया जा सकता है कि भोजन किस

प्रकार का है। ऐसा भोजन ही सर्वोत्तम माना गया है, जिससे सत्त्व गुण की वृद्धि हो। अतएव आयुर्वेद की पद्धति नीति-शास्त्र के भी सिद्धान्तो का वर्णन करती है।

आयुर्वेद मे दार्शनिक तथा शरीर-तत्त्व सम्बन्धी सभी जीवन की परिस्थितियो का वर्णन है। इसमे औषधि-चिकित्सा तथा शल्य-चिकित्सा दोनो दृष्टि से अवरोधात्मक तथा रोगनाशक चिकित्सा का वर्णन किया गया है। आयुर्वेद मे स्वीकृत त्रिदोषो मे से कफ का कार्य है—शीतलता प्रदान करना, विभिन्न रसो को सुरक्षित रखना और उनकी वृद्धि करना। वात या वायु मे शारीरिक चेष्टा-सम्बन्धी सभी चीजो का समावेश है। पित्त के द्वारा शरीर मे उष्णता की उत्पत्ति होती है और शरीर के पोषक तत्त्वों को जीवन प्राप्त होता है। भोजन का पाचन तथा रक्त मे रग का आना आदि भी इसी के द्वारा होता है। रोगो की चिकित्सा का सामान तैयार करने से पूर्व इस बात का विशेष ध्यान रक्खा गया है कि वात, पित्त और कफ की विषमता को ठीक ढग से समझ लिया जाए। साथ ही ऋतु का प्रभाव जो स्वास्थ्य पर पडता है, उसको भी ध्यान मे रक्खा गया है। चिकित्सा को दो भागो मे विभक्त किया गया है—उष्ण और शीत। रक्त-सचार का पर्याप्त स्पष्टता के साथ अध्ययन किया गया है। शल्य-चिकित्सा का बडे रूप मे प्रयोग होता था और कठिन चीर-फाड भी की जाती थी। प्राचीन ग्रन्थों में शल्य-चिकित्सा के उपयोगी औजारो का भी वर्णन है। गर्भविज्ञान का अध्ययन और प्रयोग दोनो होता था।[१] क्षयरोग का विस्तार के साथ वर्णन किया गया है।

आयर्वेद मे आठ विभाग हैं। (१) शल्य इसमे शल्य-चिकित्सा और प्रसूतिकर्म का वर्णन है। (२) शालाक्य। इसमे सिर तथा उसके अगो के रोगो का अध्ययन किया जाता है। (३) कायचिकित्सा। शरीर के रोगो की चिकित्सा। (४) भूत-विद्या। कृत्रिम निद्रा के द्वारा रोगो की चिकित्सा।

१ रामायण, सुन्दरकाण्ड २८-६।

(५) कौमारभृत्य। शिशु-चिकित्सा का वर्णन। (६) अगद-तन्त्र। विषविद्या का वर्णन। (७) रसायनतन्त्र। पौष्टिक रसायनो का वर्णन। (८) वाजीकरणतन्त्र। वीर्यवर्धक औषधियो का वर्णन। आयुर्वेद का अध्ययन ८ विभागो मे किया गया है। वे विभाग ये हैं—सूत्र, शारीत्र, इन्द्रिय, चिकित्सा, निदान, विमान, विकल्प और सिद्धि।

आजकल जो ग्रन्थ प्राप्त हैं, उनमे ज्ञात होता है कि आत्रेय पुनर्वसु आयुर्वेद को निश्चित रूप देने वाला था। बौद्ध लेखो मे ज्ञात होता है कि वैद्य आत्रेय, गौतम बुद्ध के जन्म से पूर्व तक्षशिला मे रहता था। अत उसका समय ६०० ई० पू० से पूर्व है। उसने यह आयुर्वेद अग्निवेश को पढाया और उसने यह विद्या चरक को पढाई। चरक और दृढ़बल ने जो कुछ पढा था, उसको उन्होने ग्रन्थरूप मे परिणत किया। उस ग्रन्थ का ही नाम चरकसहिता पडा। चरक आयुर्वेद का सबमे प्राचीन और प्रामाणिक आचार्य है। भारतीय परम्परा के अनुसार चरक और वैयाकरण पतजलि (१५० ई० पू०) एक ही व्यक्ति हैं। बौद्ध पिटक ग्रन्थो मे उल्लेख किया गया है कि राजा कनिष्क (प्रथम शताब्दी ई०) के राजद्वार मे चरक नाम का वैद्य रहता था। चरक गान्धार का निवासी था। उसका समय शताब्दी ई० मानना चाहिए। वाग्भट (६ठी शताब्दी ई०) ने दृढबल का उद्धरण दिया है। अत उसका समय चतुर्थ शताब्दी ई० मानना चाहिए। उसने चरक के ग्रन्थ मे कुछ और विषय जोड़े तथा उसको नवीन रूप में प्रस्तुत किया। चरकसहिता ८ विभागो मे है। इसमे ३० अध्याय हैं। इसके ८ विभागो के नाम हैं—(१) सूत्रस्थान। इसमे चिकित्सा, पथ्य और वैद्य के कर्त्तव्यो का वर्णन किया गया है। (२) निदानस्थान। इसमे मुख्य रोगो का वर्णन है। (३) विमानस्थान। इसमे निदान, आयुर्वेदीय विवेचन और आयुर्वेद के छात्र के कर्तव्यो का वर्णन है। (४) शरीरस्थान। इसमे शल्य-चिकित्सा और गर्भविज्ञान का वर्णन है। (५) इन्द्रियस्थान। इसमें रोगो के निदानो का वर्णन है। (६) चिकित्सास्थान। इसमे मुख्य चिकित्साओ का वर्णन है। (७) कल्पस्थान।

(८) **सिद्धिस्थान**। इन दोनो मे सामान्य चिकित्सा का वर्णन है। इसका अरबी मे ८०० ई० के लगभग अनुवाद हुआ था और फारसी मे इससे भी पूर्व इसका अनुवाद हो चुका था। इसमे गद्य और पद्य दोनो हैं।

सुश्रुतसंहिता का लेखक **सुश्रुत** है। यह आयुर्वेद का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है इसमे शल्य-चिकित्सा पर विशेष बल दिया गया है। इसमे शल्य-चिकित्सा के औजारो और प्रयोगो का वर्णन है। ९वी शताब्दी ई० मे उसका नाम विदेशो में भी फैल गया था।

काश्यपसंहिता मे १३ अध्याय है। इसमे मन्त्रो के द्वारा विष के प्रभाव के निवारण का वर्णन किया गया है। **भेल (भेद) संहिता** अपूर्ण और अशुद्ध रूप मे प्राप्त होती है। **नावनीतक** ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रति १८९० ई० मे प्राप्त हुई है। इसमे चूर्ण, तेल और पौष्टिक चीजो के विषय मे बहुमूल्य बातें बताई गई हैं। यह ग्रन्थ सभी प्राचीन ग्रन्थो का सार माना जाता है। इसका समय चतुर्थ शताब्दी ई० समझना चाहिए। **वृद्धजीवक** द्वारा लिखित **वृद्धजीवकीय** ग्रन्थ **कौमारभृत्य** विषय पर है। यह अपूर्ण रूप मे प्राप्य है।

वाग्भट्ट ने षष्ठ शताब्दी ई० मे **अष्टांगहृदय** और **अष्टांगसंग्रह** दो ग्रन्थ लिखे हैं वह **सिंहगुप्त** का पुत्र और दूसरे **वाग्भट्ट** का पौत्र था। यह कहा जाता है कि ईत्सिंग (६७२-६७५ ई०) ने वाग्भट्ट के ग्रन्थो का उल्लेख किया है। इन दोनो वाग्भट्टो को पाश्चात्य विद्वान् बौद्ध व्यक्ति मानते हैं, परन्तु इनके ग्रन्थो मे आर्यजीवन की परम्परा का वर्णन होने से सिद्ध होता है कि ये दोनो वाग्भट्ट हिन्दू थे। आलोचको का मत है कि वृद्ध वाग्भट्ट ने अष्टांगसंग्रह ग्रन्थ लिखा है और छोटे वाग्भट्ट ने अष्टांगहृदय ग्रन्थ लिखा है। इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि ये दोनो ग्रन्थ दो विभिन्न व्यक्तियो के लिखे हुए है। ऐसा प्रतीत होता है कि अष्टांगसंग्रह प्राचीन ग्रन्थो से उपलब्ध सामग्री को एकत्र करके बनाया गया है। **अष्टांगहृदय** का दूसरा

नाम अष्टागहृदयसहिता है। यह अष्टागसग्रह पर आश्रित है। आजकल अष्टागहृदय का असाधारण प्रचार है।

योगसार और योगशास्त्र ग्रन्थो का लेखक नागार्जुन माना जाता है। इसका पूर्ण परिचय अज्ञात है। कुछ आलोचक नागार्जुन नामक बौद्ध दार्शनिक को और इस वैद्य को एक ही व्यक्ति मानते हैं। बौद्ध दार्शनिक नागार्जुन राजा कनिष्क के दरबार मे था। माधवकार ने ८वी शताब्दी ई० मे निदान विषय पर रुग्विनिश्चय ग्रन्थ लिखा था। वृन्द ने सिद्धियोग नामक ग्रन्थ लिखा था। इसमें रोगो की औषधियां लिखी हुई हैं। सिद्धियोग का दूसरा नाम वृन्दमाधव है। वृन्द का समय अज्ञात है। चक्रपाणिदत्त ने १०६० ई० के लगभग चिकित्सा विषय पर चिकित्सासार ग्रन्थ लिखा है। इस पर वृन्द का प्रभाव पडा है। इसी शताब्दी मे चिकित्सासार नामक दूसरा ग्रन्थ वगसेन ने लिखा है। मिल्हण ने १२२४ ई० मे चिकित्सा विषय पर ही चिकित्सामृत ग्रन्थ लिखा है। वोपदेव नामक व्याकरण की शाखा के स्थापक वोपदेव ने एक मौलिक एव प्राचीन ग्रन्थ शार्ङ्गधरसहिता की टीका १३ वी शताब्दी मे की है। शतश्लोकी ग्रन्थ का भी लेखक वोपदेव माना जाता है। इसमे चूर्णो और गोलियो का वर्णन है। १४वी शताब्दी मे लिसट द्वारा लिखित चिकित्साकलिका ग्रन्थ, १६वी शताब्दी मे भावमिश्र द्वारा लिखित भावप्रकाश और १७वी शताब्दी मे लोलम्बराज द्वारा लिखित वैद्यजीवन ग्रन्थ भी विशेष महत्त्व के हैं।

आयुर्वेद मे धातु-निर्मित औषधियो और उनमे भी पारे की बनी हुई औषधियो को विशेष महत्त्व दिया गया है। यह निकृष्ट धातुओ को स्वर्णान्तरित करने के लिए उपयोग मे आता था। इसका उपयोग पौष्टिक पदार्थों के निर्माण के लिए भी होता था। यह माना जाता है कि रस विषय पर नागार्जुन ने रसरत्नाकर ग्रन्थ लिखा है। रसरत्नसमुच्चय के लेखक वाग्भट्ट, अश्विनीकुमार और नित्यनाथ माने जाते हैं। इनका समय १३०० ई० माना जाता है। नित्यनाथ ने रसरत्नाकर ग्रन्थ भी लिखा है। पारे को जो

विशेष महत्त्व दिया गया, उसका परिणाम यह हुआ कि पारे के विषय मे एक पृथक् शाखा प्रचलित हो गई जिसका नाम रसेश्वरसिद्धान्त रक्खा गया। इसका सर्वदर्शनसग्रह में वर्णन हुआ है इस शाखा के अधिष्ठातृदेवता शिव और पार्वती है।

पशुओ वृक्षो आदि के रोगो को दूर करने के लिए भी वैद्यक के ग्रन्थ लिखे गये थे। सुरपाल ने वृक्षायुर्वेद मे वृक्षो के रोगो का इलाज वताया है। नारायण ने मातगलीला मे हाथियो के रोगो का वर्णन किया है। अश्वचिकित्सा पर ये ग्रन्थ हैं—गुण का अश्वायुर्वेद, जयदत्त और दीपकर का अश्ववैद्यक, वर्धमान की योगमजरी, नकुल की अश्वचिकित्सा, धारा के राजा भोज का शालिहोत्र और सुखानन्द का अश्वशास्त्र।

वैद्यक विषय पर कोशग्रन्थ भी है। उनके नाम हैं—धन्वन्तरिनिघण्टु (समय अज्ञात), सुरेश्वर (१०७५ ई०) का शब्दप्रदीप, नरहरि (१२३५ ई०) का राजनिघण्टु, मदनपाल (१३७४ ई०) का मदनविनोद-निघण्टु और एक अज्ञात लेखक का पथ्यापथ्यनिघण्टु।

पाश्चात्य विद्वानो ने यह प्रयत्न किया है कि भारतीय आयुर्वेद का उद्भव यूनानी आयुर्वेद से हुआ है। किन्तु यह मत व्यर्थ ही है। वहुत से ऐसे दृष्टान्त हैं जिनमे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय आयुर्वेद-पद्धति ने अरबनिवासियो, फारसनिवासियो तथा इन दोनो के माध्यम से यूनानियों को प्रभावित किया। जव सिकन्दर (३२३ ई० पू०) ने भारत पर आक्रमण किया तो पजाव मे उसके आदमी सर्प-दश से पीडित हो गए। उनको चगा करने के लिए अपने चिकित्सको को असमर्थ पाकर उसने भारतीय वैद्यो की सहायता ली। उसने उनकी चिकित्सा की प्रशसा की। उसके मन मे कुछ लालच आई और वह अपने साथ भारत के कुछ प्रमुख वैद्यो को ले गया। उनकी सेवाओ ने यूनानियो की सहायता अवश्य की होगी जिससे उन्होंने अपनी आयुर्वेद-पद्धति मे सुधार किया। इसके अतिरिक्त

कफ, वात और पित्त का भारतीय सिद्धान्त यूनानियों के त्रिदोष-सम्बन्धी सिद्धान्त से भिन्न है।

कामशास्त्र

आयुर्वेद के वाजीकरण अध्याय मे कामशास्त्र का भी सग्रह किया गया है। ऐसा करने का प्रयोजन यह दिखाना है कि जीवन मे प्रेम ही लक्ष्य नही है और यह कि ऐन्द्रिक सुखो की अत्यासक्ति मनुष्य को पूर्ण विनाश की ओर ले जाती है। जिससे मनुष्य स्वस्थ नही होता। अत इस शास्त्र का उद्देश्य विलासी जीवन के अनुसार चलने के कारण होने वाले खतरो के विरुद्ध कामीजनो को प्रोत्साहित करना है। इस विषय पर सबसे प्राचीन ग्रन्थ वात्स्यायन मल्लनाग नामक वैद्य का कामसूत्र ग्रन्थ है। इसमे काम के विभिन्न रूपो का बहुत नि:सकोच वर्णन किया गया है। इसमे दिखाया गया है कि विवाह के द्वारा ही सुख की प्राप्ति की जा सकती है। काम का उसी प्रकार व्यवहार करना चाहिए, जिससे वह धर्म और अर्थ के महत्त्व को कम न कर सके। इसका समय द्वितीय शताब्दी ई० माना जाता है। इसमे सात अध्याय हैं। वात्स्यायन ने इस विषय के अन्य प्राचीन लेखको मे बाभ्रव्य, चारायण और गोनर्दीय आदि का नामोल्लेख किया है। इनमे से कुछ अन्य विषयो के भी आचार्य माने जाते हैं। इनका नाम कौटिल्य के अर्थशास्त्र और पतजलि के महाभाष्य मे भी आता है। वात्स्यायन ने दक का नामोल्लेख किया है। उसने कामसूत्र लिखा है। वह नष्ट हो गया है। वात्स्यायन के कामसूत्र पर यशोधर (१२४३-१२६१ ई०) ने जयमङ्गल नाम की टीका लिखी है। इस विषय पर अन्य ग्रन्थ ये हैं—(१) ज्योतिरीश्वर का पचसायक। इसका समय ११वी शताब्दी ई० के बाद का है। (२) कोक्कन का रतिरहस्य। यह १२०० ई० से पू० लिखा गया था। (३) जयदेव की रतिमजरी। इसका समय अनिश्चित है। (४) विजयनगर के राजा इम्मदि प्रौढदेवराय (१४२२-१४४८ ई०) की रतिरत्नप्रदीपिका। (५) कल्याणमल्ल का

अनङ्गरङ्ग । यह १६वी शताब्दी ई० में लिखा गया है । (६) वीरभद्र का **कन्दर्पचिन्तामणि** । यह १६वी शताब्दी ई० मे लिखा गया है।

गान्धर्व-वेद

गान्धर्व-वेद भी उपवेद है । इसका सम्बन्ध **सामवेद** से है । इसमे नृत्य और सगीत का समावेश होता है। भारतीय सगीत मे स्वरो के अस्तित्व का कारण वैदिक स्वर है। पुराणो में सगीत और नृत्य का वर्णन है। **सदाशिव, ब्रह्मा और भरत**—ये नृत्य विषय पर सबसे प्राचीन प्रामाणिक आचार्य हैं। **भरत** के **नाट्यशास्त्र** ने नृत्य और सगीत की आधारशिला रक्खी है। **नाट्यशास्त्र** नाम से ही ज्ञात होता है कि इसमे नाटकीय अभिनय को मुख्यता दी गई है। नाटकीय अभिनय मे सगीत का भी समावेश होता है । वाद के लेखको ने जो उद्धरण दिए हैं, उससे ज्ञात होता है कि इस विषय पर दो प्रामाणिक आचार्य हुए थे । एक का नाम **वृद्ध भरत** था और दूसरे का नाम भरत था । **वृद्ध भरत** ने **नाट्यवेदागम** ग्रन्थ लिखा है । इस ग्रन्थ का दूसरा नाम **द्वादशसाहस्री** है । इसका ज्ञान केवल उद्धरणो से होता है । **भरत** ने **नाट्यशास्त्र** लिखा है । इसका दूसरा नाम **शतसाहस्री** है। नाट्यशास्त्र मे नृत्य और सगीत के विस्तृत वर्णन के अतिरिक्त रसो और अभिनयो का भी वर्णन है । अतएव नाट्यशास्त्र, सगीत, नृत्य, नाटक और काव्यशास्त्र के विपय मे प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। भरत के शिष्य **दत्तिल** ने सगीत और नृत्य विषय पर **दत्तिल** नाम का ग्रन्थ लिखा था। वह नष्ट हो गया है । **नन्दिकेश्वर** या **नन्दी** ने सगीत और नृत्य विपय पर **भरतार्णव** ग्रन्थ लिखा है । इसमे ४ सहस्र श्लोक हैं। वह सभवत भरत का समकालीन था । **नाट्यार्णव** और **अभिनयदर्पण** आजकल प्राप्य हैं । ये दोनो मूल **भरतार्णव** के अश माने जाते हैं। इनमे नृत्यकला का विस्तृत विवेचन है । इन दोनो ग्रन्थो का समय द्वितीय शताब्दी ई० है। हेमचन्द्र (१०८८-११७२ ई०) के शिष्य **रामचन्द्र** (लगभग १२०० ई०) ने **गुणचन्द्र** के साथ मिलकर अपनी टीका के सहित **नाट्यदर्पण** ग्रन्थ लिखा है ।

भारतीय सगीत मे लय को विशेष महत्त्व दिया गया है। इनमे माधुर्य लाने के लिए सगीत के प्रत्येक विभाग मे पूर्णता लाई गई। ध्वनि के प्रत्येक रूप का बहुत सावधानी और आलोचना के साथ अध्ययन किया गया। श्रव्य ध्वनि को श्रुति कहा जाता है। सगीताचार्यो ने श्रुति के २२ भेद माने हैं। श्रुति से स्वरो की उत्पत्ति होती है। स्वर कोमल और मधुर ध्वनि हैं। ये स्वय श्रोताओ को प्रसन्न करते हैं। देखिए—

श्रुत्यनन्तरभावी य स्निग्धोऽनुरणनात्मक: ।
स्वतो रञ्जयति श्रोतृचित्त स स्वर उच्यते ।।

सगीतरत्नाकर १-३-२४, २५

स्वरो से राग उत्पन्न होते हैं। लय के नियमो के अनुसार आरोह और अवरोह के अनुसार राग विभिन्न भागो मे क्रमबद्ध किए गए हैं। सगीत मे गमक को विशेष महत्त्व दिया गया है। स्वरो को परिष्कृत रूप देने से गमक की उत्पत्ति होती है। देखिए—

स्वरस्य कम्पो गमक श्रोतृचित्तसुखावह. ।

सगीतरत्नाकर २ ३-८७

सगीत में कठोरता के साथ सगीत के नियमो का पालन किया जाता है। सगीत को स्थूल रूप मे दो भागो मे विभक्त किया गया है—मौखिक और यान्त्रिक। सितार, वीणा और ढोल ये राष्ट्रीय वाद्य हैं। वैदिक ग्रन्थो मे सगीत के वाद्यो का उल्लेख है। सगीत दो प्रकार का होता है—मार्ग और देशी। मार्ग सगीत मे सगीत के नियमो का पालन किया जाता है और तदनुसार उनकी रचना होती है। देशी सगीत मे केवल जन-प्रियता का ध्यान रक्खा जाता है।

यमलाष्टकतन्त्रो मे कुछ सगीत का वर्णन है। नाट्यशास्त्र सगीत-विषय पर सबसे प्राचीन प्रामाणिक ग्रन्थ है। यह कहा जाता है कि भरत के शिष्य कोहल ने सगीत-विषय पर एक ग्रन्थ लिखा था। उनका तालाध्याय ही आज कल प्राप्य है। मातग ने देशी सगीत विषय पर बृहद्देशी ग्रन्थ लिखा है।

यह अपूर्ण रूप मे उपलब्ध होता है। मातग चतुर्थ शताब्दी ई० पू० से पूर्व हुआ था। सगीत विषय पर उसके विचारो को अभिनवगुप्त आदि ने उद्धृत किया है। सगीतमकरद का लेखक नारद को माना जाता है। यह ग्रन्थ आजकल जिस रूप मे प्राप्त होता है, उसमे अभिनवगुप्त के विचारो का उल्लेख है। आलोचको ने इसका समय ७वी और ११वीं शताब्दी ई० के बीच मे माना है। यादवराजा सिंघन (११३२-११६९ ई०) के आश्रित शार्ङ्गदेव ने सगीत विषय पर सात अध्यायो मे सगीतरत्नाकर ग्रन्थ लिखा है। उसका दूसरा नाम नि शक था। वह सगीत, दर्शन और वैद्यक मे निष्णात था, यह उसके ग्रन्थ से ज्ञात होता है। उसका यह ग्रन्थ एक मौलिक ग्रन्थ है। इसमे उसने विषय का लक्षण, उदाहरण और विवेचन पूर्णतया दिया है। नान्यदेव ने ११८० ई० मे रोगो के नियमों के विषय मे १७ अध्यायो में सरस्वतीहृदयालकारहार ग्रन्थ लिखा है। चालुक्य विक्रमादित्य के पुत्र तथा बिल्हण के आश्रयदाता सोमेश्वर ने १२वी शताब्दी के पूर्वार्ध मे मानसोल्लास ग्रन्थ लिखा है। इसमें उसने सगीत तथा वाद्यो के विषय मे वर्णन किया है। इस विषय के अन्य ग्रन्थ ये हैं—१३वी शताब्दी ई० के जैन पार्श्वदेव का सगीतसमयसार, १४वी शताब्दी ई० के पूर्वार्द्ध के हरिपाल का सगीतसुधाकर और विद्यारण्य का सगीतसार। विद्यारण्य और माधव (लगभग १३५० ई०) एक ही व्यक्ति माने जाते हैं। रेड्डी राजा वेम भूपाल ने १५वी शताब्दी ई० के पूर्वार्द्ध मे सगीतचिन्तामणि ग्रन्थ लिखा है। कुम्भकर्ण ने १४४० ई० मे सगीतराज ग्रन्थ लिखा है। सगीत विषय पर इस ग्रन्थ की बहुत बडी देन है। १६वी शताब्दी ई० के मध्य मे रामामात्य ने कर्णाटक के सगीत के रागो के विषय मे स्वरमेलकलानिधि ग्रन्थ लिखा है। उत्तर भारतीय सगीत को पुण्डरीक विट्ठल (लगभग १६०० ई०) के ग्रन्थो ने समृद्ध किया है। उसने नर्तननिर्णय, रागमजरी, रागमाला और षड्रागचद्रिका ग्रन्थ लिखे हैं। तन्जौर के राजा रघुनाथ नायक के लिए गोविन्ददीक्षित (लगभग १६०० ई०) ने सगीतसुधा नामक ग्रन्थ लिखा

है। १७वी शताब्दी ई० में सगीत विषय पर ये ग्रन्थ लिखे गये थे—सोमनाथ का १६०९ ई० मे लिखित राजविवोध, चतुरदामोदर का सगीतदर्पण, गोविन्ददीक्षित के पुत्र वेंकटमखिन् का चतुर्दण्डिप्रकाशिका, नेपाल के राजा जगज्ज्योतिर्मल्ल (१६१७-१६३३ ई०) का सगीतसारसंग्रह, अहोबिल का सगीतपारिजात और शुभकर का सगीतदामोदर । ट्रावनकोर के राजा बालरामवर्मा (१७५३-१७९८ ई०) ने सगीत और नृत्य के विषय मे बालरामभरत ग्रन्थ लिखा है।

धनुर्वेद

धनुर्वेद एक उपवेद माना जाता है। कहा जाता है कि विश्वामित्र ने इस विषय पर एक ग्रन्थ लिखा था जो इस समय उपलब्ध नही है। विश्वास किया जाता है कि चार भागो मे विभक्त है—दीक्षा अर्थात् शिक्षण या ट्रेनिङ्ग, सग्रह अर्थात् अस्त्रप्राप्ति, सिद्धि अर्थात् अस्त्रो को प्रयोग करने की कुशलता और प्रयोग अर्थात् उन अस्त्रो का प्रयोग। विक्रमादित्य सदाशिव और शाङ्गदत्त ने इस शास्त्र पर ग्रन्थ लिखे थे किन्तु वे ग्रन्थ आज उपलब्ध नही हैं। कोदण्डमण्डन भी धनुर्विद्या का एक ग्रन्थ है। शार्ङ्गधर (१३६३ ई०) के वीरचिन्तामणि मे युद्ध सम्बन्धी विषयो का वर्णन है।

अर्थशास्त्र

अर्थशास्त्र जीवन के द्वितीय लक्ष्य अर्थ का वर्णन करता है। इसमे राजनीति का भी समावेश है अर्थशास्त्र के सिद्धान्तो का वर्णन रामायण और महाभारत मे प्राप्त होता है। इस विषय का प्रारम्भ महाभारत और धर्मशास्त्र आदि के नीति विषयक श्लोकों मे होता है। यह माना जाता है कि इन्द्र ने अर्थ-शास्त्र विषय पर एक ग्रन्थ बाहुदन्तक लिखा था। मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य-स्मृति मे अर्थशास्त्र-सम्बन्धी समस्याओ पर विवेचन मिलता है। इस शास्त्र को नीतिशास्त्र, राजनीतिशास्त्र और दण्डनीतिशास्त्र भी कहते हैं। अर्थशास्त्र का सबसे प्राचीन आचार्य बृहस्पति माना जाता है।

अर्थशास्त्र विषय पर सबसे प्राचीन ग्रन्थ **कौटिल्य** का **अर्थशास्त्र** प्राप्त होता है। **कौटिल्य** का दूसरा नाम **चाणक्य** है। इसमे बृहस्पति, उशनस्, विशालाक्ष, भरद्वाज और पराशर आदि को अर्थशास्त्र का प्राचीन आचार्य माना गया है। इसमे १५ अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय मे कई खण्ड हैं। प्रत्येक खण्ड गद्य मे है और अन्त मे श्लोक होता है, जिसमे खण्ड के विवेच्य विषय का उपसहार होता है। इसमे कुछ सूत्र भी हैं। उन पर भाष्य हुआ है। इन सूत्रो के लेखक का नाम अज्ञात है। इस ग्रन्थ मे व्यावहारिक जीवन के विषय मे विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। इसमे राज्य के प्रबन्ध-सम्बन्धी विभिन्न विषयो पर विस्तृत विवेचन हुआ है। इन विषयो मे से कुछ विषय ये हैं—राजकुमारो को कैसी शिक्षा दी जानी चाहिए, मन्त्रि-परिषद् का निर्माण, दूतो की उपयोगिता, राजदूतो के कर्तव्य, राज्य के प्रबन्ध का नियन्त्रण, न्याय का सचालन, आक्रमण, दण्ड, मूल्य-वृद्धि, कर-विधान, राजा के कर्तव्य ६, राज पुरोहित और भाटो के दुर्गुण, कुछ रहस्यात्मक कार्य। अर्थ-शास्त्र के लिखने का उद्देश्य यह था कि राज्य को सुरक्षित बनाया जाय। इसके लेखानुसार राजा राज्य का केवल सेवक होता था।

इस ग्रन्थ का लेखक **चाणक्य** माना जाता है। उसी के अन्य नाम विष्णुगुप्त और **कौटिल्य** हैं। वह मौर्य राजा **चन्द्रगुप्त** का मन्त्री था। भारतवर्ष के विषय में **मेगस्थनीज** ने जो विवरण लिखा है, वह अर्थशास्त्र के विवरण से मिलता है। दण्डी ने दशकुमारचरित मे विष्णुगुप्त के अर्थशास्त्र मे ६००० श्लोको का होना लिखा है[1]। इस ग्रन्थ की शैली के आधार पर इसका समय ३२० ई० पू० के लगभग मानना चाहिए।

इस ग्रन्थ का लेखक चाहे कोई भी हो, अर्थशास्त्र के देखने से ज्ञात होता है कि इसके लेखक की राजनीति-सम्बन्धी योग्यता बहुत विकसित थी। इसने इस बात को पूर्णतया स्पष्ट किया है कि राज्य का प्रबन्ध वे ही

---

१ दशकुमारचरित अध्याय ८।

कुशलता के साथ चला सकते हैं, जो बहुत आदर्शवादी या छिद्रान्वेषी नही है। "इस समस्त ग्रन्थ में नवीनता और सत्यता भरी हुई है। इससे ज्ञात होता है कि इसके लेखक को उन सभी विषयो का वैयक्तिक अनुभव था, जिनका उसने बडे आकर्षक रूप मे वर्णन किया है।"[1]

शुक्रनीतिसार मे २२०० श्लोको मे राजनीति का वर्णन है। यह एक विशाल ग्रन्थ शुक्रनीति का सक्षिप्त सस्करण माना जाता है। इस ग्रन्थ की शैली और विषय-विवेचन के आधार पर इसका समय ईसवीय सन् से पूर्व मानना चाहिए।

कामन्दक का नीतिसार कौटिल्य के अर्थशास्त्र पर आश्रित है। इसमे विष्णुगुप्त का उल्लेख है। इसमे बहुत से उपदेशात्मक श्लोक है। काव्यालकारसूत्र के लेखक वामन को इस ग्रन्थ का ज्ञान था। इस ग्रन्थ का समय ७वी शताब्दी ई० मे मानना चाहिए। सोमदेवसूरि ने नीतिवाक्यामृत ग्रन्थ लिखा है। यह सोमदेवसूरि और यशस्तिलक का लेखक सोमदेवसूरि एक ही व्यक्ति माने जाते हैं। यह लेखक जैन होने के कारण अर्थशास्त्र के लेखक कौटिल्य से प्रबन्ध और युद्ध-सम्बन्धी कई बातों मे सहमत नही है। इसमे उसने शासको को नीति विषयक उपदेश दिए हैं। हेमचन्द्र (१०८८-११७२ ई०) की लघ्वर्हन्नीति जैन-दृष्टिकोण से लिखी गई है। अर्थशास्त्र विषय पर अन्य ग्रन्थ ये हैं—धारा के राजा भोज (१०४० ई०) का युक्तिकल्पतरु, चण्डेश्वर का नीतिरत्नाकर, नीतिप्रकाशिका आदि।

अन्य शास्त्र

प्राचीन समय मे शिल्पशास्त्र या वास्तुविद्या बहुत उन्नत अवस्था मे थी। इस विषय पर बौद्ध और जैन विद्वानों की बहुत बडी देन है। धर्म और उपयोगिता इस विषय की मुख्य विशेषता है। दक्षिण भारत के विशाल मन्दिर, सारनाथ और अजन्ता के स्तूप विहार और चैत्य आदि प्राचीन

१. History of Indian Civilization by C E M Joad पृष्ठ ८८।

भारत के शिल्पविद्याविशारदो के बौद्धिक और नैतिक उत्कर्ष को सूचित करते हैं। नगरो का वैज्ञानिक विधि से निर्माण इस विषय का ही एक विभाग था। इस विपय पर जो ग्रन्थ लिखे गये हैं, उनकी विशेषता यह है कि उनमे "वैज्ञानिक तथ्यता है, प्रशसनीय व्यावहारिक ज्ञान की सत्ता है, स्वच्छता सम्बन्धी सभी बातो का पूरा ध्यान रक्खा गया है और सैनिक आवश्यकताओ का भी पूरा विचार रक्खा गया है।" वास्तुविद्या और मूर्तिकला विषय पर ये ग्रन्थ हैं—**मयमत, सनत्कुमारवास्तुशास्त्र** और **मानसार**। वास्तुविद्या विपय पर ये ग्रन्थ हैं—**श्रीकुमार** (१६वी शताब्दी ई०) का **शिल्परत्न** और धारा के राजा भोज (१०४० ई०) का **समरागणसूत्रधार**। **मानसार** मे उन सभी शिल्पविद्या-सम्बन्धी बातो का वर्णन है, जिनमे कलात्मकता को स्थान दिया गया है। राजा कुम्भकर्ण (१४१६-१४६६ ई०) के आश्रित एक शिल्पकार **मण्डन** ने दो ग्रन्थ लिखे हैं—**वास्तुमण्डन** और **प्रासादमण्डन**।

प्राचीन भारत मे चित्रकला पूर्ण उन्नत अवस्था मे थी। **विष्णुधर्मोत्तर-पुराण** मे एक अध्याय चित्रकला पर है। अजन्ता की गुफा के चित्रो को देखने से ज्ञात होता है कि यह कला पूर्ण उन्नति को प्राप्त हो चुकी थी। भारतीय मूर्तिकला और चित्रकला मे आध्यात्मिक भावो को विशेषता दी गई है। उसमे अस्थियो और मासपेशियो आदि की ओर विशेप ध्यान नही दिया गया है। सगीत, नृत्य, मूर्तिकला और चित्रकला का उद्देश्य यह है कि जनता के समक्ष ससार का सौन्दर्य उपस्थित किया जाय। जो वस्तुएँ सुन्दर मानी जाती हैं, उनमे परमात्मा का अस्तित्व प्रतिविम्बित माना जाता है। अतएव इन कलाओ का उद्देश्य उच्च है और इनके द्वारा परमात्मा का महत्त्व प्रकट किया जाता है। अनिर्वचनीय परमात्मा का गौरव इन कलाओ के माध्यम से ही प्रकट किया जा सकता है। "कला वस्तुत एक खिडकी है, जिससे मनुष्य वास्तविकता को देख सकता है।"[1] जो चित्र चित्रित किये जाते हैं, वे दो प्रकार

---

१ History of Indian Civilization by C E M Joad पृष्ठ ६३।

के हैं विद्ध और अविद्ध । प्रथम मे चित्र की वास्तविकता का पूरा ध्यान रक्खा जाता है और द्वितीय मे पूर्ण वास्तविकता का होना आवश्यक नही है, उसके द्वारा मूल वस्तु का ज्ञानमात्र होता है । चित्रो के इन दो प्रकारो का उल्लेख दो ग्रन्थो मे प्राप्त होता है--कल्याण के चालुक्य राजा विक्रमादित्य षष्ठ (लगभग १२०० ई०) के पुत्र सोमेश्वर के अभिलषितार्थचिन्तामणि ग्रन्थ मे तथा धनपाल (लगभग १००० ई०) की तिलकमजरी मे । विजयनगर के विद्यारण्य (१४वी शताब्दी ई०) की पञ्चदशी मे चित्रकला का वर्णन है । यह ग्रन्थ अब नष्ट हो गया है । आजकल इस विषय पर कोई प्राचीन ग्रन्थ प्राप्त नही है ।

रत्नो के प्रयोग के कारण रत्नशास्त्र का प्रादुर्भाव हुआ । वराहमिहिर की बृहत्सहिता मे इस विषय का कुछ वर्णन प्राप्त होता है । इस विषय पर ये ग्रन्थ प्राप्त होते हैं—अगस्तिमत, बुद्धभट्ट की रत्नपरीक्षा और नारायण की नवरत्नपरीक्षा आदि ।

चोरी को भी एक कला माना गया है । कर्णीसुत और मूलदेव चोरविद्या के प्रामाणिक आचार्य माने जाते हैं । इन्होने इस विषय पर ग्रन्थ लिखे हैं, परन्तु वे नष्ट हो गये हैं । एक षण्मुखकल्प नामक ग्रन्थ आजकल प्राप्य हैं ।

प्राचीन समय मे वनस्पति-विज्ञान-सम्बन्धी अध्ययन भी होता था । इस विषय के अध्ययन का कोई पृथक् विभाग विद्यमान नही था । वृक्षो और वनस्पतियो की उत्पत्ति, उनका विकास तथा वनस्पति-सम्बन्धी अन्य विषयो का विवेचन इन ग्रन्थो मे हुआ है—वृक्षायुर्वेद[1], अग्निपुराण, अर्थशास्त्र, बृहत्सहिता, सुश्रुतसहिता तथा वैशेषिकदर्शन के सूत्रो पर शकरमिश्र की टीका । शार्ङ्गधर ने वनस्पतियो के विभिन्न अङ्गो पर १३वी शताब्दी मे उपवनविनोद ग्रन्थ लिखा है ।

---

१ वाग्भट्ट का लिखा हुआ वृक्षायुर्वेद ग्रन्थ है । देखो आचार्य ध्रुव स्मृतिग्रन्थ मे पी० के० गोडे का 'भारतीय वनस्पतियो के अध्ययन का इतिहास' लेख ।

नागार्जुन रसायन-विज्ञान और आयुर्वेद का आचार्य माना जाता है। उसका रसायन-विज्ञान के विकास मे बहुत हाथ था। उसने धातु-सम्बन्धी मिश्रणो के तैयार करने में विशेष योग्यता प्राप्त की थी। पारे और लोहे के जो उसने रासायनिक मिश्रण तैयार किए थे, उनका उल्लेख चीनी यात्री ह्वेनसाग (६२९-६४५ ई०) तथा मुसलमानी लेखक अलबेरुनी (१०१७-१०३० ई०) ने भी किया है। यह कहा जाता है कि नागार्जुन ने रसायनविज्ञान पर एक ग्रन्थ लिखा था। सखिया से जो दवाएँ तैयार की जाती थी, उनका आयुर्वेदिक कार्यों के लिए पान आदि भी कराया जाता था। सुश्रुत ने क्षारो के निर्माण और प्रयोग के विषय मे विस्तृत विचार किया है। कुतुबमीनार को १४सौ वर्ष हो गये हैं, परन्तु उस पर आजतक न मोर्चा लगा है और न उस पर लिखे हुए अक्षर ही मिटे हैं, इससे ज्ञात होता है कि उस समय लोहे को विशेष प्रकार से तैयार किया जाता था और उसका विशेष कार्यों मे भी प्रयोग होता था। रसार्णव और रसरत्नसमुच्चय मे यह विधि दी गई है कि किस प्रकार कच्ची धातु मे जस्ता निकाला जा सकता है। बौद्धो ने रसायनविज्ञान के विषय मे बहुत बडी देन दी है। बौद्ध लोग अपने रसायनविज्ञान सम्बन्धी ग्रन्थो के साथ जो चीन और तिब्बत को चले गये, उसी कारण से भारत मे रसायन विज्ञान और कुछ अश मे वैद्यक का भी ह्रास हुआ है।

शल्य और ज्योतिष के साथ ही साथ वैद्यकशास्त्र के क्षेत्र मे पुराकालीन भारतीयो का अनुभव श्लाघ्य है। इस अनुभव का प्रमाण अध्ययन की पृथक्-पृथक् शाखाओ के ग्रन्थो से प्राप्त होता है। यह वनस्पतिशास्त्र, पदार्थ-सम्पत्तिओ, नक्षत्रो तथा ग्रहो की पूर्व कल्पना करता है। यह ज्ञान केवल सिद्धान्त रूप तक ही सीमित न था। इन शास्त्रो से सम्बन्धित पदार्थों का प्रयोग प्रयोगशालाओ मे अवश्य किया जाता रहा होगा। किये जाने वाले प्रयोगो का ढग, तत्सम्बन्धी प्रयुक्त प्रायोगिक यन्त्रो तथा अन्य पदार्थों को सन्तति के हाथो नही सौंपा गया। इसका कारण आसानी से जाना जा सकता था। भारतीय वैद्यकशास्त्र के शल्य-पक्ष के विलयन का मुख्य रूप से

उत्तरदायी अहिंसा का सिद्धान्त है। जिस पर बौद्ध और जैन उपदेशकों ने बहुत अधिक जोर दिया। बौद्ध अपने रसायनशास्त्र के बहुमूल्य ग्रन्थों के साथ चीन और तिब्बत गये। इस प्रकार रसायनशास्त्र का ह्रास हुआ। यवन आक्रमण के घोर अत्याचार से पीडित हो हिन्दू अपनी सुरक्षा की खोज मे इधर-उधर चले। फलत. बहुमूल्य ज्ञानकोश और अपनी प्रिय वस्तुएँ भी छोड गये। कालान्तर मे लोगो का सम्बन्ध परम्परागत कलाओं और शास्त्रों से टूट गया। अन्त मे इन उपयोगी शास्त्रों के बहुमूल्य ग्रन्थ खो गये। उन्हें विदेशी लूट ले गये और हमारे पास कुछ भी शेष न रहा।

अध्याय ३१

भारतीय दर्शन और धर्म

सामान्य सिद्धान्त और विभिन्न दर्शन

दर्शन का अभिप्राय है ज्ञानप्राप्ति की इच्छा । यह ज्ञान आध्यात्मिक ज्ञान के साथ विश्व के ज्ञान के विषय मे है । इसमे जीव और प्रकृति की उत्पत्ति तथा विकास के विषय मे विवेचन किया गया है । किसी निर्णय पर पहुँचने के लिए युक्तियो का आश्रय लिया गया है । अत दर्शन बहुत अधिक विचारात्मक है ।

धर्म का अभिप्राय है किसी विषय मे श्रद्धा या विश्वास । इस श्रद्धा या विश्वास को क्रियात्मक रूप दिया जाता है । श्रद्धा का सम्बन्ध जीवात्मा और परमात्मा से तथा इन दोनो के पारस्परिक सम्बन्ध से है। जीव और प्रकृति के ऊपर ईश्वर की प्रधानता स्वीकार की जाती है । इस प्रकार धर्म अनुभव की वस्तु हो जाता है। यह एक प्रकार का आध्यात्मिक आविष्कार है, इसमे बुद्धि से अतीत परमात्मा का अनुभव किया जाता है। यह अनुभव स्पष्ट, साक्षात्, स्फूर्तिप्रद और आश्चर्यजनक होता है। इस प्रकार धर्म क्रियात्मक और प्राप्तिरूप है ।

दर्शन और धर्म का बाह्य दृष्टिकोण विभिन्न है । पाश्चात्य देशो मे दर्शन और धर्म को पृथक्-पृथक् रक्खा गया है। परन्तु भारतवर्ष मे इन दोनो का एकत्र ही वर्णन किया गया है और दोनो के मध्य कोई विभेदक सीमा नही खीची गई है। भारतवर्ष मे दर्शन विचारात्मक होते हुए भी सत्य का अनुसन्धान करता है और वही पर स्थिर नही रहता है। इसमें इस बात का भी वर्णन किया जाता है कि किस प्रकार का जीवन विताने से उस सत्य को प्राप्त कर सकते हैं। इस अन्तिम विवेचन मे दर्शन धर्म

का स्थान ले लेता है। अतएव भारतवर्ष मे इस प्रकार का कोई दर्शन नही है, जिसमें धर्म का समावेश सर्वथा न हो। दर्शन ज्ञान का द्वार उद्घाटित करता है और धर्म ज्ञान का मार्ग प्रदर्शित करता है। दार्शनिक विवेचनो के द्वारा जिस सत्य की स्थापना की जाती है, उसको प्राप्त करना जीवन का लक्ष्य है। भारतवर्ष मे दो मुख्य कारणो से दर्शन और धर्म मे पारस्परिक सम्बन्ध की स्थापना की गई है। ये दोनो कारण भारतीय श्रद्धा की विशेषता हैं। (१) ससार आध्यात्मिक है। इसमे जीव और प्रकृति का अस्तित्व रहता है। (२) विश्व मे अनेकता मे भी एकता है। इन कारणो से यह माना जाता है कि वास्तविक सत्य केवल एक ही है, किन्तु उस सत्य की प्राप्ति के लिए विभिन्न धर्मों के अनुसार मार्ग पृथक् हैं। इन विभिन्न मार्गों का कारण यह है कि उस सत्य को विभिन्न दृष्टि-कोण से देखा गया है। अतएव न केवल धर्मो मे ही भेद है, अपितु वास्तविक सत्य के विषय मे उनके दार्शनिक विचारों मे भी मतभेद है। इस प्रकार विभिन्न विश्वासो मे एकता की प्राप्ति होती है। प्राचीन भारत मे इस सिद्धान्त को भली भाँति समझा गया था। इसका प्रभाव यह हुआ कि भारतीयो में धार्मिक सहिष्णुता की भावना उत्पन्न हुई और एक धर्म के अनुयायी, दूसरे सर्वथा विपरीत विचार वाले धर्म के अनुयायी के प्रति सहिष्णुता का भाव प्रदर्शित करते थे। इस धार्मिक सहिष्णुता की भावना के कारण ही विभिन्न दर्शनो और धर्मों का साथ ही साथ उद्भव और विकास हुआ।

धर्मशास्त्रो मे मनुष्य के कर्तव्यो का जो वर्णन किया गया है वह धर्म के सिद्धान्तो के आधार पर ही है। जो इन कर्तव्यो का पालन करना चाहते थे, उनके जीवन को व्यवस्थित और नियमित रखने के लिए वर्णो और आश्रमो की स्थापना की गई। वर्ण-व्यवस्था एक महान् प्रयत्न था कि विभिन्न परम्पराओं, कर्मकाण्डो और रीतियो को मानने वाले विभिन्न जातीय तत्त्वो को समन्वित करके एक सामाजिक रूप दिया जाय और उनकी सस्कृति तथा धर्म को एक सूत्र मे बाँधा जाय। आश्रमो ने यह व्यवस्था की कि मनुष्य

जीवन के किस काल मे किन कर्तव्यो को मुख्य रूप से करे। जीवन के चार उद्देश्य माने गये थे—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। अर्थ और काम धर्म के आश्रित थे तथा ये तीनो जीवन के चरम-लक्ष्य मोक्ष के आश्रित थे। अर्थ और काम मे आसक्ति मनुष्य की आत्मा को सासारिक बन्धनो मे बांधती है, अतएव इन दोनो को स्वतन्त्रता नही देनी चाहिए। उनको इस प्रकार से नियन्त्रित किया जाना चाहिये कि वे आत्मा की उन्नति मे सहायक सिद्ध हो। यदि ये तीनो चरम लक्ष्य मोक्ष के अधीन नही किए जाते हैं तो मृत्यु के पश्चात् जीव को पुन जन्म और मृत्यु के बन्धन मे आना पडता है। ऐसा होना स्वाभाविक है, अन्यथा विश्व मे नैतिकता की व्यवस्था नही हो सकती है। भारतीय पुनर्जन्मवाद मे विश्वास रखते हैं। पुनर्जन्म का सिद्धान्त इस नैतिक सिद्धान्त पर आश्रित है कि 'मनुष्य अपने भाग्य का स्वय निर्माता है'। इसी सिद्धान्त के अनुसार मोक्ष का भी सिद्धान्त स्वीकार किया गया है। इस सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य ज्ञान के द्वारा पुनर्जन्म के बन्धन से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त करता है। जो मनुष्य को उचित कार्य करने से रोकता है, वह अज्ञान है। सत्य का ज्ञान मनुष्य को सन्मार्ग पर लाता है। इस सत्य का ज्ञान दार्शनिक विवेचन से ही प्राप्त होता है। धर्म के द्वारा निर्धारित नैतिक अनुशासन मनुष्य के अज्ञान को समाप्त करता है। इस प्रकार मोक्ष की प्राप्ति केवल श्रद्धा से नही, अपितु कर्म के द्वारा होती है। भारतीय पद्धति मे केवल दार्शनिक विवेचन की अपेक्षा धर्म को विशेष महत्त्व दिया गया है।

वैदिक ग्रन्थो मे दार्शनिक भावो के बीज विद्यमान हैं। उनसे ही विभिन्न दर्शनो का उद्भव और विकास हुआ है। इन दर्शनो की मुख्य सत्यता यह है कि ये परमात्मा के अस्तित्व को मानते हैं। वेदो में ऐसे मन्त्र विद्यमान हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि परमात्मा के स्वरूप को जानने का प्रयत्न उस समय किया गया था। इन उल्लेखो से ज्ञात होता है कि बहुत प्राचीन समय से ही दार्शनिक अन्वेषण प्रारम्भ हो गया था, जो अन्वेषण एक देवता

के विषय मे प्रारम्भ हुआ था, वह अनेक देवताओ के विषय में भी चालू रहा। एकदेवता वाद ही अनेकदेवता वाद के रूप मे परिणत हुआ और जब उन सभी देवताओ को एक देवता का ही रूपान्तर माना जाने लगा, तब उन सबकी पूजा प्रारम्भ हुई। ब्राह्मण ग्रन्थो मे जीवन के धार्मिक विकास का परिचय प्राप्त होता है। उपनिषदो मे ऐसे सन्दर्भ मिलते हैं, जिनसे दार्शनिक साहित्य का विकास हुआ है, परन्तु उनमे किसी सिद्धान्त का विधिपूर्वक स्पष्टीकरण नही हुआ है। प्रत्येक उपनिषद् मे कई सिद्धान्त विद्यमान हैं। तथापि उपनिषदों मे मौलिक रचना विद्यमान है, जिनमे सुसम्बद्ध दार्शनिक भावो का विकास हो सके।

प्रत्येक दर्शन उस दर्शन के पढने वाले विद्यार्थी से आशा रखता है कि वह इन दर्शनो के आधारभूत प्राचीन ग्रन्थो पर दृढ आस्था रखेगा और उन ग्रन्थो मे जो निष्कर्ष निकाले गये हैं, उनको मानेगा। ऐसा कोई भी दर्शन नही है, जो प्राचीन ग्रन्थो (वेद, उपनिषद् आदि) की प्रामाणिकता को स्वीकार न करता हो और उनमे निर्दिष्ट सिद्धान्तो को न माने। इस दृष्टि से दर्शनो की उपमा एक विकसित होते हुए फूल से दे सकते हैं, जिसके दल अपने फूल से पृथक् न होकर उसके साथ ही सबद्ध रहते हैं।

पाश्चात्य विद्वानो ने भारतीय दर्शनो पर निराशावादी होने का दोषारोपण किया है। उन्होने इसके समर्थन के लिए युक्ति दी है कि इनमे अर्थ और काम को हीन स्थान दिया गया है और सन्यास का महत्त्व वर्णन किया गया है। उनका यह दोषारोपण सर्वथा असत्य है, क्योकि निराशावाद सभी वस्तुओ को दोषमय मानता है और मनुष्य को आशा दिलाने के स्थान पर उसके मस्तिष्क को निराशापूर्ण बनाता है। भारतीय दार्शनिको ने अर्थ और काम को जो महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं दिया है, उसका कारण केवल यह नही है कि ये आत्मा के बन्धन के कारण है, अपितु मुख्य कारण यह है कि अर्थ और काम को गौण स्थान देने से एक विशेष लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति होती है। भारतीय, जो सन्यास

बुद्ध ने जिन सिद्धान्तो की स्थापना की, वे ही वौद्ध-दर्शन के मूल सिद्धान्त हुए। जीवन दु खमय है। इच्छा और काम से वशीभूत होकर किये गये कर्मों के कारण दु ख होता है। इस प्रकार के कर्मों मे निरन्तर लिप्त होने से मनुष्य दु ख मे पडा रहता है और कर्म-सिद्धान्त तथा पुनर्जन्म सिद्धान्त के वश मे होकर वार-वार जन्म और मृत्यु को प्राप्त होता है। अज्ञान के कारण ही मनुष्य काम के वश होकर कार्यों को करता है। सम्यक् (वास्तविक) ज्ञान के द्वारा ही यह ज्ञान दूर होता है। सम्यक् ज्ञान मे यह ज्ञान भी सम्मिलित है कि आत्मा नही है और न यह जगत् ही है। आत्मा के अस्तित्व को मानने से सम्यक् ज्ञान नही होने पाता। आत्मा को मानने से राग और काम को स्थान मिल जाता है। पुनर्जन्म मे भी आत्मा का पुनर्जन्म नही होता है, अपितु चरित्र का पुनर्जन्म होता है। इस ससार का भी अस्तित्व नही है। यह जो कुछ ससार दृष्टिगोचर होता है वह क्षणभगुर और अस्थिर है। जव सम्यक् ज्ञान होता है तो अज्ञान नष्ट हो जाता है और उसके साथ ही इच्छा और काम भी नष्ट हो जाते हैं। जव सम्यक् ज्ञान हो जाता है तब कर्म करना भी समाप्त हो जाता है और परिणामस्वरूप दु ख का अभाव हो जाता है। दु खों का अभाव समाधि के द्वारा ही होता है। समाधि के द्वारा दु खो का अत्यन्त अभाव हो जाता है। परिणामस्वरूप जगत् का और ज्ञान का भी अभाव हो जाता है। इस स्थिति को **निर्वाण** कहते हैं। निर्वाण शब्द का अर्थ है, वुझना या समाप्त होना। अत निर्वाण उस अवस्था का नाम है, जहाँ सब चीजें समाप्त हो जाती हैं और कुछ शेष नही रहता है। इससे सिद्ध होता है कि वास्तविक सत्य 'शून्य' है।

जो 'वोध' के लिए प्रयत्न करता है, उसे वोधिसत्त्व कहते हैं। वह गृहस्थ या भिक्षुक कोई भी हो सकता है। उसके आचरण मे विश्वहित की भावना प्रमुख होनी चाहिए। वोधिसत्त्व से बुद्ध की अवस्था को प्राप्त करने के लिए कई सीढियो को पार करना होता है। उसको दान (दान देना), शील (सदाचार के नियमो का पालन), क्षान्ति (क्षमा), वीर्य (शक्ति), ध्यान (समाधि) और प्रज्ञा (ज्ञान), इन ६ पारमितो (उच्च गुणो)

में पूर्णता प्राप्त करनी चाहिए। भिक्षुक इन गुणो का अभ्यास अपने दैनिक जीवन मे विहारो (मठो) मे रहते हुए करते हैं और गृहस्थ अपने गृहो मे रहते हुए स्वार्थ-त्याग तथा भक्तिभाव के द्वारा करते हैं।

बुद्ध वेदो को प्रमाण नही मानते थे। वह ईश्वर के अस्तित्व मे विश्वास नही रखते थे। उन्होने जगत् की उत्पत्ति और प्रलय के विषय मे भी विचार नहीं किया है। उन्होंने योग की साधनाओं को विशेषत. भावना (समाधि) को स्वीकार किया है तथा ब्रह्मचर्य के अभ्यास पर विशेष बल दिया है।

बुद्ध के शिष्य विभिन्न प्रतिभा से युक्त थे। उनमे से कुछ ऐसे थे, जो विश्व के अस्तित्व को अनुभव करने के कारण शून्यतावाद को मानने को उद्यत नही थे। बुद्ध के उपदेशो की सूक्ष्म सत्यता तथा गम्भीर दार्शनिकता उनको बोधगम्य नही थी। बुद्ध के शिष्यो तथा उनके अनुयायियो के इस बौद्धिक-शक्ति-भेद के कारण बौद्ध धर्म की चार शाखाएँ प्रचलित हुई। उनके नाम हैं—वैभाषिक, सौत्रान्तिक, योगाचार और माध्यमिक। बौद्ध धर्म का एक विशेष सिद्धान्त यह है कि ससार की प्रत्येक वस्तु क्षणभगुर है। वैभाषिको का मत है कि ज्ञान और ज्ञेय दोनो सत्य हैं। सौत्रान्तिको का मत है कि ज्ञान सत्य है और ज्ञेय की सत्यता अनुमान के द्वारा ज्ञात होती है। योगाचार-मार्ग के अनुयायियो का मत है कि ज्ञान सत्य है और इसके अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु सत्य नही है। अतएव इस शाखा को विज्ञानवादी भी कहते हैं। माध्यमिकों का मत है कि ज्ञान भी सत्य नहीं है। वे शून्यतावाद को मानते है। अतएव इस शाखा को 'शून्यतावादी' भी कहते हैं। वैभाषिक शाखा के प्राचीन लेखक सघभद्र और कात्यायन हैं। सौत्रान्तिक शाखा का प्राचीन लेखक कुमारलब्ध (२०० ई०) है। यह शाखा मूल बौद्ध-ग्रन्थो पर निर्भर है। योगाचार शाखा के प्राचीन लेखक मैत्रेयनाथ और आर्य असग हैं। यह शाखा योग (समाधि) और आचार (अभ्यास) पर निर्भर है। माध्यमिक शाखा का प्राचीन लेखक आर्य नागार्जुन है। इस शाखा का मत है कि बाह्य वस्तुएँ न सर्वथा सत्य हैं और न सर्वथा असत्य। इस प्रकार

अङ्गुत्तरनिकाय, बुद्धवंश और **ललितविस्तर** बुद्ध की उपासना का समर्थन मुक्तिसाधन के रूप में करते हैं। **अश्वघोष** ने उनकी भक्ति पर बल दिया। **सद्धर्मपुण्डरीक** बुद्ध के मन्दिरो का वर्णन करता है और उनका अनुग्रह प्राप्त करने पर बल देता है। **मंजुश्री, अवलोकितेश्वर** तथा **तारा** आराध्य देवियाँ हो गयी। इस विषय का वर्णन **अवलोकितेश्वरगुणकरण्डव्यूह, सुखावतीव्यूह, कर्मपुण्डरीक** और **अवतंसकसूत्र** मे हुआ है। **आदिकर्मप्रदीप** मे बौद्धधर्म के कर्मकाण्डो का वर्णन है। इन कर्मकाण्डो मे आश्चर्यजनक और रहस्यात्मक कार्य भी सम्मिलित हैं।

शून्यवाद का वास्तविक सिद्धान्त यह है कि सभी वस्तुएँ शून्य है। जब तक इस तथ्य की अनुभूति न हो जाए, तब तक इस भौतिक संसार को ज्ञान का विकास ही समझना चाहिए। इसको **आलयविज्ञान** कहते हैं। जब तक तत्त्व-ज्ञान नही होता है, तब तक यही आलयविज्ञान विद्यमान रहता है। इन्द्रियो की सहायता से जो अनुभव प्राप्त होता है, उससे जो ज्ञान उत्पन्न होता है, उसे **प्रवृत्तिविज्ञान** कहते हैं। इन सिद्धान्तो को समझने के लिए बौद्ध दार्शनिक **प्रत्यक्ष** और **अनुमान** इन दो प्रमाणो को स्वीकार करते हैं।

बौद्ध-सिद्धान्तो का सबसे प्रथम सुव्यवस्थित रूप मे प्रतिपादन करने वाला अश्वघोष है। उसको महायान-शाखा के सिद्धान्तो का प्रमुख संस्थापक और प्रचारक माना जाता है। **महायानश्रद्धोत्पाद** उसकी रचना मानी जाती है। यह महायान-सिद्धान्तो का पोषक दार्शनिक ग्रन्थ है। महायान शाखा के संस्थापको मे अश्वघोष के अतिरिक्त दूसरा व्यक्ति बौद्ध दार्शनिक **नागार्जुन** माना जाता है। वह बौद्ध-दर्शन, जादू, गणित, ज्योतिष, वैद्यक तथा कई विद्याओ का विशेषज्ञ था। उसने बहुत से ग्रन्थ लिखे थे। उनमे से अधिकांश अब चीनी और तिब्बती भाषा मे ही सुरक्षित हैं। उसने **माध्यमिकसूत्र** लिखे हैं। इनका दूसरा नाम **माध्यमिककारिका** है। इन सूत्रो की संख्या ४०० है। उसने इन सूत्रो पर स्वयं **अकुतोभय** नाम की टीका की है। इनमे महायान शाखा के सिद्धान्तो का वर्णन है। उसके अन्य ग्रन्थ ये हैं—(१) **युक्तिषष्ठिका**, (२)

शून्यतासप्तति, (३) प्रतीत्यसमुत्पादहृदय, (४) महायानविंशक (५) विग्रह-व्यावर्तनी (न्यायशास्त्रविषयक), (६) धर्मसंग्रह, (७) सुहृल्लेख, (८) प्रमाणविध्वंसन और (९) पंचपराक्रम (कर्मकाण्ड-विषयक) आदि। योगाचार शाखा को ईसवीय सन् के पश्चात् महत्त्व प्राप्त हुआ। इसका श्रेय मैत्रेय को है। वह ४०० ई० से पूर्व हुआ था। उसने ये ग्रन्थ लिखे हैं—(१) बोधिसत्त्वचर्या-निर्देश, (२) सप्तदशभूमिशास्त्र-योगचर्या और (३) अभिसमयालंकारकारिका। असङ्ग मैत्रेय का शिष्य था। वह चतुर्थ शताब्दी ई० में हुआ था। उसने योगाचारभूमिसूत्र और स्वटीकासहित महायान-सूत्रालंकारसूत्र ये दो ग्रन्थ लिखे हैं। उसने इनके अतिरिक्त १० ग्रन्थ और लिखे हैं। वे चीनी और तिब्बती भाषा में प्राप्त होते हैं। वसुबन्धु असंग का भाई था। वह पहले हीनयान-शाखा का अनुयायी था और उसने उस शाखा के सिद्धान्तों पर दो ग्रन्थ लिखे—गाथासंग्रह और अभिधर्मकोश। बाद में वह महायान शाखा का अनुयायी हो गया और उसने बहुत से ग्रन्थ लिखे। उन ग्रन्थों के मूल रूप नष्ट हो गए हैं। उसने ये ग्रन्थ लिखे हैं—(१) वादविधि, (२) वादमार्ग, (३) वादकौशल, (४) तर्कशास्त्र और (५) परमार्थसप्तति। यह सांख्यकारिका का खण्डनात्मक ग्रन्थ है। दिङ्नाग वसुबन्धु का शिष्य था। वह ४०० ई० के लगभग हुआ था। वह बौद्ध-न्यायशास्त्र का संस्थापक था। उसने ये ग्रन्थ लिखे हैं—(१) प्रमाणसमुच्चय तथा उसकी वृत्ति (टीका), (२) न्यायप्रवेश, (३) हेतुचक्र, (४) आलम्बनपरीक्षा तथा उसकी वृत्ति और (५) त्रिकालपरीक्षा आदि। इनमें से न्यायप्रवेश को छोड़कर अन्य के मूल ग्रन्थ नष्ट हो गए हैं। परमार्थ (४९८-५६९ ई०) ने संस्कृत में लिखे हुए बहुत से ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया है। शान्तिदेव (७वीं शताब्दी ई०) ने ये ग्रन्थ लिखे हैं—(१) शिक्षासमुच्चय, (२) सूत्रसमुच्चय, और (३) बोधिचर्यावतार। धर्मकीर्ति (लगभग ६५० ई०) अपने समय नास्तिकदर्शनों का प्रबल विरोधी था। उसने बौद्ध दर्शन तथा बौद्ध न्याय-शास्त्र पर कई ग्रन्थ लिखे हैं। उसके ग्रन्थ ये हैं—(१) प्रमाणवार्तिककारिका तथा उसकी वृत्ति, (२) प्रमाणविनिश्चय, (३) न्यायबिन्दु, (४) हेतुबिन्दु-

विवरण, (५) तर्कन्याय, (६) सन्तानान्तरसिद्धि और (७) सम्बन्धपरीक्षा तथा उसकी वृत्ति। इनमे से न्यायविन्दु संस्कृत मे उपलब्ध है। अन्य ग्रन्थ केवल अनुवाद रूप में प्राप्त हैं। शान्तरक्षित ने ७०० ई० के लगभग तत्त्वसंग्रह ग्रन्थ लिखा है। उसने इसमे अपने समय के अन्य दार्शनिक मतो की आलोचना की है। शान्तरक्षित के शिष्य कर्मलशील ने ७४९ ई० मे तत्त्वसंग्रहपंजिका नाम से इसकी टीका की है। कल्याणरक्षित ९वी शताब्दी ई० के पूर्वार्ध मे हुआ था। उसने ये ग्रन्थ लिखे हैं--(१) सर्वज्ञसिद्धिकारिका, (२) वाह्यार्थसिद्धिकारिका, (३) श्रुतिपरीक्षा, (४) अन्यापोहविचारकारिका और (५) ईश्वरभंगकारिका। कल्याणरक्षित के शिष्य धर्मोत्तर ने ये ग्रन्थ लिखे हैं--(१) न्यायबिन्दुटीका, (२) प्रमाणपरीक्षा, (३) अपोहनामप्रकरण, (४) परलोकसिद्धि, (५) क्षणभंगसिद्धि और (६) प्रमाणविनिश्चयटीका। धर्मोत्तर का समय ८५० ई० के लगभग समझना चाहिए। रत्नकीर्ति १०वी शताब्दी ई० के पूर्वार्ध मे हुआ था। उसने ये ग्रन्थ लिखे हैं--(१) क्षणभंगसिद्धि, (२) अपोहसिद्धि, (३) स्थिरसिद्धिदूषण और (४) चित्राद्वैतसिद्धि। ज्ञानश्री (लगभग ९५० ई०) ने ये ग्रन्थ लिखे हैं--(१) कार्यकारणभावसिद्धि, (२) व्याप्तिचर्चा और (३) प्रमाणविनिश्चयटीका।

बौद्ध दर्शन की प्रसिद्धि मुख्यरूप से उसके आचारशास्त्रीय सिद्धान्तो के कारण हुई है। नागार्जुन, असंग और वसुबन्धु जैसे प्रकाण्ड विद्वानो, दिङ्नाग और धर्मकीर्ति जैसे तार्किको तथा कर्मलशील जैसे लेखकों के भगीरथ प्रयत्न से बौद्ध-दर्शन एक दर्शन के रूप मे सफल हो सका है। बौद्ध धर्म मे प्राप्य आचारशास्त्रीय सिद्धान्त बौद्धधर्म की ही विशेषता नही है। ये सिद्धान्त वैदिक ग्रन्थों में भी प्राप्य हैं। इसके शून्यतावादी सिद्धान्त के कारण अन्य दर्शनो के विद्वानो ने इस दर्शन पर आक्षेप किए हैं। इसी कारण से यह दर्शन अपने जन्म-स्थान भारतवर्ष में विकसित न हो सका।

जैन धर्म

वर्धमान महावीर (५९९-५२७ ई० पू०) जैन धर्म के संस्थापक थे। उन्होने पार्श्वनाथ (८०० ई० पू०) के द्वारा संस्थापित और अपने समय मे

विद्यमान धर्म का सुधार किया। इस क्षेत्र मे उससे पूर्व २३ सन्त हो चुके थे, उनमे सन्त ऋषभ सबसे प्राचीन थे और वे ही जैन धर्म के सिद्धान्तो के जन्मदाता थे।

जैन लोग जीवात्मा को प्रकृति से पृथक् मानते है। वे जीवात्मा और प्रकृति दोनो को सत्य मानते हैं। जीवात्मा अनेक है। ये पुनर्जन्मवाद और कर्म-सिद्धान्त को स्वीकार करते है। जीवात्मा मे ज्ञान है परन्तु वह पूर्व कर्मो के कारण प्रकाशित नही होने पाता। यह भौतिक शरीर पूर्व कर्मो का परिणाम है। यह जीवात्मा को उन्नति करने से रोकता है। अत: शरीर को 'आवरण' कहा जाता है। अत शरीररूपी आवरण से छूटने का उपाय 'रत्नत्रय' अर्थात् रत्नतुल्य तीन कार्य हैं। वे तीन काय है——(१) सम्यग्दर्शन (२) सम्यग्ज्ञान और (३) सम्यक्चरित्र। सम्यग्दर्शन मे जैन सिद्धान्तो पर विश्वास करना भी सम्मिलित है। सम्यग्ज्ञान मे जैन आचार्यो के द्वारा प्रदत्त शिक्षाओ का ठीक ढग से समझना सम्मिलित है। सम्यक्चरित्र मे आत्मा को बन्धन मे डालने वाले पापो से निवृत्त होना सम्मिलित है। सम्यक्चरित्र का अभ्यास करने के लिए इन व्रतो का अभ्यास करना चाहिए——अहिंसा, सूनृत (सत्य और मधुर-भाषण), अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह (किसी की किसी वस्तु को न लेना)। इस मत मे अहिंसा के अभ्यास को पूर्णता तक पहुँचा दिया गया है। इस मत की दीक्षा लेने वाला अपनी प्रतिज्ञा को तोडने की अपेक्षा आत्महत्या करना अच्छा समझता है। इस धर्म मे आत्म-सयम और वैराग्य पर अधिक बल दिया गया है। इन व्रतो के अभ्यास का फल मानवीय बन्धनो से सदा के लिए मुक्त हो जाना है। इस मुक्त अवस्था मे आत्मा सासारिक विषय-वासनाओ से सर्वथा मुक्त रहता है। उसके दु ख के सभी कारण पूर्णतया नष्ट हो जाते हैं। बौद्धमत के तुल्य इस मत मे आत्मा का नाश नही होता है, अपितु आत्मा आनन्दमय-स्वरूप को प्राप्त करता है। इस अवस्था को प्राप्त होने पर जीव को 'अर्हत्' कहते है। ये अर्हत् सर्वज्ञ होते है।

देखिए —

सर्वज्ञो जितरागादिदोषस्त्रैलोक्यपूजित ।
यथास्थितार्थवादी च देवोऽर्हन् परमेश्वर ।।

आप्तनिश्चयालङ्कार

जैन ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार नही करते है और न वे वेदो को ज्ञान का आदिस्रोत मानते हैं। उनके मतानुसार तीन प्रमाण हैं——प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द (जैन आचार्यों के ग्रन्थ के रूप मे)।

सासारिक वस्तुओ के अस्तित्व के विषय मे जैनो ने 'स्याद्वाद' नाम का एक विचित्र सिद्धान्त प्रस्तुत किया है। एक वस्तु जिसको हम विद्यमान कहते हैं, वह स्वरूप मे है, परन्तु अन्य विद्यमान वस्तुओ के रूप मे नही है। अत उसको एक रूप मे 'है' कह सकते हैं और अन्य वस्तुओ के अस्तित्व की दृष्टि से 'नही है' कह सकते हैं। उसको एक विशेष नाम से पुकार सकते हैं, परन्तु अन्य नामो से उसे नही पुकार सकते हैं। अतएव एक वस्तु को अनेक रूप से प्रस्तुत कर सकते हैं। अत जैनो ने वस्तु के अस्तित्व के विषय मे सात प्रकार माने हैं ——(१) वस्तु है, (२) वस्तु नही है, (३) वस्तु है और वस्तु नही है, (४) वस्तु अवर्णनीय है, (५) वस्तु है, परन्तु अवर्ण्य है, (६) वस्तु नही है और अवर्णनीय है और (७) वस्तु है, वस्तु नही है और अवर्णनीय है। सात प्रकार से वस्तु को प्रस्तुत करने के कारण इसे सप्तभगीनय भी कहते हैं।

महावीर के स्वर्गवास के पश्चात् उसके अनुनायी दो विभागो मे विभक्त हो गए— (१) दिगम्बर और (२) श्वेताम्बर। दिगम्बर मार्ग के अनुयायियो का यह मत है कि मोक्ष के इच्छुक को चाहिए कि वह अपनी सभी वस्तुओ का परित्याग कर दे। वस्त्र भी आवरण है अत उनका भी परित्याग कर दे। स्त्रियाँ मोक्ष की अधिकारिणी नही हैं। अतएव इस मार्ग के अनुयायी दिगम्बरत्व (पूर्ण नग्नत्व) का प्रचार करते थे। इस मार्ग को निर्ग्रन्थिक भी कहा जाता है। श्वेताम्बर मार्ग के अनुयायी श्वेताम्बर (श्वेत वस्त्र) को पहनना स्वीकार करते थे और उनके मतानुसार स्त्रियाँ भी मोक्ष की अधिकारिणी हैं।

इस धर्म के सबसे प्राचीन आचार्यों ने अपने सिद्धान्तों का प्रचार मागधी प्राकृत मे किया। उनके लेख भी प्राकृत भाषा मे ही सगृहीत हुए। जैनो के प्रामाणिक ग्रन्थ सिद्धान्त या आगम हैं। जैनो का सबसे प्राचीन लेखक भद्रबाहु था। इस नाम के दो जैन लेखक थे, एक प्राचीन और दूसरा परकालीन। उन दोनो का समय क्रमश लगभग ४३३-३५७ ई० पू० और लगभग १२ ई० पू० माना जाता है। इनमे से एक ने दशरूपात्मक तर्कपद्धति को जन्म दिया है। उसने दशवैकालिकासूत्र की प्राकृत मे टीका दशवैकालिकनिर्युक्ति नाम से की है। इसमे जैन-तर्कशास्त्र के सिद्धान्तो का वर्णन है। उमास्वाति ने प्रथम शताब्दी ई० मे तत्त्वार्थाधिगमसूत्र की रचना की। इसमे उसने तत्त्वो और उनके ज्ञान की पद्धति का वर्णन किया है। इस पर उसने स्वय टीका भी लिखी है। सिद्धसेन दिवाकर (४८०-५५० ई०) ने ये ग्रन्थ लिखे हैं—(१) तत्त्वार्थाधिगमसूत्र की टीका न्यायावतार और (२) जैन दर्शन विषय पर प्राकृत मे सम्मतितर्कसूत्र। पाश्चात्य विद्वान् सिद्धसेन दिवाकर का समय ७वी शताब्दी ई० मानते है। तत्त्वार्थाधिगमसूत्र पर पूज्यपाद देवनन्दी (५०० ई०) ने सर्वार्थसिद्धि नाम की एक टीका लिखी। ऐसा समझा जाता है कि पूज्यपाद और वैयाकरण जिनेन्द्रबुद्धि एक ही व्यक्ति है। समन्तभद्र ने तत्त्वार्थाधिगमसूत्र की टीका गन्धहस्तिमहाभाष्य नाम से की है। कुमारिल भट्ट (लगभग ६५०) ने इसकी आलोचना की है। अत उनका समय ६०० ई० से पूर्व मानना चाहिए। इस टीका के प्रारम्भिक भाग को आप्तमीमासा कहते हैं। अकलक ने ये ग्रन्थ लिखे है—(१) सामन्तभद्र की आप्तमीमासा की टीका, (२) न्यायविनिश्चय, (३) तत्त्वार्थवार्तिकव्याख्यानालकार, (४) लघीयस्त्रय, (५) स्वरूपसबोधन आदि। कुमारिल (लगभग ६५० ई०) ने इनका भी खण्डन किया है, अत इनका समय ६०० ई० के लगभग मानना चाहिए। माणिक्यनन्दी (८०० ई०) ने प्रमाण विषय पर परीक्षामुखसूत्र लिखा है। प्रभाचन्द्र (लगभग ८२५) ई० ने दो ग्रन्थ लिखे हैं—(१) परीक्षामुखसूत्र की टीका प्रमेयकमलमार्तण्ड और (२) अकलंक के लघीयस्त्रय की टीका न्याय-

कुमुदचन्द्रोदय। हेमचन्द्र (१०८८-११७२ ई०) ने ये ग्रन्थ लिखे हैं—(१) **प्रमाणमीमासा** तथा उसकी स्वरचित टीका और (२) **वीतरागस्तुति** (अर्हत्-की स्तुति)। हेमचन्द्र के समकालीन देवसूरि ने **प्रमाणनयतत्त्वलोकालकार** नाम का ग्रन्थ लिखा है और इस पर स्वय **स्वद्वादरत्नाकर** नाम की टीका लिखी है। **दर्शनशुद्धि** और **प्रमेयरत्नकोश** चन्द्रप्रभा (११०० ई०) की रचना माने जाते हैं। **हरिभद्रसूरि** १२वी शताब्दी ई० का प्रसिद्ध विद्वान् था। उसने ये ग्रन्थ लिखे हैं—(१)**षड्दर्शनसमुच्चय**, (२) **न्यायावतारविति**, (३) **योगबिन्दु** और (४) **धर्मबिन्दु** आदि । जैन-परम्परा का कथन है कि उसने १४०० ग्रन्थ लिखे हैं । **मल्लिषेणसूरि** ने १२९२ ई० मे **हेमचन्द्र** की **वीतरा-गस्तुति** की टीका **स्याद्वादमजरी** नामक ग्रन्थ मे की है। इसमे उसने स्वाद्वाद की विधिपूर्वक व्याख्या की है । **राजशेखरसूरि** (१३४८ ई०) ने बहुत से ग्रन्थ लिखे हैं। उनमे से ये दो ग्रन्थ मुख्य हैं—(१) **स्याद्वाद-कारिका** और (२) **श्रीधर** की **न्यायकन्दली** की टीका **पजिका** । **गुणरत्न** ने १५वी शताब्दी ई० के प्रारम्भ मे हरिभद्र के **षड्दर्शनसमुच्चय** की टीका की है । **यशोविजयगणि** (१६०८-१६८८ ई०) ने १०० से अधिक ग्रन्थ लिखे हैं। उनमे से प्रसिद्ध ये हैं— (१) **न्यायप्रदीप**, (२)**तर्कभाषा**, (३)**न्यायरहस्य**, (४) **न्यायामृततरगिणी** और (५) **न्यायखण्डखाद्य** ।

हरिभद्रसूरि के **योगबिन्दु** तथा **धर्मबिन्दु** मे और **सकलकीर्ति** (१४६४ ई०) के **प्रश्नोत्तरोपासकाचार** मे साधारण तथा सन्यासी दोनो प्रकार के जैनो के कर्तव्यो का वर्णन है । **सकलकीर्ति** ने **तत्त्वार्थसारदीपिका** नामक ग्रन्थ भी लिखा है । इसमें उसने दिगम्बर-जैन मत पर जितने भी ग्रन्थ हैं, उनका पूरा सारभाग दिया है ।

निम्नलिखित ग्रन्थो मे जीवन चरित तथा परम्परागत वातो का वर्णन है—(१) सिद्धर्षि (९०६ ई०) कृत **उपमितिभावप्रपचकथा**, (२) **अमितगति** (१००० ई०) कृत **धर्मपरीक्षा** (३)**हेमचन्द्र** (१०८८-११७२) कृत **परि-शिष्टपर्व** और **स्थविरावलीचरित**, (४) जैन दृष्टिकोण से महाभारत की कथा पर **हरिवशपुराण** । इसके दो सम्करण हैं, एक प्राचीन और दूसरा पर-

कालीन। प्राचीन संस्करण का लेखक जिनसेन (७८४ ई०) हैं और दूसरे के लेखक १५वीं शताब्दी ई० के सकलकीर्ति और उसके शिष्य जिनदास हैं। (५) जिनसेन (९वीं शताब्दी ई०) कृत आदिपुराण (६) गुणभद्र (८९८ ई०) कृत उत्तरपुराण। यह आदिपुराण का ही संलग्नरूप है। (७) रविषेण (६६० ई०) कृत पद्मपुराण और (८) शुभचन्द्र (१५५१ ई०) कृत पाण्डव पुराण।

अहिंसा-सिद्धान्त के अपनाने से ही जैन धर्म का विशेष प्रचार हुआ। यह मत धर्म के नैतिक सिद्धान्तों पर जितना बल देता है, उतना विवेचनात्मक विषयों पर नहीं। बौद्धों की अपेक्षा जैनों ने संस्कृत साहित्य को अधिक देन दी है। जैनों के काव्य सरल और सुन्दर हैं। उन्होंने प्राकृत-भाषा के साहित्य के विकास में भी बहुत योग दिया है।

अध्याय ३३

आस्तिक-दर्शन

न्याय, वैशेषिक, सांख्य और योग

आस्तिक-दर्शन ६ हैं। उनके नाम हैं—न्याय, वैशेषिक, साख्य, योग, मीमासा और वेदान्त। इन सभी दर्शनो के मूल-सिद्धान्त वैदिक-ग्रन्थो से लिए गये हैं। इन दर्शनो का विकास उपनिपदो के समय से हुआ है। अतएव इन दर्शनो का कालक्रम के अनुसार वर्णन सभव नही है। इनमे स्व-सिद्धान्तो का वर्णन सूत्रो के रूप मे हुआ है। वेदान्तदर्शन और मीमासादर्शन के सूत्रो के रचयिता क्रमश बादरायण और जैमिनि है। बादरायण और महाभारत के लेखक व्यास, दोनो एक ही व्यक्ति माने जाते हैं। जैमिनि व्यास का शिष्य माना जाता है। साख्यदर्शन और योगदर्शन के रचयिता क्रमश कपिल और पतजलि हैं। यह पतजलि और महाभाष्य के रचयिता वैयाकरण पतजलि एक ही व्यक्ति माने जाते हैं। न्यायदर्शन और वैशेषिकदर्शन के रचयिता क्रमश गौतम और कणाद हैं।

इन दर्शनो मे तत्त्वो का स्वमतानुसार विभिन्न रूप से विभाजन किया गया है। इन दर्शनो का मन्तव्य है कि इन तत्त्वो के ज्ञान से ही मोक्ष प्राप्त हो सकता है। इन तत्त्वो के ज्ञान के लिए वे प्रमाणो का स्वमतानुसार लक्षण देते हैं। इन दर्शनो के अनुसार प्रमाण २ से लेकर ८ तक हैं। प्रत्येक दर्शन मे प्रमाणो की सख्या विभिन्न हैं।

न्याय और वैशेषिक-दर्शन

ये दोनो दर्शन वैज्ञानिक तर्क-पद्धति पर विशेष बल देते हैं। ऐसी तर्कपद्धति का प्रारम्भ बृहदारण्यक आदि उपनिषदो से हुआ है। 'न्याय' शब्द का प्रारम्भ मे अर्थ था, वेदो की न्यायोचित विधि से व्याख्या करना। न्याय शब्द से

प्राय मीमांसा-दर्शन का अर्थ लिया जाता था। न्यायदर्शन के लिए न्याय शब्द का प्रयोग बहुत बाद मे प्रारम्भ हुआ है। वैशेषिक नाम इस आधार पर पड़ा है कि इस दर्शन मे 'विशेष' को एक पृथक् पदार्थ माना गया है। यह माना जाता है कि इस दर्शन मे माने गये कुछ विशेष सिद्धान्तो को जो स्वीकार करता है, उसे वैशेषिक कहते है।[1] वैशेषिक-दर्शन का सम्बन्ध तत्त्वमीमांसा से है और न्यायदर्शन का सम्बन्ध विश्व के तथ्यो की प्रमाण-मीमांसा से है। प्रमाणमीमांसा के द्वारा तत्त्वमीमांसा से सबद्ध विषयो का विवेचन किया जाता है। अत इसको लक्षण-विज्ञान कह सकते है, जिसके द्वारा अति शुद्ध रूप मे लक्षणो का निर्माण होता है। दोनो दर्शनो मे मनो-विज्ञान से सबद्ध विषयो का भी वर्णन है। दोनो दर्शनो का उद्देश्य है निःश्रेयस (मोक्ष) की प्राप्ति। यह मोक्ष-प्राप्ति दु खो के पूर्ण नाश से ही हो सकती है। दु खो का अत्यन्ताभाव तत्त्वो के ज्ञान से होता है। वैशेषिक दर्शन प्रत्यक्ष और अनुमान इन दो प्रमाणो को मानता है, किन्तु न्यायदर्शन, प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द और उपमान इन चार प्रमाणो को मानता है। ये दोनो दर्शन वेदो को ईश्वरीय ज्ञान मानते है, अत उनको स्वत प्रमाण मानते है। प्राचीन ग्रन्थो मे मनुष्य और ईश्वर का सम्बन्ध तथा ईश्वर की उपासना का विवेचन नही हुआ है। यह विवेचन ईसवीय सन् के बाद प्रारम्भ हुआ, जब उद्योत-कर, वाचस्पति मिश्र तथा उदयन ने इन विषयो पर विस्तृत विवेचन किया। उदयन के प्रयत्न के कारण ही बाद के दार्शनिक ग्रन्थो मे उपासना-सम्बन्धी विषयो को स्थान मिला है। उदयन ने आस्तिकवाद के लिए बहुमूल्य देन दी है। उदयन के पश्चात् न्याय और वैशेषिक ये दोनो दर्शन एक ही दर्शन के रूप मे वर्णन किये गये है। इस समय प्रमाण मीमांसा वाला अंश बहुत अधिक विकसित हुआ। इन दर्शनो का तार्किक-विवेचन इतना पूर्ण हो गया कि अन्य दर्शनो तथा साहित्य-शास्त्र आदि ने भी इस तार्किक-विवेचन की पद्धति को अपनाया।

---

[1] द्वित्वे च पाकजोत्पत्तौ विभागे च विभागजे।
यस्य न स्खलिता बुद्धिस्तं वै वैशेषिकं विदु ॥

वैशेपिको ने **परमाणुवाद** के सिद्धान्त की स्थापना की और नैयायिको ने उसे विकसित किया। इस सिद्धान्त के अनुसार चक्षु से दृष्टिगोचर होने वाले सूक्ष्मतम अणु के ⅙ भाग को परमाणु कहते हैं। ससार की प्रत्येक वस्तुएँ इन परमाणुओ के सम्मिश्रण से ही बनती हैं। ये परमाणु असख्य हैं। प्रत्येक तत्त्व (भूत) के परमाणु विभिन्न होते है और उनका मिश्रण भी विभिन्न प्रकार से होता है। प्रत्येक वस्तु के गुण अपने आधारभूत परमाणओ के गुणो पर ही निर्भर होते हैं। परमाणुओ मे आन्तरिक उष्णता (पाक) होती है, अत उनमे परिवर्तन होता है। वैशेषिक दर्शन का मत है कि जब किसी वस्तु को गर्म किया जाता है तो वह वस्तु विश्लेषण की अवस्था को प्राप्त करके क्रमश परमाणु की अवस्था को प्राप्त होती है। वे ही परमाणु अपने गुणो में अन्तर करके अन्य वस्तु को उत्पन्न करते है। इस दर्शन के अनुसार परमाणु को पोलु कहते है और उष्णता का प्रभाव परमाणु पर होता है। अत इस दर्शन के इस सिद्धान्त को **'पीलुपाकवाद'** कहते हैं। नैयायिको का मत है कि वस्तु को गर्म करने पर समस्त वस्तु विश्लिष्ट नही होती है, अपितु गर्मी का प्रभाव अदश्यरूप से परमाणुओ पर होता है और उनमे परिवर्तन होता है। परमाणुओ पर जो गर्मी का प्रभाव होता है, वह सपूर्ण वस्तु (पिठर) मे दृष्टिगोचर होता है। इस सिद्धान्त के अनुसार गर्मी का प्रभाव परमाणुओ और सपूर्ण वस्तु दोनो पर होता है, अत इस सिद्धान्त को **'पिठरपाकवाद'** कहते है। उत्पन्न हुई वस्तुओ के विषय मे इस दर्शन का मत है कि उनमे नवीन प्रयत्न होता है। अत इस सिद्धान्त को **'आरम्भवाद'** कहते हैं।

वैशेषिकसूत्र, न्यायसूत्रों से प्राचीन हैं। वैशेपिक सूत्र सुव्यवस्थित रूप मे बद्ध नही है। इससे ज्ञात होता है कि विधिपूर्वक सकलन का यह प्रारम्भिक प्रयत्न है। इसकी शली प्राचीन है। इसमे बौद्धधर्म का उल्लेख नही है। अत इसका समय ५०० ई० पू० से पूर्व मानना चाहिए। न्यायसूत्रो मे वैशेपिक सूत्रो मे वर्णित विपय का ही सशोधित रूप में वर्णन है। इसमे सूत्र सुव्यवस्थित रूप मे हैं। इन सूत्रो से ज्ञात होता है कि वैशेपिक सूत्रो पर बौद्धो और जैनियो ने जो आक्रमण किए थे, उनका इसमे उत्तर दिया गया है और

वैशेषिक सूत्रों के मन्तव्यों का समर्थन किया गया है। अतः इन सूत्रों का समय बौद्धधर्म की उत्पत्ति के बाद ४०० ई० पू० के लगभग मानना चाहिए। वैशेषिक सूत्रों के लेखक कणाद हैं। इस दर्शन का प्राचीन नाम 'योग' था। न्यायसूत्रों के लेखक गौतम हैं। इस दर्शन का प्राचीन नाम 'आन्वीक्षिकी' था।

वात्स्यायन ने न्यायसूत्रों पर टीका लिखी है। वात्स्यायन ने न्याय-भाष्य में अपना दूसरा नाम पक्षिलस्वामी दिया है। उसने नागार्जुन के मन्तव्यों का अपने भाष्य में खण्डन किया है और दिङ्नाग (४०० ई० के लगभग) ने वात्स्यायन के मन्तव्यों पर आक्षेप किए हैं। अतः वात्स्यायन का समय २०० ई० के लगभग मानना चाहिए। भारद्वाज उद्योतकर ने न्यायभाष्य की टीका न्यायवार्तिक ग्रन्थ में की है। उसका समय ६ठी शताब्दी ई० है। वाचस्पति-मिश्र ने न्यायवार्तिक की टीका अपने ग्रन्थ न्यायवार्तिकतात्पर्यटीका में की है। उनका समय ९वीं शताब्दी ई० का पूर्वार्द्ध है। उसने ८४१ ई० में न्याय-सूचीनिबन्ध लिखा है। न्यायसूत्रों की अनुक्रमणिका है। उसने इस ग्रन्थ के अन्त में जो समय ८९८ दिया है उसे यह समझा जा सकता है कि यह शक सम्वत् है और इसलिए ९७६ ई० है। इसके अतिरिक्त इसी युग के परवर्ती बौद्ध लेखकों ने उसका उल्लेख किया है।

प्रशस्तपाद ने अपने ग्रन्थ पदार्थधर्मसंग्रह में वैशेषिकसूत्रों का भाष्य (टीका) किया है। इस भाष्य का प्रसिद्ध नाम प्रशस्तपादभाष्य है। यह भाष्य सूत्रों की नियमित व्याख्या नहीं है, अपितु वैशेषिकदर्शन पर यह एक स्वतन्त्र ग्रन्थ है। प्रशस्तपाद का समय ४०० ई० के लगभग माना जाता है। चार प्रमुख विद्वानों ने प्रशस्तपादभाष्य की टीका की है—(१) उदयन (९८४ ई०) ने अपने ग्रन्थ किरणावली में, (२) श्रीधर (९९१ ई०) के न्यायकन्दली ग्रन्थ में, (३) श्रीवत्स (लगभग १०५० ई०) ने लीलावती ग्रन्थ में और (४) व्योमशेखर ने व्योमवती ग्रन्थ में। लीलावती ग्रन्थ आज-कल अप्राप्य है। कुछ विद्वानों का मत है कि पदार्थधर्मसंग्रह की टीकाओं

मे **आत्रेयतन्त्र** भी एक टीका है जो अब विलुप्त हो चुकी है और जिसके लेखक का कोई पता नही है। **रावणभाष्य, भारद्वाजवृत्ति** और **रावण** कृत **कतन्दी** के विषय मे कोई सूचना नही मिलती। इनमे से प्रथम दो ग्रन्थ तो सूत्रो पर लिखे गए भाष्य हैं और अन्तिम ग्रन्थ वैशेषिक दर्शन का एक ग्रन्थ है।

उदयन सबसे प्रथम लेखक है, जिसने न्याय और वैशेपिक दोनो दर्शनो पर लिखा है। उसने **किरणावली** के अतिरिक्त ये ग्रन्थ और लिखे हैं—(१) **वाचस्पति मिश्र** के ग्रन्थ **न्यायवार्तिकतात्पर्यटीका** की टीका **तात्पर्यपरिशुद्धि**। (२) **न्यायकुसमाञ्जलि**। यह आस्तिकवाद पर सर्वोत्तम ग्रन्थ है। (३) **आत्मतत्त्वविवेक**। इसका दूसरा नाम **बौद्धधिक्कार** भी है। इसमे आत्मा के अस्तित्व का वर्णन किया गया है। (४) **न्यायपरिशिष्ट**। इसका दूसरा नाम **बोधसिद्धि** है। इसमे तर्क की पद्धति दी गई है। (५) लक्षणावली। इसमे न्याय और वैशेषिक दर्शनो के विभिन्न लक्षणो का सग्रह है। लक्षणावली ग्रन्थ ६८४ ई० मे लिखा गया था। उसने न्याय और वैशेषिक दर्शनो को तथा विशेषतया आस्तिकवाद को जो अनुपम देन दी है, उसके कारण उसको न्यायाचार्य की उपाधि प्राप्त हुई थी।

कश्मीर के **जयन्तभट्ट** ने ६१० ई० मे **न्यायमजरी** नामक ग्रन्थ लिखा है। जयन्त का दूसरा नाम **वृत्तिकार** भी है। न्यायमजरी न्यायदर्शन पर एक स्वतन्त्र ग्रन्थ है, साथ ही इसमे बहुत से न्यायसूत्रो की व्याख्या भी है। उसकी **न्यायकलिका** मे विभागो की गणना है। १०वीं शताब्दी ई० में ही **भासर्वज्ञ** ने न्यायदर्शन पर एक स्वतन्त्र ग्रन्थ **न्यायसार** लिखा है। न्यायदर्शन मे चार प्रमाण माने गए हैं, परन्तु इसको यह विशेषता है कि इसमे केवल तीन प्रमाण (प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द) माने गए हैं और उपमान को प्रमाण नही माना है। इस ग्रन्थ पर अनेक टीकाएँ लिखो गयी। उनमे **न्यायभूषण** एक सुप्रसिद्ध टीका है। कुछ विद्वानो के अनुसार **भासर्वज्ञ** इस टीका का लेखक स्वय है। कुछ लोग इसके टीकाकार केवल **भूषणकार** का उल्लेख करते है। तो भी यह टीका अब लप्त हो चुकी है। **त्रिलोचन** जयन्तभट्ट का समकालीन था। वह वाचस्पति

मिश्र का गुरु था। उनने न्यायमजरी नामक ग्रन्थ लिखा जो अब विलुप्त हो चुका है।

शिवादित्य (११०० ई०) ने तीन ग्रन्थ लिखे है। उनके नाम है—सप्तपदार्थी, लक्षण-माला और हेतुखण्डन। प्रसिद्धि है कि वह तर्क की महाविद्या विधि का संस्थापक अथवा प्रवर्धक था। उसी समय श्रीवल्लभ ने वैशेषिक दर्शन पर न्यायलीलावती नामक एक ग्रन्थ की रचना की। १२वी शताब्दी के प्रारम्भ मे वरदराज ने अपनी ही टीका सारसग्रह के सहित तार्किकरक्षा नामक ग्रन्थ लिखा। लगभग उसी समय शशधर ने न्यायसिद्धान्तदीप नामक ग्रन्थ मे न्यायशास्त्र के प्रमुख विषयो का वर्णन किया। उस समय और भी बहुत से ग्रन्थ लिखे गए और जो अब विलुप्त हो गए है तथा जिनके नाम का पता उदयन, कमलशील, वादिदेवसूरि तथा अन्य लेखको की रचनाओ के उल्लेख से चलता है। इन विद्वानो ने कुछ लेखको का उल्लेख और भी किया है। उनके नाम ये हैं—शकरस्वामी, आत्रेयभाष्यकार, रत्नकोशकार, सानातनि, श्रीवत्स, प्रशान्तमति, अविघाकरण, विष्णुभट्ट, विश्वरूप, हरिहर, भाविविक्त तथा वादिवागीश्वर। अन्तिम लेखक (वादिवागीश्वर) के ग्रन्थ का नाम मानमनोहर दिया गया है। इनमे से कुछ लेखक सम्भवत १३वी शताब्दी के प्रारम्भ मे थे।

गंगेश (१३०० ई०) ने तत्वचिन्तामणि नामक एक स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखा है। उस समय तक न्याय और वैशेषिक दर्शन के ग्रन्थो मे प्रमाणो की सहायता से प्रमेयो का ही विवेचन होता था। गगेश ने उस विषय मे एक नवीन धारा प्रचलित की। इसमे न्यायदर्शन की पद्धति को अपनाकर वैशेषिक दर्शन के सिद्धान्तो की विस्तृत समीक्षा और परीक्षा की गई है। इसका विवेचन प्रमाणो पर निर्भर है। तत्वचिन्तामणि चार अध्यायो मे विभक्त है। प्रत्येक अध्याय मे एक प्रमाण का विवेचन है। तत्वचिन्तामणि पर बहुत-सी टीकाएं और उपटीकाएं है। गगेश के पुत्र वर्धमान (लगभग १३०० ई०) ने तत्वचिन्तामणि की टीका प्रकाश और उदयन के ग्रन्थो की टीका न्यायलीलावती लिखी है। जयदेव (लगभग १२५० ई०) ने तत्वचिन्तामणि की टीका तत्वचिन्तामण्यालोक लिखी है। अनुमान के विषय मे विशेष व्युत्पत्ति के कारण इनको पक्षधर

मिश्र की उपाधि दी गई थी। वह एक नाट्यकार और साहित्यशास्त्री भी था। **जयदेव** के शिष्य **रुचिदत्त** (लगभग १२५० ई०) ने वर्धमान के **तत्त्वचिन्तामणिप्रकाश** पर **तत्त्वचिन्तामणिप्रकाशमकरन्द** नामक टीका लिखी है। १५वी शताब्दी का सर्वश्रेष्ठ नैयायिक **वासुदेवसार्वभौम** बगाल के नवद्वीप मे न्याय की एक शाखा नव्यन्याय का नेता था। उसके चार सुविख्यात शिष्य थे—(१) **रघुनाथशिरोमणि**। उसका प्रसिद्ध नाम **तार्किकशिरोमणि** है। (२) **रघुनन्दन**, वह बगाल का एक सुप्रसिद्ध वकील था। (३) **कृष्णानन्द**, वह एक तान्त्रिक था। (४) **चैतन्य**। वह वैष्णव धर्म के सुप्रसिद्ध प्रचारक थे। **रघुनाथशिरोमणि** (लगभग १५०० ई०) ने अपने पूर्ववर्ती लेखको के ग्रन्थो की टीका **दीधिति** नाम से को है, उसने जिन ग्रन्थो की टीका को है, उसमे **तत्त्वचिन्तामणि** भी है। **रघुनाथशिरोमणि** के शिष्य **मथुरानाथ** (लगभग १५२० ई०) ने **गगेश** के ग्रन्थो तथा **दीधिति** टीका की टीका की है। **जगदीश, गदाधर** और **अन्नभट्ट** ये तीन १७वी शताब्दी ई० के प्रमुख नैयायिक थे। **जगदीश** (लगभग १६३५ ई०) ने **दीधिति** की टोका की है। **गदाधर** को **दीधिति** और **तत्त्वचिन्तामणि** पर टीकाएँ न्याय और वैशेषिक दर्शन पर अति प्रसिद्ध ग्रन्थ हो गए है। **अन्नभट्ट** ने **जयदेव** के **तत्त्वचिन्तामण्यालोक** की टीका **सिद्धाञ्जन** नाम से की है और दीधिति की टीका **सुबुद्धिमनोहरा** नाम से की है।

इस काल मे तत्त्वचिन्तामणि पर जो टीकाएँ लिखी गईं, उनके अतिरिक्त कुछ स्वतन्त्र ग्रन्थ भी लिखे गए। **केशवमिश्र** (१३०० ई०) ने **तर्कभाषा** ग्रन्थ लिखा। **रघुनाथशिरोमणि** (लगभग १५०० ई०) ने वैशेषिक दर्शन के सिद्धान्तो पर **पदार्थखण्डन** नामक ग्रन्थ लिखा है। **जानकीनाथ** ने १६वी शताब्दी मे न्याय और वैशेषिक दर्शन के सिद्धान्तो पर **न्यायसिद्धान्तमजरी** नामक ग्रन्थ लिखा है। १७वी शताब्दी मे कई लेखक हुए है, जिन्होने न्याय और वैशेषिक दर्शन पर मौलिक ग्रन्थ लिखे हैं। वैशेषिक सूत्रो पर **उपस्कारभाष्य** के लेखक **शकरमिश्र** ने वैशेषिक दर्शन के सिद्धान्तो पर **कणादरहस्य** ग्रन्थ लिखा है। **विश्वनाथ न्यायपचानन** ने १६३४ ई० मे न्याय और वैशेषिक दर्शन पर पद्य

मे कारिकावलि नामक ग्रन्थ लिखा है। इसका दूसरा नाम भाषापरिच्छेद है। विश्वनाथ ने ही कारिकावलि की टीका सिद्धान्तमुक्तावलि नाम से की है। उसने न्यायसूत्रो पर भी टीका की है। दीधिति के टीकाकार जगदीश (लगभग १६३५ ई०) ने तीन और ग्रन्थ लिखे है—(१) अर्थविज्ञान विषय पर शब्द-शक्तिप्रकाशिका, (२) न्यायवैशेषिक के सिद्धान्तो पर तर्कामृत और (३) प्रशस्तपादभाष्य की टीका भाष्यसूक्ति। लगभग इसी समय लौगाक्षि भास्कर ने तर्ककौमुदी नामक एक लघु ग्रन्थ लिखा है। गदाधर ने उदयन के आत्मतत्त्व-विवेक की टीका की है और अर्थविज्ञान विषय पर दो स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखे है—व्युत्पत्तिवाद और शक्तिवाद। अन्नभट्ट (लगभग १७०० ई०) ने तर्कसंग्रह नामक पुस्तक लिखी है और उसकी टीका तर्कसंग्रहदीपिका नाम से की है। न्याय वैशेषिक दर्शन के प्रारम्भिक छात्रो के लिए यह पुस्तक अत्यन्त प्रसिद्ध हो गई है।

सांख्य-दर्शन

इस दर्शन के सूक्ष्म तत्त्व वैदिक काल मे भी उपलब्ध होते है। भगवद्-गीता जैसे प्राचीन ग्रन्थो मे सांख्य शब्द का 'ज्ञान' अर्थ मे प्रयोग उपलब्ध होता है। इस दर्शन के संस्थापक कपिल ऋषि माने जाते है।

इस दर्शन के अनुसार व्यक्त (प्रकट), अव्यक्त (अप्रकट) और ज्ञ (ज्ञाता) के ज्ञान से सांसारिक दुःखो की समाप्ति होती है। इस दर्शन के अनुसार प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द ये तीन प्रमाण है। यह दर्शन वैदिक कर्मकाण्ड को विशेष महत्त्व नही देता है। इस संसार मे प्रकृति और पुरुष दोनो स्वतन्त्र तथा अविनाशी सत्ताएँ है। प्रकृति मे तीन गुण है—सत्त्व, रजस् और तमस्। ये तीनो साम्यावस्था मे रहते है। जब इन त्रिगुण की साम्यावस्था मे अन्तर पड़ता है, तब सृष्टि का प्रारम्भ होता है। प्रकृति से महत् या बुद्धि उत्पन्न होती है। महत् से अहंकार और अहंकार से ५ ज्ञानेन्द्रियां ५ कर्मेन्द्रियां मन और ५ तन्मात्राएँ (५ भूतो के सूक्ष्म रूप) उत्पन्न होती है। ५ तन्मात्राओ से ५ स्थूल (५ तत्त्वो) की उत्पत्ति होती है। [illegible] प्रकार

मे आधा उस तत्त्व का अश रहता है और आधे मे शेप चार तत्त्वो का अश समानरूप से रहता है। पाँचो तत्त्वो के इस निर्माण की विधि को **पचीकरण** कहते हैं। वस्तु का ज्ञान अहकार और मन की सहायता से वुद्धि मे होता है। प्रकृति के तीन गुण सत्त्व, रजस् और तमस् के प्रभाव मे वुद्धि, अहकार और मन के विभिन्न कार्यों का निर्णय होता है। सृष्टि के प्रारम्भ के समय प्रकृति के एक अश मे ही परिवर्तन होता है। **प्रकृति** को **अव्यक्त** कहते है, और प्रकृति के २३ विकारो (महत्, अहकार आदि) को **व्यक्त** कहते हैं। **पुरुष** (आत्मा) को **ज्ञ** ज्ञाता कहते हैं। आत्मा का प्रतिविम्व वुद्धि मे पडता है। वुद्धि दर्पण के तुल्य कार्य करती है। बुद्धि के कार्यों को भ्रमवश आत्मा का कार्य समझ लिया जाता है। अतएव आत्मा दु ख भोगता है। व्यक्त, अव्यक्त और ज्ञ के विशुद्ध ज्ञान से आत्मा अपनी स्वतन्त्र और निर्लिप्त स्थिति को प्राप्त होती है। आत्मा न वद्ध होती है और न मुक्त होती है। वह सदा स्वतन्त्र है। साख्यदर्शन की विशेष त्रुटि है कि इस वात का कोई कारण नही बताया गया है कि त्रिगुणो मे वैषम्यावस्था क्यो आती है ? पुरुष (आत्मा) और प्रकृति सदा विद्यमान रहते है। यह स्पष्ट नही किया गया है कि सृष्टि किस प्रकार प्रारम्भ होती है।

कार्य के विषय मे इस दर्शन का मत है कि कार्य कारण मे सदा अव्यक्त रूप मे विद्यमान रहता है। कारण कार्य के रूप मे प्रकट होता है। इन दोनो मन्तव्यो मे से प्रथम को **सत्कार्यवाद** कहते हैं और दूसरे को **परिणामवाद**।

यह दर्शन वेदो की प्रामाणिकता को विशेष महत्त्व नही देता है। महाभारत मे जो साख्यदर्शन के सिद्धान्तो का वर्णन है, उससे ज्ञात होता है कि यह दर्शन प्रारम्भ मे आस्तिक दर्शन था। सभवत वौद्ध धर्म के प्रभाव के कारण यह दर्शन नास्तिकवाद की ओर झुका है, जैसा कि **ईश्वरकृष्ण** ने इसका वर्णन किया है। निराशावादी दृष्टिकोण, ईश्वर के अस्तित्व का निषेध, वेदो की प्रामाणिकता का खण्डन, ये वातें वौद्ध धर्म और साख्य मे समान है। यह भी सम्भव है कि आस्तिक साख्यदर्शन के प्रभाव के कारण वौद्धधर्म का विकास हुआ।

इस दर्शन के संस्थापक कपिल मुनि ने इसके सिद्धान्त आसुरि को पढ़ाये। आसुरि का समय ६०० ई० पू० से पूर्व माना जाता है। आसुरि ने यह दर्शन पंचशिख को पढ़ाया। तत्पश्चात् वार्षगण्य ने इस दर्शन को विकसित किया। उसने षष्ठितन्त्र ग्रन्थ लिखा था, वह नष्ट हो गया है। इस दर्शन का सबसे प्राचीन मौलिक ग्रन्थ तत्त्वसमास माना जाता है। उसका लेखक अज्ञात है। ईश्वरकृष्ण (लगभग २५० ई०) ने अपने पूर्ववर्ती लेखकों के मन्तव्यों को सांख्यकारिका के ७२ स्मरणीय श्लोकों में निबद्ध किया है। वह और विन्ध्यावास एक ही व्यक्ति थे, यह अभी तक विवादास्पद ही है। बाद के लेखक इन कारिकाओं को प्रामाणिक मानते हैं। सांख्यकारिका की ये टीकाएँ हुई हैं—(१) माठरवृत्ति। इसका लेखक अज्ञात है। (२) गौडपाद-भाष्य। गौडपाद का परिचय अज्ञात है। (३) वाचस्पति मिश्र (लगभग ८५० ई०) कृत सांख्यतत्त्वकौमुदी। इन कारिकाओं के अतिरिक्त कपिल मुनि के लिखे सांख्यसूत्र हैं। १३०० ई० से पूर्व वे प्रामाणिक नहीं माने जाते थे, इससे पूर्व सांख्यसूत्र क्रमबद्ध रूप में उपलब्ध नहीं थे। इन सूत्रों का दूसरा नाम सांख्यप्रवचनसूत्र था। इनकी ये टीकाएँ हुई हैं—(१) १५वीं शताब्दी में अनिरुद्ध-कृत सांख्यसूत्रवृत्ति टीका, (२) विज्ञानभिक्षु (लगभग १५५० ई०) कृत सांख्य-प्रवचनभाष्य। विज्ञानभिक्षु ने सांख्यदर्शन के सिद्धान्तों पर सांख्यसार नामक ग्रन्थ भी लिखा है।

योग-दर्शन

योग-दर्शन ने सांख्य सिद्धान्तों को अपनाया है और उनका संशोधन भी किया है। योग-दर्शन का मत है कि केवल व्यक्त, अव्यक्त और ज्ञ के ज्ञान से ही मोक्ष नहीं हो सकता है, अतः इस दर्शन ने क्रियात्मक जीवन के लिए सांख्यदर्शन के सिद्धान्तों पर आश्रित नियम बनाए हैं। प्रकृति और प्रकृति-विकारों के प्रभाव से पूर्णतया मुक्त होने के लिए चित्त की वृत्तियों (मन के कार्यों) पर पूर्ण नियन्त्रण होना अत्यावश्यक है। इसको ही पारिभाषिक रूप में 'योग' कहते हैं।[१] इस दर्शन में योग के अंगों का निम्न

१ योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः। योगसूत्र १-२

वर्णन दिया गया है । योग का लक्ष्य है आत्मा को कैवल्य-प्राप्ति । मन, बुद्धि और अहकार के कार्यो पर नियन्त्रण करने का विचार भी कठिन है और उसका अभ्यास करना कठिन है ।

जिन कठिनाइयो पर ध्यान करने वाला व्यक्ति नियन्त्रण नही कर सकता उन्ही के कारण ध्यान की विधि मे बाधा उपस्थित हो सकती है । अत ईश्वर-चिन्तन के लिए एक क्रमिक साधन बताया गया है इन बाधाओ को दूर करना । ईश्वर सर्वज्ञ है । जो उसकी सुरक्षा की खोज करता है उसकी वह सहायता करता है । वह ससार का स्रष्टा नही है । **योगसूत्र** के टीकाकारो के अनुसार द्रव्य (वस्तुएँ) ईश्वर की इच्छा पर विकसित होते हैं । यह **योगसूत्रभाष्य** के रचयिता **व्यास** का कथन है । बुद्धि के व्यापारो को नियत्रित करने के लिए आठ निर्धारित अवस्थाओ को पूर्ण करना आवश्यक है । यह **योगसूत्र** (२–२९) का मत है । नियत्रण की विधियाँ योगाभ्यासो के औचित्यविषयक विभिन्न स्तरो की परीक्षा करती हैं । बुद्धि, अहकार और मनस् पर पूर्ण नियन्त्रण करके ही कोई मनुष्य जो कुछ चाहे कर सकता है और पा सकता है । इस दर्शन को **सेश्वरसाख्य** कहा जाता है क्योकि इसमे ईश्वर की सत्ता स्वीकार की गई है ।

इस दर्शन का सर्वप्रथम ग्रन्थ **महाभाष्य** के लेखक **पतजलि** (१५० ई० पू०) का है । **योगसूत्रों और महाभाष्य** के लेखक एक ही हैं । यह बात परम्परा से सिद्ध होती है तथा **योगसूत्र** मे **स्फोट** सिद्धान्त का उल्लेख भी इसमे सहायक है[1] । ये सूत्र, जो सख्या मे १९३ है, चार भागो में विभक्त हैं । उनके नाम हैं—**समाधि, साधन, विभूति** और **कैवल्य** । योगसूत्रो की ३ टीकाएं हैं—(१) चतुर्थ शताब्दी ई० के **व्यास** की टीका **योगसूत्रभाष्य** । इसकी टीका **वाचस्पति मिश्र** (८५० ई०) ने **तत्त्ववैशारदी** मे की । (२) धारा के राजा **भोज** (१००५-१०५४) ने **राजमार्तण्ड** नाम की टीका की है और (३) **विज्ञानभिक्षु** (१५५० ई०) ने

---

१ योगसत्र ३—१७ ।

पातजलिभाष्यवार्तिक नामक टीका की है। विज्ञानभिक्षु ने योगदर्शन के आवश्यक सिद्धान्तो पर योगसारसंग्रह नामक ग्रन्थ भी लिखा है।

योग-सम्बन्धी अभ्यासो को दो भागो मे बांटा गया है--राजयोग और हठयोग। राजयोग मे मन की एकाग्रता का वर्णन होता है और हठयोग मे शारीरिक शुद्धि के लिए उपयोगी विभिन्न अभ्यासो का वर्णन होता है, जिनके द्वारा शरीर शुद्ध होकर राजयोग के योग्य होता है। हठयोग का वर्णन स्वात्माराम योगीन्द्र की हठयोगप्रदीपिका पुस्तक मे है। शरीर के विभिन्न अवयवो पर पूर्ण सयम प्राप्त करने के लिए योगासनो को बहुत महत्त्व दिया गया है। हठयोग के अनुसार हठयोग के अभ्यास से भौतिक सुखो की प्राप्ति होती है। हठयोग के अन्य ग्रन्थ है—गोरक्षशतक, घेरण्डसहिता आदि।

सांख्य और योगदर्शन की विश्व-साहित्य को मुख्य देन ये है—पचीकरण, सत्कार्यवाद और परिणामवाद के सिद्धान्त, सत्व, रजस् और तमस् इन तीन गुणो का महत्त्व तथा बुद्धि और आत्मा को प्रभावित करने मे इनका स्थान, प्रकृति और पुरुष (आत्मा) को स्वतन्त्र सत्ता मानते हुए उनका विशेष विवेचन, व्यावहारिक जीवन के लिए योगांगो की उपयोगिता का विशेषरूप से प्रतिपादन। योगदर्शन वेदो की प्रामाणिकता को स्वीकार करता है। इस दर्शन के अनुसार ईश्वर जगत् का हितैषी और पथप्रदर्शक है। इसमे इस बात का समाधान नही किया गया है कि वस्तुत. प्रकृति मे सृष्टि कैसे होती है। जीवन का लक्ष्य आत्मज्ञान और कैवल्यप्राप्ति है, परन्तु इसका ईश्वर से साक्षात् कोई सम्बन्ध नहीं है।

अध्याय ३४

मीमांसा-दर्शन

मीमासा दर्शन का सम्बन्ध वेदो की व्याख्या से है। वैदिक साहित्य दो भागो मे विभक्त है—**कर्मकाण्ड** और **ज्ञानकाण्ड**। **कर्मकाण्ड** मे **सहिता, ब्राह्मण** और **आरण्यक** ग्रन्थ आते हैं। **ज्ञानकाण्ड** मे **उपनिषद्** ग्रन्थ आते हैं। **मीमासा**-दर्शन का सम्बन्ध वेदो के **कर्मकाण्ड** भाग से ही है, अतएव उसको **पूर्वमीमासा** भी कहते हैं। **वेदान्तदर्शन ज्ञानकाण्ड** शब्द पर निर्भर है, अत उसको **उत्तरमीमासा** कहते हैं। **उत्तरमीमासा** मे उत्तर शब्द परकालीन वैदिक साहित्य अर्थात् उपनिषदो का निर्देश करता है।

पूर्वमीमासा के आधार **ब्राह्मण** ग्रन्थ है। इसमें वैदिक मत्रो की व्याख्या के लिए नियम तथा कतिपय न्याय (सिद्धान्त) बताए गए हैं। ये नियम बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुए हैं और इनका उपयोग वेदान्तदर्शन मे भी हुआ है। लौकिक कठिन सन्दर्भों की व्याख्या के लिए भी इन नियमो का उपयोग किया जाता है। यह दर्शन विचारात्मक होने की अपेक्षा अधिक क्रियात्मक है। इस दर्शन मे दार्शनिकता की अपेक्षा धार्मिक विचार अधिक प्रवल है। अन्य दर्शनो मे वह प्रकार बताया गया है कि जीव किस प्रकार सदा के लिए मुक्त हो सकता है, परन्तु यह दर्शन बताता है कि मनुष्य-जीवन मे उसके क्या अधिकार और कर्तव्य हैं।

यह दर्शन वेदो को नित्य तथा स्वत प्रमाण मानता है। इसके अनुसार वेद किसी व्यक्तिविशेष की रचना नही है। वे परमात्मा की भी कृति नही हैं। वे नित्य हैं। इस दर्शन के प्रमुख आचार्यों ने, विशेषरूप से प्रारम्भिक समय मे, वेदो की प्रामाणिकता पर विशेष रूप से बल दिया है। उन्होने यह कार्य वैदिक धर्म को बौद्धो और जैनो के आक्रमण से बचाने के लिए किया था। इस काल मे इस दर्शन की प्रमुख विशेषताएँ

ये रही--ससार अपरिवर्त्तनशील है, इस ससार से पृथक् स्वर्ग कोई नहीं है, देवता शरीर रहित होते हैं इत्यादि। बाद मे इस दर्शन मे आस्तिकवाद को विशेष आश्रय दिया गया। वेदोक्त कर्मकाण्ड को करना कर्तव्य है। ये कर्म तीन प्रकार के हैं---नित्य (दैनिक), नैमित्तिक (विशेष कारण से करने योग्य) और काम्य (ऐच्छिक) कर्मकाण्ड की विधि का आत्मा पर प्रभाव पडता है। यज्ञादि विधिपूर्वक करने और न करने का तदनुसार ही आत्मा पर पृथक् फल होता है। नैत्यिक कर्मो को करना अनिवार्य है, अन्यथा पाप चढता है।। नैतिक कर्मो को करने से आत्मा पवित्र होती है। नैमित्तिक और काम्य कर्म सामयिक आवश्यकता तथा कर्ता की इच्छा निर्भर है। तदनुसार ही उन्हें करना चाहिए।

मीमासा-दर्शन की दो प्रमुख शाखाएँ हैं—भाट्ट शाखा और प्राभाकर शाखा। भाट्ट शाखा के आचार्य प्रमाणो की सख्या ६ मानते है। उनके मतानुसार ६ प्रमाण ये है--प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति और अनुपलब्धि। प्राभाकर शाखा के आचार्य प्रमाणो की सख्या ५ मानते है। वे उपर्युक्त छ प्रमाणो मे से अनुपलब्धि को प्रमाण नही मानते हैं।

पूर्व मीमासा-सूत्रों के रचयिता जैमिनि ऋषि हैं। इन सूत्रो की सख्या २७४४ है। मीमासा-दर्शन १२ अध्यायो मे विभक्त है। इस दर्शन का समय चतुर्थ शताब्दी ई० पू० समझना चाहिए। इनमे लगभग एक सहस्र प्रकरण हैं। प्रत्येक मे व्याख्या के लिए विभिन्न सिद्धात (न्याय) दिए गये है। इन न्यायो पर ही व्याख्या के उत्तम और प्रामाणिक सिद्धान्त निर्भर है। इन सूत्रो पर उपवर्ष ने वृत्ति (टीका) लिखी है, वह नष्ट हो गई है। उपवर्ष का दूसरा नाम बोधायन था। शबरस्वामी (लगभग २०० ई०) ने मीमासासूत्रो की टीका मीमासासूत्रभाष्य नाम से की है। शबरस्वामी ने उल्लेख किया है कि उनसे पूर्व मीमासा-सूत्रो का भाष्य उपवर्ष, भर्तृमित्र, भवदास और हरि आदि ने किया था। उपवर्ष और शबरस्वामी आदि ने ही मीमासा-दर्शन दार्शनिक विषयो पर विवेचन का प्रारम्भ किया था।

शबरस्वामी के भाष्य की टीका **कुमारिल भट्ट** (६००-६६० ई०) और **प्रभाकर** (६१०-६६० ई०) ने की है। **प्रभाकर कुमारिल भट्ट** का शिष्य माना जाता है। उसने मीमासा-दर्शन की एक नवीन शाखा स्थापित की जिसका नाम उसके नाम के आधार पर **प्राभाकर शाखा** पडा। **कुमारिल भट्ट** से उसका जिन बातो पर मतभेद था, उनका इस शाखा मे निरूपण किया गया है। **प्रभाकर** को 'गुरु' की उपाधि प्राप्ति हुई थी, क्योकि वेदो की व्याख्या मे उसकी प्रतिभा असाधारण थी। अतएव **कुमारिल** की शाखा के मतो को **भाट्टमत** कहा गया और प्रभाकर की शाखा के मतो को **गुरुमत**। कर्मों के द्वारा उत्पन्न होने वाले सस्कारो के कारण मनुष्य सासारिक बन्धन मे आता है। दोनो शाखाओ का मत है कि जब आत्मा मे कोई सस्कार नही रहता है, तब वह मुक्त हो जाता है। भाट्टमत के अनुसार धर्म और अधर्म का अर्थ है—कर्मों के अच्छे और बुरे परिणाम। **प्रभाकर** मत के अनुसार धर्म और अधर्म का अर्थ है—अच्छा और बुरा कार्य। इन दोनो शाखाओ के अतिरिक्त एक और शाखा **मुरारि** के नाम से प्रचलित हुई। **मुरारि** ने **कुमारिल** की ही पद्धति का अनुसरण करते हुए **शबरस्वामी** के भाष्य की टीका की है। कुछ स्थानो पर उसका **कुमारिल** से मतभेद है।

कुमारिल ने **शाबर-भाष्य** की जो टीका की है, वह ३ भागो मे है—(१) **श्लोकवार्तिक**। यह मीमासा-दर्शन के प्रथम अध्याय के प्रथम पाद की श्लोकबद्ध टीका है। (२) तन्त्रवार्तिक। यह गद्य और पद्य मे है। यह मीमासा-दर्शन के प्रथम अध्याय के द्वितीय पाद से प्रारम्भ होकर तृतीय अध्याय के अन्त तक की टीका है। (३) **टुप्टीका**। वह शेष भाग की टीका है। परकालीन लेखको ने जो उद्धरण दिए हैं, उनसे ज्ञात होता है कि **कुमारिल भट्ट** ने **मीमासासूत्रभाष्य** की एक टीका **बृहट्टीका** नाम से की थी। **शाबर-भाष्य** पर **प्रभाकर** की टीका दो भागो मे है—(१) **बृहती**। इसका दूसरा नाम **निबन्ध** है। (२) **लघ्वी**। इसका दूसरा नाम **विवरण** है। **मुरारि मिश्र** (लगभग १२०० ई०) ने **शाबर-भाष्य** पर जो

जो टीका की है, उसका नाम है त्रिपादनीतिनयन । उसका एक स्वतन्त्र ग्रन्थ अगत्वनिरुक्ति है ।

मण्डनमिश्र (६१५-६९५ ई०) कुमारिल भट्ट का समकालीन था । वह एक सुविख्यात मीमासक और वेदान्ती था । उसके परिचय के विषय में कई सन्देहास्पद विवरण उपलब्ध होते हैं । भट्ट उम्वेक, विश्वरूप और सुरेश्वर उसी के नाम माने जाते हैं और उसको शंकराचार्य का सम्बन्धी बताया जाता है । उसने मीमासा-दर्शन पर तीन ग्रन्थ लिखे हैं—विधिविवेक, भावनाविवेक और मीमासानुक्रमणिका । न्याय, सांख्य और योगदर्शन पर विभिन्न ग्रन्थो के रचयिता वाचस्पति मिश्र ने विधिविवेक की टीका न्यायकणिका लिखी है । मीमासा-दर्शन से सबद्ध प्रश्नों पर विचार करते समय वाचस्पति मिश्र ने मण्डन मिश्र के मन्तव्यो का अनुसरण किया है ।

कुमारिल के श्लोकवार्तिक की ये तीन टीकाएँ हुई हैं—(१) भट्ट उम्वेक (६४०-७२५ ई०) कृत तात्पर्यदीपिका (२) सुचरित मिश्र (१०००-११०० ई०) कृत काशिका और (३) पार्थसारथि मिश्र (१०५०-११२० ई०) कृत न्यायरत्नाकर । कुछ विद्वान् भवभूति और उम्वेक को एक ही व्यक्ति मानते हैं । अन्य विद्वान् इस विचार से सहमत नहीं हैं । तन्त्रवार्तिक की ये तीन टीकाएँ हुई हैं—(१) सोमेश्वर (लगभग १२०० ई०) कृत न्यायसुधा । इस टीका का दूसरा नाम है राणक । (२) नारायणीय के लेखक नारायणभट्ट (लगभग १६०० ई०) कृत निबन्धन और (३) अन्नभट्ट (लगभग १७०० ई०) कृत सुबोधनी । अन्नंभट्ट ने न्यायसुधा की टीका राणकोजीवनी नाम से की है टुप्टीका की दो टीकाएँ हुई हैं—(१) पार्थसारथि मिश्र (१०५०-११२० ई०) कृत तन्त्ररत्न और (२) वेंकटमखिन् कृत वार्तिकाभरण । यह गोविन्द दीक्षित (लगभग १६०० ई०) का पुत्र था । उसका दूसरा नाम वेंकट दीक्षित था ।

वाचस्पति मिश्र (लगभग ८५० ई०) ने एक स्वतन्त्र ग्रन्थ तत्त्वबिन्दु लिखकर मीमांसा-दर्शन की बहुत बड़ी सेवा की है । पार्थसारथि मिश्र (१०५०-११२० ई०) ने कुमारिल के श्लोकवार्तिक और टुप्टीका पर टीका लिखने

के अतिरिक्त मीमासा-दर्शन पर सर्वाङ्गपूर्ण तथा व्यापक एक स्वतन्त्र ग्रन्थ **शास्त्रदीपिका** लिखा है। इसमे उसने कुमारिल के मत का अनुसरण किया है। इसके अतिरिक्त उसने एक वहुत उपयोगी ग्रन्थ **न्यायरत्नमाला** लिखा है। इसमे उसने मीमासा-दर्शन के विशेष महत्त्वपूर्ण प्रश्नो पर भाट्टशाखा और प्राभाकर शाखा मे जो मतभेद हैं, उनका स्पष्टीकरण किया है। शास्त्र-दीपिका पर ये पाँच टीकाएँ लिखी गई हैं—(१) सोमनाथकृत **मयूखमालिका**, (२) अप्पयदीक्षित (लगभग १६०० ई०) कृत **मयूखावली**, (३) शकरभट्ट (लगभग १६०० ई०) कृत **प्रकाश**, (४) निर्णयसिंधु के लेखक कमलाकर भट्ट (लगभग १६१२ ई०) कृत **आलोक** और (५) राजचूडामणि दीक्षित (१६२० ई०) कृत **कर्पूरवार्तिका**। रामानुजाचार्य (लगभग १७५० ई०) ने न्यायरत्नमाला की टीका **नायकरत्न** नाम से की है। न्यायसुधा के लेखक सोमेश्वर (लगभग १२०० ई०) ने एक स्वतन्त्र ग्रन्थ **तन्त्रसार** लिखा है।

प्रभाकर के ग्रन्थो पर टीका करनेवाला सर्वप्रथम व्यक्ति शालिकनाथ (६५०-७३० ई०) है। उसने चार ग्रन्थ लिखे हैं—(१) प्रभाकर की 'निवन्ध' टीका की टीका **ऋजुविमलपचिका** और (२) **दीपशिखापचिका**। यह सभवत प्रभाकर की विवरण टीका की टीका है। (३) शवरस्वामी के भाष्य को टीका **मीमासासूत्रभाष्यपरिशिष्ट** और (४) **प्रकरणपचिका**। यह मीमासा-दर्शन की प्राभाकर शाखा की प्रसिद्ध पुस्तिका है। शवरस्वामी के भाष्य पर क्षीरसमुद्रवासि मिश्र ने **भाष्यदीप** नामक टीका की है। वह सभवतः प्राभाकर मत का अनुयायी था। भवनाथ (१०५०-११५० ई०) ने अपने ग्रन्थ **नयविवेक** मे प्रभाकर के मतानुसार मीमासा-दर्शन के विभिन्न अधिकरणो की व्याख्या की है।

विजयनगर के सायण के अग्रज माधव (१२९७-१३८६ ई०) ने पद्यवद्ध **जैमिनीन्यायमाला** ग्रन्थ लिखा है। उसने स्वय इसकी टीका गद्य में की है। इसमे मीमासा-दर्शन के विषयो का स्पष्टीकरण है। अप्पय-दीक्षित (लगभग १६०० ई०) ने ये ग्रन्थ लिखे हैं—(१) **विधिरसायन**। उसने स्वय इसकी टीका **सुखोपजीवनी** लिखी है। (२) **चित्रपट**। (३)

तन्त्र-सिद्धान्तदीपिका। यह मीमासा-सूत्रो पर एक अपूर्ण टीका है। (४) उपक्रमपराक्रम और (५) वादनक्षत्रमाला आदि। भट्टोजिदीक्षित (लगभग १६३० ई०) ने तन्त्रसिद्धान्त ग्रन्थ लिखा है। इसमे उसने मीमासा के सिद्धान्तो का विवेचन किया है। इस ग्रन्थ मे उसने अप्पयदीक्षित को अपना गुरु बताया है। राजचूडामणि दीक्षित (लगभग १६२० ई०) ने अपने ग्रन्थ तन्त्रशिखामणि मे मीमासा-सूत्रो की व्याख्या की है। उसने सकर्षमुक्तावलि ग्रन्थ भी लिखा है। विश्वगुणादर्श के लेखक वेंकटाध्वरिन् (लगभग १६५० ई०) ने तीन ग्रन्थ लिखे हैं—न्यायपद्म, मीमांसामकरन्द और विधित्रयपरित्राण। लगभग इसी समय विश्वेश्वरसूरि ने भट्टचिन्तामणि ग्रन्थ लिखा है। विश्वेश्वरसूरि का दूसरा नाम गागाभट्ट था। आपदेव ने मीमासा-दर्शन पर एक प्रसिद्ध पुस्तिका मीमासान्यायप्रकाश लिखी है। उसका स्वर्गवास १६६५ ई० मे हुआ था। इसी प्रकार के एक प्रसिद्ध ग्रन्थ तर्ककौमुदी के लेखक लौगाक्षिभास्कर का लिखा हुआ अर्थसंग्रह है। आपदेव के समकालीन खण्डदेव ने चार महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे हैं। उनके नाम हैं—भाट्टदीपिका, भाट्टरहस्य, फलैकत्ववाद और मीमांसाकौस्तुभ। इनमे आस्तिकवाद का भी भाव व्याप्त है। मीमांसा-कौस्तुभ मे मीमासा-सूत्रो का विवेचन है। मन्नभट्ट (लगभग १७०० ई०) ने राणक-भावनाकारिकाविवरण ग्रन्थ लिखा है। इसमे उसने सोमेश्वर की राणक टीका मे दिए स्मरणीय श्लोको का स्पष्टीकरण किया है। पार्थसारथि मिश्र की न्यायरत्नमाला के टीकाकार रामानुजाचार्य (लगभग १७५० ई०) ने प्रभाकर के मतानुसार मीमांसा-सूत्रो की एक लघु टीका तन्त्ररहस्य लिखी है। यह पाँच अध्यायो मे है और अपूर्ण है। सिद्धान्तकौमुदी की बालमनोरमा टीका के लेखक वासुदेवाध्वरिन् (लगभग १७५० ई०) ने मीमासा-सूत्रों की टीका अध्वरमीमासाकुतूहलवृत्ति नाम से की है। १९वीं शताब्दी ई० में कृष्ण-ताताचार्य ने भाट्टसार ग्रन्थ लिखा है। इसमे भाट्ट मीमासा के मन्तव्यों का सरल रूप मे स्पष्टीकरण किया गया है।

अध्याय ३५

आस्तिक दर्शन और धार्मिक दर्शन

वेदान्त दर्शन

वेदान्त दर्शन उपनिषदो पर आश्रित है। उपनिषद् वैदिक साहित्य के ज्ञानकाण्ड के प्रतिनिधि है। अतएव इसको वेदान्त या उत्तरमीमासा कहते हैं। इस दर्शन मे आत्मा के स्वरूप का वर्णन होता है तथा उसका जीवात्मा और प्रकृति से क्या सम्बन्ध है, इसका भी विवेचन किया जाता है। अतएव इस दर्शन को ब्रह्ममीमासा भी कहते हैं।

उपनिषदो मे जो वाक्य आते हैं, वे अनेक प्रकार के हैं। उनमे से कुछ ऐसे वाक्य हैं, जिनमे ईश्वर, जीव और प्रकृति को भिन्न माना गया है और उनकी विशेषताओ का पृथक् निरूपण किया गया है ऐसे वाक्यो को 'भेदश्रुति' कहते हैं। कुछ ऐसे वाक्य है, जिनमे यह वर्णन किया गया है कि ऊपर से पृथक् दिखाई देने वाले तत्त्व मे भी आन्तरिक एकता विद्यमान रहती है। इस प्रकार अनेकत्व मे भी एकत्व रहता है। ऐसे वाक्यो को अभेदश्रुति कहते हैं इनके अतिरिक्त कुछ और वाक्य हैं, जिनको 'घटकश्रुति' कहते है। ये ऐसे वाक्य है, जो भेदश्रुति और अभेदश्रुति मे पारस्परिक सम्बन्ध की स्थापना करते हैं। इससे ज्ञात होता है कि उपनिषदो मे किसी एक सिद्धान्त का समन्वित रूप से प्रतिपादन नही किया गया है। अतएव वेदान्तदर्शन के कई मत है और सभी उपनिषदो की शिक्षाओ पर आश्रित हैं।

इस दर्शन के मुख्य सिद्धान्तो का वर्णन वेदान्तसूत्रो मे है। इनको ब्रह्मसूत्र भी कहते हैं। ये चार अध्यायो में है। यह माना जाता है कि सकर्षणकाण्ड के सूत्र चार अध्यायो मे विद्यमान थे। ये सूत्र मीमासा-सूत्रो के अन्त मे निबद्ध थे और उनके बाद ब्रह्मसूत्र थे। सकर्षणकाण्ड मे उन देवताओ का वर्णन था,

जिनकी यज्ञादि के द्वारा पूजा का वर्णन मीमांसा-सूत्रों में किया गया था। ये सूत्र जैमिनि के बनाए हुए थे। ये अब नष्ट हो चुके हैं। ब्रह्मसूत्रों के रचयिता बादरायण मुनि हैं। कुछ विद्वान् बादरायण और पराशर के पुत्र व्यास को एक ही व्यक्ति मानते हैं। अन्य विद्वान् इन दोनों की एकता को स्वीकार नहीं करते हैं। इन सूत्रों का रचनाकाल ५०० ई० पू० माना जाता है। इसमे चार अध्याय हैं—(१) समन्वयाध्याय। इसके अनुसार उपनिषदें ब्रह्म के अस्तित्व को सिद्ध करती हैं। (२) अविरोधाध्याय। इसमें अन्य दर्शनों के मन्तव्यों का खण्डन किया गया है। (३) साधनाध्याय। इसमें मोक्ष के साधनों का वर्णन है। फलाध्याय। (४) इसमे उपर्युक्त साधनों के परिणामों का वर्णन है।

वेदान्तदर्शन की कई शाखाएं भगवद्गीता पर निर्भर हैं। भगवद्गीता मे इन विषयो का वर्णन है—ईश्वर, उसकी अनेकरूपता, ईश्वर और जीव का सम्बन्ध, ईश्वरोपासना के विभिन्न प्रकार, प्रकृति का स्वरूप, प्रकृति का ईश्वर और जीव से सम्बन्ध, जीवात्मा के मोक्षप्राप्ति के साधनो का वर्णन तथा जीव के पूर्ण और सुखी होने के साधनो का वर्णन। जीव को सुखी होने और मोक्ष-प्राप्ति के लिए तीन मार्ग हैं—ज्ञानमार्ग, कर्ममार्ग और भक्तिमार्ग। ज्ञानमार्ग के अनुसार तत्वज्ञान की प्राप्ति से पूर्वकृत कर्मों के फल का नाश हो जाता है और मोक्ष की प्राप्ति होती है। कर्ममार्ग के अनुसार निष्काम भाव से कर्म करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। भक्तिमार्ग के अनुसार ईश्वर की वास्तविक भक्ति से जीव मोक्ष को प्राप्त होता है। भगवद्गीता में ईश्वरार्पण पर विशेष बल दिया गया है। भगवद्गीता आस्तिकवाद का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ भारतीय साहित्य का रत्न है। इस ग्रन्थ का मुख्य उद्देश्य यह शिक्षा देना है कि मनुष्य परिणाम की चिन्ता न करके अपने कर्तव्य को करे।

वेदान्तदर्शन के विभिन्न मत जिन ग्रन्थों पर आधारित हैं, वे हैं—उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीता। प्रायः सभी मतों ने इन तीनों ग्रन्थों की टीकाएं की हैं और उनमें अपने मन्तव्यों की पुष्टि की है। प्रत्येक मत ने यह प्रयत्न किया है कि वह रामायण, महाभारत और कुछ अन्य तथा पुराणों में उद्धृत

देकर अपने सिद्धान्तो और व्याख्याओ की पुष्टि करे। कुछ दार्शनिक और धार्मिक मत उपनिशद् आदि तीनो ग्रन्नो के अतिरिक्त आगम-ग्रन्यो पर भी निर्भर हैं और कुछ मत सर्वथा आगमग्रन्थो पर ही निर्भर हैं।

आगमो को कुछ स्यानो पर तन्त्र भी कहते हैं। इनमे यह वर्णन किया गया है कि किस प्रकार देव-विशेष की पूजा करनो चाहिए और इष्टदेव के अनुसार ही किस प्रकार का जीवन व्यतीत करना चाहिए। आगमग्रन्थो का उदय ब्राह्मणग्रन्थो के प्रभाव से हुआ होगा। जो व्यक्ति कर्ममार्ग की अपेक्षा भक्तिमार्ग को अपनाने वाले हैं, उन्होने ब्राह्मणग्रन्थो के प्रभाव से आगमग्रन्थो को जन्म दिया होगा। कुछ आगमग्रन्थ महाभारत से बहुत पूर्व बन चुके थे, क्योकि महाभारत मे आगमो का उल्लेख मिलता है। इन आगमो मे जीवन के लक्ष्य और देव पूजा के विषय मे जो बातें दी गई हैं, वे कितने ही स्थानो पर वैदिक परम्परा के विरुद्ध हैं और कई स्थानो पर उसके अनुकूल है। कुछ **आगमग्रन्थों को सहिताग्रन्थ** कहा जाता है। इससे ज्ञात होता है कि उनका सन्बन्ध वैदिकग्रन्थो से है। उनमे मुख्य रूप से चार बातो का वर्णन होना है—ज्ञान, योग (ध्यान) क्रिया (कर्म) और चर्या (दिनचर्या)। सभी आगमग्रन्थो का मत है कि ससार सत्य है, ईश्वर जीव और प्रकृति ये तीनो उसमे विद्यमान हैं। ईश्वर ससार का स्वामी है। विभिन्न देवताओ को मान्यता देने के आधार पर आगमग्रन्थ तीन प्रकार के हैं—**वैष्णव आगम, शैव आगम और शाक्त आगम**।

बोधायन ने ब्रह्मसूत्रों का भाष्य (वृत्ति) **कृतकोटि** नाम से किया है। **बोधायन** का दूसरा नाम **उपवर्ष** था। उसने ही मीमासासूत्रो का भाष्य किया था। उसका समय ईसा से पूर्व मानना चाहिए। **ब्रह्मनन्दी** ने **छान्दोग्योपनिषद्** की टीका 'वाक्य' नाम से की है। ब्रह्मनन्दी का दूसरा प्रसिद्ध नाम टङ्क था। **द्रमिडाचार्य** ने 'वाक्य' भाष्य की टीका को है। वे सभी लेखक शकराचार्य (६३२-६६४ ई०) से वहुत पहले हुए थे। इन लेखको के ग्रन्थ नष्ट हो चुके हैं। परकालीन लेखको ने इनके ग्रन्थो से जो उद्धरण दिए हैं, उनसे इन ग्रन्थो की सत्ता ज्ञात होती है।

वेदान्त की प्रमुख शाखाएं ये हैं—द्वैत, अद्वैत विशिष्टाद्वैत, और शुद्धाद्वैत। वेदान्त की सामान्य शाखाएं ये हैं—निम्बार्क, भास्कर, यादवप्रकाश तथा चैतन्य और शिवाद्वैत।

द्वैतमत

यह मत उपनिषदों की भेद श्रुति पर अवलम्बित है। इस मत के प्रतिपादक ग्रन्थों में अभेद श्रुतियों और घटकश्रुतियों की इस प्रकार व्याख्या की गई है कि वे द्वैतमत के समर्थक हों। परमात्मा, जीवात्मा और प्रकृति ये तीनों नित्य और स्वतन्त्र सत्ता हैं। जीवों में परस्पर भेद है और प्रकृति में भी आन्तरिक भेद है। परमात्मा विष्णु है। उसका शरीर अप्राकृत (प्रकृति-निर्मित नहीं) है। वह सर्वज्ञ, सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान् है। उसकी इच्छा से ही प्रकृति जगत् के रूप में परिवर्तित होती है। जीवों में लक्ष्मी सर्वश्रेष्ठ है। वह विष्णु की पत्नी है। जीवों में वही नित्य है, अविनाशी है। अन्य जीव बद्ध हैं। जीवात्मा का परिमाण परमाणु के बराबर है। जीव दो प्रकार के हैं—पुरुष और स्त्री। यह पुरुष और स्त्री का अन्तर मोक्षावस्था में भी बना रहता है। परमात्मा और जीवात्मा का सेव्य सेवक-भाव सम्बन्ध है। निर्धारित नियमों के अनुसार प्रत्येक जीव का कर्तव्य है कि वह परमात्मा विष्णु की उपासना करे। उसकी उपासना से उसका अनुग्रह प्राप्त होता है। भगवद्गीता में जो मार्ग बताए गए हैं, उनमें से भक्तिमार्ग ही इस मत में अपनाया गया है। इस मत के अनुसार तीन प्रमाण हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द। वेद नित्य और स्वतः प्रमाण हैं। वैष्णव आगम प्रामाणिक ग्रन्थ हैं। पुराण भी बहुत प्रामाणिक ग्रन्थ हैं।

इस मत के संस्थापक आनन्दतीर्थ थे। उनका वास्तविक नाम वासुदेव था। उनके आध्यात्मिक गुरु अच्युतप्रेक्षाचार्य थे। उन्होंने अद्वैतसिद्धान्त का खण्डन करके द्वैतमत की स्थापना की। उनके चार शिष्य थे—पद्मनाभतीर्थ, नरहरितीर्थ, माधवतीर्थ और अक्षोभ्यतीर्थ। उनका समय ११९९ ई० से ११९८ ई० माना जाता है। उनका यह समय प्रमुख ज्ञात

होता है। उनका वास्तविक समय ११९९ ई० से १२७७ ई० तक है।[1] सन्यास की अवस्था मे उनका नाम **आनन्दतीर्थ** था। उनकी उपाधियाँ थी—**पूर्णप्रज्ञ, मध्यमन्दार** और **मध्व**। यह माना जाता है कि उन्होने ३७ ग्रन्थ लिखे थे। इनमे से अधिकाश द्वैतमत के समर्थक थ। इन ग्रन्थो मे मुख्य उपनिषदो पर उनकी टीकाएँ भी सम्मिलित हैं। उन्होने ये मुख्य ग्रन्थ लिखे हैं—(१) ब्रह्मसूत्रो पर **ब्रह्मसूत्रभाष्य** नामक टीका, (२) ब्रह्मसूत्रो पर एक सक्षिप्त टीका **ब्रह्मसूत्राणुभाष्य**, (३) ब्रह्मसूत्रो मे से कठिन सूत्रो पर **ब्रह्मसूत्रानुव्याख्यान** टीका। इस टीका का प्रचलित नाम **अनुव्याख्यान** है। (४) भगवद्गीता को टीका **भगवद्गीताभाष्य**, (५) **भगवद्गीतातात्पर्यनिर्णय**। इसमे भगवद्गीता के उपदेशो का वास्तविक अभिप्राय प्रकट किया गया है। उनके अन्य प्रमुख ग्रन्थ ये हैं—(६) **ऋग्भाष्य**, (७) **तत्त्वविवेक**, (८) **तत्त्वसंख्यान**, (९) **तत्त्वोद्योत**, (१०) **प्रपचमिथ्यात्वखण्डन**, (११) **प्रमाणलक्षण**, (१२) **महाभारततात्पर्य निर्णय**, (१३) **भागवतपुराण** की टीका **भागवतव्याख्या** और (१४) **विष्णुतत्त्व निर्णय**।

द्वैतमत मे **मध्व** के पश्चात् **जयतीर्थ** का नाम आता है। वह अक्षोभ्यतीर्थ का शिष्य था। उसका समय १४वी शताब्दी का उत्तरार्ध माना जाता है। उसने मध्व के प्राय सभी ग्रन्थो की टीका की है। यदि उसकी महत्त्वपूर्ण टीकाएँ न होती तो द्वैतमत दार्शनिक दृष्टि से सारहीन हो जाता। मध्व के ग्रन्थो पर उसने जो टीकाएँ की हैं, उनमे से मुख्य ये हैं—(१) **ब्रह्मसूत्रानुव्याख्यान** की टीका **न्यायसुधा**, (२) **प्रपचमिथ्यात्वखण्डन** की टीका **पचिका**, (३) **ब्रह्मसूत्रभाष्य** की टीका **तत्त्वप्रकाशिका** और (४) **भगवद्गीताभाष्य** की टीका **प्रमेयदीपिका**। उसने दो स्वतन्त्र ग्रन्थ भी लिखे हैं—**प्रमाणपद्धति** और **वादावली**। वादावली मे अद्वैतवादियो के माया-सिद्धान्त का खण्डन किया गया है।

जयतीर्थ के वाद प्रमुख लेखक **व्यासयति** (लगभग १३०० ई०) हुआ है। उसने एक स्वतन्त्र ग्रन्थ **न्यायामृत** लिखा है। इसमे उसने **तत्त्वदीपिका**

---

१ Gollected Works of R G Bhandarkar भाग ४, पृष्ठ ८३।

में प्रकट किए गए चित्सुख के विचारों का खण्डन किया है। मधुसूदन सरस्वती ने अपने ग्रंथ अद्वैतसिद्धि में न्यायामृत का खण्डन किया है और रामतीर्थ ने अपने ग्रन्थ तरंगिणी में अद्वैतसिद्धि का खण्डन करके द्वैतमत की पुष्टि की है। व्यासयति ने अपने पूर्ववर्ती लेखकों के ग्रन्थों की भी टीका की है। उसने जयतीर्थ के प्रपंचमिथ्यात्वखण्डनपंचिका की टीका भावप्रकाशिका की है। जयतीर्थ के ब्रह्मसूत्रभाष्यतत्त्वप्रकाशिका की टीका तात्पर्यचन्द्रिका की है। राघवेन्द्रयति ने जयतीर्थ आदि के ग्रन्थों की महत्त्वपूर्ण टीका की है। उसने जयतीर्थ की तत्त्वप्रकाशिका की टीका भावदीपिका नाम से की है और जयतीर्थ की ही न्यायसुधा की टीका परिमल नाम से की है। उसने भगवद्गीता पर एक स्वतन्त्र टीका गीतार्थसंग्रह नाम से की है। उसने मध्व के ब्रह्मसूत्रभाष्य की टीका तन्त्रदीपिका नाम से की है। उसकी न्यायमुक्तावली द्वैतमत का एक स्वतन्त्र ग्रन्थ है। द्वैतमत के अन्य मुख्य लेखक वादिराज विजयीन्द्र और श्रीनिवासतीर्थ हैं।

अद्वैतमत

इस मत के अनुसार केवल ब्रह्म की ही सत्ता है। यह संसार जो कि सत् दिखाई पड़ता है, वस्तुतः सत् नहीं है। यदि यह सत् होता तो पहले भी ऐसा रहा होता और भविष्य में भी इसी प्रकार बना रहता। जो वस्तु किसी क्षण में उत्पन्न होती है और दूसरे किसी क्षण में नष्ट हो जाती है, उसे सत् नहीं कह सकते हैं। यह संसार परिवर्तनशील है। इसका आदि और अन्त है। मरु-मरीचिका की तरह यह सत् दृष्टिगोचर होता है। यह संसार जो दृष्टिगोचर हो रहा है, वह माया के कारण ही दिखाई पड़ता है। माया अनादिकाल से ब्रह्म को घेरे हुए है। यह माया तीन गुणों से युक्त है—सत्त्व, रजस् और तमस्। माया को न सत् कह सकते हैं और न असत्, यह अनिर्वचनीय है। यह माया असत् है, क्योंकि इसका विनाश माना जाता है। इस माया को अज्ञान, अविद्या और मोह नाम से पुकारा जाता है। इसके दो स्वरूप हैं। एक स्वरूप में सत्त्व गुण प्रधान रहता है और दूसरे स्वरूप में सत्त्व गुण गौण रहता है। प्रथम स्वरूप में इसको माया कहते हैं और द्वितीय स्वरूप में इसको अविद्या

कहते हैं । ब्रह्म माया मे प्रतिबिम्बित होता है और ससार के तुल्य दृष्टिगोचर होता है । जब माया मे सत्व अश की प्रधानता रहती है और उसमे ब्रह्म का प्रतिबिम्ब पडता है तो वह 'ईश्वर' कहा जाता है । और जब माया मे सत्व अश गौण रहता है और उसमे ब्रह्म का प्रतिबिम्ब पडता है तो उसे जीवात्मा और ससार कहते हैं । अतएव वही ब्रह्म देवता, जीवात्मा और ससार के रूप मे प्रकट होता है । यह भी माना जाता है कि अन्त करण माया से उत्पन्न होता है और जब अन्त करण मे ब्रह्म का प्रतिबिम्ब पडता है, तब वह जीवात्मा कहा जाता है । माया से उत्पन्न अन्त करण अनेक हैं, अत जीवात्मा भी अनेक हैं ।

माया के इस आवरण के करण ब्रह्म का वास्तविक रूप अज्ञात रहता है, अतएव यह ससार सत् प्रतीत होता है । ब्रह्म सत्, चित् और आनन्दमय है । सत्, चित् और आनन्द ये ब्रह्म के विशेषण नही हैं । ब्रह्म स्वय सत्, चित् और आनन्दरूप है । ब्रह्म निर्गुण है ।

अद्वैतमत अद्वैत की अनुभूति तक ससार का अस्तित्व स्वीकार करता है । अतएव अन्त करण मे प्रतिबिम्बित ब्रह्म जीवात्मा के रूप मे विद्यमान रहता है और उसमे कतिपय गुण भी विद्यमान रहते हैं । माया मे प्रतिबिम्बित ब्रह्म देवताओ के रूप मे विद्यमान रहता है और उन देवो मे अनेक गुणो की सत्ता रहती है । अतएव जीवात्मा के लिए आवश्यक है कि वह देवो की उपासना करे । देवो की उपासना तथा निष्काम भाव से नैत्यिक कर्म करने से जीवो का चित्त या अन्त करण शुद्ध हो जाता है और उसमे सत्व, रजस् और तमस् का प्रभाव नही रहता है । तव वह निर्गुण हो जाता है और उस पर माया का कुछ भी प्रभाव नही रहता । तव मायारहित शुद्ध ब्रह्म ही शेष रहता है । उस समय जीवात्मा का अस्तित्व नही रहता है, क्योकि वह अविद्या या अन्त करण मे ब्रह्म का प्रतिबिम्ब मात्र है । इस प्रकार ब्रह्म और जीवात्मा मे एकत्व की स्थापना की जाती है । यही तत्त्व (वास्तविकता) है, जिसकी शिक्षा उपनिषदें देती हैं । इस एकत्व के कारण ही इस शाखा को अद्वैत मत कहा

जाता है। इस अद्वैत का अनुभव जीवित अवस्था में भी किया जा सकता है और इस अवस्था को 'जीवन्मुक्ति' कहते हैं। देहावसान होने पर जो वास्तविक मुक्ति होती है, उसे विदेहमुक्ति कहते हैं। वास्तविक रूप में जो अनुभूति होती है, उसे पारमार्थिक कहते हैं और जो उससे पूर्व अवस्था में अनुभूति होती है, उसे व्यावहारिक कहते हैं। व्यावहारिक अवस्था में जीव को धर्मशास्त्रों और मीमांसा शास्त्र में निर्दिष्ट कर्म करना अनिवार्य है। इस अवस्था में यह मत मीमांसा के भट्टमत को स्वीकार करता है और उनके द्वारा स्वीकृत ६ प्रमाणों को भी स्वीकार करता है। मोक्ष-प्राप्ति के लिए ज्ञानमार्ग को अपनाना चाहिए। माया के इस सिद्धान्त के कारण यह मत विवर्तवाद को अपनाता है।

इस मत के प्राचीन लेखकों में भर्तृप्रपंच और गौडपाद ये प्रामाणिक आचार्य माने गए हैं। भर्तृप्रपंच का कोई ग्रन्थ प्राप्य नहीं है। गौडपाद (५२०-६२० ई०) शंकराचार्य के गुरु गोविन्दभगवत्पाद (५६०-६५० ई०) का गुरु माना जाता है। उसने माण्डूक्यकारिका लिखी है। उसमें उसने माण्डूक्योपनिषद् के अभिप्राय को स्पष्ट किया है।

मण्डन मिश्र (६१५-६९५ ई०) कुमारिल भट्ट का समकालीन था। वह एक प्रसिद्ध मीमांसक और वेदान्ती था। उसने वेदान्त विषय पर तीन प्रमुख ग्रन्थ लिखे हैं—(१) ब्रह्मसिद्धि, (२) स्फोटसिद्धि और (३) विभ्रमविवेक। उसने ब्रह्मसिद्धि में अद्वैतमतानुसार वेदान्तदर्शन के विषयों को स्पष्ट किया है। उसने स्फोटसिद्धि में भर्तृहरि के शब्दाद्वैतवाद (स्फोटवाद) का समर्थन किया है। विभ्रमविवेक में प्रमाणमीमांसा है। वाचस्पति मिश्र (८५० ई०) ने बड़े सम्मान के साथ उसके अद्वैत-विषयक विचारों को अपने ग्रन्थों में उद्धृत किया है। यह माना जाता है कि एक शास्त्रार्थ में शंकराचार्य ने उसे हराया था और वह सन्यासी हो गए, अपना नाम सुरेश्वर रखा गया। शंकराचार्य के मत के अनुयायी हो गए। कुछ विद्वान् मण्डन मिश्र और सुरेश्वर की एकता को स्वीकार नहीं करते हैं।

शंकराचार्य का जन्म ६३७ ई० में मालाबार में कालटि नामक स्थान पर हुआ था। उन्होंने गौडपाद के शिष्य गोविन्दभगवत्पाद से वेदान्तदर्शन-शिक्षा

था। यह बहुत ही छोटी आयु मे सन्यासी हो गए। भारतवर्ष मे इधर-उधर बहुत घूमे और अपने मत का प्रचार करते रहे। उनका स्वर्गवास ३२ वर्ष की छोटी आयु मे हो गया।

वे आगम-ग्रथो को प्रामाणिकता को स्वीकार नही करते थ, क्योकि उनमे कुछ ऐसे सिद्धान्तो और विचारो का समन्वय है, जो कि वेदो के मत के विरुद्ध है। उन्होने ये मुख्य ग्रन्थ लिखे हैं—(१) ब्रह्मसूत्रो का भाष्य **ब्रह्मसूत्रभाष्य** नाम से, (२) भगवद्गीता का भाष्य **भगवद्गीताभाष्य** नाम से और (३) प्रमुख उपनिषदो का भाष्य। उन्होने इनके अतिरिक्त कितने ही बडे और छोटे ग्रन्थ लिखे हैं। इन ग्रन्थो का मुख्य उद्देश्य है, अद्वैत मत का समर्थन और प्रतिपादन। उनमे से प्रमुख ग्रन्थ ये हैं—**आत्मबोध, दशश्लोकी, अपरोक्षानुभूति, प्रपचसार, उपदेशसाहस्री, विवेचूडामणि, प्रश्नोत्तररत्नमालिका** और **विष्णुसहस्रनामभाष्य** आदि।

सुरेश्वर ने दो ग्रन्थ लिखे हैं—**बृहदारण्यकोपनिषद्वार्तिक** और **नैष्कर्म्यसिद्धि**। कुछ विद्वान् **सुरेश्वर** और **मण्डनमिश्र** को एक ही व्यक्ति मानते हैं। उसका समय ६२० ई० से ७०० ई० माना जाता है। **सुरेश्वर** के साथ मे **शंकराचार्य** के चार शिष्य थे। **पद्मपाद** ने **शकराचार्य** कृत **ब्रह्मसूत्रभाष्य** की टीका की है। **तोटक** **श्रुतिसारसमुद्धरण** का लेखक है। शकर द्वारा कहे गये अविद्या-सिद्धान्तो पर एक छन्दोबद्ध ग्रन्थ है। अद्वैत पर **हस्तामलकाचार्य** ने **विवेकमजरी** नामक ग्रन्थ लिखा है। शकराचार्य के **ब्रह्मसूत्रभाष्य** को ये पाँच टीकाएँ हुई हैं—(१) शकराचार्य के शिष्य **पद्मपाद** (६२५-७०५ ई०) कृत पचपादिका टीका (२) वाचस्पति मिश्र (८५० ई०) कृत **भामती टीका**, (३) **अनुभूतिस्वरूपाचार्य** (लगभग १००० ई०) कृत **प्रकृतार्थविवरण टीका**, (४) **आनन्दगिरि** (लगभग १२५० ई०) कृत **न्यायनिर्णय** टीका और (५) **चित्सुख** (लगभग १२२५ ई०) कृत **भाष्यभावप्रकाशिका** टीका। शकराचार्य के भगवद्गीता और उपनिषद्भाष्य की टीका **आनन्दगिरि** (लगभग १२५० ई०) ने की है। **वाचस्पति मिश्र** ने **मण्डनमिश्र** की **ब्रह्मसिद्धि** की टीका अपने ग्रन्थ **तत्त्वसमीक्षा** मे की है। वह ग्रन्थ अब अप्राप्य है।

विमुक्तात्मा की इष्टसिद्धि अद्वैत विषय पर एक खण्डनात्मक ग्रन्थ है। इसकी शैली बहुत क्लिष्ट है। विमुक्तात्मा का समय ८५० ई० और १०५० ई० के मध्य मे माना जाता है। सर्वज्ञात्मा (लगभग ९०० ई०) ने अपने ग्रन्थ संक्षेपशारीरिक मे शंकराचार्य के ब्रह्मसूत्रभाष्य का सारांश दिया है। सर्वज्ञात्मा के और दो ग्रन्थ हैं—प्रमाणलक्षण और पंचप्रक्रिया। प्रकाशात्मा (लगभग १२०० ई०) ने दो ग्रन्थ लिखे हैं—पद्मपाद की पंचपादिका की टीका पंचपादिका-विवरण और (२) ब्रह्मसूत्रों की टीका न्यायसंग्रह। इसी समय नैषधीयचरित के सुप्रसिद्ध लेखक श्रीहर्ष ने खण्डनखण्डखाद्य नामक ग्रन्थ लिखा है। यह खंडनात्मक ग्रन्थ है। इसमे अद्वैतमत की पुष्टि और नैयायिकों के मत का खण्डन किया गया है। वाचस्पति मिश्र की भामती टीका अमलानन्द (१२२५ ई०) ने अपने ग्रन्थ कल्पतरु मे की है। चित्सुख (लगभग १२२५ ई०) ने शंकराचार्य के ब्रह्मसूत्रभाष्य की टीका के अतिरिक्त खण्डनखण्डखाद्य, ब्रह्मसिद्धि और नैष्कर्म्यसिद्धि की भी टीका की है। इसके अतिरिक्त उसने एक स्वतन्त्र ग्रन्थ तत्त्वदीपिका लिखा है। व्यासपति (लगभग १३०० ई०) ने न्यायामृत मे इसी तत्त्वदीपिका का खण्डन किया है। विद्यारण्य विजयनगर के माधव (१२९७-१३८६ ई०) का दूसरा नाम था। उसने ये ग्रन्थ लिखे हैं—विवरणप्रमेयसंग्रह, पंचदशी, जीवन्मुक्तिविवेक और वैयासिकन्यायमाला। वैयासिकन्यायमाला ग्रन्थ का कुछ अंश विद्यारण्य ने लिखा है और कुछ अंश भारतीतीर्थ ने। सदानन्द ने १५वीं शताब्दी मे अद्वैत विषय पर एक बहुमूल्य ग्रन्थ वेदान्तसार लिखा है। धर्मराजाध्वरिन् ने १६वीं शताब्दी मे अद्वैतपरिभाषा ग्रन्थ लिखा है। इस ग्रन्थ का दूसरा नाम वेदान्तपरिभाषा है। यह अद्वैत-तत्त्वमीमांसा विषय पर बहुत सुन्दर पुस्तक है। सांख्य और योग दर्शन पर विभिन्न ग्रन्थों के लेखक विज्ञानभिक्षु (११५० ई०) ने ब्रह्मसूत्रों पर विज्ञानामृत नाम की टीका लिखी है। मधुसूदनसरस्वती (लगभग १६०० ई०) ने अद्वैतसिद्धि ग्रन्थ लिखा है। इसमें अद्वैतमत की पुष्टि और व्यासराज के न्यायामृत का खण्डन किया है। मधुसूदन सरस्वती के ग्रन्थ ये हैं—(१) शंकराचार्य की दशश्लोकी की टीका सिद्धान्तबिन्दु (२) भगवद्गीता की टीका गूढार्थदीपिका और (३)

प्रस्थानभेद। अप्पयदीक्षित (१५५२-१६२४ ई०) ने ये ग्रन्थ लिखे हैं—(१) सिद्धान्तलेशसग्रह। इसमें अद्वैतमत के सिद्धान्तो का सकलन है। (२) ब्रह्मसूत्रों की टीका न्यायरक्षामणि। (३) अमलानन्द के कल्पतरु की टीका परिमल और (४) अद्वैत-सिद्धान्त विषय न्यायमजरी ग्रन्थ। अप्पयदीक्षित के शिष्य भट्टोजि दीक्षित ने अद्वैत मत के सिद्धान्तो पर तत्त्वकौस्तुभ नामक ग्रन्थ लिखा है। अन्नभट्ट (लगभग १७०० ई०) ने ब्रह्मसूत्रो की टीका मिताक्षरा नाम से की है।

विशिष्टाद्वैत

इस मत के अनुसार ईश्वर, जीव और प्रकृति ये तीन सत्ताएँ हैं। इसमे भेद, अभेद और घटक श्रुतियो को प्रामाणिक माना गया है। ये वाक्य यह सिद्ध करते हैं कि वास्तविक सत्ता केवल ब्रह्म है। चित् (जीव) और अचित् (अचेतन जीव) उसके शरीर या प्रकार हैं। ये प्रकार परस्पर भिन्न हैं। ये चिदचित् ब्रह्म के विशेषण हैं। परन्तु ये ब्रह्म से भिन्न हैं। ब्रह्म चिदचिद् विशिष्ट है। इस मत मे ब्रह्म को एक मानते हुए भी उसे चिदचिद्विशिष्ट कहा जाता है, अत इसे विशिष्टाद्वैत कहते है।[१] यह ससार सत् है। जीव और प्रकृति अनेक हैं। जीव का परिमाण परमाणु के बराबर होता है। जीव और प्रकृति ब्रह्म के शरीर है। जीव और प्रकृति का अस्तित्व ईश्वर के लिए है। अतएव जीव और प्रकृति को शेष कहते हैं तथा ब्रह्म को शेषी। यह शेषी शेष के ऊपर उसी प्रकार नियन्त्रण रखता है, जिस प्रकार आत्मा शरीर पर।[२] जीव तीन प्रकार के हैं—बद्ध, मुक्त, और नित्य। विष्णु, उसकी प्रिया लक्ष्मी, आदिशेष और गरुड आदि नित्य जीवो में हैं अन्य जीव बद्ध या मुक्त की कोटि मे आते हैं। भगवद्गीता

---

१ अशेषचिदचितप्रकार ब्रह्मैक्यमेव तत्त्वम्। तत्र प्रकारप्रकारिणो प्रकाराणां च मिथोऽत्यन्तभेदेऽपि विशिष्टैक्यादिविवक्षयैकत्वव्यपदेश, तदितरनिषेधश्च। वेदान्तदेशिक कृत न्यायसिद्धाजन, अध्याय १।

२ परगतातिशयाधानेच्छया उपादेयत्वमेव यस्य स्वरूप स शेष, पर शेषी। रामानुजकृत वेदार्थसग्रह, पृष्ठ २३४-२३५, (वृन्दावन सस्करण)।

मे बताए गए तीन मार्गों मे से यह मत भक्तिमार्ग और आत्मसमर्पण (प्रपत्ति) को स्वीकार करता है । अपने कर्तव्यो को करने से जीव विशुद्ध हो जाता है और ज्ञानयोग का अधिकारी होता है । इस मत के अनुसार वास्तविक ज्ञान यह होना चाहिए कि जीव प्रकृति से पृथक् है और वह ब्रह्म का अंशमात्र है । इस प्रकार की अनुभूति से जीव भक्ति के मार्ग पर अग्रसर होता है । यम, नियम, ध्यान आदि के द्वारा भक्तिमार्ग पर अग्रसर हो सकते हैं । इस मत के अनुसार सफलता ईश्वर को आत्मार्पण करने से होती है । जो इस मार्ग के अधिकारी नही हैं, वे भी ईश्वर को अपने आप को अर्पण करके ही सफलता पा सकते हैं । अतएव आत्मनिक्षेप मोक्ष का सरलतम और सुनिश्चित प्रकार है । मोक्ष की स्थिति मे जीवो की पारस्परिक भिन्नता समाप्त हो जाती है और वहाँ पर 'चिदनेकत्व के नाश के द्वारा चिदेकत्व की ही सत्ता रहती है' । उस अवस्था मे अहभाव का नाश हो जाता है । मोक्षावस्था आनन्दानुभूति की अवस्था है । उसमे मुक्तजीव अन्य मुक्तात्माओ के साथ विचरण करता है । जीवात्मा परमात्मा की सेवा मे आनन्द का अनुभव करता है । लक्ष्मी के साथ विष्णु ब्रह्म माने गए हैं । विष्णु और लक्ष्मी एक दूसरे के बिना नही रह सकते हैं। वे दिव्य दम्पती हैं । इस मत के अनुयायियो मे से कुछ का मत है कि लक्ष्मी विष्णु की प्रिया है और वह एक सामान्य जीव है । विष्णु का शरीर अप्राकृत (अभौतिक) है ।

इस मत के अनुसार तीन प्रमाण हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द । यह मत उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीता के अतिरिक्त वैष्णव आगमो को भी प्रामाणिक मानता है । वैष्णव आगम दो प्रकार के हैं—पाचरात्र और वैखानस । इन आगमो का कथन है कि ब्रह्म विभिन्न स्थानो पर विभिन्न पाँच रूप मे रहता है—(१) वैकुण्ठ मे 'परा' रूप मे, (२) क्षीरसागर मे 'व्यूह' रूप मे, (३) अवतार मे 'विभव' रूप मे, (४) जीवात्मा और प्रकृति के अन्दर 'अन्तर्यामी' परमात्मा के रूप मे और (५) पूजा के योग्य मूर्तियो मे 'अर्चा' रूप मे । पाचरात्र आगामो मे इन विषयो का वर्णन है—इस मत के अनुयायियो के लिए जीवन-यापन की विधि, गृहो और मन्दिरो में मूर्तियो और प्रतीको की

पूजा की विधि, दैनिक पच-कर्तव्यो को करना और तदनुसार उपाधि प्राप्त करना। दैनिक पच-कर्तव्य ये है—(१) **अभिगमन** अर्थात् देव-मन्दिर मे जाना और वहाँ पर मन, वचन तथा कर्म से ईश्वर की ओर एकाग्रता, (२) **उपादान** अर्थात् देव-पूजा के लिए सामान एकत्र करना, (३) **इज्या** अर्थात् ईश्वर-पूजा, (४) **स्वाध्याय** अर्थात् वेदो का पठन या वैदिक मन्त्रो का उच्चारण और (५) **योग** अर्थात् ईश्वर-चिन्तन। दैनिक कर्तव्यो को करते हुए भी नैतिक तथा धार्मिक नियमो का पालन करना आवश्यक है। इस मत के लिए पाचरात्र आगम वेदो के समान ही प्रामाणिक हैं। इस मत के प्रमुख आचार्यों ने यह सिद्ध किया है कि वैष्णव आगमो की शिक्षाएँ वेदो की शिक्षाओ के विपरीत नही हैं। विष्णु के एक अवतार **अनिरुद्ध** ने इन सिद्धान्तो की सर्वप्रथम शिक्षा दी थी और वे शिक्षाएँ **नारद, सनक** और **शाण्डिल्य** आदि को प्रकट की गई थी। अतएव वैष्णव आगमो को **'भगवच्छास्त्र'** कहा जाता है। महाभारत के नारायणीय अध्याय मे पाचरात्र आगमो की प्रामाणिकता सिद्ध की गई है। इन सिद्धान्तो के आधार-ग्रन्थ **भगवद्गीता, भागवत, नारदसूत्र** और **शाण्डिल्य सूत्र** हैं। पाचरात्रो के तुल्य वैखानस आगम भी प्रामाणिक हैं। इन आगमो का वैखानस नाम इसलिए पडा कि विखनस् अर्थात् ब्रह्मा ने इनका उपदेश **अत्रि, मरीचि, काश्यप** और **भृगु** को दिया और इन चारो मे से प्रत्येक ने इन सिद्धन्तो को पृथक्-पृथक् ग्रन्थ के रूप मे प्रगट किया है। इनमे से प्रत्येक को सहिता कहा जाता है जैसे **अत्रिसहिता**। यह माना जाता है कि पाचरात्र आगम की १०८ सहिताएँ थी। आजकल इनमे से कुछ ही सहिताएँ प्राप्त हैं। इनमे **पौष्कर, सात्वत** और **जयाख्य** सहिताएँ मुख्य हैं। इनसे ही सम्बद्ध **ईश्वर, पाद्म** और **पारमेश्वर** आदि सहिताएँ हैं।

इन ग्रन्थो के अतिरिक्त यह मत **'दिव्यप्रबन्ध'** को भी प्रामाणिक ग्रन्थ मानता है। ये ग्रन्थ तामिल भाषा में ४ सहस्र श्लोको से युक्त हैं। ये ग्रन्थ विशुद्धाद्वैत मत के प्रतिपादक माने जाते हैं। ये ग्रन्थ **आलवार** नामक सन्तो की रचनाएँ हैं। ये ग्रन्थ वेदो के तुल्य ही प्रामाणिक माने जाते हैं।

इस मत के सबसे प्राचीन लेखक टक (इनका दूसरा नाम ब्रह्मनन्दी है), द्रमिड और गुहदेव आदि हैं। ब्रह्मसूत्रो पर वृत्तिकार उपवर्ष भी, जिनका दूसरा नाम बोधायन है, इस मत के प्रामाणिक आचार्य माने जाते हैं। इन लेखको के विषय मे विशेष कुछ भी ज्ञात नही है। इनके पश्चात् आलवार आते हैं। उनके पश्चात् नाथमुनि (८२४-९२४ ई०) आते हैं। उनका पूरा नाम रगनाथ-मुनि था उन्होने इस मत के प्रतिपादक दो ग्रन्थ लिखे—न्यायतत्त्व और योगरहस्य। ये ग्रन्थ नष्ट हो गए हैं। परकालीन लेखको ने इन ग्रन्थो से उद्धरण दिए हैं। उनसे इन ग्रन्थो का ज्ञान होता है। उनका पौत्र यामुन था। उसका जन्म ९१६ ई० मे हुआ था। उसने ये ग्रन्थ लिखे हैं—(१) स्तोत्ररत्न, (२) चतुश्श्लोकी, (३) आगमप्रामाण्य—इसमे उसने पाचरात्र आगमो की प्रामाणिकता का मण्डन किया है। (४) सिद्धित्रय—इसमें तीन ग्रन्थ हैं—आत्मसिद्धि, ईश्वरसिद्धि और सवित्सिद्धि (५) गीतार्थसंग्रह—और (६) महापुरुषनिर्णय।

रामानुज का जन्म १०३७ ई० मे काची के समीप श्रीपेरुम्बुदुर मे हुआ था। उन्होने काची मे यादवप्रकाश से अद्वैतवेदान्त का अध्ययन किया। बाद मे वे यामुन के एक शिष्य श्रीपूर्ण के शिष्य हुए। उन्होने सन्यास ग्रहण किया और देश भर मे विशिष्टाद्वैत मत का प्रचार प्रारम्भ किया। उन्होने ये ग्रन्थ लिखे हैं—(१) ब्रह्मसूत्रो की टीका श्रीभाष्य, (२) वेदान्तसार, (३) वेदान्तदीप, (४) भगवद्गीताभाष्य, (५) वेदार्थसग्रह, इसमे सक्षेप में वेदो का अभिप्राय वर्णन किया गया है,(६) गद्यत्रय और (७) नित्य। इनमें ईश्वर-पूजा की विधि का वर्णन है। वेदान्तसार और वेदान्तदीप ये ब्रह्मसूत्रो की सक्षिप्त टीकाएँ हैं। श्रीभाष्य की ये टीकाएँ हुई हैं—मेघनादारिकृत नयप्रकाशिका और भाष्यभाव-बोधन, (२) वरदनारायण-भट्टारक कृत न्यायसुदर्शन, (३) सुदर्शन-सूरिकृत श्रुतप्रकाशिका और श्रुतप्रदीपिका, (४) वेदान्तदेशिक (१२६८—१३६९) कृत तत्त्वटीका और (५) रगरामानुज मुनि (लगभग १६०० ई०) कृत मूलभावप्रकाशिका। वरदनारायण-भट्टारक और मेघनादारि का समय १२००

ई० के लगभग माना जाता है। सुदर्शनसूरि १३वी शताब्दी ई० के उत्तरार्ध में हुए थे।

श्रीवत्साक के पुत्र पराशर भट्ट (लगभग ११०० ई०) ने खण्डनात्मक तत्त्वरत्नाकर ग्रन्थ लिखा है। वह अब नष्ट हो गया है। उसने विष्णुसहस्रनाम की टीका भगवद्गुणदर्पण नाम से की है। मेघनादारि का नयद्युमणि विशिष्टाद्वैत मत का एक स्वतन्त्र ग्रन्थ है। वरदनारायण भट्टारक का प्रज्ञापरित्राण भी एक स्वतन्त्र ग्रन्थ है। वरदाचार्य (लगभग १२७० ई०) ने चार छोटे किन्तु महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे हैं—(१) प्रपन्नपारिजात, (२) प्रमेयमाला, (३) तत्त्वनिर्णय, (४) तत्त्वसार। श्रुतप्रकाशिका के लेखक सुदर्शनसूरि ने दो और ग्रन्थ लिखे हैं—(१) रामानुज के वेदार्थसग्रह की टीका तात्पर्यदीपिका और (२) भागवत की टीका शुकपक्षीय। वेदान्तदेशिक के गुरु आत्रेय रामानुज का जन्म १३वी शताब्दी ई० के उत्तरार्ध मे हुआ था। उसने विशिष्टाद्वैत के समर्थन मे न्यायकुलिश ग्रन्थ लिखा है।

वेदान्तदेशिक ने लगभग ११८ ग्रन्थ लिखे हैं। उनमें से लगभग १५ नष्ट हो गए है। इनमे से ४० से अधिक तामिल भाषा मे हैं और ३५ के लगभग काव्य, गीतिकाव्य और कर्मकाण्ड आदि विषयो पर हैं। इनमे से प्रमुख स्वतन्त्र ग्रन्थ ये हैं—(१) तत्त्वमुक्ताकलाप तथा उस पर अपनी टीका सर्वार्थसिद्धि (२) शतदूषणी। यह अद्वैतवाद की आलोचना है। (३) सच्चरित्ररक्षा, (४) निक्षेप-रक्षा, (५) पाञ्चरात्ररक्षा, (६) न्यायपरिशुद्धि (७) न्याय-सिद्धाञ्जन, (८) मीमासा-पादुका और (९) अधिकरणसारावलि। उसके मुख्य टीका ग्रन्थ ये हैं—(१) आस्तिकवाद के समर्थन मे मीमासासूत्रों की टीका सेश्वरमीमासा, (२) रामानुज के भगवद्-गीताभाष्य की टीका तात्पर्यचन्द्रिका, (३) श्रीभाष्य की टीका तत्त्वटीका, (४) ईशा-वास्योपनिषद्-भाष्य, (५) यामुन के गीतार्थसग्रह की टीका गीतार्थसग्रहरक्षा और (६) रामानुज के गद्यत्रय की टीका रहस्यरक्षा। इन ग्रन्थो मे उसकी वैज्ञानिक विषयो के विवेचन मे मौलिकता और प्रखर तार्किकता का परिज्ञान

होता है। विशष्टाद्वैत मत मे रामानुज के वाद वह ही सबसे प्रामाणिक आचार्य माना जाता है। उसके पुत्र वरदाचार्य ने उसकी मीमासापादुका की टीका की है।

अप्पयदीक्षित (लगभग १६०० ई०) ने विशिष्टाद्वैतमत का अनुसरण करते हुए ब्रह्मसूत्रो की टीका नयमयूखमालिका नाम से की है। महाचार्य (लगभग १६०० ई०) अप्पयदीक्षित का समकालीन था। उसने वेदान्त-देशिक की शतदूषणी को टीका चण्डमारुत नाम से की। उसने ६ खण्डनात्मक ग्रन्थ लिखे हैं—(१) अद्वैतविद्याविजय, (२) गुरूपसत्तिविजय, (३) परिकर-विजय (४) पाराशर्य-विजय (५) ब्रह्मविद्याविजय और (६) सद्विद्याविजय। लगभग इसी समय रगरामानुज मुनि हुआ था। उसको मुख्य उपनिपदो पर भाष्य करने के कारण उपनिषद्भाष्यकार की उपाधि प्राप्त हुई थी। उसने दो टीकाएँ लिखी हैं—(१) वेदान्तदेशिक के न्यायसिद्धाञ्जन की टीका और (२) सुदर्शनसूरि की श्रुतप्रकाशिका की टीका भावप्रकाशिका। विषयवाक्यदीपिका उसका एक स्वतन्त्र ग्रथ है। इनमे उपनिषदो के कुछ महत्त्वपूर्ण वाक्यो की व्याख्या है। महाचार्य के शिष्य श्रीनिवासाचार्य ने यतीन्द्रमतदीपिका ग्रथ मे विशिष्टाद्वैत मत के सिद्धान्तो का वर्णन किया है।

शुद्धाद्वैत-मत

इस मत के अनुसार ब्रह्म सगुण और निर्गुण दोनो प्रकार का है। वह ससार का कर्त्ता, धर्ता और सहर्ता है। सत्, चित् और आनन्द उसके गुण हैं। वह एक और अनिर्वचनीय है, वह जीवात्मा मे अन्तर्यामी रूप से विद्यमान है। वह जगत् का उपादान और निमित्त कारण है। वह पूर्ण है। उसे पुरुषोत्तम कहा जाता है। वह आनन्दमय है। इन रूपो मे वह सगुण है। उसमे साधारण मानवीय कोई गुण नही है, अत उसे निर्गुण कहा जाता है। जीव वास्तविक है। वे ब्रह्म के एक अग हैं। वे ब्रह्मरूपी अग्नि के कण के तुल्य हैं। जीवात्मा परमाणु-तुल्य होता है। जीव ब्रह्म के अग हैं, अत वे ब्रह्म से पृथक् नही हैं। वे आनन्दमय ब्रह्म भी हैं। अत. जीव और ब्रह्म एक

ही हैं । जीव और ब्रह्म मे जो अन्तर दिखाई देता है, वह वास्तविक नही है, अपितु वह अन्तर ब्रह्म की इच्छा के कारण है । यह अन्तर अद्वैत मत के तुल्य माया के कारण नही है। अतः इस मत मे माया की सत्ता न होने से इसे शुद्धाद्वैतमत कहा जाता है । ब्रह्म अपनी स्वतन्त्र इच्छा से जीवो को अपने शरीर के तुल्य दिव्य शरीर प्रदान करता है, जिससे वे ब्रह्म के साथ सदा क्रीडा किया करें । ईश्वर और जीव का सम्बन्ध नायक-नायिकाभाव (पति-पत्नीभाव) सम्बन्ध है । भक्ति और आत्म-समर्पण से ब्रह्म का अनुग्रह प्राप्त होता है। इस मत मे ब्रह्म की पूजा कृष्ण के रूप मे होती है । उसके नाम **गोपीजनवल्लभ** और **श्रीगोवर्धननाथ** जी या **श्रीनाथ** जी हैं। देखिए —

जानीत परम तत्त्व यशोदोत्सङ्गलालितम् ।
तदन्यदिति ये प्राहुरासुरास्तानहो बुधाः ॥

ब्रह्मसूत्रानुभाष्य ४-४-२२

इस मत मे गुरु को देवतुल्य माना जाता है और उसकी देवतुल्य पूजा की जाती है । यह मत **वेद, भगवद्गीता** और **उपनिषद्** तथा **भागवत** को प्रामाणिक ग्रन्थ मानता है । जीवात्मा भागवत के निम्नलिखित सात प्रकार के अर्थों को जानने से मुक्त होता है । भागवत के सात ज्ञातव्य अर्थ ये हैं—**शाखा, स्कन्ध, प्रकरण, अध्याय, वाक्य, पद** और **अक्षर** ।

वल्लभाचार्य (१४७३-१५३१ ई०) इस मत के सस्थापक हैं । उन्होने ब्रह्मसूत्रों की टीका **अणुभाष्य** नाम से की है। उन्होने इस भाष्य को अपूर्ण छोड दिया था । उनके पुत्र **विट्ठलनाथ** जी ने उसे पूर्ण किया । **वल्लभाचार्य** ने **भागवत** की **सुबोधिनी** टीका लिखी है । उन्होने १६ छोटे ग्रन्थ लिखे हैं । इनमे उन्होने शुद्धाद्वैतमत के सिद्धान्तो और शिक्षाओ का सक्षिप्त विवेचन किया है । **वल्लभाचार्य** के शिष्य **पुरुषोत्तम** ने **अणुभाष्य** की टीका **भाष्यप्रकाश** नाम से की है और **भाष्यप्रकाश** की टीका **गोपेश्वर** ने **रश्मि** नाम से की है । **पुरुषोत्तम** ने शुद्धाद्वैतमत के दार्शनिक मन्तव्यो पर एक स्वतन्त्र ग्रन्थ **वेदान्ताधिकरणमाला** लिखा है । **श्रीजयगोपाल** ने **तैत्तिरीयोपनिषद्** की

टीका लिखी है। कृष्णचन्द्र ने ब्रह्मसूत्रो की टीका भावप्रकाशिका नाम से की है।

निम्बार्कमत

इस मत की स्थापना १२वी शताब्दी ई० मे निम्बार्क ने की थी। इस मत के अनुसार ब्रह्म सगुण और निर्गुण दोनो है। ससार ब्रह्म की अभिव्यक्ति मात्र है। ससार ब्रह्म से अभिन्न और पृथक् दोनो है। ससार मे जीव और प्रकृति दोनो का सग्रह है। इस प्रकार यह मत अद्वैत और द्वैत दोनो मानने के कारण द्वैताद्वैत मत कहा जाता है। जीव, जो कि ब्रह्म के नियन्त्रण में हैं, मुक्तावस्था मे भी उससे अभिन्न और पृथक् दोनो रूपो मे रहते हैं। ब्रह्म के वास्तविक रूप के साथ तादात्म्य प्राप्त करने को मोक्ष कहते हैं। मोक्ष की प्राप्ति ज्ञान और आत्म-समर्पण से होती है। इस मत के अनुसार ब्रह्म की उपासना कृष्ण और राधा के रूप में की जाती है। इस मत को सनक-सम्प्रदाय भी कहते हैं।

निम्बार्क ने ब्रह्मसूत्रो की टीका वेदान्तपारिजातसौरभ नाम से की है। निम्बार्क के शिष्य श्रीनिवास ने इस वेदान्तपारिजातसौरभ की टीका की है। निम्बार्क ने द्वैताद्वैत मत पर दशश्लोकी ग्रन्थ भी लिखा है। केशवाचार्य—(लगभग १६०० ई०) का दूसरा नाम केशव कश्मीरी था। उसने ये ग्रन्थ लिखे हैं—(१) ब्रह्मसूत्रो की टीका कौस्तुभप्रभा, (२) भगवद्गीता की टीका तत्त्वप्रकाशिका, (३) मुख्य उपनिषदो की टीका और (४) विष्णुसहस्रनाम आदि की टीका।

भास्करमत

भास्कर, शकर (६३२-६६४ ई०) का उत्तरवर्ती तथा वाचस्पति मिश्र (८५० ई०) का पूर्ववर्ती है। अत उसका समय ८०० ई० के लगभग है। उसका मत है कि ब्रह्म विशुद्ध गुणो से युक्त है। साथ ही वह उपाधि के कारण बद्ध और मुक्त दोनो है। दुर्गुणो से पूर्ण ससार के रूप में परिवर्तित

पर वल दिया गया है। इस मत मे योग के रहस्यात्मक रूपो, यन्त्रो की आश्चर्यजनक शक्ति और मुद्राओ (अगुलियो के द्वारा सकेतो) पर विश्वास किया जाता है। इस मत मे शक्तिसूत्र और शाक्त आगम सबसे प्रामाणिक ग्रन्थ माने जाते हैं। इस मत मे ये आगम ग्रन्थ हैं—५ शुभागम, ६४ कौलागम और ८ मिश्र आगम। यह माना जाता है कि एक परशुराम ने परशुरामकल्पसूत्र ग्रन्थ लिखा है। इसमे श्रीविद्या (सरस्वती) की पूजा का वर्णन है। ललितात्रिशतीभाष्य और शकरकृत सौन्दर्यलहरी शक्ति की पूजा का समर्थन करते हैं। भास्कराचार्य (लगभग १००० ई०) ने शिवसूत्रों की टीका शिवसूत्रवार्तिक नाम से की है और वरिवस्या-प्रकाश ग्रन्थ लिखा है। इस शाखा के प्रमुख ग्रन्थो मे से मुख्य ग्रन्थ ये हैं—तन्त्रराज, ब्रह्मानन्दकृत शाक्तानन्दतरगिणी कृष्णानन्दकृत तन्त्रसार और पुण्यानन्दकृत कामकला। यह शाखा अन्य शैव मतो की अपेक्षा अधिक वैदिक ग्रन्थो से सम्बद्ध है। शैव मत की पाशुपत और कापालिक आदि शाखाओ पर शाक्तमत का बहुत प्रभाव पडा है और उन्होने देवताओ के लिए पशुवलि और नर-वलि जैसे घृणित कर्म भी प्रारम्भ किए। शाक्तमत ने बौद्ध-धर्म को भी प्रभावित किया है और फलस्वरूप बौद्धो ने तान्त्रिक अभ्यासो को अपनाया है।

दर्शनो का इतिहास

प्राचीन भारत मे दर्शनो का इतिहास लिखने का कोई प्रयत्न नही हुआ है। दर्शनो मे जो समानताएँ प्राप्त होती थी, उनके आधार पर विभिन्न दर्शनो को सग्रह करने के प्रयत्न अवश्य हुए हैं। सर्ववेदान्तसिद्धान्तसग्रह ग्रन्थ का लेखक शकराचार्य को माना जाता है। बौद्ध दार्शनिक शान्तरक्षित ने ८वी शताब्दी ई० मे तत्त्वसग्रह ग्रन्थ लिखा है। इसकी टीका उसके शिष्य कमलशील ने की है। हरिभद्रसूरि (१२०० ई०) ने षड्दर्शनसमुच्चय लिखा है। विजयनगर के सायण के पुत्र माधव ने १४०० ई० के लगभग

सर्वदर्शनसंग्रह ग्रन्थ लिखा है। एक अज्ञात लेखक का एक ग्रन्थ **सर्वमतसंग्रह** है। **नारायण भट्ट** (लगभग १६०० ई०) ने **मानमेयोदय** ग्रन्थ में विभिन्न दर्शनों में प्राप्य मान (प्रमाण) और मेय (प्रमेय) का विस्तृत वर्णन दिया है। **महामहोपाध्यायलक्ष्मीपुरम् श्रीनिवासाचार्य** ने १९२५ ई० में **मानमेयोदय-रहस्यश्लोकवार्तिक** ग्रन्थ लिखा है।

अध्याय ३६

उपसंहार

पूर्व अध्यायो मे दिए हुए विवरण से स्पष्ट है कि साहित्य का ऐसा कोई भी अग नही है, जिसका विवेचन और विश्लेषण सस्कृत मे न हुआ हो। साहित्यिक भाषा के रूप मे सस्कृत की लोकप्रियता का यही मुख्य कारण है। बौद्धो और जैनो ने ईसा से पूर्व सवत् मे यह प्रयत्न किया कि सस्कृत को इस स्थान मे च्युत किया जाय, परन्तु उनके सब प्रयत्न निष्फल रहे और अन्त मे उन्हें साहित्यिक कार्यों के लिए सस्कृत को अपनाना पडा।

जैसा कि सस्कृत नाम से स्पष्ट है कि यह भाषा वैयाकरणो के द्वारा इतनी अधिक परिमार्जित और परिष्कृत की गई कि वह पूर्णता को प्राप्त हो गई और कोई भी भाषा उच्चारण, भाषा, शब्द-कोष और वाक्यविन्यास आदि किसी भी दृष्टि से इसकी समानता नही कर सकती थी। अतएव इसे **दैवी वाक्** या **देवभाषा** नाम दिया गया। भारतवर्ष की सभी भाषाए, बिना किसी अपवाद के सस्कृत के साहचर्य से समुन्नत हुई हैं।

भारत की साहित्यिक भाषा के रूप मे सस्कृत का महत्त्व और अधिक है, क्योकि भारतीय सस्कृति का समस्त वाङ्मय सस्कृत मे ही उल्लिखित है। भारतवर्ष का महत्त्व मुख्य रूप से उसकी सास्कृतिक परम्परा के कारण ही है। भारतवर्ष की सीमा के बाहर के देशो ने भी आवश्यकता और कठिनाई के समय भारतवर्ष मे ही प्रोत्साहन और पथप्रदर्शन प्राप्त किया है।

सस्कृत भाषा मे लिखे हुए साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि प्राचीन समय मे किस प्रकार भारतवर्ष ने सभी दिशाओ मे उन्नति की थी और किस प्रकार भारतीय सस्कृति अभ्युन्नत दशा मे थी। भारतीय सस्कृति के विभिन्न रूपो का वर्णन सस्कृत मे प्राप्त होता है। भौतिक उन्नति की अपेक्षा आत्मिक उन्नति को अधिक महत्त्व दिया जाता था और दैनिक जीवन मे

भी उसका अभ्यास किया जाता था । भारतीय विचारको की दृष्टि मे आत्मा का महत्त्व और उसकी पवित्रता की ओर ध्यान सदा रहा है । भौतिक उन्नति आत्मिक उन्नति के सहायक के रूप मे स्वीकृत थी । अतएव अहिंसा और सहनशीलता के अभ्यास पर विशेष वल दिया जाता था । जीवन भर के परीक्षणो के पश्चात् भारतीयो ने कर्म-सिद्धान्त और पुनर्जन्मवाद मे आस्था रक्खी और इनका सर्वाङ्गपूर्ण अध्ययन किया । आशावाद की दृढ भावना ने भारतीयो को यह शक्ति प्रदान की है कि वे जीवन की सभी प्रकार की कठिनाइयो को सहन करने का साहस रखते हैं । यह भारतवर्ष की प्रमुख विशेषता है । यह शक्ति हिन्दू धर्म और उसके सिद्धान्तो को अपने व्यवहार मे लाने का प्रभाव है । भारतवर्ष मे धर्म और दर्शन अविच्छिन्न रूप से साथ रहे हैं । भारतीय दर्शन जिन तथ्यो का वर्णन करते हैं, उनको ही ग्राह्य समझ कर भारतीय उनको व्यवहार मे लाते हैं ।

विश्व-साहित्य भारतीय साहित्य का वहुत ऋणी है । शिक्षा, व्याकरण और सगीत के ग्रन्थो से ज्ञात होता है कि जिस समय विश्व के अन्य समस्त देश अन्धकार के गर्त मे लीन थे, उस समय भारतवर्ष के ऋपि ध्वनि, ध्वनियो के उच्चारणस्थान और उनके विभेदो को वहुत गम्भीरता के साथ जानते थे । अतएव मैकडानल ने लिखा है कि "भारत मे सस्कृत भाषा के वैयाकरण ही विश्व के सर्वप्रथम विद्वान् हैं, जिन्होने शब्दो की निष्पत्ति पर ध्यान दिया, धातु और प्रत्यय के अन्तर को समझा, प्रत्ययो का कार्य निश्चित किया और एक ऐसा विशुद्ध और सर्वाङ्गपूर्ण व्याकरण-शास्त्र उपस्थित किया, जो कि विश्व मे अनुपम है ।"[1] आयुर्वेद और गणित ज्योतिष के क्षेत्र मे भी प्रशसनीय उन्नति की है । दार्शनिक विवेचन और विश्लेषण मे जो सफलता प्राप्त की है, उससे भारतवर्ष सदा गौरवान्वित रहेगा । आतकवाद, जन्मसिद्ध राजत्व और प्रजातन्त्रवाद के गुण-दोष का

१. Macdonell India's Past पृष्ठ १३६

परिशिष्ट

रामायण पर आश्रित ग्रन्थ

वाल्मीकि को आदिकवि माना जाता है। विषय-चयन तथा लेखन-शैली मे उन्होने परवर्ती कवियो का पथ-प्रदर्शन किया। उनके गौरव का कारण है राम को काव्य का नायक चुनना। उन्होने स्वय इस प्रकार के चयन का समर्थन किया।

देखिए —न ह्यन्योऽर्हति काव्याना यशोभाग्राघवादृते ।

रामायण—उत्तर० ९८-१८

उत्तरवर्ती लेखको द्वारा वाल्मीकि की प्रशस्ति मे लाई गई निम्नलिखित सूक्तियाँ उल्लेखनीय हैं—

१ अहो, सकलकविसार्थसाधारणी खल्विय वाल्मीकीया सुभाषितनीवी ।

अनर्घराघव—प्रस्तावना

२ मधुमयभणितीना मार्गदर्शी महर्षि

रामायणचम्पू १-८

३ स व पुनातु वाल्मीके सूक्तामृतमहोदधि ।
ओकार इव वर्णाना कवीना प्रथमो मुनि ।

रामायणमजरी

४ लकापते सकुचित यशोयत्
यत्कीर्तिपात्र रघुराजपुत्र. ।
स सर्व एवादिकवे प्रभावो
न कोपनीया कवय क्षितीन्द्रै. ।।

विक्रमाङ्कदेवचरित १-२७

५. मुख्यमुनीनामिव त कवीना
नमामि येनागमकोविदेन ।
स्वकाव्यदेवायतनेऽधिदेवी
प्रतिष्ठिता राघवकीर्तिमूर्ति ।।

सरयोत्सव १-३०

रामायण पर आश्रित मुख्य ग्रन्थों की सूची

क्रमसंख्या	ग्रन्थ का नाम	रचयिता	काव्य का रूप	समय
१	अभिषेकनाटक	भास	नाटक	२०० ई० पू०
२	प्रतिमानाटक	"	"	"
३	यज्ञफल	"	"	"
४	रघुवंश	कालिदास	काव्य	५० ई० पू०
५	कुन्दमाला	दिङ्नाग	नाटक	२०० ई०
६	सेतुबन्ध	प्रवरसेन	काव्य	४०० "
७	जानकीहरण	कुमारदास	"	५२० "
८	रावणवध	भट्टि	"	६५० "
९	आश्चर्यचूडामणि	शक्तिभद्र	नाटक	७०० "
१०	रामाभ्युदय	यशोवर्मन्	"	"
११	उत्तररामचरित	भवभूति	"	"
१२	महावीरचरित	"	"	"
१३	स्वप्नदशानन	भीमट	"	८०० "
१४	अनर्घराघव	मुरारि	"	९०० "
१५	बालरामायण	राजशेखर	"	"
१६	रामचरित	अभिनन्द	काव्य	"
१७	रामायणचम्पू	भोज	चम्पू	१०५० "
१८	महानाटक	हनुमान	नाटक	"
१९	कनकजानकी	क्षेमेन्द्र	नाटक	१०५० "
२०	रामायणमञ्जरी	"	काव्य	" "
२१	रामपालचरित	सन्ध्याकरनन्दिन्	"	११५० "
२२	प्रसन्नराघव	जयदेव	नाटक	१२७० "
२३	उन्मत्तराघव	भास्कर	"	१३५० "
२४	"	विरूपाक्ष	"	" "

क्रमसंख्या	ग्रन्थ का नाम	रचयिता	काव्य का रूप	समय
२५	रघुनाथाभ्युदय	वामनभट्टवाण	काव्य	१४२० ,,
२६.	आनन्दराघव	राजचूडामणि दीक्षित	नाटक	१६२० ,,
२७.	अद्भुतदर्पण	महादेव	,,	१६५० ,,
२८.	जानकीपरिणय	चक्रकवि	काव्य	,, ,,
२९.	उत्तरचम्पू	वेङ्कटाध्वरि	चम्पू	,, ,,
३०	जानकीपरिणय	रामभद्र दीक्षित	नाटक	१७०० ,,
३१.	रामकथा	वासुदेव	काव्य	,, ,,

महाभारत पर आश्रित ग्रन्थ

रामायण के तुल्य महाभारत भी श्रेण्यकाल के कवियो के लिए लोकप्रिय रहा है। उन्होने महाभारत की मुख्य कथा तथा उसके अन्तर्गत अन्य कथाओ का उपयोग किया है। उन्होने अपने ग्रन्थो के लिए महाभारत से कथानक लिया है। महाभारत स्वय भी इस प्रकार की भविष्यवाणी करता है।

१ सर्वेषा कविमुख्यानामुपजीव्यो भविष्यति ।
पर्जन्य इव भूतानामक्षयो भारतद्रुम ।।

महाभारत—आदि० १-१०८

२ इतिहासोत्तमादस्माज्जायन्ते कविबुद्धय ।
पञ्चभ्य इव भूतेभ्यो लोकसविधयस्त्रय ।।

महाभारत—आदि० २-३८६

३ अनाश्रित्यैतदाख्यान कथा भुवि न विद्यते ।
आहारमनपाश्रित्य शरीरस्येव धारणम् ।।
इद कविवरैः सर्वैराख्यानमुपजीव्यते ।
उदयप्रेप्सुभिर्भृत्यैरभिजात इवेश्वर ।।

महाभारत—आदि० २-३८९-३९०

बाण और दण्डी ने व्यास और उनके महाकाव्य की अतिशय प्रशस्ति की है तथा अपनी श्रद्धा व्यक्त की है।

देखिए —नम सर्वविदे तस्मै व्यासाय कविवेधसे ।
चक्रे पुण्य सरस्वत्या यो वर्षमिव भारतम् ।।

हर्षचरित—प्रस्तावना श्लोक ३

मर्त्यर्यन्त्रेषु चैतन्य महाभारतविद्यया ।
अर्पयामास तत्पूर्वं यस्तस्मै मुनये नम ।।

अवन्तिसुन्दरी—प्रस्तावना श्लोक ३

महाभारत की मूल कथा और अन्तर्कथाओं पर आश्रित मुख्य ग्रन्थों की सूची

क्रमसंख्या	ग्रन्थनाम	रचयिता	काव्य का रूप	समय
१	दूतघटोत्कच	भास	नाटक	२०० ई० पू०
२	दूतवाक्य	,,	,,	,,
३	कर्णभार	,,	,,	,,
४	मध्यमव्यायोग	,,	,,	,,
५.	पञ्चरात्र	,,	,,	,,
६	उरुभङ्ग	,,	,,	,,
७	अभिज्ञानशाकुन्तल	कालिदास	,,	५० ई० पू०
८	किरातार्जुनीय	भारवि	काव्य	५८० ई०
९	वेणीसंहार	भट्टनारायण	नाटक	६५० ,,
१०	शिशुपालवध	माघ	काव्य	७०० ,,
११.	सुभद्राधनंजय	कुलशेखरवर्मन्	नाटक	७५० ,,
१२.	कीचकवध	नीतिवर्मन्	काव्य	९०० ,,
१३	बालभारत	राजशेखर	नाटक	,, ,,
१४.	नैषधानन्द	क्षेमीश्वर	,,	,, ,,
१५	नलचम्पू	त्रिविक्रमभट्ट	चम्पू	,, ,,
१६	भारतमंजरी	क्षेमेन्द्र	काव्य	१०५० ,,
१७	चित्रभारत	,,	नाटक	,, ,,
१८.	धनंजयव्यायोग	कांचनपंडित	,,	,, ,,
१९	नैषधीयचरित	श्रीहर्ष	काव्य	११५० ,,
२०	नलविलास	रामचन्द्र	नाटक	,, ,,
२१	निर्भयभीम	,,	,,	,, ,,
२२	हरकेलिनाटक	विग्रहराजदेव विशालदेव	,,	,, ,,
२३.	किरातार्जुनीय	वत्सराज	,,	१२०० ,,

क्रमसंख्या	ग्रन्थ नाम	रचयिता	काव्य का रूप	समय
२४	सहृदयानन्द	कृष्णानन्द	काव्य	१२०० ई०
२५	वालभारत	अमरचन्द्र	,,	१२५० ,,
२६	पाण्डवचरित	देवप्रभ सूरि	,,	,, ,,
२७	बालभारत	अगस्त्य	,,	१३०० ,,
२८	पार्थपराक्रम	प्रह्लादन	नाटक	,, ,,
२९	भीमपराक्रम	मोक्षादित्य	,,	,, ,,
३०.	सौगन्धिकाहरण	विश्वनाथ	,,	१३५० ,,
३१	नलाभ्युदय	वामनभट्टवाण	काव्य	१४०० ,,
३२	नलोदय	वासुदेव	,,	१४५० ,,
३३	युधिष्ठिराभ्युदय	,,	,,	,, ,,
३४.	भारतचम्पू	अनन्तभट्ट	चम्पू	१५५० ,,
३५	भैमीपरिणय	श्रीनिवास दीक्षित	नाटक	,, ,,
३६	सुभद्राधनजय	गुरुराम	,,	१६०० ,,
३७	पाञ्चालीस्वयवरचम्पू	नारायणभट्ट	चम्पू	,, ,,
३८	भारतचम्पू	राजचूडामणि दीक्षित	,,	१६२० ,,
३९	द्रौपदीपरिणयचम्पू	चक्रकवि	,,	१६५० ,,
४०	नलचरित	नीलकण्ठ दीक्षित	नाटक	,, ,,
४१	सुभद्रापरिणय	नल्लाकवि	,,	१७०० ,,

अनुक्रमणिका

इ

छ

ज

म

व